

श्रीचैतन्यदेव

[हिन्दी-संस्करण]



मूल-लेखक
महामहोपदेशक

श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद

प्रकाशक
गौड़ीय मिशन (रजिस्टर्ड)
बागबाजार, कलकत्ता-३

४५ चार रुपये

: प्राप्तिस्थान :

श्रीगौड़ीय मठ,

बागबाजार, कलकता-३



श्रीगौड़ीय मठ,

४५, हनुमान रोड, नई दिल्ली ।



श्रीगौड़ीय मठ,

म्वालियर टैंक रोड, बम्बई-२६



श्रीरूप-गौड़ीय मठ,

इलाह ब द-६



श्रीसनातन-गौड़ीय मठ,

८।१७, बडा गभीरसिंह, बनारस



श्रीगौड़ीय मठ,

गणेशगज. लखनऊ ।



श्रीगौड़ीय मठ,

मीठापुर, पटना ।



श्रीगौड़ीय मठ,

रमना रोड, गया ।



श्रीपुरुषोत्तम मठ,

चटक पर्वत, गौडवाटशाही, पुरी ।

श्रीकृष्णचैतन्य मठ

पुराना शहर, वृन्दावन ।



श्रीव्यास-गौड़ीय मठ

थानेश्वर, कुरुक्षेत्र (पूर्वपजाब)



प्रथम संस्करण



श्रीस्वरूपशमोदर गोस्वामी

पादकी तिरोभाव-तिथि तथा

श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रा

१६ बामन, श्रीचैतन्याब्द

४६७ तदनुसार १३ जुलाई,

१९५३



सर्वाधिकार सुरक्षित

राष्ट्रपतिका आनन्द-प्रकाश

श्रीश्रीचैतन्यदेवका सुवनमंगल-चरित एवं उनकी शिक्षासे परिपूर्ण ग्रन्थ “श्रीचैतन्यदेव” गौड़ीय-मिशनने राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित किया है जानकर राष्ट्रपति डॉकर श्रीराजेन्द्रप्रसादने आनन्द प्रकाश किया है और उनकी ओरसे यह शुभेच्छा प्राप्त हुई है :—

“The President was glad to know that the Gaudiya Mission has brought out an exhaustive book in Hindi embodying the life and teachings of Sri Chaitanya Mahaprabhu * * * I have been directed to convey to you the President's best wishes for the Gaudiya Mission ”

Rashtrapati Bhavan,
New Delhi
September 8, 1953

(Sd) R. L. Handa
Press Attache to the President

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गी जयत

निवेदन

जड़ प्रगति और प्रभु व-कामनाके अनिवार्य फल-स्वरूप विश्वसघर्ष तथा नाना प्रकारके जगज्जाल उपस्थित हो रहे हैं। जड़-कामकी प्रगतिसे विश्वशान्ति तो दूरकी बात है, कभी व्यक्तिगत शान्ति भी नहीं मिल सकती। शान्तिके नामपर आज चारो ओर अशान्तिका साम्राज्य फैलता जा रहा है। भ्रातृत्वके नामपर आज विद्वेषकी ज्वाला भडक रही है।

वह दिन भी कुछ ऐसा ही था। श्रीगौराब्दके अनुसार ४६७ वर्ष पूर्वकी बात है, —हत्या, लूटमार और तरह-तरहके अत्याचारकी बीभत्स-घटनाओंकी स्याहीसे हमारे इतिहासके पन्ने लिखे जा रहे थे, चारो ओर कपट, षडयन्त्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्म-विद्वेष और अराजकताने भीषण रौद्ररूप धारण कर लिया था, देशसे शुद्ध-भक्तिक। बिल्कुल लोप हो गया था,—तब एक अद्वितीय-पुरुषका आविर्भाव हुआ। सूर्यके उदय होते ही जैसे अँधेरा हट जाता है, वैसे ही उस अतिमर्त्य-पुरुषके आविर्भावसे अशान्तिका अन्धकार लुप्त होकर शान्तिका आलोक दिखाई देने लगा। धर्म और भक्तोपर जब-जब विपत्ति पड़ी है, अतिमर्त्य-पुरुष तब-तब धरतीपर अवतरित हुए हैं,— नित्यसिद्ध नए-नए रूपमें। उस दिन उस अतिमर्त्य-पुरुषका आविर्भाव हुआ नित्य पूजनीय कृष्णावतार श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीचैतन्यदेव'के रूपमें। ये स्वयं भगवान् हैं अर्थात् अवतारी स्वयं अवतरित होकर आए ससारको अपना प्रेम वितरण करनेके लिए; क्योंकि यह कार्य किसी प्रतिनिधिसे नहीं हो सकता था। श्रीचैतन्यदेवने अपनी प्रेममयी अमृत-वाणीसे भूले हुए मनुष्योंको सच्चा मार्ग दिखाया, ससारको सच्ची शान्तिका पता दिया।

आज लोग उनकी वाणीको भूल गए हैं, आज लोग उनके बताए हुए रास्तेको खो बैठे हैं। तभी यह अशान्ति, तभी यह विद्वेष और

तभी यह सघर्ष देश, समाज और व्यक्तिके जीवनमें प्रवेश करता जा रहा है। आज बहुतसे लोग श्रीचैतन्यदेवकी दुहाई देकर प्रेमके नामपर कामकी उपासना कर रहे हैं, इस प्रकार वे लोग अपनेको धोखा देनेके साथ-साथ जगत्को भी धोखा दे रहे हैं।

श्रीचैतन्यदेव अहैतुकी कृपाका विस्तार करके बगदेशमें अवतरित हुए। बगालका आदिम साहित्य उन्हींके श्रीचरणोंकी अर्चना करके प्रकाशित हुआ है, परन्तु दुःखका विषय है कि अब भी बहुतसे शिक्षित व्यक्ति श्रीचैतन्यदेवके चरित और शिक्षाके सबधमें अनेको कल्पित, भ्रान्त तथा विकृत मतका पोषण करते हैं, कोई-कोई तो इसके सबधमें पूर्णरूपसे भ्रज या उदासीन है। बगालके कई प्रसिद्ध साहित्यिकोंने कुछ अप्रामाणिक कल्पित पोथियोंके प्रमाण एवं कल्पनाका आश्रय लेकर श्रीचैतन्यदेवको जिस रूपमें चित्रित करनेकी चेष्टा की है, उससे तो ऐतिहासिक सत्य भी विलुप्त हो गया है। श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित भक्ति-सिद्धान्तके सबधमें बात चलते ही तरल-कथा-साहित्यके पाठक-सम्प्रदायमें सिर-दर्द होने लगता है। इससे सहज ही एक ओर जैसे ऐतिहासिक सत्यका अपलाप होता है, दूसरी ओर उनकी यथार्थ शिक्षा और सिद्धान्तके विषयमें भी सम्पूर्ण उदासीनता हमारी प्रगतिके नामपर अधोगति कर रही है अर्थात् हमें अचैतन्य-राज्यमें ही प्रवेश करा रही है।

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा एक ही साथ सरल भी है और गभीर भी। सरल इसलिए कि निरक्षर मनुष्यके समझनेके लिए किसी प्रकारका कोई उलझन नहीं और गभीर इसलिए कि तर्क-विचार एवं शास्त्र-ज्ञानमें पारंगत परम पंडितोंके मननकी प्रचुर सामग्री है। गृहस्थ एवं वैरागी, युवक एवं वृद्ध, स्त्री एवं पुरुष बिना किसी जाति-वर्ण-धर्मके भेदके सभी लोग श्रीचैतन्यदेवके आचरण और शिक्षासे सर्वश्रेष्ठ मंगलका वरण कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति निरपेक्ष और सरल होनेपर श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित धर्मको नित्य सार्वजनीन चित्त-समन्वय-विधानकारी परमधर्मके रूपमें प्राप्त कर सकता है। 'उपनिषद्' और

‘ब्रह्मसूत्र’में जिस गभीर तत्वका आविष्कार हुआ है, श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामें उसका परिपूर्ण सार भाग पाया जाता है। अठारह पुराण, बीस धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, षड्दर्शन और तन्त्रशास्त्रमें जो सब कल्याणकारी उपदेश हैं, वे सभी तात्त्विक रूपमें श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामें दिखाई पड़ते हैं। विदेशी धर्मशिक्षामें और स्वदेशी प्रचलित धर्मसमूहमें जो कुछ सद्बस्तु है तथा स्वदेशी-विदेशी किसी भी शास्त्रमें जो नहीं पाया जाता है, वह भी श्रीचैतन्य-देवकी परिपूर्ण शिक्षामें पाया जाता है।

साधारणतः तीन श्रेणीके व्यक्ति श्रीचैतन्य-चरितकी आलोचनामें प्रवृत्त होते हैं। प्रथम श्रेणीके लोग ऐतिहासिक और साहित्यिक कौतूहलको चरितार्थ करनेके लिए, द्वितीय श्रेणीके लोग श्रीचैतन्य-चरित्रको अपने चिन्तन और भाव-धाराके सॉंचेमें ढालकर निर्माण करनेके लिए या प्रतिकूल समालोचनाके लिए एव तृतीय श्रेणीके लोग आत्म-कल्याण और आनुषङ्गिक रूपसे पर-कल्याणके लिए श्रीचैतन्य-चरित्रकी आलोचना किया करते हैं। हमलोगोंने भगवान् श्रीचैतन्यदेव की कथा जिन सब महापुरुषोंके पादपद्ममें बैठकर श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, उनके आदर्शने हमें यह शिक्षा दी है कि अचैतन्य चिन्ता-स्रोत और आचार-प्रचारमें लगे रहकर श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी आलोचना नहीं की जा सकती। उनके आदर्शने हम लोकोको यह भी सिखाया है कि श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी आलोचना करके वास्तवमें लाभ उठाना हो या श्रीचैतन्यदेवको समझना हो तो श्रीगौर-चरण-कमलको अपना प्राणधन समझना होगा तथा श्रीचैतन्यके भक्तोका नित्य सग करना होगा, तभी सिद्धान्त-सागरकी तरंगको जाना जा सकेगा। इस पुस्तकमें श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा और सिद्धान्तका उनकी प्रत्येक लीला और चरितके द्वारा यथासाध्य साधारण जनताके उपयोगी बनाकर वर्णन किया गया है। तर्क और विद्वव्यापी सघर्षके युगमें वास्तविक पराशान्तिके पिपासु व्यक्तिगण श्रीचैतन्यदेवके विमल प्रेम-

धर्मकी आलोचना करके कृतार्थ हो, यही हमारा नम्र-निवेदन है। श्रीचैतन्यदेवके शिक्षा-पूत्रमे ग्रथित होनेपर ग्रथार्थ विश्वप्रेमका विस्तार होगा, सघर्ष और द्वन्द्वकी अमानिशाका अंत हो जायगा एवं ग्रथार्थ जन-मंगलका आविर्भाव होगा।

सर्वप्रथम ४४६ श्रीगौराब्द (ईस्वी सन् १६३६)मे बंगलामे यह पुस्तक लिखी गई। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके 'श्रीचैतन्यभागवत', श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपादके 'श्रीचैतन्यचरितामृत', श्रीमुरारि गुप्तके 'संस्कृत करचा', श्रीलोचनदास ठाकुरके 'श्रीचैतन्यमंगल', श्रीकविकर्णपूरके 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक', श्रीसनातनपादकी 'श्रीवृहद्बैष्णव-तोषणी', 'श्रीवृहद्भागवतामृत' तथा 'श्रीदिग्दर्शिनी टीका', श्रीरूप और श्रीरघुनाथकी 'स्तवमाला' एवं 'स्तवावल', श्रीजीवपादके 'श्रीषट्सन्दर्भ', 'श्रीक्रमसन्दर्भ' तथा 'सर्वसवादिनी' आदि महापुरुषोके द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रन्थ-समूह और उनके सिद्धान्त ही इस पुस्तककी रचनाके मूल उपकरण हैं। बंगलामे इस ग्रन्थके पाँच संस्करण हो चुके हैं। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा होनेके कारण अनेक सज्जनोके अत्यन्त आग्रहसे इस ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। हिन्दीमे इसके प्रकाशन कार्यमे जिन सज्जनोने निस्वार्थभावसे हमें पूर्ण-सहयोग प्रदान किया, उनमे श्रीमान् हनुमानप्रसाद पोद्दारजी, सपादक—'कल्याण' (गीता प्रेस, गोरखपुर), तथा श्रीसनातन-गौड़ीय मठ, काशीके अध्यक्ष श्रीहरिजनकिकर भक्ति-विवुध विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इसके लिए हम इन सज्जनोके अत्यन्त आभारी हैं एवं इनको अपना आन्तरिक धन्यवाद देते हैं।

पुस्तकमे कोई त्रुटि-विच्युति दिखाई पड़े तो पारमार्थिक पाठकगण निज-गुणोसे क्षमा करेगे तथा सशोधन कर ग्रन्थका सार ग्रहण करके वाचित करेंगे।

श्रीश्रीगोविन्दजोका श्रीमंदिर
जयपुर (राजस्थान)
श्रीगौरजयन्ती, श्रीगौराब्द ४६७

श्रीश्रीगुरुवैष्णव-कृपाविन्दुप्रार्थी
श्रीसुन्दरानन्ददास विद्याविनोद

सूचीपत्र

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
पहला	समसामयिक राजनैतिक अवस्था	१-६
दूसरा	बंगालकी अर्थनैतिक अवस्था	६-८
तीसरा	तत्कालीन विद्या और साहित्य-चर्चाकी अवस्था	८-११
चौथा	सामाजिक अवस्था	११-१६
पाँचवाँ	धार्मिक जगत्की अवस्था	२०-३३
छठा	तत्कालीन पृथ्वी	३४-३८
सातवाँ	नवद्वीप	३८-५१
आठवाँ	आविर्भाव	५१-५५
नवाँ	निमाङ्की बाल्य-लीला	५५-६१
दसवाँ	निमाङ्का विद्यारम्भ और चाचल्य	६२-६४
ग्यारहवाँ	श्रीअद्वैत-सभा और श्रीविश्वरूपका सन्यास	६५-६६
बारहवाँ	उपनयन और श्रीगंगादास पण्डितकी पाठशालामे अध्ययन	६६-७२
तेरहवाँ	श्रीनिमाङ्का प्रथम विवाह	७२-७३
चौदहवाँ	आत्म-प्रकाशकी भविष्यवाणी	७३-७५
पन्द्रहवाँ	श्रीनवद्वीपमे श्रीईश्वरपुरीपाद	७५-७७
सोलहवाँ	श्रीनिमाङ्का नगर-भ्रमण	७७-८२
सतरहवाँ	दिग्विजयी-जय	८२-८७
अठारहवाँ	श्रीनिमाङ्का पूर्वबग-विजय और श्रीलक्ष्मीदेवीका अन्तर्धान	८८-९२

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
उन्नीसवाँ	सदाचार-शिक्षादान	६२-६६
बीसवाँ	श्रीनिमाइ पडितका दूसरी बार विवाह	*६६-६७
इक्कीसवाँ	श्रीगया-यात्रा	६७-१०७
बाईसवाँ	अद्भुत भावान्तर	१०७-११५
तेईसवाँ	वैष्णव-सेवा-शिक्षादान	११५-१२०
चौबीसवाँ	श्रीमुरारि-गुप्तके घरमे	१२०-१२२
पच्चीसवाँ	ठाकुर श्रीहरिदास	१२२-१२७
छब्बीसवाँ	श्रीनित्यानन्दके साथ मिलन और श्रीव्यास-पूजा	१२८-१२९
सत्ताईसवाँ	श्रीअद्वैताचार्यके सामने आत्मप्रकाश	१३०-१३१
अठ्ठाईसवाँ	श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि	१३१-१३५
उन्तीसवाँ	श्रीश्रीवास-मन्दिरमे सकीर्तन-रास	१३५-१३६
तीसवाँ	‘सात-प्रहरिया भाव’ अथवा ‘महाप्रकाश’	१३६-१४२
इकतीसवाँ	‘खड-जाठिया बेटा’	१४३-१४७
बत्तीसवाँ	जगाइ-माधाइ-उद्धार	१४७-१५०
तैंतीसवाँ	श्रीगौरागकी विभिन्न-लीला	१५०-१५६
चौतीसवाँ	आम्र-महोत्सव	१५७-१६१
पैंतीसवाँ	श्रीबुद्धिमन्त खाँ	१६१-१६३
छत्तीसवाँ	श्रीचन्द्रशेखरके घर नाट्याभिनय	१६३-१६६
सैंतीसवाँ	दारि-सन्यासीके घरमे	१६६-१७२
अडतीसवाँ	श्रीमुरारि गुप्त और श्रीगौरहरि	१७२-१७५
उन्तालीसवाँ	देवानन्द पडित	१७६-१८०

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
चालीसवाँ	श्रीशचीमाता और वैष्णवापराध	१८०-१८३
इकतालीसवाँ	दुग्धफलाहारी ब्रह्मचारी	१८३-१८५
बयालीसवाँ	चाँद काजी	१८६-१८८
तैंतालीसवाँ	श्रीमन्महाप्रभुका विश्वरूप-प्रदर्शन	१८९-१९१
चौवालीसवाँ	‘दु खी’, नही ‘सुखी’	१९२-१९५
पैंतालीसवाँ	श्रीश्रीवासके पुत्रकी परलोक-प्राप्ति	१९५-१९९
छियालीसवाँ	श्रीमन्महाप्रभुके सन्यासकी सूचना	१९९-२०३
सैंतालीसवाँ	श्रीनिमाइका सन्यास	२०४-२०६
अठतालीसवाँ	परिव्राजक-रूपमें श्रीगौरहरि	२०७-२१०
उन्चासवाँ	पुरीके मार्गमें और श्रीजगन्नाथ-मंदिरमें	२१०-२१६
पचासवाँ	श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य	२१७-२२०
इक्कावनवाँ	दाक्षिणात्यकी ओर	२२०-२२३
बावनवाँ	श्रीरायरामानन्दके साथ मिलन	२२३-२३५
तिरपनवाँ	दाक्षिणात्यके विभिन्न तीर्थोंमें	२३६-२४२
चौवनवाँ	श्रीचैतन्यदेव और भट्टथारि	२४२-२४४
पचपनवाँ	‘ब्रह्मसहिताध्याय’-पुस्तक	२४५-२४६
छप्पनवाँ	‘उडुपी’में श्रीकृष्णचैतन्य	२४७-२५१
सत्तावनवाँ	पुरीमें लौटना और भक्तोंके सग रहना	२५२-२५३
अठ्ठावनवाँ	श्रीमन्महाप्रभु और श्रीप्रतापरुद्र	२५३-२५६
उनसठवाँ	श्रीगुण्डिचा-मन्दिरकी सफाई	२५६-२५८
साठवाँ	श्रीरथयात्रा तथा श्रीप्रतापरुद्रके प्रति कृपा	२५८-२६०
इकसठवाँ	गौडीय भक्तगण	२६०-२६१

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
बासठवाँ	‘कुलीनग्राम’-वासियोके परिप्रश्न	२६१-२६७
तिरसठवाँ	‘अमोघ’-उद्धार	२६७-२६८
चौसठवाँ	गौडीय-भक्तोका पुन नीलाचलमे आना	२६८-२६९
पैसठवाँ	श्रीमन्महाप्रभुका वृन्दावन जानेका सकल्प	२७०-२७१
छासठवाँ	‘कानाइ-नाट्यशाला’	२७२-२७६
सडसठवाँ	श्रीरघुनाथ दास	२७६-२७९
अडसठवाँ	श्रीवृन्दावनकी ओर—‘झारखंड’के मार्गसे	२७९-२८१
उनहत्तरवाँ	प्रथम बार ‘काशी’ और ‘प्रयाग’मे	२८१-२८४
सत्तरवाँ	श्रीमथुरा और श्रीवृन्दावनमे	२८४-२८३
इकहत्तरवाँ	‘पठान-वैष्णव’	२८४-२८५
बहत्तरवाँ	पुन प्रयागमे—‘श्रीरूप-शिक्षा’	२८५-३०२
तिहत्तरवाँ	श्रीकाशीमे ‘श्रीसनातन-शिक्षा’	३०३-३०७
चौहत्तरवाँ	श्रीप्रकाशानन्द-उद्धार	३०७-३११
पचहत्तरवाँ	श्रीसुबुद्धि राय	३११-३१२
छिहत्तरवाँ	पुन श्रीनीलाचलमे	३१२-३१५
सतहत्तरवाँ	छोटे हरिदास	३१५-३२०
अठहत्तरवाँ	श्रीनीलाचलमे विविध-शिक्षा-प्रचार	३२०-३२७
उन्नासीवाँ	पुरीमे श्रीवल्लभ भट्ट	३२८-३२९
अस्सीवाँ	रामचन्द्र पुरी	३३०-३३१
इक्कासीवाँ	श्रीगोपीनाथ पट्टनायक	३३१-३३४
बयासीवाँ	‘श्रीराघवकी झालि’	३३५-३३६
तिरासीवाँ	‘श्रीनरेन्द्र-सरोवरमे श्रीचन्दन-यात्रा’	३३७-३३९

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
चौरासीवाँ	सकीर्तन-रास-नृत्य	३४०-३४१
पचासीवाँ	सेवा ही नियम है	३४१-३४३
छियासीवाँ	श्रीचैतन्यदासका निमन्त्रण	३४३-३४४
सतासीवाँ	ठाकुर श्रीहरिदासका तिरोधान	३४४-३४८
अठासीवाँ	श्रीपुरीदास और परमेश्वर मोदक	३४८-३४९
नवासीवाँ	पंडित श्रीजगदानन्द	३४९-३५१
नब्बेवाँ	देवदासीका 'श्रीगीतगोविन्द'-गान	३५१-३५२
इकानबेवाँ	श्रीरघुनाथ भट्ट	३५२-३५३
बानबेवाँ	उत्कलवासिनी भक्त महिला	३५३-३५६
तिरानबेवाँ	दिव्योन्माद	३५६-३५७
चौरानबेवाँ	श्रीकालिदास और श्रीझड़ू ठाकुर	३५८-३५९
पचानबेवाँ	श्रीपुरीदासकी कवित्व-स्फूर्त	३६०-३६१
छानबेवाँ	अप्राकृत भावावेशमे कूर्माकृति	३६१-३६२
सत्तानबेवाँ	समुद्र-वक्षमे	३६३-३६६
अठ्ठानबेवाँ	लीला-सगोपनका सकेत	३६६-३७०
नित्यानबेवाँ	अप्रकट-लीला	३७०-३७२
सौवाँ	श्रीचैतन्यदेवके रचित ग्रन्थ	३७२-३७५
एकसौ एकवाँ	श्रीचैतन्यदेवके प्रचार और सिद्धान्त	३७५-३८४
एकसौ-दोवाँ	वेदान्तभाष्य और सम्प्रदाय	३८५-३९०
एकसौ-तीनवाँ	'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'	३९०-३९६
एकसौ-चारवाँ	'गौडीय-दर्शन'की मौलिकता और सार्वभौमिकता	३९६-४०१

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ
एकसौ-पाँचवाँ	परमपुरुषार्थ या प्रयोजन-तत्त्व	४०२-४०८
एकसौ-छठाँ	श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म	४०९-४२५
एकसौ-सातवाँ	कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्य	४२५-४३६
एकसौ-आठवाँ	श्रीचैतन्यदेवके पार्षदवृन्द	४३७-४५८

परिशिष्ट

श्रीशिक्षाष्टकम्	४५९-४६३
श्रीपद्यावली	४६३-४६५



चित्र-सूची

संख्या	चित्र	पृष्ठ
१	श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामि-प्रभुपाद	
२	श्रीधाम-मायापुरमे श्रीश्रीगौरजन्मस्थानपर श्रीमदिर	१
३	श्रीमत् भक्तिविनोद ठाकुर	३७
४	बल्लालसेनके प्रासादका भग्नस्तूप	३९
५	मौलाना सिराजुद्दीन चादकाजीकी समाधि, वामनपुकुर (श्रीमायापुर)	४०
६	मैथ्यज वेन्-डेन् ब्रुकके बनाये हुए बगालके सबसे पुराने मानचित्रका कुछ अंश (सन १६५८-१६६४ ई०)	४४

संख्या	चित्र	पृष्ठ
७	जैन् थीर्णटन् द्वारा प्रकाशित बगालका अति प्राचीन मानचित्र (सन् १६७५ ई०)	४५
८	श्रीनवद्वीप-मण्डलका मानचित्र	५१
९	श्रीमन्दारमे श्रीमधुसूदनदेवका वर्तमान श्रीमदिर	६६
१०	श्रीगौर-पादाकित श्रीमदारपर्वत तथा उपत्यका	१००
११	श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिकी भजनकुटी	१३२
१२	याजपुरमे श्रीचैतन्य-पादपीठ	२११
१३	श्रीभुवनेश्वरका श्रीमदिर	२१२
१४	भुवनेश्वरमे श्रीविन्दुसरोवरके तीरपर श्रीअनन्तवासुदेवका श्रीमदिर	२१३
१५	साक्षीगोपालमे श्रीश्यामकुण्डके तीरपर श्रीसाक्षीगोपालजीका श्रीमदिर	२१३
१६	पुरीके श्रीमदिरका सिंहद्वार और उसके सामने अरुण-स्तम्भ	२१४
१७	श्रीजगन्नाथदेवके श्रीमदिरका सिंहद्वार, श्रीछत्रभोग-मण्डप, श्रीजगमोहन, श्रीमुखशाला और श्रीगर्भमदिर	२१५
१८	दूरसे सिंहाचल पर्वत, जियड-नृसिंहदेवका श्रीमदिर तथा श्रीचैतन्यपादपीठके श्रीमदिरका दृश्य	२२२
१९	राजमहेन्द्रीके गोदावरी किनारेपर पुष्कर-तीर्थ	२२४
२०	मगलगिरिके पर्वतकी गोदमे 'श्रीपानानृसिंह' मदिर	२३७
२१	मगलगिरिमे श्रीचैतन्यपादपीठ	२३७
२२	श्रीकालहस्ती या त्रिकालहस्तीमे शिवमदिर	२३८
२३	कोण्ड रामस्वामीका श्रीमदिर, तिरुपति (त्रिपदी)	२३९
२४	तिरुमलय पर्वतके ऊपर सुपावीन स्वामी (श्रीवेकटेश्वर) तालाब	२३९

संख्या	चित्र	पृष्ठ
२५	श्रीरगक्षेत्रका श्रीमदिर और गोपुरम्	२४०
२६	दक्षिण मथुरा (मदुरा)	२४१
२७	नौ त्रिपदीके अलवर तिरुनगरीमे प्रसिद्ध इमलीका वृक्ष , इस वृक्षके कोटरमे नम्मा अलवर प्रकटित हुए	२४३
२८	कन्याकुमारीके मदिरके पूर्वद्वार, भारतमहासागर, अरबसागर तथा बगसागर इन तीनोंका सगम और कन्यातीर्थघाट	२४४
२९	तुगभद्रा नदीके किनारे शृंगेरी मठ तथा विद्याशकरका समाधि-मदिर	२४६
३०	श्रीकृष्णमदिर, उडुपी	२४८
३१	श्रीमन्मध्वाचार्य	२४९
३२	भीमानदी या भीमरथीके किनारे भक्त श्रीपुंडरीकका मदिर	२५१
३३	श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्राका दृश्य	२५४
३४	श्रीआलालनाथका श्रीमदिर	२५५
३५	श्रीगुडिचा मदिर	२५७
३६	श्रीमदिरके सम्मुख श्रीविग्रहाधिष्ठित रथत्रय	२५९
३७	श्रीसत्यराज खोंका प्रतिष्ठित श्रीमदनगोपालदेवका श्रीमदिर (कुलीनग्राम)	२६२
३८	गौडके रामकेलिग्राममे श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीश्रीरूप- सनातनका मिलन-पीठ	२७३
३९	श्रीराधाकुडमे श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपादकी समाधि	२७८
४०.	काशीमे श्रीचन्द्रशेखर-भवन ; वर्तमान नाम चैतन्य-वट या यतन-वट	२८२

संख्या	चित्र	पृष्ठ
४१	पचगंगा और श्रीविन्दमाधवकी ध्वजा	२८३
४२	काशीमे मणिकर्णिका-घाट	२८३
४३	श्रीमथुरामे विश्राम-घाट	२८५
४४	श्रीकृष्णके जन्मस्थानमे प्राचीन ध्वसावशेष (श्रीमथुरा)	२८६
४५	श्रीराधाकुडके इस स्थानपर महाप्रभुने उपवेशन किया था ऐसा प्रसिद्ध है। इस स्थानपर श्रीचैतन्यदेवका एक पादपीठ है	२८७
४६	‘श्रीश्यामकुड’ और ‘श्रीराधाकुड’का मिलन-स्थान	२८७
४७	श्रीगिरिराज श्रीगोवर्द्धन	२८८
४८	श्रीगोवर्द्धनपर श्रीहरिदेवका मंदिर	२८९
४९	श्रीमानसी-गंगा	२९०
५०	श्रीनन्दग्राम	२९१
५१	श्रीवर्षाणामे श्रीराधारानीका श्रीमंदिर	२९२
५२	श्रीसकेत (ब्रजमे)	२९२
५३	श्रीकाम्यवन (ब्रजमंडल)	२९३
५४	आडाइल ग्राममे श्रीनृसिंहदेवका श्रीमंदिर	२९७
५५	श्रीप्रयागमे श्रीवेणीमाधवके श्रीमंदिरका वहिर्द्वार	२९८
५६	श्रीप्रयागमे दशाश्वमेध घाटपर ‘श्रीरूप-शिक्षास्थली’	२९९
५७	श्रीआलालनाथका श्रीमंदिर , यहाँपर श्रीमन्महाप्रभुका पदार्पण हुआ	३१७
५८	श्रीइन्द्रद्युम्न-सरोवर, पुरी , इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ जलकेलि किया करते थे	३३७

संख्या	चित्र	पृष्ठ
५९	श्रीनरेन्द्र-सरोवर या चन्दन-तालाब , चन्दन-यात्राके समय इस सरोवरमे श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हुआ करता है । सरोवरमे श्रीमन्महाप्रभुने अपने भक्तोके साथ जलकेलि की थी	३३८
६०	पुरीमे श्रीकाशी मिश्रके घरके नामसे परिचित 'गभीरा' गृहका द्वार	३४२
६१	श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-स्थली 'सिद्ध-वकुल' (पुरी)	३४५
६२	श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधि (पुरी)	३४७
६३	कोणार्क या कणारकमे भग्न सूर्य-मन्दिर	३६४



सांकेतिक-चिह्न-परिचय

अ०	अन्त्यलीला , अन्त्यखंड , अक , अघ्याय
अ० प्र० भा०	(श्रीचैतन्यचरितामृतका) अमृतप्रवाहभाष्य
अनु०	अनुच्छेद
आ०	आदिलीला , आदिखंड
कृ० वि०	श्रीकृष्णविजय
कृ० स०	श्रीकृष्णसन्दर्भ
कै० ली०	कैशोर-लीला
गी०	श्रीमद्भगवद्गीता
गौ० गौ० ग्र० स०	गौडीय-गौरव-ग्रन्थगुटिका-सस्करण
गौ० भा०	(श्रीचैतन्यभागवतका) गौडीयभाष्य
चै० च०	श्रीचैतन्यचरितामृत
चै० च० ना०	श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटकम्
चै० भा०	श्रीचैतन्यभागवत
चै० म०	श्रीचैतन्यमंगल
चै० च० महाकाव्य	श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्यम्
त० स०	श्रीश्रीतत्त्वसन्दर्भ.
द०	दक्षिण-विभाग
प०	परिच्छेद , श्रीपद्मावली
पा० टी०	पादटीका
पूर्व०	पूर्व-विभाग
ब्र० सू०	श्रीब्रह्मसूत्रम्
भ० र०	श्रीश्रीभक्तिरत्नाकर
भ० र० सि०	श्रीश्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
भ० स०	श्रीश्रीभक्तिसन्दर्भः
भग० स०	श्रीश्रीभगवत्-सन्दर्भ
भा०	श्रीमद्भगवत्
म०	मध्यलीला ; मध्यखंड
वि० मा० ना०	श्रीश्रीविदग्धमाधव-नाटकम्
स०	सम्पादक
ह० भ० वि०	श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः



तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधि-जीर्ण-पङ्क-
संमग्न-मोक्षण-विचक्षण-पादुकेभ्यः ।
कृष्णेति वर्णयुगल-श्रवणेन येषां
आनन्दथुर्भवति नर्तित-रोमवृन्दः ॥

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत

मगलाचरण

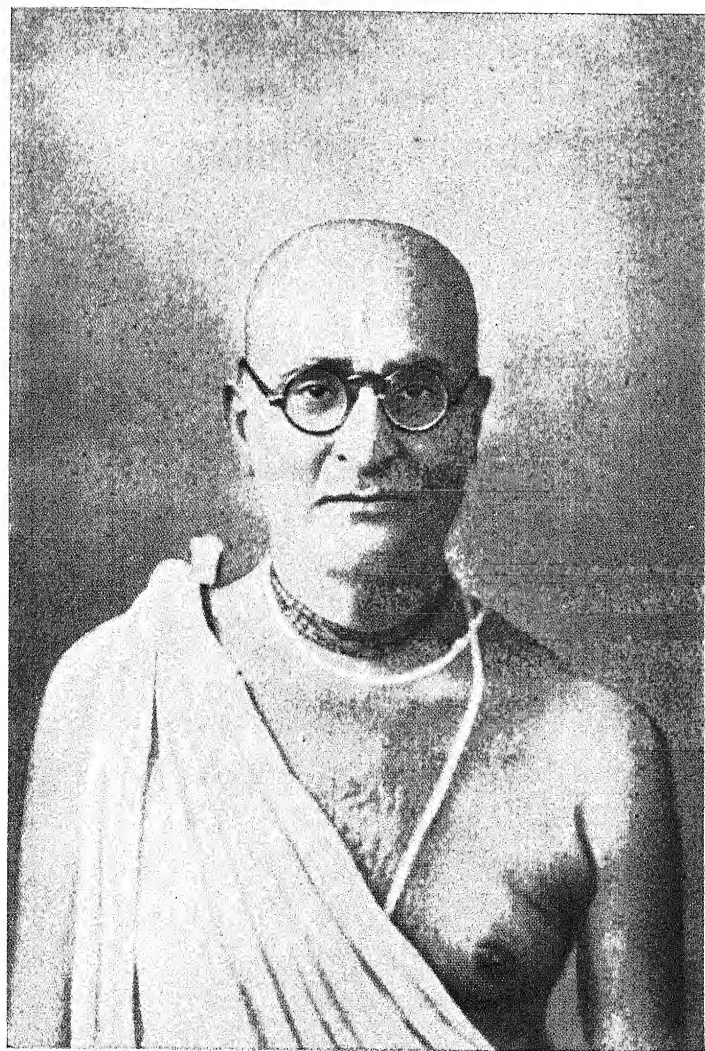
वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् त्रैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम् ।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च ॥

जयति जयति देवः कृष्णचैतन्यचन्द्रो
जयति जयति कीर्तिस्तस्य नित्या-पवित्रा ।
जयति जयति भृत्यस्तस्य विश्वेशमूर्ते-
र्जयति जयति नृत्यं तस्य सर्वप्रियाणाम् ॥

आदुर्जनगणशरणं, स जयति चैतन्यविग्रहः कृष्णः ॥

महाप्रभुका उपकार सभी देशमें, सभी पात्रमें तथा सभी कालमें सर्वश्रेष्ठ उपकार है। यह उपकार किसी देश-विशेषका उपकार और अन्य देशका अपकार नहीं ; यह उपकार समग्र विश्व-ब्रह्मांडका उपकार है। अतएव सकीर्ण, साम्प्रदायिक, नश्वर उपकारका प्रस्ताव महाप्रभु एवं महाप्रभुके भक्तगण कभी नहीं करते। महाप्रभुका उपकार किसी दिन किसीका मन्द नहीं करता। तभी महाप्रभुको दया 'अमन्दोदया दया' है, तभी महाप्रभु महावदान्य है और तभी महाप्रभुके भक्तगण महा-महावदान्य है। ये सब कहानी नहीं, काव्य-साहित्यकी कल्पना नहीं, —सबसे बड़ी सत्य भरी बातें हैं।

—श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद



गौडीयवैष्णवाचार्यवर्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती
गोस्वामिप्रभुपाद । आपने ही सर्व प्रथम देश-विदेशोंमें श्रीचैतन्यवाणीका
प्रचार किया । (आविर्भाव : संवत् १९३०—तिरोभाव सं० १९९३)



श्रीधर्म-मायापुरमें श्रीश्रीगौर-जन्मस्थानपर श्रीमंदिर

श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग जयत

श्रीचैतन्यदेव

पहला परिच्छेद समसामयिक राजनैतिक अवस्था

श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव सन् १४८६ ई० में हुआ। उस समय पठानोंके लोदीवशका प्रताप प्रबल हो रहा था। १४५० ई० में बल्लोल लोदीने दिल्लीके सिंहासन पर आरूढ होकर भारतवर्षमें प्रथम पठान राजवशकी प्रतिष्ठा की थी। १४८६ ई० में बल्लोलके बाद उनके पुत्र सिकन्दर लोदी सिंहासनारूढ हुए। सिकन्दरके राजत्व-कालमें ही श्रीचैतन्यदेवने नवद्वीपमें अपनी बाल्यलीला, अध्यापनलीला तथा अन्तमें काटवामें सन्यासलीला प्रकट करते हुए पुरी गमन किया था। सिकन्दरशाहने १५१७ ई० पर्यन्त अठ्ठाईस वर्ष राज्य किया। उसके बाद सिकन्दरके पुत्र इब्राहिम लोदी गद्दीपर बैठे। इसके पहले ही श्रीमथुराके समस्त रम्य देवमन्दिर विधर्मी राजाओंकी धर्मोन्मत्तताके ताण्डव-नृत्यसे विध्वस्त (?) हो चुके थे। उस समय श्रीचैतन्यदेव कभी पुरीमें रहते और कभी दक्षिण देश, बंगाल और श्रीब्रजमण्डलके नाना स्थानोंमें परिव्राजकके रूपमें नाम-प्रेमका प्रचार करते रहे। श्रीचैतन्यदेवके पुरी

अवस्थानके अन्तिम समयमें पानीपतकी पहली लड़ाई हुई (२१ अप्रैल, १५२६ ई०)। मुगल-साम्राज्यके सस्थापक बाबरने दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार करनेके लिये जिस समरानलको प्रज्वलित किया था, उसकी शिखा भारतके समस्त राजनैतिक गगनमें परिव्याप्त हो गयी थी।

श्रीचैतन्यदेवके समय बंगालके सुलतान थे—क्रमशः जलालुद्दीन फतेहशाह (ई० १४८२-८६), फिरोजशाह (१४८६-८९), नासीरुद्दीन महमूदशाह (१४८९-९०), मुजफ्फरशाह (१४९०-९३), अलाउद्दीन हुसेनशाह (१४९३-१५१९), नसरतशाह (१५१९-३२), अलाउद्दीन फिरोजशाह (१५३२), गियासुद्दीन महमूद शाह (१५३२-३८) और तत्पश्चात् हुमायूँ सुलतान हुए।

उस समय उड़ीसामें सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। १४६९ ई० से लेकर १४९७ ई० तक श्रीपुरुषोत्तमदेव* उड़ीसाके राजसिंहासनपर अधिष्ठित थे। उसके बाद श्रीप्रतापरुद्रदेवने १४९७ ई० से १५४० ई० तक उड़ीसामें शासन किया। इसी समय बंगालमें सुलतान हुसेन शाहका प्रताप प्रबल हो रहा था। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्रायः ग्यारह वर्ष बाद श्रीप्रतापरुद्र उड़ीसाके राजसिंहासनपर आरोहण हुए तथा श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके प्रायः छः वर्ष बाद तक राजसिंहासनपर आसीन रहे। उस समय इंग्लैंडके राजा थे सप्तम हेनरी (१४८५-१५०९ ई०) और अष्टम हेनरी (१५०९-१५४७ ई०)।

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहलेसे ही बगदेश अराजकताकी रंग-भूमिमें परिणत हो गया था। ईसाकी १५ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें (१४१४ ई०) इलियस शाहके वंशधरोको भगाकर राजा गणेशने बगदेशके सिंहासनपर अधिकार किया। राजा गणेशके पुत्र यदुने पितृ-सिंहासनपर बैठनेके बाद इस्लाम-धर्म ग्रहण किया और वह जलालुद्दीन

* इन्हीं श्रीपुरुषोत्तमदेवने ही साक्षीगोपाल-श्रीविग्रहको विद्यानगर (विजयनगर) से कटक लाकर स्थापित किया था। चै० च० म० पंचम प० ११९-१३३ सख्या।

महमूदशाहके नामसे विख्यात हुआ। तब राज्यके उमरावोंने यदुके पुत्र अहमदशाहकी हत्या करके इलियसशाहके एक वशधरको बगके राजसिंहासनपर बैठाया। इसके पश्चात् अर्थात् ईसाकी १५वीं शताब्दीके अन्तिम दिनो बगदेशमें हब्शी क्रीतदासोका बोलबाला रहा। सुलतान रुकनुद्दीन बर्बकशाह अफ्रिकासे हब्शी खोजा लोगोको लाये। श्री-चैतन्यके आविर्भावके पूर्व पर्यन्त अर्थात् १४८६ ई० पर्यन्त इलियसशाहके वशधर नानाप्रकारके विद्रोह और नरहत्याके ताण्डव-नृत्यके बीच पुनः बगदेशमें राज्य करते रहे। मुसलमान शासनकर्ताओंने अवरोध-रक्षाके लिए हब्शी नपुंसक क्रीतदासोको नियुक्त किया था। ये क्रीतदास लोग समय-समयपर तो राजाके अत्यन्त विश्वासपात्र बन जाते और फिर विश्वासघाती और स्वामी-हन्ता होते। उस समय बगदेशमें कपट, षड-यंत्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्मविद्वेष और अराजकताने जो भीषण रौद्ररूप धारण किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अराजकतासे विचलित होकर बगदेशकी हिन्दू-जनता और मुसलमान अमीरोंने अन्तमें अलाउद्दीन हुसेनशाहको बादशाह निर्वाचित किया। श्रीचैतन्यदेवके साथ उक्त हुसेनशाहका साक्षात्कार हुआ था।

बादशाह हुसेनशाहने तत्कालीन यशोहर (Jessore) के अन्तर्गत फतेहाबादके निवासी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणके कुलमें आविर्भूत श्रीसनातनको अपने प्रधानमन्त्रीका पद देकर उनको 'साकरमल्लिक'* (साकर—गभीरार्थ वाक्यके रचयिता; मल्लिक—ज्ञानवृद्ध अथवा कूटनैतिक-श्रेष्ठ, चतुरशिरोमणि) तथा उनके छोटे भाई श्रीरूपको 'दबीरखास'† (दबीर—मुशी, Secretary, खास—निजस्व, प्रधान, विशिष्ट, Private, या Principal, Special; अथवा दबीर—लेखक, Writer, खास—Excellent) की उपाधिसे विभूषित किया। श्रीसनातनके बहनोई श्रीकान्त हाजीपुरमें‡ (पटनाके सामने गंगाके दूसरे पार) रहकर

* चै० च० म० ११८४, † चै० भा० आ० ११७१ और चै० च० म० ११७५, २०७; ‡ चै० च० म० २०१३८।

अवस्थानके अन्तिम समयमें पानीपतकी पहली लड़ाई हुई (२१ अप्रैल, १५२६ ई०)। मुगल-साम्राज्यके संस्थापक बाबरने दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार करनेके लिये जिस समरानलको प्रज्वलित किया था, उसकी शिखा भारतके समस्त राजनैतिक गगनमें परिव्याप्त हो गयी थी।

श्रीचैतन्यदेवके समय बंगालके सुलतान थे—क्रमशः जलालुद्दीन फतेहशाह (ई० १४८२-८६), फिरोजशाह (१४८६-८९), नासीरुद्दीन महमूदशाह (१४८९-९०), मुजफ्फरशाह (१४९०-९३), अलाउद्दीन हुसेनशाह (१४९३-१५१९), नसरतशाह (१५१९-३२), अलाउद्दीन फिरोजशाह (१५३२), गियासुद्दीन महमूद शाह (१५३२-३८) और तत्पश्चात् हुमायूँ सुलतान हुए।

उस समय उड़ीसामें सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। १४६९ ई० से लेकर १४९७ ई० तक श्रीपुरुषोत्तमदेव* उड़ीसाके राजसिंहासनपर अधिष्ठित थे। उसके बाद श्रीप्रतापरुद्रदेवने १४९७ ई० से १५४० ई० तक उड़ीसामें शासन किया। इसी समय बंगालमें सुलतान हुसेन शाहका प्रताप प्रबल हो रहा था। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्रायः ग्यारह वर्ष बाद श्रीप्रतापरुद्र उड़ीसाके राजसिंहासनपर आरोहण हुए तथा श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके प्रायः छः वर्ष बाद तक राजसिंहासनपर आसीन रहे। उस समय इंग्लैंडके राजा थे सप्तम हेनरी (१४८५-१५०९ ई०) और अष्टम हेनरी (१५०९-१५४७ ई०)।

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहलेसे ही बगदेश अराजकताकी रग-भूमिमें परिणत हो गया था। इसाकी १५ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें (१४१४ ई०) इलियस शाहके वंशधरोको भगाकर राजा गणेशने बगदेशके सिंहासनपर अधिकार किया। राजा गणेशके पुत्र यदुने पितृ-सिंहासनपर बैठनेके बाद इस्लाम-धर्म ग्रहण किया और वह जलालुद्दीन

* इन्ही श्रीपुरुषोत्तमदेवने ही साक्षीगोपाल-श्रीविग्रहको विद्यानगर (विजयनगर) से कटक लाकर स्थापित किया था। चै० च० म० पंचम प० ११९-१३३ सख्या।

महमूदशाहके नामसे विख्यात हुआ। तब राज्यके उमरावोंने यदुके पुत्र अहमदशाहकी हत्या करके इलियसशाहके एक वशधरको बगके राजसिंहासनपर बैठाया। इसके पश्चात् अर्थात् ईसाकी १५वीं शताब्दीके अन्तिम दिनो बगदेशमें हब्शी क्रीतदासोका बोलबाला रहा। सुलतान रुकनुद्दीन बर्बकशाह अफ्रिकासे हब्शी खोजा लोगोको लाये। श्री-चैतन्यके आविर्भावके पूर्व पर्यन्त अर्थात् १४८६ ई० पर्यन्त इलियसशाहके वशधर नानाप्रकारके विद्रोह और नरहत्याके ताण्डव-नृत्यके बीच पुन बगदेशमें राज्य करते रहे। मुसलमान शासनकर्ताओंने अवरोध-रक्षाके लिए हब्शी नपुसक क्रीतदासोको नियुक्त किया था। ये क्रीतदास लोग समय-समयपर तो राजाके अत्यन्त विश्वासपात्र बन जाते और फिर विश्वासघाती और स्वामी-हन्ता होते। उस समय बगदेशमें कपट, षड-यंत्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्मविद्वेष और अराजकता ने जो भीषण रौद्ररूप धारण किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अराजकतासे विचलित होकर बगदेशकी हिन्दू-जनता और मुसलमान अमीरोने अन्तमें अलाउद्दीन हुसेनशाहको बादशाह निर्वाचित किया। श्रीचैतन्यदेवके साथ उक्त हुसेनशाहका साक्षात्कार हुआ था।

बादशाह हुसेनशाहने तत्कालीन यशोहर (Jessore) के अन्तर्गत फतेहाबादके निवासी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणके कुलमें आविर्भूत श्रीसनातनको अपने प्रधानमन्त्रीका पद देकर उनको 'साकरमल्लिक'* (साकर—गभीरार्थ वाक्यके रचयिता, मल्लिक—ज्ञानवृद्ध अथवा कूटनैतिक-श्रेष्ठ, चतुरशिरोमणि) तथा उनके छोटे भाई श्रीरूपको 'दबीरखास'† (दबीर—मुशी, Secretary, खास—निजस्व, प्रधान, विशिष्ट, Private, या Principal, Special ; अथवा दबीर—लेखक, Writer, खास—Excellent) की उपाधिसे विभूषित किया। श्रीसनातनके बहनोई श्रीकान्त हाजीपुरमें‡ (पटनाके सामने गंगाके दूसरे पार) रहकर

* चै० च० म० ११८४, † चै० भा० आ० ११७१ और चै० च० म० ११७५, २०७, ‡ चै० च० म० २०१३८।

सोनपुरके हरिहरक्षेत्रके मेलेमें बादशाहके लिये घोड़ा खरीदनेके कार्यमें नियुक्त थे। श्रीसनातन और श्रीरूपके छोटे भाई श्रीवल्लभ (श्रीचैतन्यदेवका प्रदत्त नाम श्रीअनुपम—श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादके पितृदेव) गौडकी टकसालके अध्यक्ष थे।

बादशाह हुसेनशाहकी उडीसा और कामरूपकी चढाईमें किये गये अमानुषिक अत्याचारोको देखकर दबीरखास और साकरमल्लिकको विशेष मनोव्यथा हुई। हुसेनशाहने उडीसापर आक्रमण करके वहाँके देवमन्दिरोंको नष्ट कर दिया था।* कहा जाता है कि इस हुसेनशाहके शिक्षक (?) मौलाना सिराजुद्दीन या चाँदकाजी उस समय नवद्वीपके शासनकर्ता नियुक्त हुए थे।† उन्होंने पहले श्रीनिमाइके‡ द्वारा प्रवर्तित सकीर्तनके विरुद्ध आचरण किया और श्रीश्रीवास पंडितके घरके समीपवर्ती एक नागरिकके कीर्तनके खोल (मृदग)को फोड़ दिया। काजीने यह आदेश प्रचारित किया कि उनके इलाकेमें रहते हुए यदि कोई हरिकीर्तन करेगा तो उसको दंड दिया जायगा और जातिभ्रष्ट कर दिया जायगा। § उस समय 'प्रतापरुद्र'के राज्य उडीसासे बगदेश अथवा बगदेशसे उडीसा आना-जाना विपत्ति-जनक था। 'पिछल्दा'¶ आमतक मुसलमान शासकका अधिकार था। एक राज्यकी प्रजा

* चै० भा० अ० ४।६७।

† “To Baira belongs the little town of Mayapur (near the Burdwan boundary) where I am told the tomb exists of one Maulana Sirajuddin who is said to have been the teacher of Husain Shah, King of Bengal” (*Hunter's Statistical Account of Bengal, Vol 1, p 367*)

‡ बाल्यलीलाके समयके श्रीचैतन्यदेवके तीन नाम हैं—

(१) श्रीनिमाइ पण्डित, (२) श्रीविश्वम्भर, तथा (३) श्रीगौराङ्ग।

§ चै० च० आ० १७।१७८।

¶ पिछल्दा—वर्तमान पश्चिमी बंगालके तमलुक शहरके दक्षिण १४ मील दूर नरघाट है। यहाँ 'कसावती' नदीका शेषांश 'हल्दी' के नामसे

अथवा एक राज्यके लोग दूसरे राज्यमें प्रवेश न कर सकें, इसके लिये स्थान-स्थानपर शूल गाड़कर रक्खे गये थे ।

हुसेनखाने सुबुद्धि रायकी सहायतासे गौडका सिंहासन प्राप्तकर शाहकी उपाधि धारण की । हुसेन पहले सुबुद्धि रायके अधीन कर्मचारी थे और किसी कारणसे उनके द्वारा दंडित हुए थे । गौडका सिंहासन प्राप्त करनेके बाद बेगमकी प्रेरणासे उन्होंने सुबुद्धि रायको जातिभ्रष्ट कर दिया ।* पश्चात् वे सुबुद्धि राय श्रीचैतन्यदेवकी कृपासे घन्यातिघन्य हुए थे ।

श्रीचैतन्यदेवके पुरी रहते समय तथा उनके अन्तर्धानके प्राय १५ वर्ष पूर्व १५१९ ई० में हुसेनशाह काल-कवलित हुए ।*

श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बहमनी राज्यकी अत्यन्त दुर्दशा हो गयी थी । बीजापुर और विजयनगरके बीच झगडा चल रहा था । ऐतिहासिक लोग कहते हैं कि इस युगके विवरणमें प्राप्त होता है—केवल हत्या, लूटमार और अत्याचारका बीभत्स इतिहास ।

मेवाडका राजपूत राज्य, जो हिन्दुओंके शौर्य, वीर्य, कुलीनता और स्वाधीनताके उदयाचलके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है, वहाँ भी

पूर्वकी ओर बहता है । उसे पार करके दो मील दक्षिण 'पिछल्दा' नामक छोटा-सा गाँव है । पहले रूपनारायण और कसावतीका मुहाना गंगाकी 'शतमुखी' नामक विस्तृत सागरकी ओर जानेवाली जलराशिके साथ एकत्र मिले होनेके कारण पूर्वकी ओर स्थित छत्रभोगसे नावमें पार होकर मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत तात्कालिक मुसलमानी सीमासे पिछल्दामें आना होता था । वर्तमान में ४०० वर्षों में नदियोंके मुखोपर लोगोंके बस जाने तथा वहाँ खेती होनेके कारण वह मुहाना उस गाँवसे लगभग ८-१० मील दूर हो गया है । अब तमलुक शहरसे मोटरके द्वारा हल्दीके पार १६ मील जानेपर ही उक्त गाँव आ जाता है । उस स्थानकी प्राचीन श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी श्रीमूर्ति अब भी पासके कासिमपुर गाँवमें पूजित होती है ।

* चै० च० म० २५।१८०-८६ । * राखालदास बच्चोपाध्यायका 'बागलार इतिहास', द्वितीय भाग, २६४-६५ पृ० ।

अशान्तिका घोर अन्धकार छाया हुआ था। १४३३ से १४६८ ई० तक अर्थात् श्रीचैतन्यके आविर्भावके प्राय २० वर्ष पहले मेवाड़के प्रसिद्ध महाराणा कुम्भ मुसलमान सुलतानोको युद्धमें बारबार पराजित करके अन्तमें अपने ही पुत्रके हाथो मारे गये थे। महाराणा कुम्भके पौत्र 'समरशतविजयी' राणा संग्रामसिंह (१५०८-१५२७) भारतवर्षको अहिन्दुओकी अधीनता-फाँसीसे मुक्त करके हिन्दू-राज्यकी प्रतिष्ठाका स्वप्न देख रहे थे। पानीपतकी पहली लड़ाईमें जब बाबरने इब्राहिम लोदीको हराया, तब राणाके मनमें आया कि इन नवागत मुगलोके विरुद्ध समस्त प्रधान राजपूत-शक्तियोंको सम्मिलित करके अपने स्वप्नको सार्थक करें, परन्तु १५२७ ई० में फतेहपुर सीकरीके समीप खनुआके युद्धमें उन्हें ज्ञात हो गया कि पार्थिव स्वाधीनताका स्वप्न चपलाके समान चंचल है। इन दिनों श्रीचैतन्यदेव परिव्राजक-लीलाका अभिनय करते हुए नीलाचल, दाक्षिणात्य और कभी बगाल, तो कभी वृन्दावनमें पराशान्तिके मूलस्रोत श्रीकृष्ण-नामके प्रेमकी बाढ प्रवाहित कर रहे थे।



दूसरा परिच्छेद बंगालकी अर्थनैतिक अवस्था

बहुतोकी यह धारणा है कि अर्थके द्वारा ही सब कुछ होता है, सुख, शान्ति, धर्म सबका मूल अर्थ ही है। परन्तु श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व, पश्चात् और समसामयिक बंगालकी अर्थनैतिक अवस्था इस धारणाका समर्थन नहीं कर सकती। श्रीचैतन्यदेवके उदयके पूर्व बंगालके अधिकांश लोगोकी अवस्था सम्पन्न थी।

अफ्रिकाका परिव्राजक इबन् बतूता जो मुहम्मद तुगलकके शासन-काल (१३२५ ई०) में यहाँ आया था, बंगालमें वस्तुओंके तात्कालिक मूल्यकी एक सूची छोड़ गया है। उस समय आजकलके मापके अनुसार दो आने मन धान, एक रुपये सात आने मन घी, एक रुपये सात आने मन चीनी, साढ़े ग्यारह आने मन तिलका तेल, दो रुपयेमें पन्द्रह गज बढिया कपडा, तथा तीन रुपयेमें एक दूध देनेवाली गाय मिलती थी। महाप्रभुके आविर्भाव के बहुत दिनों बाद नवाब शायेस्ता खॉके युगमें भी एक रुपयेका आठ मन चावल बिकता था, इसका उल्लेख हम आज भी किंवदन्तीके रूपमें किया करते हैं। इसी प्रकार अथवा इसकी अपेक्षा अधिकतर सुलभ युग श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व तथा तत्कालीन युगमें स्वप्नवत् नहीं था, तथापि उस समयकी आर्थिक उन्नतावस्था नानाप्रकारकी विपत्तियोंसे भरी हुई थी।

लक्ष्मीके वरपुत्र लोग दम्भ और प्रतियोगितावशत पुतलियोंका विवाह, पालतू कुत्ते और बिल्लियोंके विवाह, लडके-लडकियोंके विवाह तथा मनसा(सर्पोंकी अधिष्ठात्री देवीकी) पूजा आदिमें प्रचुर धन व्यय कर डालते थे।* उनका रुपया-पैसा व्यावहारिकता और लौकिकतामें ही लगता था। लक्ष्मीकी शुभ दृष्टिमें निवास करके भी वे लोग सर्वदा भय, अशान्ति और उद्वेगके बीच रहते थे।

उन दिनों कुछ लोग मिट्टी (जमीन) के भीतर अपनी धनराशि गाड़ कर रखते थे। तथापि एक ओर राजा और दूसरी ओर चोर-

* रमा-दृष्टिपाते सर्वलोक सुखे बसे। व्यर्थ काल याय मात्र व्यवहार रसे ॥
दभ करि विषहरि पूजे कोन जन। पुतलि करये केहो दिया बहु धन ॥
धन नष्ट करे पुत्र कन्यार विभाय। एइ मत जगतेर व्यर्थ काल याय ॥

—चै० भा० आ० २।६२, ६५-६६

[रमाके दृष्टिपातसे सब लोग सुखसे बसते थे। केवल व्यवहार-रसमें व्यर्थ समय बीतता था। कोई दभसे विषहरिको पूजता था, कोई पुतलियों के बनानेमें बहुत धन लगाता था, तो कोई पुत्र-कन्याके विवाहमें धन नष्ट करता था, इस प्रकार जगत्का समय व्यर्थ जाता था।]

डाकूकी तीक्ष्ण दृष्टिसे त्राण पाना एक प्रकारसे असंभव था। अर्थकी तो बात ही क्या, उस समय पतिव्रताके सतीत्वकी रक्षा तथा प्रतिष्ठित पुरुषके लिये अपनी मान-प्रतिष्ठाके साथ निरापद वास करना भी कठिन हो गया था। स्वेच्छाचारी राजाकी यथेच्छाचारिताकी बलि-वेदीपर इस प्रकारके सारे धन, रत्न, स्त्री, सम्मानको किसी भी समय बलि देनेके लिये सबको प्रस्तुत रहना पड़ता था। इतिहासकी अनेको घटनाएँ इस विषयमें प्रत्यक्ष साक्षी देनेके लिये प्रस्तुत हैं।



तीसरा परिच्छेद

तत्कालीन विद्या और साहित्यचर्चाकी अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व और लीलाकालमें विद्या और साहित्य-चर्चाका विशेष आदर था। उस समय बगदेश, विशेषतः नवद्वीप विद्या और साहित्य-साधनाका प्रधान पीठस्थान हो गया था। नवद्वीपमें घर-घर पण्डित तथा पढ़नेवाले छात्र वास करते थे। बालक भी विद्वान् पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ किया करते थे। 'घट-पट'के विचारको लेकर कालयापन करना ही महागौरवका कार्य समझा जाता था। नवद्वीपमें न्यायशास्त्र पढ़नेके लिये नाना देशोंके लोग आते थे। नवद्वीपके विश्वविद्यालयमें पाठ समाप्त किये बिना कोई सर्वश्रेष्ठ विद्वान्के रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाता था। नवद्वीपमें श्रीगंगादास पण्डितके समान प्रवीण वैयाकरण, श्रीगदाधर पण्डित और श्रीमुरारि गुप्तके समान नैयायिक और कवि, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समान वेदान्ती तथा उनसे पहले लक्ष्मणसेनकी सभाके आभूषण श्रीजयदेवजीके समान सर्वश्रेष्ठ महाकवि आविर्भूत हो गये थे। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इसी समयके नवद्वीपका चित्र खींचते हुए इस प्रकार लिखा है,—

त्रिविध-वयसे एकजाति लक्ष-लक्ष ।
 सरस्वती-प्रसादे सबेइ महादक्ष ॥
 सबे महा-अध्यापक करि' गर्व धरे ।
 बालकेओ भट्टाचार्य-सने कक्षा करे ॥
 नाना-देश हैते लोक नवद्वीपे याय ।
 नवद्वीपे पड़िले से 'विद्यारस' पाय ॥
 अतएव पड़ुयार नाहि समुच्चय ।
 लक्ष-कोटि अध्यापक,—नाहिक निश्चय ॥
 शास्त्र पड़ाइया सबे एइ कर्म करे ।
 श्रोतार सहित यम-पाशे डूबि' मरे ॥

—चै० भा० आ० २।५८-६१, ६८

[प्रत्येक जातिके लाखो बालक-युवा-वृद्ध सरस्वतीकी कृपासे सभी महान् दक्ष (विद्वान्) हैं, सभी अपनेको महा अध्यापक मानकर गर्व करते हैं। बालक भी बड़े बड़े भट्टाचार्योंसे टक्कर लेते हैं। नाना देशोंसे लोग नवद्वीपमें आते हैं और नवद्वीपमें पढकर विद्याका रस प्राप्त करते हैं। अतएव विद्यार्थियोंका पार नहीं है, अगणित अध्यापक हैं, उनकी सख्या का भी निश्चय नहीं है। शास्त्र पढाकर सब यह कर्म करते हैं और श्रोताओंको साथ लेकर यमके फन्देमें डूब मरते हैं।]

श्रीचैतन्यके समसामयिक लेखक श्रीकविकर्णपूरने भी उस समयके सामाजिक इतिहासका इस प्रकार वर्णन किया है,—

अभ्यासाद्य उपाधि-जात्यनुमिति-व्याप्त्यादि-शब्दावले-
 जन्मारभ्य सुदूर-दूरभगवद्वात्ताप्रसङ्गा अमी ।
 ये यत्राधिक-कल्पनाकुशलिनस्ते तत्र विद्वत्तमाः
 स्वीयं कल्पनमेव शास्त्रमिति ये जानन्त्यहो तार्किकाः ॥

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक २रा अ० ४थी सख्या

[तार्किक लोग अभ्यासवश जन्मकालसे ही केवल 'जाति', 'अनुमिति', 'उपाधि', 'व्याप्ति' प्रभृति शब्दोंको अलापते रहते हैं। भगवत्कथा-

प्रसंग तो उनसे बहुत दूर भाग गया है। जो जितना ही अधिक कल्पना-निपुण है, वह उतना ही श्रेष्ठ पण्डित समझा जाता है। ये लोग अपनी-अपनी कल्पनाको ही शास्त्र मानते हैं।]

उस समयके साहित्य-भण्डारका द्वार खोलनेपर योगीपाल-भोगीपाल-महीपालके गीत, मनसादेवीके गान, शीतलामगल, मगलचण्डी-विष-हरीकी पाञ्चाली, शिवके छडे, डाकपुरुष और खनाके वचन आदि ग्राम्य और लौकिक साहित्य-सम्भार ही अधिकतर दृष्टिपथमें आयगा। रामायण और महाभारतके साहित्यको भी नानाप्रकारकी कल्पना, तत्त्वविरोध तथा रसाभास दोषकी तूलिका सयोगसे मूल रामायण और महाभारतके वर्णनसे पृथक् करके लौकिक साहित्यके समान ही आमोद-प्रमोदके लिये उपयोगी बना लिया गया था। जिस समय सुसाहित्यका इस प्रकारका दुर्भिक्ष पडा हुआ था, उस समय नव-वसन्तके प्रफुल्ल प्रभातके पूर्व कोयलकी अस्पष्ट काकलीके समान मधुर कोमलकान्त पदावलीकी झकारमें श्रीजयदेव, श्रीगुणराजखा प्रभृति अतिमर्त्य साहित्यिक लोग श्रीगौरचन्द्रका स्वागतगान करनेके लिये बगदेशके साहित्य-गमचपर अवतीर्ण हुए थे। कुलीनग्रामके निवासी श्रीमालाधर बसुने १४७३-७४ ई० में अर्थात् श्रीचैतन्यके आविर्भावेसे प्रायः तेरह वर्ष पूर्व श्रीमद्भागवतके दशम और एकादश स्कन्धका बगला पद्यानुवाद 'श्री-कृष्णविजय' नामक ग्रन्थ प्रारम्भकर, १४८०-८१ ई० में अर्थात् श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावेसे प्रायः ६ वर्ष पूर्व समाप्त किया था।* तथा वे गौडाधिपतिके द्वारा 'गुणराज खा'की उपाधिसे विभूषित किये

* तेरह' पचानइ शके ग्रन्थ आरम्भण ।

चतुर्दश दुइ शके हैल समापन ॥

—श्री कृ० वि० १००वा गीत, २२१ पद्य (गौ० गौ० ग्र० स०)

[तेरह सौ पचानवे शकमें ग्रन्थका आरम्भ हुआ और चौदह सौ दो शकमें समाप्त हुआ।]

परिच्छेद]

सामाजिक अवस्था !

गये थे ।* प्रसिद्ध गौडेश्वर हुसेनशाहके गौडाधिपति होनेके पूर्व ही 'श्री-कृष्णविजय' ग्रन्थकी रचना समाप्त हो गयी थी । अतएव उक्त ग्रन्थकी भणितामें व्यवहृत गौडेश्वर द्वारा प्रदत्त यह 'गुणराज खा'की उपाधि किसी अन्य पूर्ववर्ती गौडेश्वरके द्वारा दी हुई होगी । कोई-कोई कहते हैं कि उस समय गौडके सिंहासनपर शम्सुद्दीन यूसुफशाह (१४७४-८२) विराजित थे । उन्होंने श्रीमालाधर वसुको गुणराज खाकी उपाधि प्रदान की थी ।† और किसीके मतसे वे गौडेश्वर सुलतान रुकनुद्दीन बरबकशाह हैं (१४५६-१४७४)‡

श्रीचैतन्यदेव जब गौडसे रामकेलि गये थे, तब उनके ऐश्वर्य-प्रभावसे मुग्ध होकर हुसेनशाहने उन्हें साक्षात् भगवान्के रूपमें स्वीकार किया था ।



चौथा परिच्छेद

सामाजिक अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व तथा उनके समसामयिक युगमें समाजके मेरुदण्ड वर्णाश्रमकी अवस्थाको नाना प्रकारसे लकवा मार गया था । श्रीकविकर्णपूर, ठाकुर श्रीवृन्दावनदास और श्रीकविराज

* गुण नाहि, अघम मुजि, नाहि कोन ज्ञान ।

गौडेश्वर दिला नाम—'गुणराज खान' ॥

—श्रीकृ० वि० १०० वा गीत, २२२ पद्य ।

[मुझमें कोई गुण नहीं, मैं अघम हूँ, कोई ज्ञान नहीं, पर गौडेश्वरने गुणराजखान नाम रख दिया ।]

† डॉ० मुहम्मद शहीदुल्लाह , ‡ डॉ० सुकुमार सेन प्रणीत 'बंगला-साहित्यका इतिहास', २५ स०, पृ० १०७ ।

गोस्वामीचरणने उस समयका जो सामाजिक चित्र अंकित किया है, उससे ज्ञात होता है कि समाजके भीतर उस समय कलियुगका 'भविष्य आचार' प्रविष्ट हो गया था। समाजके ब्राह्मण लोग सूत्रमात्र चिह्न धारण करके केवल दान लेनेके कार्यमें व्यस्त थे, क्षत्रिय लोगोंने प्रजाकी रक्षामें असमर्थ होकर केवल 'राजा' की उपाधिमात्रको सबल बना रखा था, वैश्यलोग बौद्ध या नास्तिक हो गये थे और शूद्रलोग ब्रह्मवृत्तिके विरुद्ध खड़े हो गये थे।

चारों वर्णोंके समान चारों आश्रमोंकी अवस्था भी शोचनीय हो गयी थी। विवाहमें असमर्थ होकर ही लोग अपने 'ब्रह्मचारी' होनेका अभिमान करते थे, गृहस्थ लोग दूसरे आश्रमियोंके प्रति यथोचित कर्तव्यपालनसे विमुख होकर नानाप्रकारके अधर्मोंसे युक्त हो स्त्री-पुत्रादिके भरण-पोषणमें व्यस्त थे। 'वानप्रस्थ' शब्द केवल नाममात्र के लिए ही रह गया था, 'पञ्चाशोर्द्ध्व वन व्रजेत्' अर्थात् पचास वर्षके बाद वनगमन करे, यह बात केवल पोथीमें पड़ी रह गयी थी, सन्यासीका अभिमान करके कुछ लोग सन्यासके पवित्र वेषका अपव्यवहार करते थे, उसे जीविकोपार्जनका साधन बना डाला था, केवल आपसमें विद्या-कुलका अहंकार, विषयसुखोंके भोगोंमें प्रतिद्वन्द्विता, मद्य-मासके द्वारा अवैदिक देवताओंकी पूजादिका आडम्बर दिखानेमें लोग आत्म-गौरवका अनुभव करते थे। हरिनदी ग्रामके 'दुर्जन ब्राह्मण',* 'पाषण्डि-प्रधान' (सबसे बढकर पाखण्डी लोग) गोपाल चापाल†, 'आरिन्दा ब्राह्मण' गोपाल चक्रवर्ती‡, ब्रह्मबन्धु रामचन्द्र खान§ प्रमुख तत्कालीन कतिपय समाज नेताओंका चरित्र चित्रण करते हुए ठाकुर श्रीवृन्दावन और श्रीकविराज गोस्वामिचरणने तत्कालीन बहिर्मुख वर्णाश्रम और समाजकी अवस्थापर प्रकाश डाला है। श्रीश्रीवास पण्डित नवद्वीपमें अपने घर रहते

* चै० भा० आ० १६।२६७ ; † चै० च० आ० १७।३७ ;

‡ पत्र और राज्यकर लानेवाले कासीद (प्यादे)को 'आरिन्दा' कहते हैं, चै० च० अ० ३।१८८, § चै० च० अ० ३।१०१।

हुए उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तन करते थे, यह बात उस समयके तथाकथित हिन्दूसमाज तकके लोगोको असहनीय हो गयी थी,—

‘केन वा कृष्णेन नृत्य, केन वा कीर्तन ?
 कारे वा वैष्णव बलि, कि वा संकीर्तन ?
 किछु नाहि जाने लोक धन-पुत्र-आशे ।
 सकल पाषण्डी मेलि’ वैष्णवेरे हासे ॥
 चारि भाई श्रीवास मिलिया निज-घरे ।
 निशा हैंले हरिनाम गाय उच्चैःस्वरे ॥
 शूनिया पाषण्डी बले,—“हइल प्रमाद ।
 ए ब्राह्मण करिबेक ग्रामेर उत्साद ॥
 महा-तीव्र नरपति यवन इहार ।
 ए आख्यान शूनिले प्रमाद नदीयार ॥”
 केह बले,—“ए ब्राह्मणे एइ ग्राम हैते ।
 घर भांगि’ घुचाइया फेलाइमू खोते ॥
 ए बामुने घुचाइले ग्रामेर मङ्गल ।
 अन्यथा यवने ग्राम करिबे कवल ॥”

—चै० भा० आ० २।१०६-११५।

[श्रीकृष्णका क्यो तो नृत्य होता है, क्यो कीर्तन ही होता है ? वैष्णव किसे कहते हैं और संकीर्तन ही किसे कहते हैं ? लोग धन-पुत्रकी आशामें रत हुए कुछ भी नहीं जानते । सब पाखण्डी मिलकर वैष्णवोकी हँसी उड़ाते हैं । श्रीवास चार भाई मिलकर रात होनेके बाद अपने घरमें उच्चस्वरसे हरिनामका गान करते हैं । उसे सुनकर पाखण्डी कहते हैं ‘प्रमाद हो गया, यह ब्राह्मण इस ग्रामको उजाड़ कर रहेगा । महान् तीव्र मुसलमान राजा जब इस बातको सुनेगा तो नदीयाके लिये आफत आ जायगी ।’ कोई कहता, ‘इस ब्राह्मणको इसका घर उजाड़कर ग्रामसे निकालकर जलके प्रवाहमें बहा दूंगा । इस ब्राह्मणके न रहनेसे ही गावका मंगल है, नहीं तो, यवन इस गावको खा जायगा ।’]

उस समयका हिन्दुसमाज उच्चकीर्तनका विरोधी था। हरिकीर्तन करनेवाले पारमार्थिक वैष्णवलोग सदा कर्मानुष्ठानमें लगे रहनेवाले स्मार्तसमाजके उपहास और निर्यातनके पात्र हो गये थे—

सर्वदिके विष्णुभक्ति-शून्य सर्वजन ।
 उद्देशो ना जाने केह केमन कीर्तन ॥
 कोथाओ नाहिक विष्णुभक्तिर प्रकाश ।
 वैष्णवेरे सबेइ करये परिहास ॥
 आपना-आपनि सब साधुगण मेलि' ।
 गायेन श्रीकृष्णनाम दिया करतालि ॥
 ताहातेओ दुष्टगण महा-क्रोध करे' ।
 पाखण्डी पाखण्डी मेलि' बलुगियाइ मरे ॥

—चै० भा० आ० १६।२५२-२५५

[सभी ओर विष्णुभक्तिसे शून्य सब लोग थे। कोई उद्देश्य नहीं जानते कि कैसा कीर्तन होता है। कहीं भी विष्णुभक्तिका प्रकाश नहीं था। सभी लोग वैष्णवोका परिहास करते थे। साधु लोग अपने-अपने ही मिलकर ताली बजा-बजाकर श्रीकृष्णनामका गान करते थे। इसीमें दुष्ट लोग अत्यन्त क्रोध करते और वे पाखण्डी मिलकर बकवाद करते मरते।]

समाज, उस समय उच्चस्वरसे हरिकीर्तन करनेवाले विश्वबन्धुओको विश्ववैरी समझकर उनके प्रति नाना प्रकारके कटु वाक्योका प्रयोग करता था। कोई-कोई सामाजिक पुरुष भक्तोके इस उच्चस्वरसे कीर्तनके लिये यहाँतक आशका करते कि इसके फलस्वरूप देशमें दुर्भिक्षका प्रकोप हो जायगा! —

“ए बामुनगुला राज्य करिबेक नाश !
 इहा सबा' हँते हँबे दुर्भिक्ष-प्रकाश ॥
 ए बामुनगुला सब मागिया खाइते ।
 भाबुक-कीर्तन करि' नाना छल पाते' ॥

गोसात्रि शयन बरिषा चारि मास ।
 इहाते कि युयाय डाकिते बड़ डाक ?
 निद्रा-भंग हइले क्रुद्ध हइबे गोसात्रि ।
 दुर्भिक्ष करिबे देशे,—इथ द्विधा नाइ ॥
 केह बले,—“यदि धान्य किछु मूल्य चड़े ।
 तबे ए-गुलारे धरि’ किलाइमु घाड़े ॥”

—चै० भा० आ० १६।२५६-२६०

[ये ब्राह्मण राज्यका नाश कर देंगे। इन सबके कारण दुर्भिक्ष प्रकट हो जायगा। ये ब्राह्मण माँगकर खानेके लिये भावुकतापूर्ण कीर्तन करके भौतिभाँतिका छल रचते हैं। चार महीने वर्षाभर भगवान् सोते हैं। इस समय उन्हें जोरसे चिल्लाकर पुकारना उचित है? नींद टूटनेसे भगवान् क्रुद्ध हो जायगे और देशमें दुर्भिक्ष कर देंगे। इसमें कुछ भी द्विधा नहीं है। कोई कहता है यदि जरा-सा भी धानका भाव बढ़ जायगा तो मैं इन लोगोको पकड़कर इनकी गर्दनपर मुक्का मारूँगा।]

बहिर्मुख समाजके लिये हरिकीर्तन सब समय करनेकी चीज नहीं गिनी जाती थी। किसी विशेष अवसरपर व्यावहारिक गतानुगतिक प्रथाके अनुसार कही कही अन्यान्य काम्यकर्मोंके अनुष्ठानके समान ही प्राणहीन कीर्तन किया जाता था,—

केह बले,—“एकादशी-निशि-जागरणे ।
 करिबे गोविन्द-नाम करि’ उच्चारणे ॥
 प्रतिदिन उच्चारण करिया कि काज ?”
 एइरूपे बले यत मध्यस्थ-समाज ॥

—चै० भा० आ० १६।२६१-६२

[कोई कहता एकादशीकी रात्रिको जागरणके समय गोविन्द नामका उच्चारण किया जाना चाहिये। प्रतिदिन उच्चारण करनेसे क्या काम है? मध्यस्थ समाजके लोग इस प्रकार कहते हैं।]

हिन्दूसमाजके लोग विशुद्ध भक्तके उच्चस्वरके कीर्तन और नृत्यको अशास्त्रीय बतलानेमें भी नहीं हिचकते थे। ज्ञानयोगका त्याग करके उद्धतके(?) समान हरिकीर्तन करनेमें होनेवाले नृत्य और अकृत्रिम भावोदयको वे लोग ढोंग समझते थे,—

शुनिलेइ कीर्तन, करये परिहास।
 केह बले,—“सब पेट पुषिवार आश ॥”
 केह बले,—“ज्ञान-योग एड़िया विचार।
 उद्धतेर प्राय नृत्य,—ए कोन् व्यभार ?”
 केह बले,—“कत वा पड़िलू भागवत।
 नाचिब, कौदिब,—हेन ना देखिलुं पथ ॥
 श्रीवास-पण्डित चारि भाइर लागिथा।
 निद्रा नाहि थाइ, भाइ ! भोजन करिया ॥
 धीरे-धीरे ‘कृष्ण’ बलिले कि पुण्य नहे ?
 नाचिले, गाहिले, डाक छाड़िले कि हये ?”

—चै० भा० आ० ११।५३-५७

[कीर्तन सुनते ही वे दिल्लगी करते हैं। कोई कहता है,—‘उदरपूर्तिकी आशासे यह सब करते हैं।’ कोई कहता है,—‘ज्ञानयोगका विचार छोड़कर इस प्रकार उद्‌ण्ड-सा नाचना भी कोई व्यवहार है ? कोई कहता,—‘कितनी भागवत पढ़ डाली, परन्तु नाचेंगे, रोयेंगे, यह मार्ग तो कही नहीं देखा। श्रीवास पण्डित सहित चार भाइयोंके चलते तो भाई, भोजन करके नीद भी नहीं ले पाता हूँ। क्या धीरे-धीरे “कृष्ण”-का नाम लेनेसे पुण्य नहीं होता है ? नाचने, गाने और चिल्लानेसे क्या होता है ?]

नदीयाके लोग कई बार उच्चस्वरसे सकीर्तन करनेके विरुद्ध प्रतिवाद करते हुए कहते थे,—

“आमि—‘ब्रह्म’, आमातेइ बेसे निरंजन।
 दास-प्रभु-भेद वा करये कि कारण ?”

ससारी-सकल बले,—“मागिया खाइते ।
डाकिया बलये ‘हरि’ लोक जानाइते ॥”
“ए-गुलार घर-द्वार फेलाइ भांगिया ।”
एइ युक्ति करे सब-नदीया मिलिया ॥

—चै० भा० आ० १६।११-१२

[मैं ‘ब्रह्म’ हूँ—निरञ्जनका निवास मुझमे ही है । यह सेवक-स्वामीका भेद किस कारणसे करते हैं । ससारी लोग कहते हैं—माँगकर खानेके लिये, लोगोको जनानेके लिये चिल्लाकर ‘हरि’ नाम पुकारते हैं । इन लोगोके घर-द्वार तोड़कर फेंक देने चाहिये । नदीयाके सब लोग मिलकर इस प्रकार युक्ति सोचा करते हैं ।]

समाज उस समय धन-पुत्र-विद्यारसमे और नाना प्रकारके जड विलासमे उन्मत्त था । पारमार्थिक वैष्णवको देखते ही समाजके लोग नाना प्रकारसे उपहासात्मक नारे लगाते थे, तथा अधिकांश लोग समझते थे कि,—‘दुनियाके लोगोके समान यति, तपस्वी भी दो दिनके बाद मर जायेंगे, अतएव विषयभोग करके जाना ही बुद्धिमानी है । ससारमें जो पालकी और घोड़ागाड़ीपर चढ़ सकते हैं, जिनके आगे पीछे दस-बीस आदमी चलते हैं, वे ही महान् पुण्यवान् और धार्मिक हैं । जिस धर्मके आचरणसे अपना दारिद्र्य-दुःख और देशका दुर्भिक्ष दूर नहीं होता, देश और समाजके लिये सुख-सुविधा नहीं होती, उसकी धर्ममें गणना ही नहीं होती । उच्चकीर्तनके द्वारा भगवान्की शान्ति भग होती है, अतएव वे क्रुद्ध होकर ससारमें दुर्भिक्ष और नानाप्रकारकी असुविधाएँ भेज देते हैं ।’ श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें इन बातोको इस रूपमे कहा है —

“जगत् प्रमत्त—धन-पुत्र-विद्या-रसे ।

वैष्णव देखिले मात्र सबे उपहासे ॥

आर्या-तर्जा पढे सबे वैष्णव देखिया ।

“यति, सती, तपस्वीओ याइबे मरिया ॥

ता'रे बलि—'सुकृति', ये दोला-घोड़ा चडे ।
 दश-बिंश जन या'र आगे-पाछे रडे ॥
 एत ये, गोसांजि, भावे करह ऋन्दन ।
 तबु त' दारिद्र्य-दुःख ना हय खण्डन ॥
 घन-घन 'हरि हरि' बलि' छाड डाक ।
 कुड हय गोसांजि, मुनिले बड़ डाक ॥”

—चै० भा० आ० ७।१७-२१

श्रीचैतन्यके आविर्भावके पश्चात् भी नवद्वीपके तथाकथित हिन्दू, अहिन्दू काजीके पास निमाइके उच्च-संकीर्तनके विरुद्ध अभियोग करनेके लिये गये थे । “निमाइ गया से लौटकर नये ढगसे कीर्तनका प्रचार करके हिन्दूधर्मको नष्ट कर रहे हैं , नागरिकोंको पागल बना रहे हैं । हरिकीर्तनके द्वारा रातको नीदमें बाधा डाल रहे हैं और नाना प्रकारसे शान्ति भग कर रहे हैं” —इत्यादि बातें काजीसे कहकर निमाइको नव-द्वीपसे बहिष्कृत करनेकी युक्ति उन्होंने उपस्थित की थी,—

* * *

हेनकाले पाषण्डी हिन्दू पाँच-सात आइल ॥
 आसि' कहे—“हिन्दुर धर्म भांगिल निमाजि ।
 ये-कीर्तन प्रवर्ताइल, कभु शुनि नाइ ॥
 मंगलचण्डी, विषहरि' करि' जागरण ।
 ता'ते नृत्य, गीत, वाद्य—योग्य आचरण ॥
 पूर्व भाल छिल एइ निमाइ पण्डित ।
 गया हैते आसिया चालाय विपरीत ॥
 उच्च करि' गाय गीत, देय करतालि ।
 मृदङ्ग-करताल-शब्दे कर्णे लागे तालि ॥
 ना जानि, कि खाजा मत्त हजा नाचे, गाय ।
 हासे, कान्दे, पड़े, उठे, गड़ागड़ि याय ॥
 नगरिया पागल कैल सदा संकीर्तन ।

रात्रे निद्रा नाहि याइ, करि जागरण ॥
 'निमाञ्जि' नाम छाडि एवे बोलाय 'गौरहरि' ।
 हिन्दुर धर्म नष्ट कैल पाषण्डी संचारि' ॥
 कृष्णेर कीर्तन करे' नीच बाड़-बाड़ ।
 एइ पापे नवद्वीप हइबे उजाड़ ।
 हिन्दुशास्त्रे 'ईश्वर'-नाम—महामन्त्र जानि ।
 सर्वलोक शुनिले मन्त्रेरे वीर्य हय हानि ॥
 ग्रामेरे ठाकुर तुमि, सब तोमार जन ।
 निमाइ बोलाइया ता'रे करह वर्जन ॥”

—चै० च० आ० १७।२०३-२१३

[उस समय पाँच-सात हिन्दू पाखडियोने काजीके पास आकर कहा,—
 “निमाइने हिन्दूधर्म तोड़ दिया । ऐसे कीर्तनका प्रचार किया, जो कभी
 नहीं सुना था । मगलचण्डी, विषहरि आदिकी पूजाके उपलक्ष्यमे रात्रि-
 जागरण होते हैं, उनमें नाचना, गाना, बजाना—ये सब उचित आचरण
 हैं । पहले यह निमाइ पंडित अच्छा था । गयासे लौटनेके बाद विपरीत
 बातें चलाने लगा । चिल्लाकर गीत गाता है, हाथसे ताली बजाता है,
 मृदंग और करतालकी ध्वनिसे कानोंमें ताले लग जाते हैं । पता नहीं
 क्या खाता है, मत्त होकर नाचता, गाता, हँसता, रोता, गिरता,
 उठता और लोटपोट होता है । हर समयके सकीर्तनने नागरिकोंको
 पागल कर दिया है । रात्रिको नींद नहीं आती । जागरण करना पड़ता
 है । 'निमाइ' नामको छोड़कर अब अपनेको 'गौरहरि' कहलाने लगा है ।
 पाखड फैलाकर यह हिन्दू-धर्मका नाश कर रहा है । नीच जातिके
 लोगोंको लेकर कृष्ण कीर्तन करनेसे उनका (नीच जातिका) घमंड बढ़ता
 जा रहा है । इस पापसे नवद्वीप उजड़ जायगा । हिन्दूशास्त्रमें 'ईश्वर'-
 नाम महामन्त्र माना गया है, सब लोगोंके सुननेसे मन्त्रकी शक्तिको
 नुकसान पहुँचता है । आप गावके मालिक हैं । हम सब आपके सेवक
 हैं । निमाइको बुलाकर उसे यहाँसे निकलवा दीजिये ।]



पाँचवाँ परिच्छेद धार्मिक जगत्की अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले पारमार्थिक धर्म-जगत्की अवस्था नानाप्रकारके काल्पनिक धर्म तथा कपटजालके आवरणोंसे आवृत हो चुकी थी। व्यवहारने ही परमार्थके स्थानपर अधिकार जमा लिया था। उस समय भारतके अन्यान्य स्थानोंमें जो कुछ पारमार्थिक धर्म-चर्चा होती थी, वह भी प्रबल अस्त-धर्मके मतवादोंके साथ संघर्ष करके क्षत-विक्षत होकर अपनी शुद्धताकी रक्षामें असमर्थ और क्षीणजीवी हो चुकी थी। दक्षिण भारतमें श्रीयामुनाचार्य और श्रीरामानुजाचार्यने जिस धर्मका प्रचार किया था, बादमें वह धर्म जब रामानन्दी शाखामें प्रवाहित होने लगा, तब उस धर्ममें अज्ञातरूपसे 'मायावाद' प्रवेश कर गया। यहाँ तक कि आगे चलकर श्रीरामानुज-सम्प्रदायके आचार-विचारमें भी स्मार्त-आचारोंका न्यूनधिक आदर तथा पारमार्थिक लोगोंके प्रति जातिबुद्धि आदिका विचार दिखायी देने लगा। श्रीरामानुजके पूर्ववर्ती आचार्य 'शुद्धाद्वैतवाद'के प्रचारक देवतनु श्रीविष्णुस्वामीने जिस धर्मतत्त्वका प्रचार किया था, वह भी लिगायत्-सम्प्रदायके साथ संघर्षके फल-स्वरूप कुछ-कुछ विद्धाद्वैतवादके द्वारा आक्रान्त हो गया। आचार्य श्री-विष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैतवादके प्रचारका विजयस्तम्भस्वरूप 'सर्वज्ञ-सूक्त' नामक वेदान्तभाष्य भी कालक्रमसे केवलाद्वैतवादके भाष्यग्रन्थके रूपमें पर्यवसित हो गया था। यहाँ तक कि शुद्ध भक्तिके एकमात्र सरक्षक श्रीश्रीधरस्वामिपादको 'मायावादी' कहकर प्रचार करनेकी भी यथेष्ट चेष्टा की गयी। श्रीमन्मध्वाचार्यने जिस 'द्वैतवाद'का प्रचार किया था, उसने भी 'तत्त्ववादी'-शाखामें कुछ और ही रूप धारण कर लिया। कवि श्रीकर्णपुरने अपने 'श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय' नाटकमें श्रीचैतन्य-देवके आविर्भावके पूर्वकी धार्मिक जगत्की अवस्थाका वर्णन विस्तार-

पूर्वक करके उस समय पारमार्थिक धर्मके स्थानमें किस प्रकार ढोंग और कपटवैराग्यने धर्मकी नाटकीय पोशाक पहन रखी थी, उसे प्रदर्शित किया है,—

जिह्वाग्रेण ललाट-चन्द्रज-सुधास्यन्दाध्वरोधे मह-

द्वाक्ष्यं व्यञ्जयतो निमील्य नयने बद्ध्वासन ध्यायतः ।

अस्योपात्तनदीतटस्य किमय भङ्गः समाधेरभूत्

पानीयाहरण-प्रवृत्तरुणी-शङ्ख स्वनाकर्णनैः ॥

तदिदमुदरभरणाय केवल नाट्यमेतस्य ।

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, २रा अंक, ६ठी सख्या ।

[यह पुरुष नदी-किनारे योगासनपर बैठे आँखें मूँदकर ध्यान कर रहे थे और आज्ञाचक्रमे स्थित चन्द्रजात सुधाक्षरणके मार्गको जिह्वाग्रके द्वारा रोकनेमें अपनी महान् दक्षता दिखला रहे थे, अकस्मात् जल भरनेके लिये आयी हुई किसी तरुणीके शखवलयकी झनकार सुनकर क्या उनकी समाधि भग हो गयी ।

अतएव इस पुरुषका इस प्रकारकी योगक्रियाका प्रदर्शन केवल उदरपोषणके लिये अभिनयमात्र है ।]

उन दिनों पुण्यकामी लोगोकी तीर्थयात्राके प्रति आदरदृष्टि थी । परन्तु वह बहुधा श्रीहरिकयामें रुचि उत्पन्न करने और साधुसंग-प्राप्ति के लिये न होकर देशभ्रमणरूपी काम-कौतूहलको चरितार्थ करनेके लिये ही होती थी । किसने कितनी बार कन्याकुमारीसे हिमालयतक भ्रमण किया है, कौन कितनी बार बद्रीनारायण गया है, किसने कितने तीर्थोंमें स्नान-दान किया है, इन्हीं बातोको लेकर पुण्यकामी लोग व्यर्थ गर्व करते थे ।

गंगा-हार-गया-प्रयाग-मथुरा-वाराणसी-पुष्कर-

श्रीर गोत्तरकोशला-बदरिका-सेतु-प्रभासादिकाम् ।

अब्देनैव परिक्रमैस्त्रिचतुरैस्तीर्थावली पर्यट-

शब्दानां कति वा शतानि गमितान्यस्माद्दृशानेतु कः ॥

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, २रा अंक, ७वी सख्या

[हमने गंगा, हरिद्वार, गया, प्रयाग, मथुरा, काशी, पुष्कर, श्रीरगम्, अयोध्या, बदरिका, सेतुबन्ध और प्रभासादि तीर्थोंमें प्रतिवर्ष तीन-तीन चार-चार पर्यटन करते हुए अबतक कितनी ही शताब्दिया बिता डाली, हमारे जैसे महापुरुषको कौन पहिचान सकता है ?]

ईसाकी चौदहवीं शताब्दीमें श्रीरामानन्दने अपने धर्मका प्रचार किया ।* उन्होंने श्रीश्रीसीतारामकी उपासनाका प्रचार तथा 'जमायत्' अथवा 'रामायत्' सम्प्रदायकी सृष्टि की । उनका मत, श्रीरामानुज-सम्प्रदायके मतसे कुछ स्वतन्त्र हो गया था । वैष्णव-सिद्धान्तके अनुसार वे भगवत्प्रसाद और भगवान्‌के सेवकोंमें छूआछूत या जात-पाँतका विचार तो नहीं करते थे, परन्तु उनके प्रचारमें अन्तमें भगवान्‌में लीन हो जानेका न्यूनाधिक विचार ही देखनेमें आता है ।† वस्तुतः शुद्ध वैष्णवधर्ममें भगवान्‌में लीन होने अर्थात् उनकी नित्य सेवासे वचित होनेकी कोई बात विन्दुमात्र भी स्थान नहीं पाती ।

श्रीरामानन्दके बारह प्रधान शिष्योंमें कबीर भी एक है, जो किसी मुसलमान जुलाहेके पुत्र थे । उन्होंने भी अन्तमें निर्विशेष मतकी ही स्थापना की । ‡ तत्कालीन राजनैतिक अवस्थाको देखकर उन्होंने हिन्दू

* नाभादासकृत हिन्दी 'भक्तमाल'के टीकाकार 'वार्तिक प्रकाश'के रचयिता कहते हैं कि, श्रीरामानन्दका आविर्भाव १३०० ई० में माघ कृष्ण-सप्तमीको प्रयागमें हुआ था । उनके मतसे श्रीरामानन्द १४८ वर्ष जीवित रहे । फर्गुहर साहबके मतसे रामानन्दने १४२५ या १४३० ई० के लगभग अपना धर्म प्रचार किया ।

† बहुतेरे श्रीरामानन्दको विशिष्टाद्वैतवादी न बतलाकर प्रच्छन्न अद्वैतवादी कहनेके ही पक्षपाती हैं । फर्गुहर साहब प्रभृति पाश्चात्य पण्डितोंका भी यही मत है ।

‡ आधुनिक रामानन्दीगण दो कबीर बतलाते हैं । उनके मतमें निर्विशेषवादी कबीर कबीरपथके प्रवर्तक हैं । और पूर्ववर्ती मूल कबीर या रामकबीर ही श्रीरामानन्दके शिष्य हैं ।

और मुसलमानोंमें सद्भाव स्थापित करनेके लिये 'हिन्दू-मुसलमानका एक ही ईश्वर' है इस मतका प्रचार किया ।

कुछ लोग कहते हैं कि कबीरके मतवादके आधार पर ही नानकने १५ वीं शताब्दीमें सिख-सम्प्रदाय स्थापित किया ।* उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनोंके धर्म-मतोंमें से कुछ-कुछ नैतिक उपदेशोंका संग्रह करके दोनोंको मिलाकर एक राजनैतिक धर्मकी सृष्टि की थी । उन दिनों भारतके राजनैतिक संघर्ष और विद्वेषके समय नानकके आविर्भावकी आवश्यकता थी । श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके कुछ समय पूर्व ही नानकका अभ्युदय हुआ था ।

रामानन्द और कबीरने प्रधानतः उत्तर भारतमें तथा नानकने पंजाबमें अपने धर्ममतका प्रचार किया । जिस समय सनातनधर्मका क्षेत्र भारतवर्ष राजनैतिक समराग्निसे धूमायित हो रहा था, उस समय हिन्दू और मुसलमानकी विद्वेषभावनाको सामयिक भावसे शमन करनेके लौकिक उद्देश्यसे तदनुकूल धर्ममत-वादोंका प्रचार हुआ था, यह ठीक है, परन्तु रामानन्द, कबीर अथवा नानकके प्रारम्भमें उदार प्रतीति होने-वाले धर्मके जादू-मन्त्रके प्रभावसे भी हिन्दू-मुसलमानोंमें प्रीति-स्थापनकी चेष्टा स्थायी न हो सकी । सिख-सम्प्रदायके पंचम गुरु अर्जुनदेवके प्राणदण्डके बाद अपने प्रच्छन्न राजनैतिक धर्मको उन लोगोंने अधिक समय गुप्त रखना पसन्द नहीं किया । अर्जुनदेवके पुत्र हरगोविन्दने सिख लोगोंको नियमानुसार युद्धविद्याकी शिक्षा दी । नवम गुरु तेगबहादुरने अपने धर्मके लिये अपना सिर कटाया । उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंहकी शिक्षासे सिख लोग एक दुर्धर्ष सामरिक जातिके रूपमें परिणत हो गये । १७०८ ई० में सिखोंके अन्तिम गुरु गुरुगोविन्दसिंह आततायीके हाथ मारे गये ।

जिस समय भारतके अन्यान्य स्थान राजनैतिक धूँझसे आच्छादित हो गये थे, उस समय बंगदेशमें भी उसका प्रभाव फैला था । उस

* 'सिख' शब्दका अर्थ है 'शिष्य' । लाहौरके निकट तालबन्दी ग्राममें (वर्तमानमें 'ननकाना'में) नानकने जन्म ग्रहण किया था ।

समयकी धार्मिक अवस्थाका चित्रण ठाकुर श्रीवृन्दावनने अपनी लेखनीसे इस प्रकार किया है,—

धर्म-कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने ।
 मगलचण्डीर गीते करे जागरणे ॥
 येवा भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र सब ।
 तौहाराओ ना जाने सब ग्रन्थ-अनुभव ॥
 शास्त्र पढ़ाइया सबे एइ कर्म करे' ।
 श्रोतार सहिते यमपाशे डूबि' मरे ॥
 ना बाखाने 'युगधर्म' कृष्णेर कीर्तन ।
 दोष बिना गुण का'रो ना करे' कथन ॥
 येवा सब—विरक्त-तपस्वि-अभिमानी ।
 ताँ-सबार मुखेह नाहिक हरिध्वनि ॥
 अतिबड़ सुकृति से स्नानेर समय ।
 'गोविन्द', 'पुण्डरीकाक्ष'-नाम उच्चारय ॥
 गीता-भागवत ये-ये जनेते पडाय ।
 भक्तिर व्याख्यान नाहि ताहार जिह्वाय ॥
 बलिलेओ केह नाहि लय कृष्ण-नाम ।
 निरवधि विद्याकुल करेन व्याख्यान ॥
 सकल ससार मत्त व्यवहार-रसे ।
 कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति कारो नाहि वासे ॥
 वाशुली पूजये केह नाना उपहारे ।
 मद्य-मांस दिया केह यक्ष पूजा करे' ॥
 निरवधि नृत्य-गीत-वाद्य-कोलाहल ।
 ना शुने कृष्णेर नाम परम-मंगल ॥

—चै० भा० आ० २।६४, ६७-७२, ७५, ८६-८८

[सब लोग इतना ही धर्मकर्म जानते हैं कि मंगलचड़ीके गीतमें जागरण कर लेते हैं । जो सब भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र हैं, वे भी सब ग्रन्थका मर्म नहीं समझते । शास्त्र पढाकर सब वही कर्म करते हैं, जिसमें श्रोताके साथ यमपाशमें फँसकर डूब मरते हैं । 'युगधर्म' कृष्णके कीर्तनका व्याख्यान कोई नहीं करते । दोष छोड़कर किसीका गुणवर्णन कभी करते ही नहीं । जो लोग विरक्त और तपस्वीपनके अभिमानी हैं, उन सबके मुखसे भी हरिध्वनि नहीं होती । वे बहुत बड़े पुण्यात्मा माने जाते हैं जो स्नानके समय 'गोविन्द' 'पुण्डरीकाक्ष' नाम उच्चारण कर लेते हैं । जो जो, लोगोको गीता भागवत पढाते हैं, उनकी जीभसे भी भक्तिका व्याख्यान नहीं होता । कहनेपर भी कोई कृष्ण-नाम नहीं लेते । निरन्तर विद्याकुलका व्याख्यान करते हैं । समस्त ससार व्यवहार-रसमें मग्न हैं । कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति किसीको नहीं रुचती । कोई नाना उपहारोके द्वारा वाशुलीकी पूजा करते हैं, तो कोई मद्य-मासके द्वारा यक्षकी पूजा करते हैं । निरन्तर नृत्य-गीत-वाद्यका कोलाहल होता है, परन्तु परम मंगलस्वरूप कृष्णका नाम वे नहीं सुनते ।]

श्रीमन्नि्त्यानन्दप्रभु और श्रीचैतन्यके पार्षदवृन्दके श्रीमुखसे सुनकर,* श्रीनि्त्यानन्दके शिष्य श्रीवृन्दावनदास ठाकुर एव श्रीगौर-पार्षद श्रीशिवानन्दसेनके श्रीमुखसे सुनकर और श्रीचैतन्यदेवके साक्षात् रूपमें

* अन्तर्यामी नित्यानन्द बलिला कौतुके ।

चैतन्य-चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ॥

—चै० भा० आ० १।८०, १७।१४४

[अन्तर्यामी नित्यानन्दने पुस्तकमें कुछ चैतन्यचरित्र लिखनेके लिए कौतुकसे कहा ।]

अन्तर्यामिरूपे बलराम भगवान् ।

आज्ञा कैला चैतन्येरे गाइते आख्यान ॥

—चै० भा० म० २।३४२

[अन्तर्यामी रूपसे भगवान् बलरामने चैतन्यका आख्यान गानेके लिये आज्ञा दी ।]

दर्शन कर तथा उनकी वाणीको सुनकर 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' नाटककी रचना करनेवाले श्रीकविकर्णपुर गोस्वामीने तत्कालीन भारत तथा बंगालके इस प्रामाणिक इतिहासका वर्णन निरपेक्ष-भावसे किया है। परन्तु ये सारी निरपेक्ष सच्ची बातें तत्कालीन एक सम्प्रदायविशेषके ऊपर कालिमाका टीका लगाती हैं, यह सोचकर उनके आधुनिक वशधरगण नाना प्रकारसे अपने कपोल-कल्पित मत और युक्तिके द्वारा असली इतिहासको बदल देना चाहते हैं। वे नि स्वार्थ और मात्सर्यहीन वैष्णव ऐतिहासिकोंके निरपेक्ष-मत-वर्णनके प्रति लौकिक श्रद्धाको शिथिल

वेदगुह्य चैतन्य-चरित्र केवा जाने ?

ताइ लिखि, याहा शुनियाछि भक्त-स्थाने ॥

—चै० भा० आ० १।८४

[वेदगुह्य चैतन्यचरित्रको कौन जानता है, भक्तस्थानसे जो सुना है, वही लिखता हूँ ।]

अद्वैतेर श्रीमुखेर ए-सकल कथा ।

इहाते सन्देह किछु ना कर' सर्वथा ॥

अद्वैतेर श्रीमुखेर ए-सकल कथा ।

सत्य, सत्य, सत्य, इथे नाहिक अन्यथा ॥

—चै० भा० म० १०।१६५, अ० ६।८१

[ये सब बातें अद्वैतके श्रीमुखकी हैं, इनमें कुछ भी सन्देह सर्वथा मत करो। ये सब अद्वैतके श्रीमुखकी बातें हैं—सत्य है, सत्य है, सत्य है, इसमें अन्यथा नहीं है ।]

नित्यानन्दप्रभु-मुखे वैष्णवेर तथ्य ।

किछु-किछु शुनिलाम सबार माहात्म्य ॥

—चै० भा० म० २०।१५६

[नित्यानन्द-प्रभुके मुखसे वैष्णवका तथ्य तथा सबका माहात्म्य कुछ-कुछ सुना ।]

यरूप कृष्णेर प्रियपात्र विद्यानिधि ।

गदाधर-श्रीमुखेर कथा किछु लिखि ॥

—चै० भा० अ० १०।८४

[विद्यानिधि कृष्णके कितने प्रियपात्र हैं, इस सम्बन्धमें गदाधरके श्रीमुखसे सुनी हुई कुछ बातें लिखता हूँ ।]

करनेके लिये नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं। वे कहते हैं कि,—“बंगालियों की कृष्णभक्ति स्वाभाविक है। बंगाली ब्राह्मण पण्डितोंमें विष्णुका नाम उच्चारण करके आचमन करना, विष्णुपूजा करना, विष्णुका ध्यान, शालग्राम और तुलसीकी सेवा, गीता-भागवतकी व्याख्या आदि सदाचार सदासे ही प्रचलित हैं। इनका कभी भी व्याघात नहीं हुआ।”

पंचदेवोपासक अथवा कर्मजड स्मार्तगणके इस गतानुगतिक सदाचार, विष्णुपूजा, विष्णुध्यान आदिको शुद्धभक्ति-सिद्धान्तके विषयमें न जाननेवाली साधारण जनता ‘भक्ति’ मान सकती है, परन्तु सुप्राचीन अलवारगण, श्रीरामानुजाचार्य आदि आचार्यगण, स्वयं भगवान् श्री-चैतन्यदेव, श्रीसनातन, श्रीरूप आदि गोस्वामीगण—इनमें किसीने इस प्रकारके आचारको ‘शुद्धभक्ति’ नहीं बतलाया। केवल जो “अनिर्वचनीय ‘प्रेमभक्ति’ सदासे दुर्लभ ही है,”—ऐसा विचार करके ही पंचोपासक कर्मजड अथवा मायावादियोंकी भक्तिके अभिनयको भागवत लोगोंने ‘छल भक्ति’, ‘विद्धा भक्ति’, ‘प्रच्छन्न नास्तिकता’, ‘कपटता’ आदि बतला कर उसका निरसन किया हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि उनकी इस प्रकारकी भक्ति (?) में चरम प्राप्य अथवा उपेयरूपमें निर्विशेष-मुक्ति लक्षित होनेके कारण उनकी भक्तिके इस अभिनयको उन्होंने ‘अभक्ति’ ही बतलाया है।

ता’र मध्ये मोक्षवांछा कैतव-प्रधान।

याहा हैते कृष्णभक्ति हय अन्तर्धान।

—चै० च० आ० १।६२

[उनमें मोक्षकी इच्छा छलप्रधान है, जिससे कृष्ण-भक्ति अन्तर्धान हो जाती है।]

कर्मजड (कर्मको ही सब कुछ समझनेवाले), कर्मासक्त लोगोंके सन्ध्यावन्दनादि, शालग्राम-पूजा, तुलसीमें जल छोड़ना, गीता-भागवत-पाठ, ‘गोविन्द’-‘पुण्डरीकाक्ष’-नामोच्चारण, ‘तारक-ब्रह्म’-नामका जप, नवधा-भक्ति-याजनका अभिनय, परिक्रमा, स्तुतिपाठ, विष्णुतीर्थ-भ्रमणादि

सभी कार्य मुक्तिकी इच्छा, अथवा निर्विशेष गतिकी प्राप्तिकी इच्छाके आधारपर, अथवा दूसरे देवताको स्वतन्त्र ईश्वर मानकर अनुष्ठित होते हैं। गौडीय-वैष्णवाचार्य कहते हैं,—

भक्तिर स्वरूप, आर 'विषय', 'आश्रय' ।

मायावादी अनित्य बलिया सब कय ॥

धिक् ता'र कृष्ण-सेवा श्रवण-कीर्तन ।

कृष्ण-अगे वज्र हाने ताहार स्तवन ॥

[भक्तिके स्वरूप और “विषय” तथा “आश्रय”को मायावादी लोग सब अनित्य बतलाते हैं। उनकी कृष्णसेवा तथा श्रवण-कीर्तनको धिक्कार है। उनके स्तवनसे तो श्रीकृष्णके अगपर वज्रप्रहार होता है।]

श्रीमद्भागवतमे कहा है,—

मौन-व्रत-श्रुत-तपोऽध्ययन स्वधर्म-

व्याख्या-रहोजप-समाधय आपवर्ग्याः ।

प्रायः पर पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां

वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

—भा० ७।१।४६

[हे महापुरुष, मुक्तिके साधन मौन, व्रत, शास्त्रज्ञान, तपस्या, वेदपाठ, स्वधर्मपालन, शास्त्रव्याख्या, निर्जननिवास, जप और समाधि—ये दस प्रकारके उपाय अजितेन्द्रियगणकी जीवनयात्राके सहायक हो सकते हैं, परन्तु दम्भका फल अनिश्चित होनेके कारण वे दाम्भिकोंकी जीवनयात्राके भी सहायक होंगे या नहीं, इसमें सन्देह है।]

‘श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु’ने निर्विशेषवादी, हैतुक और मीमांसक अर्थात् कर्मजड स्मार्तगणको भक्तिबहिर्मुख बतलाया है, एव जिस प्रकार चोरोसे अपनी महान् निधिकी रक्षा करनी पड़ती है, उसी प्रकार इनसे भी कृष्ण-भक्तिरूपी महानिधिको छिपाकर उसकी रक्षा करनेका उपदेश दिया है।*

* फल्युवैराग्यनिर्दग्धा शुष्कज्ञानाश्च हैतुका ।

मीमांसका विशेषेण भक्त्यास्वाद-बहिर्मुखा ॥

“बगालियोकी कृष्ण-भक्ति स्वाभाविक है, अतएव बगदेशमें किसी समय ‘कृष्ण-नाम-भक्तिशून्य सब ससार’—ऐसी अवस्था नहीं रही।” इस प्रकार जिनकी युक्ति है, वे भावप्रवणताको ही भक्तिके रूपमें कल्पना करते हैं।

भगवद्भक्ति बगाली, हिन्दुस्तानी, उत्कलवासी अथवा भारत-वासी, अंग्रेज, जर्मन आदि किसी जातिविशेषकी स्वाभाविक सम्पत्ति नहीं है। भक्ति—श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी वृत्तिविशेष है। भक्ति—‘भगवत्प्रेमविलासरूपा’ है। इस कारण उस ह्लादिनीके दूत महा-भागवतकी कृपा और सगके बिना अन्य किसी भी उपायसे भक्तिका उदय नहीं होता। पराभक्तिमें स्वसुखकी वासना न रहनेपर भी सुख सर्वदा वर्तमान रहता है। यह सुख केवल प्रियपात्रके सुखानुभवसे उत्पन्न होता है। भक्ति भगवत्प्रेमकी ‘विलासरूपा’ होनेके कारण सिद्ध-गण भी श्रवण-कीर्तनादि साधनरूपा भक्तिके अनुशीलनका त्याग नहीं करते, या कर नहीं सकते।

‘भावप्रवणता बगालियोके लिये स्वाभाविक है,’ ‘रजोभाव पाश्चात्य-देशवासियोके लिये स्वाभाविक है,’—यह कहा जा सकता है, परन्तु ‘भक्ति’ किसी जाति वा वशविशेषका स्वाभाविक धर्म है, यह नहीं कहा जा सकता।

इत्येष भक्तिरसिकैश्चौरादिव महानिधि ।

जरन्मीमासकाद्रक्ष्य कृष्णभक्तिरस सदा ॥

—श्रीभक्तिरसामृतसिधु, दक्षिण विभाग,

पचम लहरी १२६-१३०

[फल्गुवैराग्यमें जिनका चित्त दग्ध हो गया है, जो शुष्क-ज्ञानी है, जिनकी केवल तर्कमें निष्ठा है, जो कर्ममीमासक तथा जो द्वैतमात्रको मिथ्या कहनेवाले ज्ञानमीमासक है, वे विशेष रूपसे भक्तिके आस्वादनसे पराङ्मुख हैं। अतएव भक्तिरसिक पुरुषोको इन लोगोसे, विशेषतः जरन्-मीमासकोसे कृष्णभक्तिरसकी रक्षा वैसे ही करनी चाहिए, जैसे महाजन लोग चोरसे महारत्नको छिपाकर रक्षा करते हैं।]

‘बंगालियोकी कृष्णभक्ति स्वाभाविक है’—यदि यह ऐतिहासिक सत्य है तो आज क्यों उस स्वभावका व्यतिक्रम होता है ? आज कृष्ण-भक्तिके बदले भक्तिके उच्छेद (?) की चेष्टा, तथा भक्ति-सदाचारके बदले यथेच्छाचारिता क्या सर्वत्र नहीं दिखलायी दे रही है ?

और यदि ‘बंगालियोकी कृष्णभक्ति स्वाभाविक है’, इस कारण श्रीचैतन्यदेव बंगालियोके देश नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए तो गीताका ‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत’—यह श्लोक निरर्थक हो जाता है। उस समय प्रत्येक बंगाली या अधिकांश बंगाली ही स्वभावतः कृष्णभक्त थे, अथवा भक्तिमें विशेष रुचि रखते थे, ब्राह्मण पण्डितलोग भी नित्य विष्णुपूजादि करते थे, इसलिये श्रीचैतन्यदेव केवल उन लोगोंके साथ लीला-विलास करने आये थे। इसीलिये उनको पाखण्डी विद्यार्थियोंके अत्याचारके कारण नवद्वीपसे सन्यास लेकर बगदेशका त्यागकर अन्यत्र विचरण और अवस्थान करना पड़ा था। और बंगाली हिन्दुओंने काजीसे शिकायत करके निमाइको नदीयासे बहिष्कृत करनेकी चेष्टा की थी। इसीलिये उनके सकीर्तनके मृदगको विधर्मियोंके द्वारा फुडवाया था। श्रीश्रीवास आदि पण्डितके घर-द्वारको गगामे बहा देनेकी चेष्टा हुई थी और इसीलिये श्रीअद्वैताचार्य, श्रीश्रीवास पण्डित प्रभृति आचार्योंने यह आक्षेप किया था कि उनको मनकी बात कहने अथवा कृष्णभक्ति सबधी कथा-कीर्तन करनेके लिये एक भी आदमी नहीं मिला।

व्यवसायी कथावाचक, पाठक जो भागवत-पाठका अभिनय करते हैं, जो विष्णुमन्त्र देने या भक्तिकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करते हैं, उसको भी श्रीमद्भागवतने ‘भक्ति’ नहीं बतलाया है। वह भक्तिके चरणोंमें अपराध है। ‘शालग्राम-शिलासे बादाम फोड़कर खानेके लिये’ शालग्रामकी पूजाका अभिनय करना, अर्थ, प्रतिष्ठा अथवा पार्थिव शान्तिकी प्राप्तिकी आशासे भागवतपाठ या भक्तिकी व्याख्याका अभिनय करना—भक्तिकी व्याख्या नहीं है।

श्रीचैतन्यदेवके समय भी देवानन्द पण्डित नवद्वीपमें भागवतकी व्याख्या करते थे और वे परमज्ञानी, तपस्वी, आजन्म उदासीन और भागवतके महा-अध्यापकके नामसे विख्यात थे , तथापि श्रीमन्महाप्रभुने देवानन्दकी भागवत-व्याख्याके अभिनयके प्रति अतिशय क्रोध प्रकट किया था , क्योंकि देवानन्द मोक्षाभिलाषी थे और शिष्योंके द्वारा किये हुए वैष्णवापराध (श्रीवास पण्डितके प्रति अपराध) के गौण-समर्थक थे ।

रामदास विश्वास परम रामभक्त, सर्वशास्त्रमें प्रवीण और महा-प्रभुके पार्षद पट्टनायकोकी गोष्ठीके 'काव्यप्रकाश'के अध्यापक थे । वैष्णवोंकी सेवाके प्रति भी उनकी विशेष चेष्टा थी, तथापि रामदासके अन्तःकरणमें भुक्तिकी इच्छा रहनेके कारण महाप्रभुने रामदासकी 'विद्धा भक्ति'को किसी प्रकार भी 'भक्ति' नहीं कहा । बगदेशीय विप्र कविने श्रीचैतन्यदेवको भगवानके रूपमें स्वीकार किया था, तथा श्रीमन्महाप्रभु और श्रीजगन्नाथदेवकी प्रशंसा (?) करके ही उन्होने अपने नाटकका 'नान्दी' श्लोक लिखा था । परन्तु श्रीस्वरूप-दामोदरगोस्वामीप्रभुने उसे 'भक्ति'के नामसे स्वीकार नहीं किया ।

कोई-कोई कहते हैं कि, "श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके पहले भी महामान्य श्रीश्रीधरस्वामिपादकी टीकाके अनुसार नवद्वीपके बहुतेरे पण्डित श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते थे तथा श्रीजयदेवके 'गीत-गोविन्द'की पदावलीका भी गान करते थे । अनेक पाठशालाओंमें 'गीत-गोविन्द'का पठन-पाठन होता था ।"

संस्कृत-पाठशालामें अथवा साधारण शिक्षालयोंमें या जनसभाओंमें 'श्रीगीतगोविन्द' जैसे अप्राकृत भजन-ग्रन्थका, पठन-पाठन 'भक्ति'-पदवाच्य होना तो दूर रहा, वह तो भक्तिके चरणोंमें अमार्जनीय अपराध है , क्योंकि पाठशालाओंमें ये सब ग्रन्थ प्राकृत काव्य-शिक्षा प्रदान करने, तथा साधारण सभा-समितियोंमें प्राकृत काव्यरसके आस्वादनके लिये ही पठित या कीर्तित होते हैं । कोई अजितेन्द्रिय व्यक्ति, विशेषतः निर्विशेषवादी श्रीगीतगोविन्दके पाठका अधिकारी नहीं है । केवल अनु-

स्वार-विसर्गका पाण्डित्य होनेसे ही 'श्रीगीतगोविन्द' या श्रीमद्भागवतकी 'रासपचाध्यायी'के अप्राकृत रसका आस्वादन नहीं किया जा सकता। इस प्रकारके पाठका अभिनय भक्ति तो है ही नहीं, भक्तिके स्थानमें अमार्जनीय अपराध है। कर्मजड स्मार्त लोग श्राद्धसभामें 'रासपचाध्यायी'का पाठ (?) करते हैं, यह कितनी अभक्ति है, उसे देह-गेहमें आसक्त शोकाच्छन्न शूद्र-प्रकृतिवाले अत्यन्त अपराधी कर्मजड लोग नहीं समझ सकेंगे। इसीलिये शुद्ध भगवद्भक्त लोग इस प्रकारके कार्यको अभक्तिकी पराकाष्ठा मानते हैं। हाट-बाजारमें 'राई-कानूका गान', स्त्री-पुत्रके भरण-पोषणार्थ अथवा प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी आशामें पुराण-पाठ या कथावाचनका अभिनय प्रभृति जो वेतन-प्राप्त या अर्थकामी पुरोहितोंकी वृत्तिके समान बगदेशके पचोपासक-समाज या कर्मजड स्मार्त-समाजमें चला आ रहा है तथा जिसका अनुकरण करके लौकिक गोस्वामी(?) लोगोंने पुराण-पाठ और कथावाचनका व्यवसाय खोला है—यह सब भक्तिदेवीके चरणोंमें अमार्जनीय अपराध है। इन समस्त भक्तिके अभिनयोंकी अपेक्षा स्पष्ट नास्तिकता कहीं अधिक अच्छी है, क्योंकि उसके द्वारा लोगोकी अभक्तिको भक्ति माननेका भ्रम तो नहीं हो सकता। अतएव श्रीठाकुर वृन्दावनने जो उस समयके नवद्वीपके लोगोको भक्ति-बहिर्मुख कहा है वह सर्वतोभावेन समीचीन और सत्य है। भगवद्भक्त-लोग यात्रादल (नाटक-समाज) के 'नारद'को भक्तराज 'श्रीनारद' नहीं कहते, तथा उसकी 'भक्ति'के अभिनयको भी 'भक्ति' नहीं कहते। अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी, योगी, तपस्वी, निर्विशेषवादी कर्मजड स्मार्त, चोपासक, आउल, बाउल, कर्ताभजा आदि अप-सम्प्रदायी व्यक्तियोंका भक्तिका अभिनय 'नाट्यसमाजके नारद'की भक्तिके अभिनयके समान ही है, अतएव वह सम्पूर्णतया अभक्ति ही है।

श्रीमन्महाप्रभुके अन्तरंग पार्षद और शुद्धभक्तिराज्यके मूल-महाजन श्रीरूपगोस्वामीप्रभुने कर्मी, ज्ञानी और मुमुक्षुओंकी भक्तिके साधारण सदाचार-पालनके अभिनयकी तो बात ही क्या, उनके अश्रु

कम्प, पुलकादिके अभिनयको भी 'प्रतिबिम्ब रत्याभास' * कहकर गहिंत बतलाया है। अतएव वह कभी भी भक्ति या रति नहीं है। श्रीरूपगोस्वामीप्रभु कहते हैं कि, "इन सारे अभिनयोको देखकर अज्ञानी-जन चमत्कृत हो सकते हैं, परन्तु अभिज्ञजन विमोहित नहीं होते।"

* * * * *

* मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि ॥
 विमुक्ताखिलतर्षेया मुक्तेरपि विमृग्यते ।
 या कृष्णेनातिगोप्याशु भजद्भ्योऽपि न दीयते ॥
 सा भुक्तिमुक्तिकामत्वाच्छ्रद्धा भक्तिमकुर्वताम् ।
 हृदये सम्भवत्येषा कथं भागवती रति ?
 किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया ।
 अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभास प्रकीर्तित ॥
 —भ० र० सि० पू०, ३ लहरी, ४१-४४ (गौ० गौ० ग्र० स०)

[अन्त करणको स्निग्धता ही रतिका लक्षण है। मुमुक्षु आदिमें यद्यपि रतिके समान एक अवस्था-विशेष दृष्टिगोचर भी हो, तथापि उसे 'रति'-पदवाच्य नहीं करना होगा। मुक्त-शिरोमणिगण निखिल कामनाओंका त्यागकर जिस रतिकी खोज करते हैं तथा श्रीकृष्ण भी जिसे अति गोप्य रखते हैं और जिसे भजनपरायण लोगोको भी शीघ्र प्रदान नहीं करते, भुक्ति एव मुक्तिकी कामनाके हेतु ज्ञानकर्मादिके मिश्रणसे रहित विशुद्ध भक्तिके अनधिकारी कर्मी और ज्ञानियोके हृदयमें किस प्रकार उस भागवती रतिका उदय संभव है ? रति निरुपाधि होनेपर ही मुख्य है, उपाधि होनेपर वह रत्याभास है। सामान्यतः पुलकाश्रुरूप उस रतिचिह्नको देखकर अनभिज्ञ व्यक्तिको चमत्कार होता है, परन्तु अभिज्ञ सुबोधगण उसे 'रत्याभास' ही कहते हैं।]

छठा परिच्छेद तत्कालीन पृथ्वी

केवल भारतका ही नहीं, उस समयकी पृथ्वीका इतिहास एक सघर्षमय युगका इतिहास है। उस समय 'Wars of the Roses' का और पाश्चात्य देशोंके मध्ययुगका अन्तिमकाल उपस्थित था। नाना प्रकारके आपसी-झगड़ों तथा वैदेशिक सघर्षोंसे पाश्चात्य देशकी प्रत्येक जाति और समाज न्यूनाधिकरूपसे छिन्न-विच्छिन्न हो गया था। १४८५ ई० से ही वर्तमान युगकी सूचना हो गयी थी, इसी कारण पाश्चात्य ऐतिहासिकोंने १४८५ ई० से १६०३ ई० को "The Beginning of the Modern Age" (आधुनिक युगका प्रारम्भ) कहा है। १४८५ ई० में सप्तम हेनरी डग्लैंडके सिंहासनपर आरूढ़ हुए। श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव-काल इसके एक वर्ष बाद ही आता है। इसी समयसे समस्त पाश्चात्य सभ्यजगत्के "Renaissance" अर्थात् 'नूतन जन्मके' प्रारम्भकी सूचना हो रही थी।*

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके ठीक दूसरे ही वर्ष अर्थात् १४८७ ई० में सीधे जलमार्गसे भारतवर्ष पहुँचनेके लिये पाश्चात्य-जातिके मनमें प्रबल स्पृहा उत्पन्न हो उठी थी। १४८८ ई० में 'वर्थोलोमिउ दियाज' नामक एक नाविक 'उत्तमाशा' अन्तरीपमे पहुँचा था। उसी समयसे

* While Henry VII was struggling with his difficulties, a series of explorations had suddenly multiplied the area of the world, and opened new horizons * * * Even more important than the discoveries as a sign of the coming of a new era was the Renaissance which first began seriously to affect the life and thought of England in the time of Henry VII —Ramsay Muir

भारतवर्षमें आनेके लिये समुद्रका मार्ग खुल गया। धीरे-धीरे और भी नाविकोंने भारतवर्षका रास्ता खोजनेकी चेष्टा की और अन्तमें १४९८ ई० में पोर्तुगीजका एक नाविक 'भास्कोडिगामा' कालिकट बन्दरगाहपर पहुँच गया। उस समय श्रीचैतन्यदेव नवद्वीप-लीलामें बारह वर्षके बालक थे।

कौन जानता है कि, इस जलमार्गके आविष्कारका बहुत कुछ गौण उद्देश्य होते हुए भी नवद्वीप-सुधाकरके नाम-प्रेम-प्रचारके द्वारा प्राच्य और पाश्चात्यके साथ योगसूत्ररचनाका मुख्य उद्देश्य इसमें अन्तर्निहित था या नहीं? पाश्चात्य देशके वणिक भारतवर्षके प्राकृत (लौकिक) धनरत्नसे लाभान्वित होनेके लिये आये थे। परन्तु उस समय कौन जानता था कि भारतका अद्वितीय अप्राकृत धन परमार्थकी वाणी उनको अधिकतर लाभान्वित करेगी? उस समय कौन जानता था कि भारतके इस जलमार्गके आविष्कृत होनेपर एक दिन श्रीचैतन्यके नाम-हाटके ब्राजक विपणिक (चलते-फिरते व्यापारी) के प्रेमका पसरा * साथ लिये विश्वमगलका अभियान (चढाई) पूर्वसे पश्चिमकी ओर होगा।

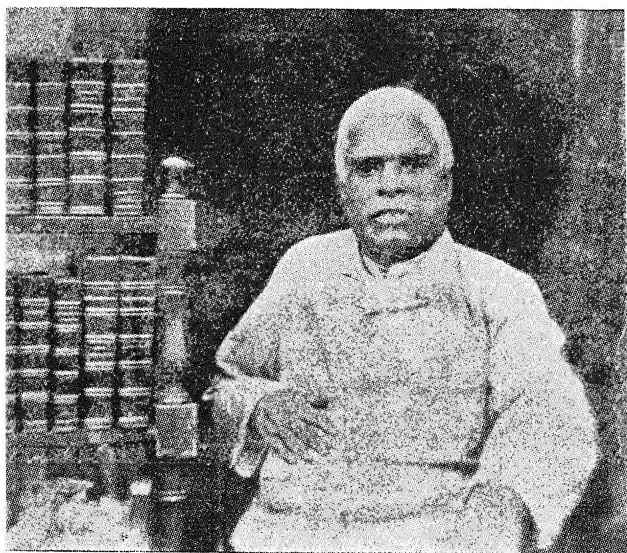
सप्तम हेनरीके समयमें, अर्थात् श्रीचैतन्यदेवके समसामयिक नवाभ्युदय अथवा नवजागरणके युगमें, इंग्लैंडका आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय विद्याचर्चा और साहित्य-साधनामें नये ढंगसे गठित हुआ था। इधर ठीक उसी समय श्रीचैतन्यके आविर्भावसे भी भारतके आक्सफोर्ड अथवा प्रधानतम सारस्वत-तीर्थ नवद्वीपमें पराविद्या, भक्ति-साहित्य, दर्शन, विज्ञान और शिल्प-साधनाके एक नवयुगका द्वारोद्घाटन हुआ था। १५१६ ई० में पाश्चात्यदेशमें जब 'Utopia' (No-where) नामक ग्रन्थ प्रकाशित होकर आदर्श पार्थिव-समाजका काल्पनिक चित्र प्रचारित कर रहा था, उसी समय तथा उससे पहले ही श्रीचैतन्यदेवने ऐकान्तिक

* छाबडी अथवा अन्य कोई वर्तन जिसमें कोई चीज भरकर सिरपर रखकर बेचनेके लिये ले जाते हैं,—उसे 'पसरा' कहते हैं।

परमार्थका अनुगमन करनेवाले आदर्श-समाजके वास्तविक चित्रका बगदेशमे प्रचार किया था। १५१७ ई० मे मार्टिन लूथरने† पोपकी यथेच्छाचारिताके विरुद्ध प्रतिवादका झंडा उठाकर पाश्चात्य जगत्मे ईसाई धर्ममे एक सुधारयुगका श्रीगणेश किया। इस कालमे उस देशमे मुद्रणयन्त्रका नूतन आविष्कार हुआ था। इन्ही दिनों श्री-चैतन्यदेवने भारतवर्षमे कर्मजड स्मार्तवाद तथा नानाप्रकारके मतवादोके विरुद्ध विप्लवी वाणीका प्रचार किया। उन्होने मार्टिन लूथर अथवा जगत्के अन्यान्य धर्म-सुधारकोके समान सुधारकका व्रत ग्रहण नहीं किया था। किन्तु बगालके ऐतिहासिकगण तथा अन्यान्य] साधारण व्यक्तिगण भी श्रीचैतन्यदेवको 'सुधारक' कहकर अक्षम्य भ्रम उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः वे सुधारक नहीं, वे तो सनातन भागवतधर्मके पुनः-संस्थापक, विकाशक और परिशिष्ट-प्रकाशकका अभिनय करके भी स्वयं-विकसित सनातन-धर्मके अधिदेवता हैं। श्रीचैतन्यदेवके समयमे, अथवा उनके परवर्ती आचार्य गोस्वामीगणके समयमे, या उसके पश्चात्के युगके श्रीश्रीनिवास आचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द-श्रीरसिकानन्दके समयमें और उनके भी बादके युगके श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और गौडीय वेदान्त-भाष्य-प्रणेता श्रीबलदेव विद्याभूषणके समयमे बगदेशमे मुद्रणयन्त्रका प्रचलन नहीं हुआ था। भारतमे या तदन्तर्गत बगदेशमे मुद्रणयन्त्रके प्रचलित होनेके बाद वर्तमान युगमे श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाके पुनः संस्थापक श्रीमान्

† ** Thus a great part of Europe, including England, was full of explosives only waiting for a spark, the spark came from Martin Luther, a friar professor of Wittenberg in Saxony, who in 1517 nailed to the door of the church there a number of *Theses*, challenging the right of the Pope to sell indulgences, or exemptions from penance. A fierce controversy arose which was swiftly spread by the new invention of the printing-press —*Ramsay Muir*

: भक्तिविनोदने मुद्रणयन्त्रका भवितके प्रचार-कार्यमें विशेषरूपसे प्रचार किया। 'श्रीचैतन्य-गीता', 'श्रीचैतन्य-शिक्षामृत', 'श्रीभाग-गीच', 'श्रीकृष्णसंहिता', 'श्रीकल्याणकल्पतरु', 'श्रीसज्जनतोषणी'-या प्रभृति ग्रन्थोंका और सामयिकपत्रोंका श्रीमान् ठाकुर भक्ति-विनोदने मुद्रणयन्त्रकी सहायतासे प्रचार किया। उनके संस्थापित 'श्री-यन्त्रालय'से श्रीचैतन्यदेवके और भी बहुतेरे शिक्षाग्रन्थ बंगदेशमें



श्रीमत् भक्तिविनोद ठाकुर

रत हुए। श्रीगुणराज खांका 'श्रीकृष्णविजय', 'श्रीसज्जनतोषणी' तीसरे वर्षका अन्तिम अंश, 'श्रीचैतन्योपनिषद्', 'श्रीविष्णुसहस्रनाम', 'दीप' (२रा संस्करण), 'श्रीचैतन्यचरितामृत' (प्रथम संस्करण) ये ग्रन्थ श्रीचैतन्य-यन्त्रालयमें मुद्रित हुए।

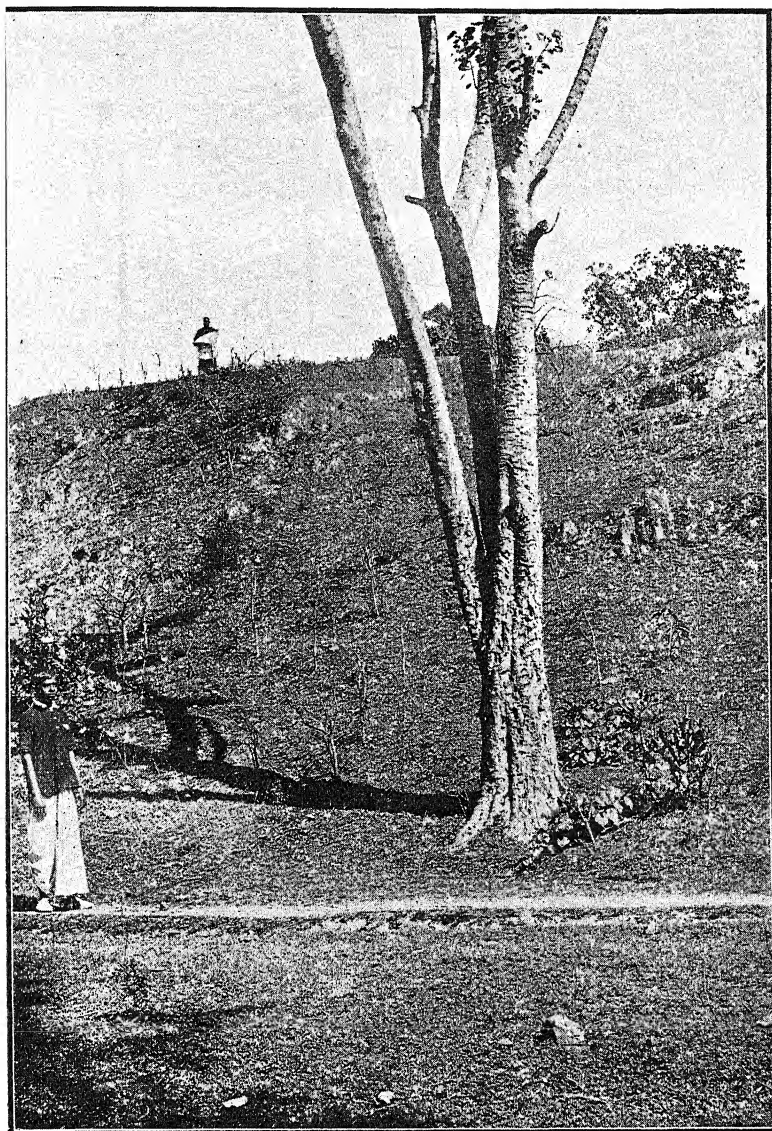
१४८५ ई० से पाश्चात्य देशमें नवयुग तथा सभ्य-सुशासन-पद्धति-का प्रारम्भ, १४८७ ई० में भारतवर्षके लिये समुद्रमार्गका अनुसन्धान, १४९२ ई० में पृथ्वीके पश्चिम गोलार्द्ध (एक नई दुनिया) अमेरिकाका आविष्कार, एव १४९८ ई० में भारतवर्षके समुद्रमार्गका पूर्णरूपसे निर्णय हुआ तथा इसके साथ ही मुद्रणयन्त्रके आविष्कार और प्रवर्तनसे भूतलमें सर्वत्र धर्मका नवजागरण हुआ, अर्थात् समस्त भूलोकके साथ पारमा-र्थिक योगसूत्र-संस्थापनका सुयोग प्रदान करके बंगालके भाग्याकाशमें जो विश्वको स्निग्ध करनेवाले अतिमर्त्य चन्द्रका उदय हुआ था, वे ही हैं श्रीचैतन्यदेव ।



सातवाँ परिच्छेद

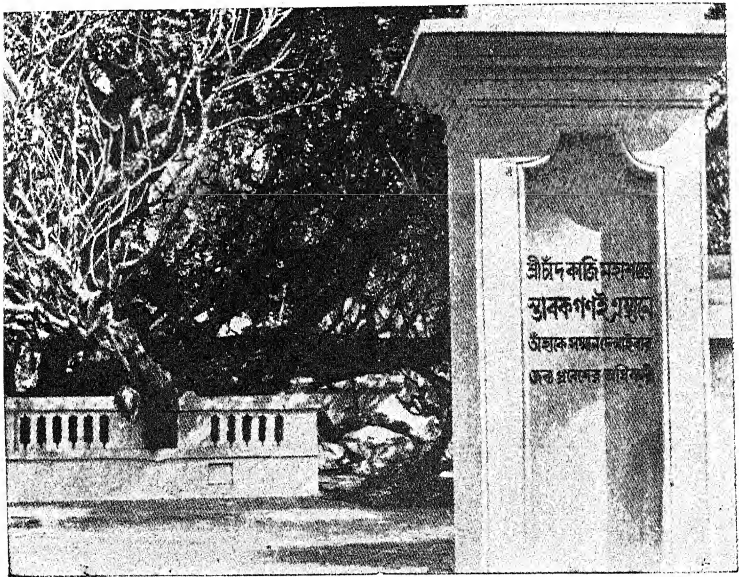
नवद्वीप

ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके मध्य-भागमें नवद्वीप सेनवंशी राजा-ओकी राजधानी था । अब भी वहाँ बल्लालसेनके स्मृतिचिह्नके रूपमें 'बल्लालदीघी' नामक एक विस्तृत तालाब, तथा उसके उत्तर ओर 'बल्लालढीबी' नामक बल्लालसेनके विशाल प्रासादका भग्नावशेष देखनेमें आता है । मालदहके प्राचीन 'गौड' नगरसे सेनवंशी राजा अपने राजसिंहासनको नवद्वीपमें लाये थे, अतएव इस स्थानको 'गौडभूमि' भी कहते हैं । सेन-राजाओके अध पतनके बाद नवद्वीप मुसलमानराजाओके हाथमें चला गया । १५ वीं शताब्दीमें (१४९८-१५११) बंगालके स्वाधीन राजा अलाउद्दीन सैयद हुसेनशाहके अधीन शासनादि कार्योंका परिचालन करनेके लिये फौजदार मौलाना सिराजुद्दीन चाँदकाजी इसी नवद्वीपमें ही रहते थे ।



बल्लाल सेनके प्रासादका भग्नस्तूप

प्राचीन नवद्वीपके 'बेलपुकुरिया' नामक गाँवका कुछ अंश वर्तमान 'बामनपुकुर' नामक गाँवमें परिणत हो गया है। इसी बामनपुकुरमें चाँदकाजीकी समाधि और उनके घरका भग्नावशेष पाया जाता है।



मौलाना सिराजुद्दीन चाँदकाजीकी समाधि, बामनपुकुर (श्रीमायापुर)

“Nabadwip is a very ancient city and is reported to have been founded in 1063 A.D. by one of the Sen kings of Bengal. In the ‘*Aini Akbari*’ it is noted that in the time of Laksman Sen Nadia was the capital of Bengal.”— (*Nadia Gazetteer*). अर्थात् नवद्वीप एक प्राचीन नगर है और कहा जाता है कि १०६३ ई० में किसी सेनवंशी राजाके द्वारा यह नगर बसाया गया था। ‘आइन-इ-आकबरी’में लिखा है कि, लक्ष्मण सेनके समय नदीया नगरी बंगदेशकी राजधानी थी।

“Nadia was founded by Laksman Sen in 1063 ” (*Hunter's Statistical Account—p 142*) अर्थात् नदीया (नवद्वीप) लक्ष्मणसेनके द्वारा १०६३ ई० में बसाया गया ।

“The earliest that we know of Nadia is that in 1203 it was the capital of Bengal ” (*Calcutta Review 1846, p 398*) अर्थात् नदीयाके सम्बन्धमें हमें जो सर्वप्रथम विवरण मिलता है उससे जान पड़ता है कि, यह नगरी १२०३ ई० में बगदेशकी राजधानी थी,—इस प्रकार बहुतसे प्रमाण प्राचीन नवद्वीपको ही सेनवंशी राजाओंकी राजधानी कहकर निर्देश करते हैं ।

गंगाके पूर्वी-तटपर प्राचीन नवद्वीप

प्राचीन-कालसे प्रसिद्ध है कि यह नवद्वीप गंगाके पूर्वी किनारेपर अवस्थित है । यथा, ऊर्ध्वाम्नाय-महातन्त्रमें—“वर्तते ह नवद्वीपे नित्य-धाम्नि महेश्वरि । भागीरथीतटे पूर्वं मायापुरन्तु गोकुलम् ॥”, “गौडदेशे पूर्वशैले करिल उदय ।” (चै० च० आ० १।८६), “नदीया उदयगिरि, पूर्णचन्द्र गौर-हरि, कृपा करि’ हृदय उदय ।” (चै० च० आ० १३-९८), “श्रीसुरधुनीर पूर्वतीरे, अन्तर्द्वीपादिक चतुष्टय शोभा करे । जाह्नवीर पश्चिम कूलेते, कोल-द्वीपादिक पञ्च विख्यात जगते ॥” (ठाकुर श्रीनरहरि) । अर्थात् ऊर्ध्वाम्नाय-महातन्त्रमें लिखा है—“हे महेश्वरि ! नित्यधाम नवद्वीपमें भागीरथीके पूर्वोत्तर मायापुर गोकुल है ॥” श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १।८६) में वर्णित है—“गौड देशके पूर्वशैले उदित हुए ।” तथा श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १३।९८) में भी यह उल्लेख है—“पूर्णचन्द्र श्रीगौर-हरि कृपा करके नदीयाके उदयगिरिमें उदित हुए ।” ठाकुर श्रीनरहरिने भी लिखा है,—“गंगाके पूर्वी-तटपर अन्तर्द्वीप आदि चार द्वीप शोभा पाते हैं एव गंगाके पश्चिम किनारे कोलद्वीप आदि पाँच द्वीप ससारमें प्रसिद्ध हैं ।” परवर्ती विवरणोंसे भी इसी बातका समर्थन होता है ।

“It was on the east of the *Bhagirathi* and on the west of *Jalangi*” (*Hunter's Statistical Account*, p 142) अर्थात् नवद्वीप नगर भागीरथीके पूर्वीकिनारे तथा जलांगी (खडिया) के पश्चिममें अवस्थित था ।

यह प्राचीन नवद्वीप नगर इस समय ‘नवद्वीप’ नामसे परिचित न होकर ‘वामनपुकुर’, ‘बेलपुकुर’, ‘श्रीमायापुर’, ‘बल्लालदीघी’, ‘श्रीनाथपुर’, ‘भारुडडागा’, ‘टोटा’ प्रभृति विभिन्न नामोंमें प्रसिद्ध हो रहा है । जिस स्थानमें श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर, श्रीवास-अगन, श्रीअद्वैत-भवन, श्रीमुरारि-गुप्तका स्थान आदि अवस्थित था, वही आजकल ‘श्रीवाम-मायापुर’के नामसे विख्यात है । गंगाके विभिन्न गर्भोंके बदलनेके कारण नवद्वीप-नगरमें श्रीगौरजन्म-भिटा तथा उससे लगे हुए स्थानके सिवा अधिकांश जलमग्न हो गये थे । अतएव वहाँके अधिवासीजनोंमें बहुतेरे निकटवर्ती दूसरे स्थानोंमें चले जानेको बाध्य हो गये । श्री-कृष्णके लीलाक्षेत्र द्वारका-नगरीमें भी एकमात्र श्रीकृष्ण-गृहके सिवा अन्यान्य स्थानोंके समुद्रमग्न होनेकी बात श्रीमद्भागवत (११।३।२३) में सुनी जाती है ।

विभिन्न समयमें नवद्वीप

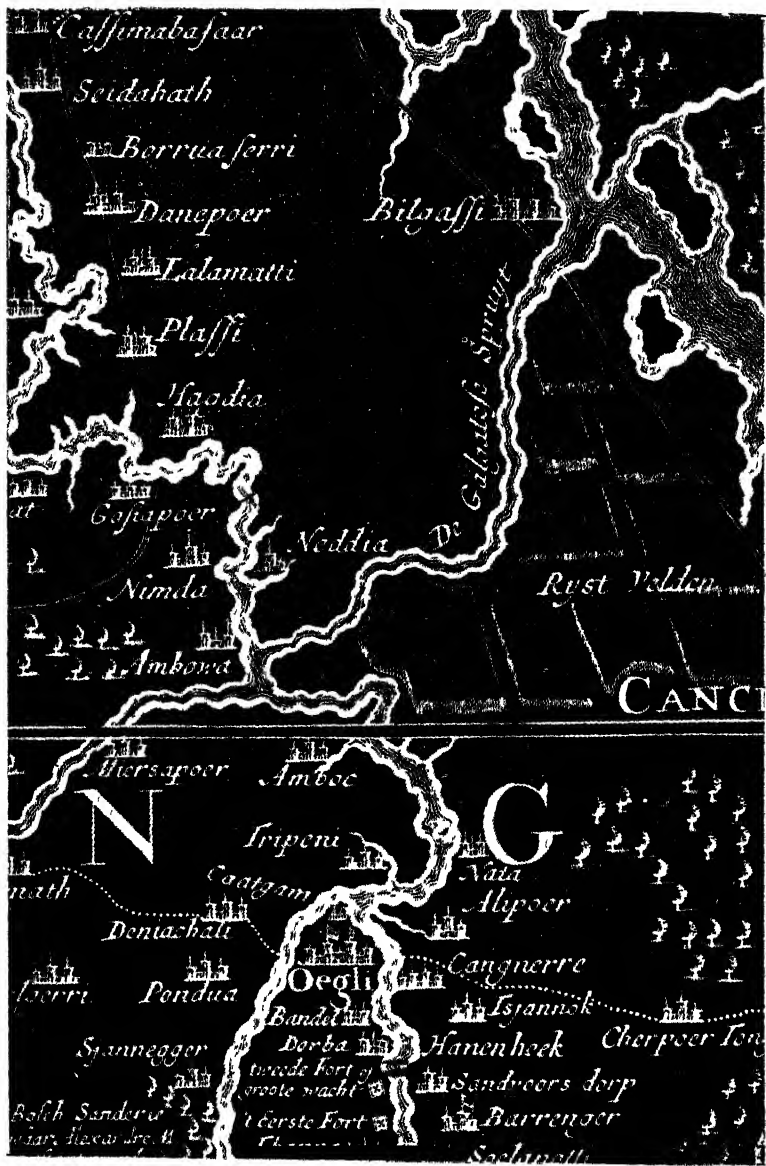
महाप्रभुके समयके ‘कुलिया’-ग्राममें या ‘पहाडपुर’में ही आधुनिक नवद्वीप शहर बसा हुआ है, तथा उसी स्थानमें वर्तमान ‘नवद्वीप-म्युनिसिपलिटी’ स्थापित हुई है । ईसाकी १८वीं शताब्दीमें नवद्वीप नगर कुलियादह या कालीयदहकी वर्तमान तलेठीमें अवस्थित था । ईसाकी सतरहवीं शताब्दीकी नदीया-नगरी वर्तमान ‘नदीया’ ‘शकरपुर’, ‘रुद्रपाडा’ प्रभृति स्थानोंमें लक्षित होती है । गंगाकी गतिका यह परिवर्तन तथा प्राचीन नदीयाकी बस्तीका इस प्रकार स्थान बदलना ‘History of Nadia-rivers’, (नदीयाकी

नदियोंका इतिहास) सूबा बंगालका मानचित्र, रेनेलेकृत मानचित्र, तथा ब्लकमैनके मानचित्र आदिके देखनेसे अच्छी तरह समझमें आता है। सतरहवीं शताब्दीके पूर्व अर्थात् सोलहवीं शताब्दी पर्यन्त श्रीमन्महाप्रभुके समयका नवद्वीप-नगर श्रीमायापुर, बल्लालदीधी, बामनपुकुर, श्रीनाथपुर, भारुड्डांगा, गगानगर, सिमुलिया, रुद्रपाडा, तारणवास, करियाटी, रामजीवनपुर आदि स्थानोंमें व्याप्त था। जमीदारी सिरिस्ताके प्राचीन कागज-पत्रादिसे इस विषयमें विशेष-रूपसे जाना जा सकता है।

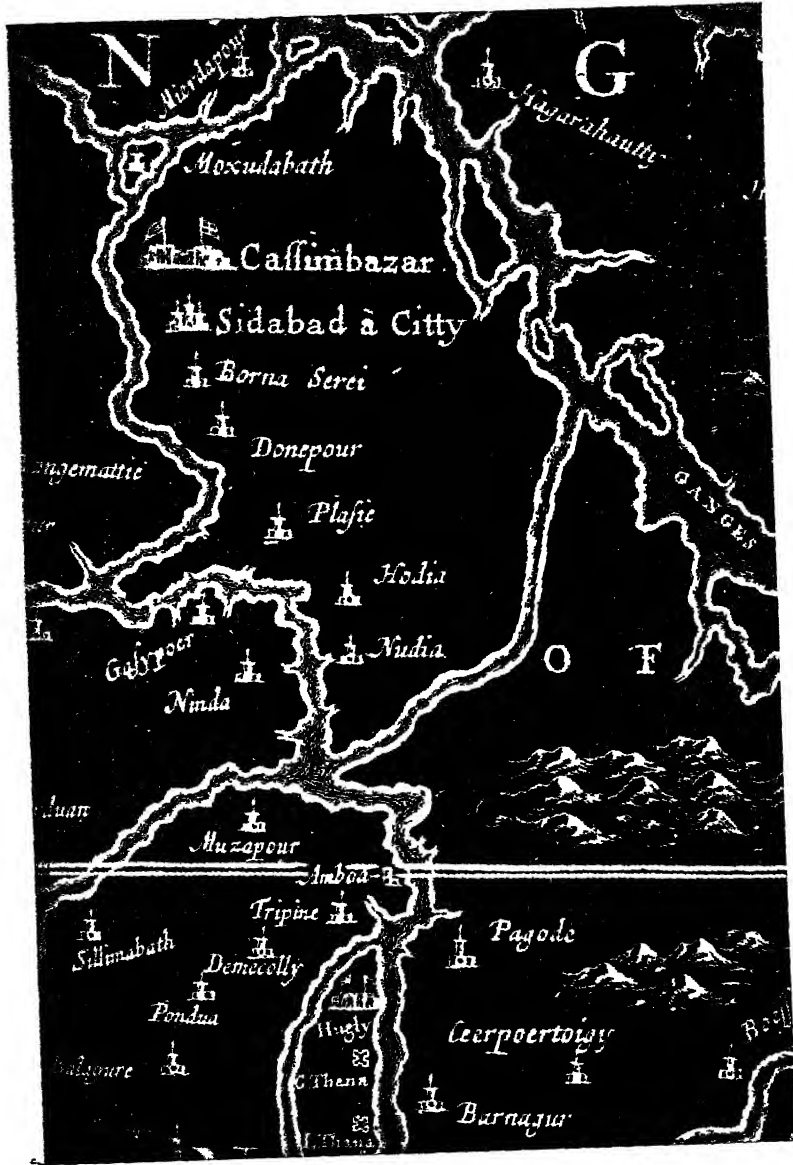
लडनके 'बृटिश म्यूजियम और एडमिरलटी' भवनमें सुरक्षित दो मानचित्र जलागी नदीके उत्तराशमें और भागीरथीके पूर्वाशमें सतरहवीं शताब्दी पर्यन्त नवद्वीपकी तत्कालीन अवस्थितिके विषयमें निर्विवाद रूपसे साक्षी प्रदान करते हैं।

पहला मानचित्र वेन्डेन् ब्रुक (Mattheus Vanden Broucke) कृत है। वह १६५८ ई० से १६६४ ई० तक ओलन्दाज् (Dutch) व्यापारियोंका नेता था। ब्रुकके मानचित्रका प्रथम संस्करण आजकल प्राप्य नहीं है। १७२६ ई० में प्रकाशित वेलेण्टिनकी 'ईस्ट इण्डिया' (Valentyn's 'East India') नामक पुस्तकके पंचम खण्डमें भेन्डेन ब्रुकका एक मानचित्र लगा हुआ है। इस मानचित्रका एक फोटोग्राफ बहुत रुपये खर्च करके 'बृटिश म्यूजियम' से गौडीय मिशनने प्राप्त किया है।

१६७५ ई० के 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी'के कर्मचारियोंने जलमार्गके निर्देशसहित एक मानचित्र तैयार किया और उसे जन् थर्नटनने पहले-पहल प्रकाशित किया। लडनके नौसेना-विभागके बड़े आफिसमें (British Admiralty) 'इंगलिश पाइलट' नामक पुस्तकमें यह मानचित्र है। इसके देखनेसे जान पड़ता है कि, सतरहवीं शताब्दीमें भी उत्तर-दक्षिण-वाहिनी गंगा और उसके पूर्व ओर नदीया विराजमान है।



मैथ्यूज वेन्-डेन् ब्रुकके बनाये हुए बंगालके सबसे पुराने मानचित्रका कुछ अंश
(सन् १६५८-१६६४ ई०)



जौन् थोर्णटन् द्वारा प्रकाशित बगालका अति प्राचीन मानचित्र (सन् १६७५ ई०)

नवद्वीप क्या है ?

साधारण लोगोकी धारणा हो सकती है कि, किसी एक विषय नगर या स्थानका नाम ही शायद नवद्वीप है, अथवा 'नवद्वीप'का अर्थ है नवीन द्वीप या उपनिवेश-विशेष, परन्तु वास्तवमे बात ऐसी नहीं है। नौ द्वीपोको लेकर नवद्वीपकी रचना हुई है। इस नवद्वीपमें बहुतसे उपग्राम (छोटे-छोटे गाव) या टोले बसे हुए हैं। नौ द्वीपोंमें चार द्वीप भागीरथीके पूर्व किनारे, और पाँच भागीरथीके पश्चिम किनारे अवस्थित थे।

पूर्वी किनारेके चार द्वीपोके नाम ये हैं—(१) अन्तर्द्वीप, (२) सीमन्तद्वीप, (३) गोद्रुमद्वीप और (४) मध्यद्वीप; पश्चिमके किनारे पाँच द्वीपोके नाम हैं—(१) कोलद्वीप, (२) ऋतुद्वीप, (३) जह्नुद्वीप, (४) मोदद्रुमद्वीप और (५) रुद्रद्वीप*। (भक्तिरत्नाकर, द्वादश तरंग)

श्रीयुत् घनश्यामदास (द्वितीय नाम श्रीनरहरि चक्रवर्ती)के 'श्री-नवद्वीप-धाम-परिक्रमा'-नामक ग्रन्थमें भी इन समस्त द्वीपोका उल्लेख है, जैसे,—

नदीया पृथक् ग्राम नय । नव-द्वीप नव-द्वीप-वेष्टित ये हय ॥

नव-द्वीपे नव-द्वीप-ग्राम । पृथक् पृथक् किन्तु हय एक ग्राम ॥

[नदीया (नवद्वीप) पृथक् गाँव नहीं है। जो नवद्वीप है, वह नौ द्वीपोको घेरे हुए है। नवद्वीपमे 'नवद्वीप' गाँव भी है, सब पृथक्-पृथक् हैं, परन्तु सब मिलकर ही एक ग्राम है।]

नवद्वीपमें इतने ग्राम थे कि, श्रीमायापुर जाते समय श्रीनरोत्तम ठाकुरको लोगोसे पूछकर 'श्रीमायापुर' पहुँचना पडा था। साधारणत 'नवद्वीप' नाम ही उस समय सर्वसाधारणमें प्रचलित और प्रसिद्ध था।

* पश्चात् गंगाका प्रवाह बदल जानेसे रुद्रद्वीपका स्थान गंगा के पूर्वी किनारे पर हो गया।

नवद्वीप-मध्ये ग्राम-नाम बहु ह्य ।

लोके जिज्ञासिया मायापुरे प्रवेशय ॥

—भक्तिरत्नाकर, अष्टम तरंग

[नवद्वीपमें बहुत सारे भिन्न-भिन्न नामके ग्राम थे । लोगोसे पूछ-कर मायापुरमें प्रवेश किया था ।]

‘मायापुर’ नाम

श्रीनिवासाचार्य प्रभुकी परिक्रमाके समय नवद्वीपके बहुतसे गाँव लुप्त हो गये थे, तथा अनेक गाँवोंका नाम लुप्त और नानाप्रकारसे विकृत हो गया था । श्रीचैतन्यदेवके आविर्भाव-स्थान श्रीमायापुर-ग्रामका नाम भी साधारण अशिक्षित लोगो द्वारा विकृत और जन-साधारणके लिये अज्ञात हो गया था । ‘श्रीभक्तिरत्नाकर’में श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं,—

यैछे कलि बृद्ध, तैछे नामेर व्यत्यय ।

तथापि से-सब नाम अनुभव ह्य ॥

कथोकाल परे कथो ग्राम लुप्त हैल ।

कथोग्राम-नाम लोके अस्तव्यस्त कैल

—भक्तिरत्नाकर, १२ वाँ तरंग

[कलिकी वृद्धिके साथ ही नामोंमें भी व्यतिक्रम हो गया, तथापि वे सब नाम समझमें आते हैं । कितने समयके बाद कितने गाँव लुप्त हो गये और कितने गाँवोंके नाम लोगोने उलट-पलट कर दिये ।]

११६६ सालके हदबन्दी कागजमें ‘श्रीमायापुर’ गाँवका उल्लेख प्राप्त होता है ।

बगला सन् १२५२ सालके आश्विन मासकी पहली तारीखको आन्दूलके राजा राजेन्द्रनाथ मित्रके द्वारा प्रकाशित, नवद्वीप और बहुतेरे स्थानोंके महामहोपाध्याय पण्डितोंके हस्ताक्षर-समन्वित पृष्ठ-युक्त ‘कायस्थकौस्तुभ’ नामके ग्रंथमें ऐसा लिखा है,—

“एइ (सेनवशीय) राजा नव उत्थापित द्वीपे राजधानी करिलेन । गगादेवी ‘मायाया’ एह नगर सर्वतीर्थमय सर्वविद्यालय हइयाछिल, एइ जन्य इहार एक नाम—‘मायापुर’ । ‘मायापुरे महेशानि वारमेक शचीसुत’ इति उर्ध्वाम्नाय तन्त्रे ।” —कायस्थकौस्तुभ, ६८ पृष्ठ

[इस सेनवशी राजाने नव उत्थापित द्वीपमे अपनी राजधानी बनाई । गगादेवी, ‘मायाया’ यह नगर सर्वतीर्थमय तथा सर्वविद्याशाला आलय हो गया, इसी कारण इसका नाम ‘मायापुर’ है । ऊर्ध्वाम्नाय-तन्त्रमे ऐसा उल्लेख है कि—हे महेश्वरि, मायापुरमे एक बार शचीपुत्र होकर प्रकट होऊँगा ।]

“लक्ष्मणसेन नवद्वीपे राजा हइलेन ।”

—कायस्थकौस्तुभ १२४ पृष्ठ

[लक्ष्मणसेन नवद्वीपके राजा हुए ।]

“नवद्वीप गङ्गावेष्टित स्थाने राजधानी ओ नगर निर्माण करिलेन, इहार एक नाम ‘मायापुर’ शास्त्रे कहियाछेन ।”

—कायस्थकौस्तुभ, १२३ पृष्ठ

[गगासे परिवेष्टित स्थान नवद्वीपमें राजधानी बनायी और नगर-का निर्माण किया, इसका एक नाम शास्त्रोमे ‘मायापुर’ भी है ।]

“अवतीर्णो भविष्यामि कलौ निजगणै. सह । शचीगर्भे नवद्वीपे स्वर्धुनी-परिवारिते ॥” (अनन्त-सहिता, ५७ अध्याय)

—कायस्थकौस्तुभ, १२४ और १३० पृष्ठ

[कलियुगमे मैं अपने परिवारोके साथ गगाजीके तीरपर नवद्वीपमें शचीके गर्भसे अवतीर्ण होऊँगा ।]

हटर साहब लिखते हैं —

“Nadia (Nabadwip), ancient Capital of Nadia District and the residence of Laxman Sen * * Here in the end of the 15th century was born the great reformer Chaitanya ” (Hunter’s Imperial Gazetteer, 1880)

“*Statistical Account of Bengal, Vol I*” नामक पुस्तकके पृ० ३६७ में लिखते हैं कि,— “To Baira belongs the little town of Mayapur (near the Burdwan boundary) where I am told the tomb exists of one Maulana Sirajuddin who is said to have been the teacher of Hussain Sha, King of Bengal (1494-1522) ”

[बयराके समीप ‘मायापुर’ नामक एक छोटा नगर (बर्दवान जिलेकी सीमाके निकट) अवस्थित है। मैंने सुना है कि इस स्थानमें मौलाना सिराजुद्दीनकी कब्र है। ये मौलाना बगालके बादशाह हुसेनशाह (१४९४-१५२२) के शिक्षक कहे जाते हैं।]

सर विलियम हण्टर भी कहते हैं,—

“Nadia, at the time of its foundation was situated right on the banks of Bhagirathi * * It used formerly to run behind the Ballaldighi and the palace; but it has now dwindled in the part into an isolated khal It now runs to the east of the ruins of the palace” (*Statistical Account of Bengal, Vol I, p 142*)

श्रीनवद्वीप-मण्डलका मानचित्र-निदर्शन

“१। अन्तर्द्वीप—पद्मकी कणिका—गंगाके पूर्वी किनारे। इसके बीचमें श्रीमायापुर है, जहाँ श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर, महायोगपीठ है।*

२। सीमन्तद्वीप—ग्राम नष्ट हो गया है, जिधर पहले गंगा बहती थी उसके दक्षिण किनारे सीमली देवी (सीमन्तिनी) की पूजा होती है। रुकुणपुर पर्यन्त इसी द्वीपके अन्तर्गत है। शरडागा (शबरडंगा) और विश्रामस्थल इसके दक्षिण भागमें है।

* अन्तर्द्वीपिका जो अश्व गंगाके पश्चिम भागमें पडता है, वही स्थान ‘वृन्दावन’ है। वहाँ रासस्थली, धीरसमीर और बहुतसी कुर्जे हैं।

३। गोद्रुमद्वीप—गादिगाछा, सुवर्णविहार, नृसिंहक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, अलकनन्दाके किनारे काशीवाम इसके अन्तर्गत है ।

४। मध्यद्वीप—माजिदा, भालुका, पर्णशिला, हाटडेगा इसके दक्षिण में है ।

५। कोलद्वीप—कुलिया-पहाड, समुद्रगढ प्रभृति इसके अन्तर्गत है ।

६। ऋतुद्वीप—राहुतपुर, विद्यानगर इसके अन्तर्गत है ।

७। जहनुद्वीप—जानगर ।

८। मोदद्रुमद्वीप—माउगाछि, अर्कटीला (सूर्यक्षेत्र-आकडाला), महत्पुर (मातापुर), पाण्डव-निवास इसके अन्तर्गत है ।

९। रुद्रद्वीप—रुद्रपाडा, शकरपुर, पूर्वस्थली, चुपी, कक्षशाली, मेडतला इसके अन्तर्गत है ।

इस ग्रन्थमें जो छोटा-सा मानचित्र दिया गया है, वह सरकारी आज्ञासे मानविज्ञान-सम्मत (सर्वेके अनुसार तैयार किये गये) मानचित्रसे बनाया गया है। अतएव इसे बिल्कुल ठीक मानना होगा। मानचित्रको छोटे आकारमें प्रयुक्त करनेके कारण केवल मुख्य-मुख्य स्थानोंके नाम दिये गये हैं।” —श्रीठाकुर भक्तिविनोद

श्रीनवद्वीप-धामको कोई-कोई पाँच योजन अथवा सोलह कोस परिधिका बतलाते हैं। इसी ‘श्रीनवद्वीप-मण्डल’के बीचमें श्रीमायापुर है, जहाँ भगवद्गृह (श्रीजगन्नाथ-मिश्रालय) अवस्थित है।

इसी श्रीमायापुरमेंही श्रीगौर-जन्मस्थली महायोगपीठ नित्य सुशोभित है।

नवद्वीप मध्ये ‘मायापुर’ नामे स्थान ।

यथा जन्मिलेन गौरचन्द्र भगवान् ॥

यैछे बृन्दावने योगपीठ सुमधुर ।

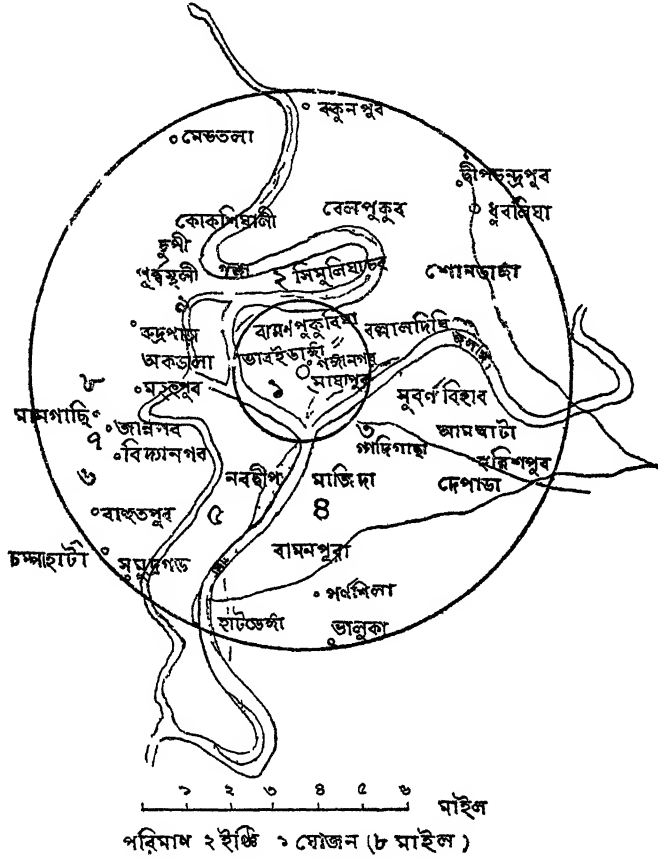
तैछे नवद्वीपे ‘योगपीठ मायापुर’ ॥

—भक्तिरत्नाकर, १२ वाँ तरंग

श्रीगौर-जन्मस्थान श्रीमायापुर श्रीमथुरापुरीसे अभिन्न है, और वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है। स्वयं भगवान् श्रीगौरनारायणने महावैकुण्ठमें

परिच्छेद] श्रीनवद्वीप-माण्डलकींमौलिचित्र-निर्देशम् ।

जिस जन्मलीलाको प्रकट नहीं किया, श्रीनवद्वीपमें भक्त-वात्सल्यके वश होकर अर्थात् श्रीजगन्नाथको आनन्द प्रदान करनेके लिये उसी जन्मलीलाको प्रकट करके उनके नित्य पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए तथा महान् औदार्य-लीलाओंका आविष्कार किया ।



आठवाँ परिच्छेद आविर्भाव

मधुकर मिश्र नामके एक पश्चिमी वैदिक ब्राह्मण किसी कारण उड्डिष्याके याजपुरसे श्रीहट्ट (सिलहट्ट)में आकर वहाँ रहने लगे थे। मधुकर मिश्रके मझले पुत्र उपेन्द्र मिश्र थे। वे वैष्णव, पण्डित और अनेक सद्गुणोसे भूषित थे। इन्हीं उपेन्द्र मिश्रके सात पुत्र हुए,—कसारि, परमानन्द, जगन्नाथ, सर्वेश्वर, पद्मनाभ, जनार्दन और त्रिलोकनाथ। उपेन्द्र मिश्रके तृतीय पुत्र श्रीजगन्नाथ अध्ययनके लिये श्रीहट्टसे नवद्वीप आये थे और वहाँ उन्होने 'पुरन्दर' उपाधि प्राप्त की। मिश्र पुरन्दरने नवद्वीपमें ही नीलाम्बर चक्रवर्तीकी ज्येष्ठ कन्या श्रीशचीदेवीका पाणिग्रहण कर गगातटपर निवास करनेकी अभिलाषासे नवद्वीपके अन्तर्गत श्रीमायापुरमें निवासस्थान (घर) बनाया।

श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीका पूर्व-निवास था फरीदपुर जिलेके 'मग्-डोबा' ग्राममें। ये गगाके किनारे वास करनेके लिये नवद्वीपमें चले आये थे। काजी-पाडामें उन्होने निवास-स्थान बनाया था, इसलिये काजी साहब प्रवीण चक्रवर्ती महाशयको गाँवके सबधसे चाचा कहकर पुकारते थे।

शचीदेवीकी एक-एक करके आठ कन्याएँ उत्पन्न हुई और सभी मृत्युके मुखमें चली गयी। अन्तमें उनके गर्भमें 'श्रीविश्वरूप' नामकी नवी पुत्र-सन्तान आविर्भूत हुई।

८६२ बगाब्दकी २३वीं फाल्गुन * शनिवार नव-वसन्त-पूर्णिमा—
श्रीकृष्णकी दोल-यात्राके दिन (होलीके दिन) सन्ध्याके ठीक पूर्व।

* ८६२ बंगाब्द, १४०७ शकाब्द, १४८६ ई०, १५४२ सवत्, २३ फाल्गुन, शनिवार। उस दिन पूर्णिमा ४० दण्ड १३ पल थी। मतान्तरसे वह प्रायः ४२ दण्ड थी। पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र ५० दण्ड

पूर्णचन्द्र प्रतिवर्ष ही इस दिन अपनी अमल-धवल-स्निग्ध अशु-मालाओंसे विश्वको स्नान करानेके लिए गर्वके साथ उदित हुआ करते हैं , परन्तु आज मानो जगत्के चन्द्रकी पूर्णता, स्निग्धता, शुभ्रता, उदारता, वदान्यता, कवित्व, साहित्य, छन्द—सब कुछ किसी एक अद्वितीय अतिमर्त्य चन्द्रके सामने तिरस्कृत हो गया। भूलोकके चन्द्रकी पूर्णता गोलोकके चन्द्रकी पूर्णताके सामने पराभूत हो गयी—जान पड़ता है कि इसी विज्ञापनका प्रचार करनेके लिए सकलक जगच्चन्द्र श्रीगौरचन्द्रके उदयकालमें राहुग्रस्त* हो गया। विश्वमें चारो ओर

३७ पल था। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावका समय—सूर्योदयसे २८ दण्ड ४५ पलके बाद था। उस दिन दिनमान प्राय २९ दण्ड था। अतएव सध्याके पूर्व ५ बजकर ५२ मिनटपर (नवद्वीपका समय) श्रीगौरहरिका आविर्भाव हुआ। अंग्रेजी मतसे 'जुलियन कैलेण्डर'के गणनानुसार १४८६ ई० की १८ वी फरवरी तथा आधुनिक प्रचलित 'ग्रेगरियन कैलेण्डर'के अनुसार १४८६ ई० की २७ वी फरवरीको श्रीमन्महाप्रभुका आविर्भाव हुआ।

प्रभुके आविर्भावकालमें सिंहलग्न और सिंहराशि थी। रवि, बुध और राहु (मूल त्रिकोणमें) कुम्भस्थ थे। बृहस्पति अपने घरमें उच्चप्राय मंगलके साथ धनुमें थे, शनि उच्चप्राय वृश्चिकमें थे, शुक्र उच्चप्राय मेषमें थे, चन्द्र और केतु (मूल त्रिकोणमें) सिंहलग्नमें थे। वह लग्न रविका क्षेत्र, चन्द्रकी होरा, मंगलके द्रवकाण, शुक्रके नवाश, शुक्रके द्वादशाश और बुधके त्रिंशश—इस प्रकार शुभ षड्वर्गयुक्त है। नवमपति मंगल, दशमपति शुक्र और सप्तमपति शनि उच्चप्राय थे, बृहस्पति स्वस्थ होकर धर्मस्थानगत शुक्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। मंगल और बृहस्पतिका पचममें शुभ-योग था, लग्नमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि थी।

* उस दिन खण्ड चन्द्रग्रहण था। ग्रहणके ठीक पूर्व समय 'उपच्छाया-स्पर्श'से चन्द्रके मलिन होने लगनेपर शास्त्रमें सब प्रकारके पुण्यकर्म या श्रीहरिसकीर्तन करनेका विधान है। यह 'उपच्छाया-ग्रहण' दो-तीन घंटे पहले भी हुआ करता है। बगावद वर्ष १३५५ के पचागमें १० वी वैशाखको चन्द्रग्रहणके आसके मान ००२८ और

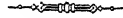
‘हरि बोल’, ‘हरि बोल’का कलरव गूज उठा—कर्म-कोलाहल स्तब्ध हो गया—दिग्वधुएँ कृष्ण-कीर्तन-ध्वनिको सुनकर प्रसन्नवदन हो नाच उठी। ऐसे समयमें सिंह लग्नमें, सिंह राशिमें श्रीशचीगर्भसिन्धुसे श्रीमायापुरके पूर्णचन्द्र उदित हुए—अचैतन्य विश्वमे चैतन्यका संचार हुआ—माया-मरुमे अमृतमन्दाकिनी प्रवाहित हो उठी। अविरल धारामे हरिकीर्तन-सुधा-सजीवनीकी वर्षा होनेके कारण विश्वका हरिकीर्तन-दुर्भिक्ष-दुःख दूर हो गया। शान्तिपुरमे श्रीअद्वैताचार्य और ठाकुर श्रीहरिदास आनन्दमें मत्त हो नाच उठे। सर्वत्र ही भक्तोका आनन्द-

केवल ३८ मिनट तक कलकत्तामें प्रकृत ग्रहणकी स्थितिका समय होनेपर भी स्पर्शके प्राय दो घटे पहले उपच्छाया-प्रवेश और मोक्षके प्राय दो घटे बाद उस उपच्छायाका त्याग हुआ था।

किसी अर्वाचीन लेखकने श्रीयुत् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके नामसे आरोपित एक श्लोकके द्वारा यह बात बतायी है कि, उन्होंने श्रीमन्महा-प्रभुके आविर्भावके समय सध्याकालमे चन्द्र राहुग्रस्त हो गया था, ऐसा लिखा है। अतः श्रीचक्रवर्ती ठाकुर ज्योतिषशास्त्रसे अनभिज्ञ थे ।। वस्तुतः अर्वाचीन लेखकमात्र ज्योतिषशास्त्रसे सपूर्ण अनभिज्ञ हैं, क्योंकि पहले तो श्रीयुत् चक्रवर्ती ठाकुरके नामपर आरोपित श्लोककी प्रामाणिकता कहाँ तक है, यह विचारणीय है। ‘वशीलीलामृत’ नामक कोई ग्रंथ श्रीचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित है, ऐसा विद्वत्समाजमें प्रचलित नहीं है। दूसरी बात यह है कि, उस श्लोकाशको प्रामाणिक मान भी लें तो भी “पूर्णन्दौ राहुणा ग्रस्ते”—इस वाक्यमें पहले राहुग्रास और पीछे श्रीगौरचन्द्रका उदय न होकर समकाल ही जान पड़ता है। इससे भी उपच्छाया-ग्रहण पहले ही हुआ था और उसी उपच्छाया ग्रहणके आरम्भकालसे शास्त्रीय विधिके अनुसार श्रीहरिनाम-सकीर्तन आरम्भ हो गया था।

श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकविकर्णपूर और श्रीकविराज गोस्वामीप्रभुके वर्णनको श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने अर्वाचीन लेखककी अपेक्षा अनेको अधिक बार उपलब्ध करके पाठ किया है। अतएव अर्वाचीन लेखकका श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकविकर्णपूर और श्रीकविराज गोस्वामीप्रभुके श्लोक और पदको उद्धृतकर महामहोपाध्याय चक्रवर्तीपादको अज्ञ प्रमाणित करना ‘आकाशमें मुक्का मारने’के समान बाल-चापल्य ही है।

नृत्य होने लगा । नरनारीगण विविध विचित्र उपहार लिये मिश्र-भवनमें आ-आकर श्रीनवद्वीपचन्द्रके दर्शन करने लगे । सरस्वती, सावित्री, शची, गौरी, रुद्राणी, अरुन्धती प्रभृति देवागनाएँ नारी-वेशमें, एव सिद्ध-गन्धर्व-चारण और देवगण नरवेशमें प्रच्छन्न-भावसे मिश्र-भवनमें आकर नवद्वीप-चन्द्रकी सवर्धना करने लगे । आचार्यरत्न चन्द्रशेखर तथा पण्डित श्रीश्रीवासने मिश्र-नन्दनका जातकर्म-संस्कार सम्पादन किया । जगन्नाथ मिश्रने आनन्दमग्न हो सबको यथायोग्य व्यदान किया । श्रीअद्वैताचार्यकी पत्नी श्रीसीता-ठाकुरानी श्रीनवद्वीप-चन्द्रको देखनेके लिये श्रीधाम-शान्तिपुरसे श्रीमायापुरमें श्रीशचीके गृहमें आयी । श्रीश्रीवासकी गृहिणी श्रीमालिनी देवी तथा श्रीचन्द्रशेखरकी पत्नीने तुरन्त नाना प्रकारके उपहारोंके साथ श्रीशचीके घर जाकर श्रीशचीनन्दनके दर्शन किये ।



नवाँ परिच्छेद

निमाङ्की बाल्य-लीला

अतिमर्त्य वात्सल्य रस

श्रीशची और श्रीजगन्नाथके हृदयानन्दका वर्द्धन करके श्रीगौरचन्द्र शशिकलाके समान बढने लगे । श्रीगौरचन्द्रके ज्येष्ठ भ्राता श्रीसकर्षणके अवतार श्रीविश्वरूप श्रीगौरहरिको गोदमें लेकर सेवा करने लगे । आत्मीयजनोने स्नेहविवश हो, श्रीगौर-गोपालको 'विष्णुरक्षा', 'दैवीरक्षा', 'अपराजिता-स्तोत्र', 'नृसिंह-मन्त्रादि'के द्वारा रक्षा करनेके लिये अपनी व्यग्रता प्रकट कर वात्सल्य-प्रेमका परिचय दिया । मुहल्लेके पड़ोसी

लोग सदा ही बालकको घेरे रहते थे । बालक जब रोता था, तो स्त्रियाँ नाना प्रकारसे उनको चुप करानेकी चेष्टा करती थी, परन्तु उनकी कोई चेष्टा भी सफल नहीं होती थी । तब केवल मात्र उच्च-स्वरसे हरि-नाम लेनेपर ही बालक चुप होता—

परम संकेत एइ सबे बुझिलेन ।

कान्दिलेइ हरिनाम सबेइ लयेन ॥

—चै० भा० आ० ४।६

[इस परम संकेतको सब समझ गए, अतएव बालकके रोते ही सब हरि-नाम लेने लगते ।]

‘निष्क्रमण’-संस्कारके उपलक्ष्यमें श्रीशचीदेवीने आत्मीय-स्वजनोसे परिवेष्टित होकर बाजे-गाजेके साथ गंगा-स्नान, गंगा-पूजा, षष्ठीपूजा और यथाविधि सब देवताओंकी पूजा की । प्रेमभक्ति-स्वरूपिणी स्वयं श्रीभगवान्की स्नेहमयी मातृदेवीकी विविध देवताओंकी पूजासे उनके वात्सल्य-प्रेमका ही परिचय मिलता है । मायामुग्ध बद्ध जीव अपनी सन्तानकी पार्थिव भगल-कामनासे ऐहिक फल प्रदान करनेवाले देवताओं की पूजा करते हैं । वह आसक्ति जब मर्त्य सन्तानके प्रति न होकर अद्वितीय अतिमर्त्य सन्तानके प्रति प्रकाशित होती है तथा उस अतिमर्त्य आसक्तिसे आबद्ध होकर अभीष्ट-वस्तुकी सुखकामनाके लिये भक्त जो क्रियाएँ करता है, वह बाह्य दृष्टिसे बिना विचारे प्राकृत क्रियासे समान लगनेपर भी उसमें निष्ठा और उद्देश्य-सम्पूर्ण रूपसे दूसरा ही होता है । श्रीभगवान्में आसक्ति होकर उनके सुखोल्लासके लिये जो सब क्रियाएँ होती हैं, वही भक्ति या प्रीति है । वह श्रीभगवान्की ही सेवा है, देव-देवी तो उस सेवाके यन्त्र मात्र हैं ।

किसी-किसी दिन चार महीनेके बालक श्रीगौर-गोपाल माता-पिताकी अनुपस्थितिके समय घरकी सारी सामग्रियोंको जमीनपर बिखेर देते, फिर जब देखते कि जननी आ रही है, तो तुरन्त बिछौनेपर जाकर सो जाते और सोये-सोये रोने लगते । श्रीशचीमाता हरिध्वनि

करके बालकको रोनेसे चुप कराती, फिर घरकी ऐसी दशा देखकर आश्चर्यमें पड़ जाती। वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश श्रीजगन्नाथ मिश्र प्रभृति वत्सल-रसिक लोग, चार मासका बालक ऐसा काम कर ही नहीं सकता, यह समझकर, ऐसा निश्चय करते कि, अवश्य ही किमी दानवने रक्षामन्त्रसे सरक्षित शिशुको कष्ट पहुँचानेमें असमर्थ होकर घरकी सामग्रियोंको बिखेरकर अपने क्रोधको चरितार्थ किया है। श्रीशचीदेवी घरमें पुत्रके चरण-चिह्नके समान दो-एक चरण-चिह्न देखती और समझती कि ये चिह्न श्रीशालग्रामजीकी मूर्तिमें अधिष्ठित श्रीबालगोपालके ही पदचिह्न हैं। वत्सल-प्रेमके स्वभाववश ऐसी भ्रान्ति होती।

पण्डितवर श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती और श्रीगौर-प्रीतिपरायण ललनाएँ नामकरण-उत्सवके निर्दिष्ट दिन श्रीशची-भवनमें उपस्थित हुईं। श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती ज्योतिषशास्त्रके असाधारण पंडित थे। उन्होंने गणना करके देखा कि, इस नवीन बालकमें अतिमर्त्य महापुरुषके सारे लक्षण पूर्णरूपसे अवस्थित हैं। ये समग्र विश्वका अनन्त कालतक भरण-पोषण करेगे, ऐसा जानकर चक्रवर्ती-प्रवरने अपने हृदयसे इस बालकका 'विश्वभर'* नाम प्रकट किया। कोई-कोई कहते हैं कि, बालकके आविर्भावेसे समस्त देश प्रफुल्लित हो गया, सब दुःख दूर हो गये, जगत्-शस्य-क्षेत्रमें भक्तिकादम्बिनी-धारा बरस गयी और उससे हरिकीर्तन-दुर्भिक्ष दूरीभूत हो गया था, इसी कारण पंडितोंने उनका नाम 'विश्वभर' रखा था। वात्सल्य-रसविवश श्रीअद्वैत-गृहिणी श्रीसीतादेवीने बालककी चिरायु-कामना करके यमके मुखमें तिक्त (तीता) लगनेवाले

* सर्वलोके करिबे एइ धारण-पोषण ।

'विश्वम्भर' नाम इहार,—एइ त' कारण ॥

—चै० च० आ० १४।१६

[यह सब लोगोका धारण-पोषण करेगा इसी कारणसे इसका 'विश्व-भर' नाम है ।]

नीमसे 'निमाइ' नाम रक्खा ।* निमाइ ही आगे चलकर 'गौरसुन्दर', 'गौराग', 'गौरहरि', 'महाप्रभु', और सन्यास-लीलाके बाद 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' आदि नामोंसे अभिहित हुए ।

रुचि-परीक्षा

निमाइके नामकरणके समय प्रचलित प्रथाके अनुसार श्रीजगन्नाथ मिश्रने पुत्रकी रुचि-परीक्षाके लिये उसके समीप पोथी, खील, धान, कौड़ी, सोना, चाँदी आदि कई वस्तुएँ रक्खी । बालकने सबको छोड़कर 'श्रीमद्भागवत'की पोथीको लेकर हृदयसे लगा लिया । इसके द्वारा निमाइने शिशु-कालमें ही जगत्को यह शिक्षा दी कि, पार्थिव द्रव्यजात समस्त अनित्य है, श्रीमद्भागवत ही नित्य वस्तु है । बचपनसे भागवत-कथामें रुचि होनेसे ही जीवगण यथार्थ सम्पत्तिशाली हो सकते हैं । प्रह्लादने भी शिशुकालमें अपने समवयस्क और सहपाठी बालकोको यही शिक्षा दी थी ।

“शेषदेव”

धीरे-धीरे निमाइने घुटनेके बल चलना सीखा । एक दिन घुटनेके बल चलते-चलते उन्होंने घरमें एक स्थानपर एक बड़े सर्पको देखा और

* डाकिनी-शांखिनी हैते, शका उपजिल चिते,
डरे नाम थुइल 'निमाइ' ॥

—चै० च० आ० १३।११७

[डाकिनी शांखिनीसे चित्तमें भय उत्पन्न हो गया, इसी डरसे 'निमाइ' नाम रख दिया।]

इहान अनेक ज्येष्ठ कन्या-पुत्र नाइ ।
शेष ये जन्मये, तौर नाम से 'निमाइ' ॥

—चै० भा० आ० ४-४५

[इनके अनेक ज्येष्ठ कन्या-पुत्र नहीं हैं इसलिए अन्तमें जन्म होनेके कारण उनका नाम 'निमाइ' हुआ]

उस कुण्डलीकृत साँपके ऊपर सोकर उन्होंने शेषशायी भगवान्की लीला प्रकट की, वात्सल्य-प्रेममयी शचीमाता आदि मातृस्थानीया ललनाएँ घबराकर 'गरुड', 'गरुड' पुकारने लगी और बालकके अमगलकी आशकासे भयभीत होकर रोने लगी। यह देखकर सर्परूपी अनन्तदेवने उस स्थानको छोड़ दिया। घुटनोके बल ही निमाइ अकेले घरसे बाहर चले जाते। लोग बालकके रूप-लावण्यको देखकर मोहित हो, उसको सन्देश (बगला मिठाई), केला आदि देते। निमाइ उन सब उत्तम वस्तुओंको लेकर हरिकीर्तन करनेवाली नवद्वीपकी नारियोको पारितोषिक-प्रसादके रूपमें बाँट देते थे। कभी-कभी किसी पड़ोसी गृहस्थके घर जाकर उसको बिना जताये ही दही-दूध अन्नादि भोजन कर लेते। किसीके घरकी सामग्री तोड़-फोड़कर उस स्थानसे चुपके-चुपके भाग जाते। बालकके मुखचन्द्रके दर्शनमात्रसे सभी अपने दुःख और उलाहनेको भूल जाते थे।

दो चोर और निमाइ

एक दिन निमाइके शरीरपर सुन्दर-सुन्दर आभूषण देखकर दो चोरोने उन आभूषणोंको चुरानेका विचार किया। निमाइ जिस समय अकेले मार्गमें घूम रहे थे, उसी समय उन दोनों चोरोने निमाइको बड़े प्रेमसे अत्यन्त परिचित आत्मीयकी तरह गोदमें उठा लिया और बालकको उसीके घर ले जानेका बहाना बताकर किसी निर्जन स्थानमें ले जानेकी तैयारी करने लगे। निमाइके किस गहनेको कौन चुराएगा यह लेकर दोनों चोर परस्पर अनेक प्रकारकी जल्पना-कल्पना करने लगे। उनमें से एक चोरने निमाइको खानेके लिए सन्देश (बगलकी मिठाई) देकर उनको भुलानेकी चेष्टा की और दूसरेने बालकको समझाकर कहा कि 'बस, यह तो तुम्हारे घर ही आ गये हैं।' इधर निमाइकी मायासे मुग्ध होकर दोनों चोर अपने-अपने जानेका रास्ता भूल गये और अन्तमें अपना घर समझकर वे श्रीजगन्नाथ मिश्रके

घरपर ही जा पहुँचे। निमाइको कन्धेसे उतारते ही वे अपने पिताकी गोदपर जा चढ़े, दोनो चोर अपनी भूल समझकर डरसे, कौन किधर भागे—यो भागनेका रास्ता ढूँढने लगे, और मन-ही-मन दोनो चिन्ता करने लगे कि, एक साधारण बालकने किस प्रकार उनको ठग लिया है। बालक निमाइने चोरोके कन्धेपर सवार होकर उनका भी मंगलविधान ही किया। दोनो चोरोने श्रीगौरनारायणको कन्धे चढ़ाकर और सन्देश खिलाकर अज्ञातरूपसे भक्तिकी ओर ले जानेवाली सुकृतिका सचय ही किया।

मृत्तिका-भक्षण और दार्शनिक उत्तर

एक दिन श्रीशचीदेवी निमाइको भोजनके लिये 'खील', 'सन्देश' प्रदानकर घरके काममें लग गई। बालक खील-मिठाईके बदले कुछ मिट्टी खाने लगा, शचीदेवीने यह देखकर बालकके मुँहसे मिट्टी निकाल ली। शिशु निमाइने माताको दार्शनिक उत्तर देते हुए कहा,—“खील, सन्देश, अन्न आदि पार्थिव वस्तुओमें और मिट्टीमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि ये सभी मिट्टीके विकार हैं। जीवकी देह और जीवका खाद्य—सब मिट्टी ही है।” श्रीशचीदेवीने यह सुनकर कहा,—“ससारकी सब वस्तुएँ मिट्टीके विकार हैं, तथापि मिट्टी और उसके विकारमें अनुकूल-प्रतिकूल द्रव्यका विचार होता है। मिट्टीके विकार अन्नके खानेपर शरीर पुष्ट होता है, परन्तु मिट्टी खानेसे शरीर अस्वस्थ और विनष्ट हो जाता है। मिट्टीके विकार घटमें जल लाया जाता है, परन्तु मिट्टीके 'पिण्ड'में जल लानेसे सारा जल उसके भीतर ही शेष हो जाता है।” माताके इस उत्तरको सुनकर निमाइ आनन्दित हो उठे, तथा इसके द्वारा, शुष्क ज्ञानवादियोंके एकदेशी विचारका परित्यागकर 'शुद्धभक्तिके सार्वदेशिक अनुकूल-प्रतिकूल विचारको ही ग्रहण करना चाहिए’—यह उपदेश दिया।

तैथिक ब्राह्मण

एक दिन एक गोपालभक्त तीर्थ-पर्यटक ब्राह्मण श्रीमायापुरमें मिश्रके घरमें अतिथि हुए , वैष्णवसेवापरायण श्रीजगन्नाथ मिश्रने ब्राह्मणको रसोई पकानेकी सामग्री प्रदान की। जब ब्राह्मण रसोई पकाकर ध्यान करके श्रीगोपालको भोग लगानेके लिये तैयार हुए, तो बालक निमाइ वहाँ पहुँचकर उनका अन्न खाने लगे। उस अन्नका परित्याग करके अतिथि ब्राह्मणने मिश्रके अनुरोधसे दूसरी बार भोग तैयार किया। ब्राह्मणके ध्यानमें भोग लगाते समय दूसरी बार भी पुन वही घटना घटी। श्रीविश्वरूपके अनुरोधसे तैथिक विप्रने तीसरी बार फिर प्रस्तुत किया। इस बार बालकको विशेष सतर्कताके साथ रोक रखा गया , बालकने निद्रित होनेका अभिनय किया। इधर रात्रि भी अधिक हो गई थी। श्रीगौरहरिकी इच्छासे निद्रादेवी अतिथि बनकर सबके नेत्रकोणोमें आ विराजी। सब लोग निद्रादेवीके सत्कारमें लग गये और तैथिक अतिथिकी बात भूल गये। इसी समय तैथिक विप्र पुन ध्यानमें जब गोपालजीको निवेदन करनेके लिये उद्यत हुए, तो निमाइ तीसरी बार हठात् कहीसे आकर पूर्ववत् ब्राह्मणके निवेदित अन्नको खाने लगे। ब्राह्मण दैवसे मारे हुएकी भाँति हाहाकार करने लगे। इतनेमें निमाइने ब्राह्मणके सामने चतुर्भुज और द्विभुज रूप प्रकट करके कहा,—“हे विप्र, तुम मेरे नित्य सेवक हो, मैंने जिस समय ब्रजमें नन्ददुलारेके रूपमें लीला प्रकट की थी, तब भी तुम्हारे साथ ऐसी ही घटना घटी थी। इस बार भी तुम्हारी भक्तिसे आकृष्ट होकर मैंने तुमको दर्शन दिये हैं।” तब ब्राह्मण अपने इष्टदेवका दर्शन कर महाप्रेमाविष्ट हो गये तथा अपनेको धन्य मानकर उन्होने प्रभुका भुक्तावशेष प्रसाद ग्रहण किया। महाप्रभुने उस तैथिक विप्रको यह गुप्तलीला सर्वसाधारणके समीप प्रकट करनेसे मना कर दिया।



दसवाँ परिच्छेद

निमाइका विद्यारम्भ और चांचल्य

श्रीजगन्नाथ मिश्रने निमाइका 'विद्यारम्भ', 'कर्णवेध', और 'चूडा-करण-संस्कार' सम्पन्न करवाया। केवल एक बार देखकर ही निमाइ सब अक्षर लिख जाते थे। दो-तीन दिनोंमें समस्त सयुक्तवर्ण और वर्णविन्यासको निमाइने हृदयस्थ कर लिया, तथा 'राम', 'कृष्ण', 'मुरारि', मुकुन्द', 'वनमाली' आदि सारे कृष्ण-नामोंको वे लिखने लगे। निमाइ जब मधुर स्वरसे 'क', 'ख', 'ग', 'घ' उच्चारण करते थे, तब सबके प्राण मोहित कर देते थे। श्रीगौर-नोपाल कभी आकाशमें उड़ते हुए पक्षीको और कभी चन्द्रमा और तारासमूहको ला देनेके लिये माता-पितासे हठ करते थे, और इन सारी वस्तुओंके न मिलनेपर बहुत रोने लगते थे। उस समय हरिनाम-कीर्तनके सिवा बालकको अन्य किसी उपायसे भी शान्त नहीं कराया जा सकता था।

श्रीमायापुरमें मिश्रभवनसे प्रायः एक कोस दक्षिण-पूर्वकी ओर श्रीजगदीश और श्रीहिरण्य पण्डितका घर था। किसी एकादशीके दिन उनके घर विष्णुका भोग बन रहा था। निमाइने उस नैवेद्यको भोजन करनेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथ मिश्रको हिरण्य-जगदीशके घर उसे लानेके लिये भेजा। हिरण्य-जगदीश मिश्रके मुखसे बालककी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर विशेष आश्चर्ययुक्त होकर बोले,—“आज एकादशी है, और हमारे घर विष्णु-नैवेद्य बन रहा है, इस बातको बालकने कैसे जाना? अवश्य ही इस बालकमें कोई वैष्णवी शक्ति है।” उन्होंने ऐसा विचारकर वही नैवेद्य बालकके लिये भेज दिया। शिशुके लिये इतने दूरका समाचार जानना असम्भव है, परन्तु अन्तर्यामी निमाइने भक्तोंके सामने, आत्मप्रकाश करनेके लिये और एकादशीके दिन एकमात्र भगवान् ही अन्नादि सामग्रियोंको भोगरूपसे ग्रहणके

अधिकारी हैं, सबको यह समझानेके लिये ही इस प्रकारके एक कौशलका अवलम्बन किया था।

निमाइकी चंचलता क्रमशः बढ़ती गयी। वे सखाओंके साथ परिहास और कलह तथा मध्याह्न-कालमें गंगास्नानके समय जलक्रीडा आदि नानाप्रकारकी चंचलता प्रदर्शित करने लगे। निमाइ समवयस्क बालकोको लेकर अडोस-पडोसके घरोंमें चोरी करके विविध पदार्थ भक्षण करते और बालकोको मारते थे। सारे बालक श्रीशचीमाताके पास जब शिकायत करते तो वे अप्राकृत वात्सल्य-रससे मुग्ध होकर परमेश्वर-पुत्रका प्राकृत बालकके समान तिरस्कार करती। तब निमाइ क्रोधित होकर घरकी वस्तुओंको इधर-उधर बिखेर देते, मटको को फोड़ डालते। निमाइ कभी-कभी अपने कोमल हाथोंसे माताको मार देते, फिर श्रीशचीमाताको मूर्छित देखकर क्रन्दन भी करने लगते। जब पडोसकी स्त्रिया कहती कि नारियल लाकर देनेसे माता स्वस्थ होगी, तो सबको विस्मय-रसमें मग्न करके बालक बाहर जाकर नारियल ला देते। एक ओर नदीयाके पुरुषगण जिस प्रकार जगन्नाथ मिश्रके पास आकर प्रतिदिन ही निमाइके कार्यके लिये नाना प्रकारकी शिकायत करने लगे, उसी प्रकार दूसरी ओर लड़कियाँ भी निमाइके नाना प्रकारके चांचल्यकी बातें श्रीशचीमाताको सुना जाती।

कुमारियाँ गंगास्नान करके घाटपर बैठकर गंगापूजा करती। तब बालक निमाइ कुमारियोंके पास आकर कहते,—“तुम लोग गंगा और दुर्गाकी पूजा क्यों करती हो? मेरी पूजा करो। जो वर चाहो, मैं दूंगा। गंगा और दुर्गा तो मेरी दासी हैं, शिव मेरे सेवक हैं।” इतना कहकर बालकरूपी स्वयं भगवान् श्रीगौरहरि अपने-आप ही कुमारियोंकी पूजाकी सामग्री चन्दन, पुष्पमाला आदि धारण कर लेते तथा सन्देश, चावल, केला आदि छीनकर खाने लगते और कहते,—“तुम लोगोको वर देता हूँ—तुम लोगोको परम सुन्दर, पण्डित, धनवान्, युवक और रसिक पति मिलेंगे, दीर्घायु होगा तथा तुम्हारे

सात सात पुत्र होंगे ।” वर सुनकर कुमारियाँ ऊपरसे रोषाभास दिखलाती, पर भीतर-ही-भीतर उनको सन्तोष ही मिलता था । यदि कोई कुमारी निमाइके डरसे देवताका नैवेद्य लेकर भागना चाहती तो चचल निमाइ उसे पुकारकर कहते,—“तुमको बूढ़ा पति मिलेगा और बहूत सी सौते होगी ।” तब कुमारियाँ निमाइको देवाविष्ट पुरुष समझकर सारा नैवेद्य उन्हीको प्रदान कर देती ।

श्रीशचीदेवीके पास निमाइके विरुद्ध शिकायत आती, तब वे सबको मीठी-मीठी बातोंके द्वारा सान्त्वना प्रदान करती । एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र निमाइके इस प्रकारके उपद्रवकी बात सुनकर पुत्रको उपयुक्त दण्ड देनेके लिये मध्याह्न कालमें गगाके घाटपर जा पहुँचे । चतुर निमाइ क्रुद्ध पिताके आनेकी बात जानते ही दूसरे रास्तेसे घर भाग गये और साथियोंसे कह गये कि यदि मिश्र महाशय आकर उनकी बात पूछे तो वे मिश्रको ‘आज निमाइ गगास्नान करने नहीं आया’—कहकर लौटा दें । गगाके घाटपर निमाइको न देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र घर लौट आये और देखा कि, निमाइ बिना स्नान किये सारे शरीरमें स्याही पोते बैठे हैं । मिश्र वात्सल्य-प्रेमसे मुग्ध होकर बालककी चातुरी नहीं समझ सके । निमाइको शिकायत करनेवालोंकी बात सुनानेपर निमाइ बोले,—“मेरे गगास्नानके लिये न जाने पर भी जब वे मेरे विषयमें झूठी शिकायतें करते हैं तब तो मैं अब सचमुच ही उनके ऊपर उपद्रव करूँगा ।” इस प्रकार चतुराई करके निमाइ पुनः गगास्नानके लिये चले । इधर श्रीशची और जगन्नाथ मन-ही-मन विचारने लगे कि,—“यह अद्भुत बालक कौन है ? क्या यह श्रीनन्ददुलारा ही गुप्तरूपसे हमारे घर आया है ।”



ग्यारहवाँ परिच्छेद

श्रीअद्वैत-सभा और श्रीविश्वरूपका संन्यास

शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यका घर था। उन्होंने नवद्वीपमें श्री-मायापुरमें श्रीवास पण्डितके घरके उत्तर कुछ दूरपर एक सस्कृत पाठ-शाला खोल रखी थी। श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व इस स्थानपर वे भगवान्‌के आविर्भावके लिये जल-तुलसीके द्वारा श्रीनारायणकी आराधना करते और हुकार करके भगवान्‌को समस्त जगत्‌की विमुखताकी बात सुनाते। इसी स्थानमें ठाकुर श्रीहरिदास, श्रीश्रीवास पण्डित, श्रीगंगादास, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीचन्द्रशेखर, श्रीमुरारिगुप्त आदि वैष्णवगण मिलकर श्रीभगवान्‌की कथावार्ता करते।

श्रीविश्वभरके बड़े भाई श्रीविश्वरूप बाल्यकालसे ही ससारके प्रति उदासीन थे। वे सर्वशास्त्रोंके सुपण्डित और समस्त गुणोंसे गुणवान्‌ थे। सारा ससार जागतिक बातोंमें मत्त था, सभीके हृदयोंमें भगवान्‌ और भगवान्‌के भक्तोंके प्रति न्यूनाधिकरूपमें विमुखताका भाव था, यहाँतक कि जो लोग गीता-भागवतादि पढाते थे, उनमें भी आन्तरिक हरि-भक्तिका अभाव देखकर उन्होंने यह विचार किया कि वे अब ससारी लोगोका मुह नहीं देखेंगे और भीतर-ही-भीतर ससारका परित्याग करनेके लिये निश्चय कर लिया। प्रतिदिन प्रातः काल गंगा-स्नान करके ही वे 'अद्वैत-सभा'में आते, और शास्त्रोंसे हरि-भक्तिके प्रसंगोका भक्तिभावसे श्रवण-कीर्तन करते थे। भोजनका समय टलते देखकर श्रीशचीदेवी प्रायः ही विश्वरूपको बुलानेके लिये निमाइको अद्वैत-सभामें भेजती। निमाइके अलौकिक रूप-लावण्यको देखकर सभामें स्थित वैष्णव-मंडलीका चित्त मुग्ध हो जाता। विश्वरूप घर आकर भगवत्प्रसाद सम्मानपूर्वक ग्रहण करके फिर अद्वैत-सभामें चले जाते। घर जानेपर भी वे किसी प्रकारका गृह-व्यवहार नहीं करते

थे, जबतक घर रहते, तबतक विष्णु-मन्दिरमें ही रहते। माता-पिता विवाहकी चेष्टा कर रहे हैं, यह सुनकर विश्वरूपके हृदयमें बहुत दुःख हुआ और कुछ दिनोंके बाद सन्यास ग्रहण करके वे 'शकरारण्य'के नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीविश्वरूपके सन्यास लेनेपर श्रीश्रीशची-जगन्नाथ वात्सल्य-रसके स्वभाववश अत्यन्त विरहव्याकुल हो उठे,—तब निमाइ माता-पिताको सान्त्वना देकर बोले,—“भैयाने सन्यास-लीला प्रकट करके उत्तम कार्य ही किया है। इससे मातृ-पितृकुलका उद्धार हो गया। मैं आप लोगों की सेवा करूँगा।”

एक दिन निमाइ श्रीविष्णु-नैवेद्यका पान खाकर मूर्छित हो गये। श्रीश्रीशची-जगन्नाथने जब निमाइको स्वस्थ कर दिया, तब निमाइने माता-पिताको एक अपूर्व कथा सुनायी,—“भैया मुझको यहाँसे ले गये और मुझे सन्यास ग्रहण करनेका आदेश दिया। तब मैंने कहा,—‘मेरे माता-पिता अनाथ हैं, मैं बालक हूँ, मैं सन्यास क्या जानूँ? गृहस्थ होकर माता-पिताकी सेवा करनेसे श्रीश्रीलक्ष्मीनारायण सन्तुष्ट होंगे।’ मेरी बात सुनकर भैयाने मुझे पुनः यहाँ भेज दिया तथा कहा कि ‘माता को मेरे कोटि-कोटि नमस्कार कहना।’”

इसके द्वारा श्रीनिमाइने अपनी भावी सन्यास-लीलाकी ओर संकेत किया था।



बारहवाँ परिच्छेद

उपनयन और श्रीगंगादास पण्डितकी पाठशालामें अध्ययन

विश्वरूपके गृहत्याग करनेके बाद निमाइकी चंचलता कम हो गयी। अब वे पढ़नेमें मन लगाने लगे। परन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्र बालककी चाचल्य-निवृत्ति और पढ़नेमें मनोयोगकी बात सुनकर भी अन्तरसे

प्रफुल्लित नहीं हो सके, क्योंकि उनको यह आशका हो गयी कि—
विश्वरूपने शास्त्र पढ़कर ससारकी अनित्यताको हृदयगम किया था,
इसी कारण उन्होंने गृह-त्याग किया, कौन जाने, निमाइ भी पढ़-लिखकर
अपने बड़े भाईका ही अनुसरण करे। अतएव मिश्रने निमाइका पढ़ना
बंद करा दिया। निमाइ फिर प्रबल वेगसे औद्धत्य और चाचल्य
दिखलाने लगे।

एक दिन निमाइ घरसे बाहर विष्णुके नैवेद्य तैयार करनेके बाद
फेके हुए गंदे मिट्टीके पात्रोके ऊपर जा बैठे, श्रीशचीमाताको जब यह बात
मालूम हुई तो उन्होंने बालकको प्यार भरे शब्दोंमें उस अपवित्र स्थानका
त्याग कर नहाने-धोनेके लिये कहा। माताकी बात सुनकर निमाइ बोले,—
“मैं मूर्ख अच्छे-बुरे, पवित्र-अपवित्रका विचार किस प्रकार करूँगा ?
अपवित्र स्थानमें मैं कभी भी नहीं रहता। जहाँ मैं अवस्थान करता
हूँ, वही सभी पुण्यस्थान, गंगा-यमुना आदि सब तीर्थोंका अधिष्ठान
होता है। श्रीभगवान्से विमुख होकर जीव काल्पनिक शुचि और
अशुचिका विचार करता हूँ, और लौकिक या वैदिक मतसे किसी वस्तुमें
यदि अशुद्धता भी होती है, तो मेरे स्पर्शसे वह भी परम विशुद्ध
हो जाती है। जिस मिट्टीके पात्रमें तुमने विष्णुका नैवेद्य बनाया है,
वह विष्णु-सबधसे युक्त वस्तु कभी अशुद्ध नहीं हो सकती, बल्कि इन
सब वस्तुओंके प्रभावसे अन्य स्थान और वस्तु भी शुद्ध हो जाती है।”
बाल्यभावमें श्रीगौर-गोपाल समस्त तत्वोका सार मुस्कराते हुए बोल
गये। तथापि वात्सल्यरससे मुग्ध श्रीशचीदेवी श्रीनिमाइको अपवित्र
स्थानसे हटाकर स्नान करके शुद्ध होनेके लिये पुन-पुन अनुरोध करने
लगी और यह भी कह दिया कि यह बात जब मिश्रजीके कानोंमें
पहुँचेगी तो वे बहुत क्रुद्ध होंगे।

निमाइने मातासे कहा कि यदि उनको पढ़ने न दिया गया तो वे
किसी तरह भी उस स्थानको न छोड़ेंगे। निमाइकी यह बात
सुनकर अडोस-पडोसके लोग श्रीशचीदेवीको बुरा-भला कहने लगे।

“साधारणतः लड़के ही पढ़ना नहीं चाहते, माता-पिता नानाप्रकारसे बालकका मन पढ़नेमें लगाया करते हैं और यहाँ माता-पिता ठीक उल्टी व्यवस्था कर रहे हैं। जान पड़ता है किसी शत्रुकी कुबुद्धिसे श्रीश्रीशची-जगन्नाथको ऐसा मतिभ्रम हो गया है ?” पडोसियोंकी इस प्रकारकी उक्ति तथा अपवित्र स्थानको त्याग करनेका अनुरोध करनेपर भी बालक उस स्थानपर बैठा रहा। तब श्रीशचीमाता बालकको पकड़कर ले आयी। श्रीजगन्नाथ मिश्र जब वहाँ आये, तब पडोसियोंने बालकके पढ़नेकी व्यवस्था करनेके लिये जोर दिया। मिश्रने सबकी राय मान ली।

शुभ दिन और शुभ लग्नमें श्रीगौरसुन्दरका उपनयन हुआ। श्रीअनन्तदेव यज्ञसूत्ररूपसे श्रीगौराङ्गकी सेवा करके कृतार्थ हो गये। निमाइने वामनरूपमें सबके पास जाकर भिक्षा ग्रहण की। नवद्वीपके श्रेष्ठ अध्यापक श्रीगंगादास पण्डितकी पाठशालामें निमाइ पढ़नेके लिये गये। श्रीगंगादास अपने छात्रोंमें निमाइको सर्वश्रेष्ठ मेधावी और विचक्षण देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। श्रीगंगादासके शिष्योंमें श्रीमुरारिगुप्त, कमलाकान्त, कृष्णानन्द प्रभृति जो सब छात्र प्रधान और उम्रमें बड़े थे, उनको भी निमाइ भाँति-भाँतिकी ‘फक्किकाएँ’ (कूट प्रश्न) पूछकर अपदस्थ करनेसे नहीं चूकते थे। गंगाके घाटपर जाकर निमाइ प्रतिदिन ही अन्यान्य छात्रोंके साथ तर्क करते थे। सूत्र-व्याख्याके समय स्वयं जो स्थापन करते थे, उसका स्वयं ही खण्डन और पुनः संस्थापन करके छात्रोंको विस्मित कर देते थे।

एक दिन निमाइने माताका चरण धारण करके प्रणाम करते हुए कहा,—“मा, मुझे एक दान देना पड़ेगा। तुम श्रीएकादशीको अन्न मत खाना।” उसी समयसे श्रीशचीमाता नियमित रूपसे श्रीएकादशी-व्रतका पालन करने लगी।

श्रीगंगा बहुत दिनोंसे यमुनाके भाग्यकी कामना कर रही थी। बाह्याकल्पतरु श्रीगौरहरि श्रीगंगादेवीकी उस अभिलाषाको पूर्ण करते रहे। श्रीनिमाइ प्रतिदिन गंगा-स्नान, विधिपूर्वक श्रीविष्णुपूजा, श्री-

तुलसीमें जल देने और श्रीमहाप्रसादका सम्मान करने, घरमें निर्जन स्थानमें अध्ययन करने तथा सूत्रोंकी टिप्पणी आदि करनेमें लगे रहते थे । श्रीजगन्नाथ मिश्र यह सब देखकर हृदयमें बहुत आनन्दित होते थे, तथा वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश अपने पुत्रके कल्याणके लिये श्री-कृष्णसे प्रार्थना करते थे । वे ऐश्वर्यगंधहीन वात्सल्यप्रेममें मुग्ध होकर यह नहीं समझ पाते थे कि स्वयं श्रीकृष्ण ही उनके घरमें अवर्तीण हुए हैं ।

एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्रने स्वप्नमें देखा कि, श्रीनिमाइ अभिनव सन्यासीका वेष धारणकर श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंके साथ निरन्तर श्रीकृष्णनाममें हास्य, नृत्य और क्रन्दन कर रहे हैं । कभी तो निमाइ श्रीविष्णुके सिंहासनपर चढ़कर सबके मस्तकपर श्रीचरण रख रहे हैं, चतुर्मुख, पंचमुख सहस्रमुख देवतागण “जय श्रीशचीनन्दन” कहकर चारों ओरसे उनका स्तुतिगान कर रहे हैं, और कभी श्रीनिमाइ नगर-नगरमें श्रीहरिनाम कीर्तन करते-करते, नृत्य करते घूम रहे हैं, और कोटि-कोटि लोग श्रीनिमाइके पीछे-पीछे दौड़े जा रहे हैं, तथा कभी अपरूप परिव्राजकके वेषमें श्रीनिमाइ भक्तोंके साथ महारगमें नीलाचल गमन कर रहे हैं ।

यह स्वप्न देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र अत्यन्त चिन्ताकुल हो उठे । श्रीनिमाइ निश्चय ही गृहत्याग करेंगे—यह धारणा उनके हृदयमें बद्धमूल हो गयी । श्रीशचीदेवीने मिश्रको सान्त्वना देते हुए कहा,— “निमाइने जिस प्रकार पढ़ने-लिखनेमें मन लगाया है, उसे देखते हुए वह घर छोड़कर कहीं नहीं जायगा ।” कुछ दिनोंके बाद श्रीजगन्नाथ मिश्रका अन्तर्धान हो गया । श्रीदशरथके विजय (देहावसान) पर (भक्त-विरहसे) श्रीरामचन्द्रने जिस प्रकार क्रन्दन किया था, श्री-जगन्नाथ मिश्रका तिरोधान होनेपर भी श्रीनिमाइने उसी प्रकार क्रन्दन किया । निमाइ श्रीशचीमाताको अनेकों प्रकारसे सान्त्वना देते हुए समझाने लगे,—“मा, मैं तुम्हें ब्रह्मा-महेश्वरके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ वस्तु प्रदान करूँगा, तुम कोई भी चिन्ता मत करना ।”

एक दिन निमाइने गगास्नानके लिये जाते समय श्रीशचीदेवीसे गगापूजाके लिये तेल, आँवला, माला, चन्दन प्रभृति सामग्री माँगी । जब श्रीशचीदेवीने निमाइको थोड़ी देर ठहरनेके लिये कहा तो निमाइ क्रुद्ध होकर घरके सारे पदार्थ, यहाँ तक कि घर-द्वार चूर्ण-विचूर्ण करने लगे , केवल माताके बदनपर हाथ नहीं उठाया । सारी वस्तुएँ तोड़ डालनेके बाद निमाइ मिट्टीमें लोटने लगे, श्रीशचीदेवीने गन्ध-माल्यादि सग्रह करके निमाइकी गगा-पूजाके लिये आयोजन कर दिया । श्रीयशोदा देवी जिस प्रकार गोकुलमें श्रीबालकृष्णके समस्त चाचल्यको सहन करती थी, उसी प्रकार नवद्वीपमें श्रीशचीदेवी भी श्रीगौर-गोपाल की सारी चचलता सहने लगी । निमाइ गगास्नान और गगापूजा करके घर लौट आये और भोजनादि कार्य समाप्त किया । तब श्रीशची माताने पुत्रको समझाते हुए कहा,—“तुम पितृविहीन बालक हो, घरकी वस्तुएँ इस प्रकार नष्ट करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? कल क्या खाओगे ?—इसका कोई सहारा हमारे घरमे नहीं है, क्या ऐसी अवस्था में घरकी वस्तुओंको नष्ट करना उचित है ?”

निमाइने जननीसे कहा,—“विद्वम्भर श्रीकृष्ण ही सबके पालक हैं, उनके दासके लिये आहारकी चिन्ता करना अनावश्यक है ।” इतना कहकर निमाइ अध्ययनके लिये बाहर चले गये और घर लौटकर जननी के हाथमें दो तोला सोना देकर बोले,—“श्रीकृष्णने यह सहारा भेज दिया है, इसे भँजाकर तुम अपना खर्च चलाओ ।” श्रीशचीदेवी देखने लगी कि, जब कभी घरमे अर्थका अभाव होता, तभी निमाइ कहीसे सोना ले आते । श्रीशचीदेवी इससे डर गयी, न जाने पीछे कोई बुरी घटना घटे ! दस-पाँच लोगोको दिखलाकर श्रीशचीदेवी उस स्वर्णखण्डको भँजाकर घरके लिये आवश्यक वस्तुएँ जुटा लाती ।

श्रीनिमाइ ब्रह्मचारीके वेशमें, कपालमे ऊर्द्ध तिलक धारण कर प्रतिदिन श्रीगगादास पण्डितके पास पढ़ने जाते और छात्रोमे बैठकर सूत्रोकी इस प्रकारकी नयी-नयी व्याख्या करते कि, श्रीगगादास पण्डित

अत्यन्त सन्तुष्ट होकर श्रीनिमाइको छात्रोमे सर्वप्रधान आसन प्रदान करके मध्यस्थलमें बैठते। उस समय स्नान, भोजन, भ्रमण आदि सारे ही कार्योंमे निमाइ शास्त्रचर्चाके सिवा और कुछ नहीं करते थे।

प्रातः सन्ध्या समाप्त करके ही श्रीनिमाइ छात्रोके साथ श्रीगंगादास पण्डितकी सभामें बैठ जाते और शास्त्रीय विचारको लेकर वाद-विवाद छेड़ देते। जो सब छात्र निमाइके अनुगत न होकर स्वतन्त्र रूपसे अध्ययन करते, निमाइ उनके पाठमें नाना प्रकारके दोष दिखलाते थे। श्रीमुरारिगुप्त निमाइके अनुगत होकर नहीं पढ़ते, यह देखकर एक दिन श्रीनिमाइने उनसे कहा,—“मुरारि, तुम वैद्य हो, लता-पत्ता घोटना ही तुम्हें शोभा देता है, व्याकरण अत्यन्त कठिन शास्त्र है, इसमें कफ, पित्त और अजीर्ण रोगकी व्यवस्था नहीं है, तुम अपने-आप इसे क्या समझोगे! जाओ, जाकर रोगीकी चिकित्सा करो।”

कभी-कभी श्रीमुरारिगुप्त मौन रहते थे, और कभी श्रीनिमाइकी बातका प्रतिवाद करने लगते थे। परन्तु अन्तमें श्रीनिमाइके साथ तर्कमें हार जाते थे। तब वे मन-ही-मन सोचते कि, ‘निमाइ साधारण मनुष्य नहीं है, निश्चय ही कोई अतिमर्त्य पुरुष जगत्में आविर्भूत हुए हैं।’ श्रीमुरारिगुप्तने इस प्रकार पराजित होनेपर निमाइके अनुगत होकर अध्ययन करना स्वीकार किया।

सोलह वर्षकी अवस्थाके युवक श्रीनिमाइकी शास्त्रमें अद्भुत पारदर्शिता देखकर सभी मुग्ध हो गये। नवद्वीपवासी श्रीमुकुन्दसजयके चडीमडपमें निमाइ एक विद्या-चतुष्पाठी (पाठशाला) खोलकर पढ़ाना आरम्भ किया। तब ‘मडनात्मक व्याख्याका खडन और खडनात्मक व्याख्याका मडन’ करना तथा अन्यान्य अध्यापकोमें शास्त्रज्ञानका अभाव प्रमाणित करना एव उनको विचार-युद्धके (शास्त्रार्थके) लिये ललकारना ही निमाइका कार्य हो गया।



तेरहवाँ परिच्छेद श्रीनिमाइका प्रथम विवाह

श्रीनवद्वीपमें श्रीवल्लभाचार्य नामके जनकके समान एक वैष्णव ब्राह्मण निवास करते थे। उनकी कन्या श्रीलक्ष्मी भी मूर्तिमती श्रीलक्ष्मी-स्वरूपिणी थी। श्रीवल्लभाचार्य कन्याको उपयुक्त वरके हाथमें समर्पण करनेके लिये चिन्तित थे। एक दिन श्रीलक्ष्मी गंगास्नानके लिये गयी, दैवयोगसे गंगाके किनारे श्रीलक्ष्मीके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार होनेपर मन-ही-मन दोनोंने एक दूसरेको अगीकार कर लिया।

इधर उसी दिन श्रीवनमाली आचार्य नामक नवद्वीपवासी एक घटकने (कन्या तथा पात्र पक्षोंमें सबध स्थापित करानेवाला व्यक्ति) मानो दैवप्रेरित होकर ही श्रीशचीदेवीके पास जाकर श्रीवल्लभाचार्यकी कन्याके साथ श्रीनिमाइके विवाहका प्रस्ताव उपस्थित किया। श्रीशचीदेवी बोली,—“मेरा निमाइ पितृहीन बालक है, आशीष दीजिए चिरायु हो, पहले पढ़ना-लिखना सीखे तो पीछे उसके विवाहके विषयकी चिन्ता की जायगी।” श्रीशचीकी बातसे निराश होकर श्रीवनमाली घटक लौट गये। अचानक रास्तेमें श्रीनिमाइके साथ घटकका साक्षात्कार हो गया। घटक महाशय श्रीनिमाइके विवाहका प्रस्ताव लेकर उनकी माताके पास गए, किंतु श्रीशचीदेवी इस प्रस्तावको सुनी-अनसुनी कर दी,—यह बात घटकने श्रीनिमाइसे कहा। निमाइ तब घर लौटकर हँसते-हँसते अपनी मातासे बोले,—“मा, तुमने आचार्यसे अच्छी तरह सम्भाषण क्यों नहीं किया?” वनमाली घटकके द्वारा प्रस्तावित विवाहमें निमाइ सम्मत हैं, यह सकेत पाकर श्रीशचीदेवीने उसके दूसरे ही दिन घटक महाशयको पुन बुला भेजा और शीघ्र ही शुभ-विवाह सम्पन्न करानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीवनमाली आचार्यने भी श्रीवल्लभाचार्यसे मिलकर यह सम्बन्ध स्थिर किया।

श्रीवल्लभाचार्य तब घटक महाशयसे बोले कि मैं अत्यन्त गरीब हूँ, पाँच हरितकी मात्र देकर मैं श्रीजगन्नाथ मिश्रके पुत्ररत्नके हाथमें अपनी कन्या प्रदान करूँगा, जामाताको अन्य दहेज देनेकी कोई क्षमता मुझमें नहीं है ।

विवाहका शुभ दिन निश्चित हुआ । विवाहके पहले दिन श्री-निमाइकी अधिवास-क्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न हुई । दूसरे दिन शुभ गोधूलि-लग्नमें यात्रा करके श्रीनिमाइ श्रीवल्लभाचार्यके घर उपस्थित हुए तथा विधिपूर्वक श्रीलक्ष्मीदेवीका पाणिग्रहण किया ।

दूसरे दिन सन्ध्याकालमें श्रीनिमाइ श्रीलक्ष्मीके सहित डोलीमें चढ़कर अपने घर लौटे । श्रीशचीमाता महालक्ष्मी पुत्रवधूको वरण करके घरमें लायी । तबसे श्रीशचीदेवी अपने घरमें अनेको अलौकिक दृश्य देखने लगी । कभी घरके बाहर अद्भुत ज्योति, कभी निमाइके बगलमें अग्निशिखाका दर्शन और कभी घरमें सर्वत्र पद्मकी गंध प्राप्त करने लगी । 'श्रीनिमाइ और श्रीलक्ष्मीदेवी मनुष्य नहीं हैं—वैकुण्ठके श्रीलक्ष्मी-नारायण श्रीनवद्वीपमें श्रीलक्ष्मी-गौरनारायणके रूपमें अवतीर्ण हैं ।' श्रीशचीदेवीके हृदयमें इस प्रकारके भाव उदय होने लगे ।

—२४—

चौदहवाँ परिच्छेद

आत्म-प्रकाशकी भविष्यवाणी

श्रीनिमाइ पंडित अध्ययन-रसमें मत्त होकर छात्रोके साथ नवद्वीप में भ्रमण करते । श्रीगंगादास पंडितके सिवा नवद्वीपमें दूसरा कोई भी पंडित श्रीनिमाइकी व्याख्याका तात्पर्य भलीभाँति समझ नहीं सकते थे । नदीयाके नागरिकगण अपनी-अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार श्रीनिमाइके

नाना रूपमें दर्शन करने लगे। पाषण्ड-प्रकृतिके लोगोंने उनको साक्षात् यम, रमणियोने मदन तथा पंडितलोगोंने बृहस्पतिके रूपमें भावानुकुल देखा। इधर वैष्णवगण विष्णुभक्ति-विहीन जगत्में कब फिर शुद्ध-भक्तिका प्रकाश होगा, इस आशासे किसी प्रकार प्राण धारण करते थे। विद्याचर्चके लिये सर्वप्रधान केन्द्र श्रीनवद्वीपमें विद्याकी प्राप्तिके लिये सभी देशोंसे लोग आते थे। चटगाँवके रहनेवाले बहुतसे वैष्णव उस समय गगावास और अध्ययनके लिये नवद्वीपमें आकर रहते थे। अपराङ्गकालमें सभी भागवतगण श्रीअद्वैतसभामें आकर मिलते थे। श्रीमुकुन्ददत्तके श्रीहरिकीर्तनसे वैष्णवोंके हृदयमें आनन्दका श्रोत बह निकलता। श्रीनिमाइ भी इसी हेतु श्रीमुकुन्दके प्रति हृदयसे अत्यन्त प्रीति रखते थे। श्रीमुकुन्दको देखते ही श्रीनिमाइ न्यायकी 'फक्किका' पूछते और उसे प्रसंगको लेकर दोनोंमें प्रेमका द्वन्द्व चलता था। श्री-श्रीवास आदि बड़ी उम्रके भक्तजनोको भी श्रीनिमाइ फक्किका पूछे बिना नहीं छोड़ते थे। श्रीनिमाइके डरसे सभी उनसे दूर-दूर रहनेकी चेष्टा करते थे। इधर भक्त लोग कृष्णकथाके सिवा और कुछ भी सुननेमें रुचि ही नहीं रखते थे और निमाइ भी न्यायकी फक्किकाके सिवा उनसे कुछ भी नहीं पूछते थे।

एक दिन श्रीनिमाइ पंडित छात्रोंके साथ राजपथसे चले जा रहे थे, उसी समय श्रीमुकुन्द भी गगा-स्नानके लिये जा रहे थे। श्रीनिमाइ को देखते ही श्रीमुकुन्दने छिपनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दके उद्देश्यको समझकर उनके साथी श्रीगोविन्दसे इस प्रकार कहा,—“मैं समझ रहा हूँ कि मुकुन्द क्यों भाग रहा है। मुकुन्द समझता है कि मेरे साथ भेंट होनेपर बहिर्मुख व्यक्तिके साथ बातचीत हो जायगी। मुकुन्दके हृदयका भाव यह है कि वह स्वयं वैष्णव-शास्त्र पढता है, और मैं व्याकरणकी पजिका, वृत्ति, टीका प्रभृति जागतिक शास्त्र पढता हूँ। अब अधिक दिन नहीं, शीघ्र ही वह देख पायगा कि मैं कितना बड़ा वैष्णव बनूँगा। मैं पृथ्वीमें इतना बड़ा वैष्णव

बनूंगा कि ब्रह्मा-शिवादि वैष्णवगण मेरे द्वारपर आकर लोटेंगे । जो लोग अब मुझे देखकर भागते हैं, वे ही तब कोटि-कोटि कण्ठोंसे मेरा गुण-गान करेंगे ।”



पन्द्रहवाँ परिच्छेद

श्रीनवद्वीपमें श्रीईश्वरपुरीपाद

‘भक्तिरसके आदि-सूत्रधार’* और भक्तिरस-कल्पतरुके प्रथम अक्षुर † सुप्रसिद्ध वैष्णव-सन्त्यासी-शिरोमणि श्रीमन् माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी श्रीगौडीय-वैष्णव-सम्प्रदायके पूर्व-गुरु हैं । इन्हींके शिष्य श्रीअद्वैतप्रभु, श्रीईश्वरपुरी, श्रीपरमानन्दपुरी, श्रीब्रह्मानन्दपुरी, श्रीरंगपुरी, श्रीकेशवपुरी, श्रीकृष्णानन्दपुरी, श्रीसुखानन्दपुरी, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीरघुपति उपाध्याय आदि हैं । साक्षात् विष्णुतत्त्व और भगवान् होकर भी जीवोंके शिक्षार्थ श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत-प्रभुने श्रीमन् माधवेन्द्र पुरीपादकी शिष्य-लीला प्रकट की थी ।

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके वर्णनके अनुसार श्रीमन् माधवेन्द्रपुरीके साथ बारह वर्षकी उम्रमें श्रीनित्यानन्दप्रभु तीर्थ-पर्यटनके लिये निकले और आठ वर्षोंतक भारतके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण किया ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रिय शिष्य थे—श्रीईश्वरपुरी । वे ‘हालि-शहर’के समीपवर्ती ‘कुमारहट्ट’में ब्राह्मणवशमें आविर्भूत हुए थे ।

श्रीनिमाइ पंडित जिस समय नवद्वीपमें अध्ययन और अध्यापनाकी लीला कर रहे थे, उस समय एक दिन छद्मवेशमें श्रीईश्वरपुरी नवद्वीपमें

* चै० भा० आ० ११६०, † चै० च० आ० ११० तथा अ० ८१३४

आकर अद्वैत-सभामें उपस्थित हुए । श्रीअद्वैताचार्यने श्रीईश्वरपुरीके अपूर्व तेजको देखकर उन्हें वैष्णव-सन्यासी समझा । तब श्रीमुकुन्दने अद्वैत-सभामें एक कृष्णकीर्तन आरम्भ किया । श्रीईश्वरपुरीके अगमें कृष्णप्रेमके अपूर्व अष्ट सात्विक विकारसमूह प्रकट हो उठे । पश्चात् सब लोगोंने इस प्रेमिक सन्यासीको 'ईश्वरपुरी'के नामसे जाना ।

एक दिन श्रीनिमाइ अध्यापन करके घर लौट रहे थे, उसी समय दैवात् मार्गमें श्रीईश्वरपुरीके साथ निमाइका साक्षात्कार हो गया । श्रीपाद श्रीईश्वरपुरीने निमाइकी अपूर्व कान्तिको देखकर उनका परिचय तथा उनके अध्यापित शास्त्रके विषयमें पूछताछ की । श्रीनिमाइने श्रीईश्वरपुरीको अपने घर भिक्षाके लिये निमन्त्रित किया तथा बहुत ही आदरपूर्वक साथ लेते आये । श्रीशचीमाताने श्रीकृष्णका नैवेद्य तैयार करके श्रीईश्वरपुरीको भिक्षा करायी । श्रीनिमाइके साथ श्रीकृष्ण-प्रसंगमें बोलते-बोलते श्रीईश्वरपुरी-पाद प्रेममें विह्वल हो गये । नवद्वीपमें श्रीगोपीनाथ आचार्यके घर श्रीपुरीपादने कई महीने अवस्थान किया था । शिशुकालसे ही परम विरक्त श्रीगदाधर पंडितमें प्रेमके लक्षणोंको देखकर श्रीईश्वरपुरी श्रीगदाधरके प्रति अत्यन्त ही स्नेहयुक्त हो गये तथा श्रीगदाधरको श्रीपुरीपादने स्व-रचित 'श्रीकृष्णलीलामृत' पुस्तक पढायी । अध्ययन और अध्यापन समाप्त करके प्रतिदिन-सध्याके समय श्रीनिमाइ श्रीईश्वरपुरीको नमस्कार करनेके लिये श्रीगोपीनाथके घर जाते थे । एक दिन श्रीईश्वरपुरीने श्रीनिमाइ पंडितसे 'श्रीकृष्ण-लीलामृत', पुस्तक रचनामें कहीं कोई दोष तो नहीं रह गया है, यह परीक्षा करनेके लिये विशेष अनुरोध किया । श्रीनिमाइ पंडित बोले, "जो ग्रन्थ एकान्तिक भगवत्भक्तके द्वारा रचा गया है, उसमें कोई दोष रह नहीं सकता । जो व्यक्ति उसमें दोष देखता है, उसीका दोष है, वह व्यक्ति ही अपराधी और मूर्ख है । शुद्ध-भक्तका कवित्व किसी प्रकारका ही क्यों न हो, उससे श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होते हैं । श्रीकृष्णको जिससे सन्तोष है, वही सम्पूर्णरूपसे निर्दोष है । भक्तके वाक्यमें

व्याकरणादिजनक किसी प्रकारके दोषको भक्तिवश भावग्राही भगवान् ग्रहण नहीं करते। ऐसा कौन दु साहसी व्यक्ति होगा, जो श्रीईश्वरपुरी के समान महाभागवतकी भगवत्कथाके वर्णनमें दोष निकालनेमें समर्थ होगा ?”

तथापि श्रीईश्वरपुरी अपने ग्रन्थकी समालोचनाके लिये श्रीनिमाइ पंडितको प्रतिदिन ही बारम्बार अनुरोध करने लगे। इस प्रकार श्रीईश्वरपुरी श्रीनिमाइके साथ प्रतिदिन दो-चार घड़ी नाना प्रकारका विचार करते। एक दिन श्रीईश्वरपुरीके द्वारा रचित एक श्लोकको सुनकर श्रीनिमाइ पंडितने कौतुकवश कहा कि, इस श्लोकमें धातु ‘आत्मनेपदी’ न होकर ‘परस्मैपदी’ होनेसे ही ठीक होता। पश्चात् फिर एक दिन श्रीनिमाइके श्रीईश्वरपुरीके पास जानेपर श्रीपुरीपादने निमाइसे कहा,—“तुम जिस धातुको आत्मनेपदीके रूपमें स्वीकार नहीं करते हो, उसे मैंने आत्मनेपदीके रूपमें ही साधा है।” प्रभुने भी भृत्यके जय-प्रदर्शन और महिमा-वर्द्धनके लिये उसमें और कोई दोषा-रोपण नहीं किया। श्रीईश्वरपुरी तीर्थपर्यटन करनेके उद्देश्यसे नवद्वीपसे अन्यत्र चलै गये।



सोलहवाँ परिच्छेद

श्रीनिमाइका नगर-भ्रमण

श्रीनिमाइ शिष्योको साथ लेकर अपने इच्छानुसार नगर-भ्रमण करते थे। एक दिन मार्गमें श्रीमुकुन्दके साथ दैवात् भेंट हो गयी। श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दसे दूर-ही-दूर रहनेका कारण पूछा और साथ ही बतला दिया कि इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना श्रीमुकुन्दका छुटकारा

नहीं हो सकता। श्रीमुकुन्द समझते थे कि श्रीनिमाइका केवल व्याकरण-शास्त्रमे ही अधिकार है, अतएव श्रीमुकुन्दने श्रीनिमाइसे अलकार-शास्त्रके कूट-प्रश्न कर निरुत्तर करनेका सकल्प किया। परन्तु श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दके समस्त कवित्वको सपूर्णरूपसे अलग-अलग करके उसमें नाना प्रकारके आलंकारिक दोष प्रदर्शित किये। श्रीमुकुन्द श्रीनिमाइकी चरणधूलि लेकर सोचने लगे,—

मनुष्येर एमत पाण्डित्य आछे कोथा !

हेन शास्त्र नाहिक, अभ्यास नाहि यथा ॥

—चै० भा० आ० १२।१८

[मनुष्यका इतना पाण्डित्य कहाँ है ! ऐसा शास्त्र नहीं है, जिसका अभ्यास न हो।]

जो लोग समझते थे कि श्रीनिमाइ केवल मात्र व्याकरण-शास्त्रके पंडित है, श्रीमुकुन्दने उनकी उस भ्रान्त धारणाका निराकरण कर दिया।

फिर एक दिन श्रीगदाधर पंडितके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार हुआ। श्रीनिमाइने श्रीगदाधरसे मुक्तिका लक्षण पूछा। श्रीगदाधरने न्यायशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार श्रीनिमाइ पंडितके सामने मुक्तिके लक्षणका वर्णन किया, श्रीनिमाइने उसमें नाना प्रकारके दोष दिखलाये। “पूर्णरूपसे दुःखनाश ही मुक्तिका लक्षण है”—श्रीगदाधरकी इस उक्तिका निमाइने खडन कर दिया।

प्रतिदिन अपराह्णमें गंगातटपर बैठकर श्रीनिमाइ छात्रोंके सामने शास्त्रकी व्याख्या करते थे। वैष्णव लोग भी श्रीनिमाइकी शास्त्र-व्याख्या सुनकर प्रसन्न होते थे, परन्तु वे मन-ही-मन सोचते थे कि,—श्रीनिमाइके जैसे विद्वान् व्यक्तिमे कृष्णभक्ति होती तो सभी कुछ सफल हो जाता। भागवतगण “निमाइकी कृष्णमें मति हो”—भीतर-ही-“भीतर सर्वदा ऐसी प्रार्थना करते थे। कोई-कोई प्रेमके स्वभाववश—“निमाइको कृष्ण-भक्ति प्राप्त हो”—इस प्रकारका आशीर्वाद भी दे देते थे। प्रेमका ऐसा ही स्वभाव है कि उसमें प्रेमी भक्त अपने

प्रेमास्पदको ऐश्वर्यमय प्रभुके रूपमें न देखकर पाल्यभावमें अनुभव करता है। नहीं तो जो स्वयं कृष्ण होकर भी एक दिन श्रेष्ठ कृष्ण-भक्तके वेशमें जगत्में कृष्णभक्तिका सर्वश्रेष्ठ आदर्श प्रकट करेगे, उनको भी “कृष्णभक्ति प्राप्त हो”का आशीर्वाद देनेका क्या रहस्य है ? श्रीश्रीवासादि भागवतगणको देखते ही श्रीनिमाइ नमस्कार करते थे और भक्तके आशीर्वादके फलसे ही कृष्णभक्ति प्राप्त होती है,—यह सबको बतलाते थे। विधर्मिण भी एक बार श्रीनिमाइके दर्शन करनेपर उनके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकते थे।

एक बार श्रीनिमाइने वायुव्याधिके बहाने प्रेम-भक्तिके समस्त सात्त्विक विकारोंको प्रकट किया। उस समय प्रेम-स्वभाव, बन्धु-बान्धवगण श्रीनिमाइके सिरपर नाना प्रकारके पकाए तैलोका प्रयोग करने लगे। उसी समय श्रीनिमाइ किसी-किसी दिन दर्प और हुकारके साथ अपने स्वरूप और तत्त्वका प्रकाश कर डालते थे।

श्रीनिमाइ दोपहरमें गगामें शिष्योंके साथ जलक्रीडा करके घर लौटते थे, श्रीकृष्णकी पूजा करते, श्रीतुलसीमें जल देते और श्रीतुलसीकी परिक्रमा कर श्रीलक्ष्मीप्रिया देवीका दिया हुआ भोजन करते थे। कुछ समय विश्राम करके पुनः अध्यापनके लिये गमन करते तथा नगरमें जाकर नागरिक लोगोंके साथ हँस-हँसकर सम्भाषण तथा नाना प्रकारके कौतुक-विलासादि करते थे।

किसी दिन श्रीनिमाइ जुलाहेके घर जाकर वस्त्र माँगते और उन चीजोंको बिना मूल्य ले लेते थे। किसी दिन वे गोपके घर जाकर गोपलोगोंको दही-दूध लानेके लिये कहते। गोपगण भी निमाइको ‘मामा’ कहकर बातें करते और नाना प्रकारका विनोद करके बिना मूल्य प्रचुर दूध-दही आदि प्रदान करते थे। श्रीनिमाइ हँसी-हँसीमें उनके सामने निज तत्व प्रकट कर देते थे। किसी दिन गन्धीके घरसे नाना प्रकारके दिव्य गन्ध, किसी दिन मालीके घरसे नाना प्रकारकी पुष्प-माला, किसी दिन तम्बोलीके यहाँसे बिना मूल्य पान आदि लेकर

श्रीनिमाइ उनको कृतार्थ करते थे। सभी श्रीनिमाइके अनुपम रूपको देखकर मुग्ध हो समस्त वस्तु बिना ही मूल्य प्रदान कर सकनेमें अपने-आपको धन्यातिधन्य मानते थे। किसी दिन शखके व्यापारीके घर उपस्थित होनेपर वह व्यापारी श्रीगौरनारायणके हाथमें शख प्रदान कर उन्हें प्रणाम करते और बदलेमें कुछ भी नहीं चाहते थे।

एक दिन श्रीनिमाइने किसी दैवज्ञ (ज्योतिषी)के यहाँ जाकर अपने पूर्व जन्मकी बात पूछी। ज्योतिषी गोपाल-मन्त्रका जप करके जब गणना करने लगे तो, उन्हें नाना प्रकारके ईश्वरतत्त्व और अद्भुत रूपराशिके दर्शन होने लगे। इन सारे अद्भुत अतिमर्त्य रूपको देखते-देखते-वह ज्योतिषी सम्मुखस्थ श्रीगौराङ्गका पुन-पुन ध्यान करने लगे। परन्तु श्रीगौराङ्गकी मायाके प्रभावसे उनको समझ नहीं सके, वे अत्यन्त विस्मित होकर सोचने लगे कि जान पड़ता है कि यह कोई महामन्त्रविद् अथवा कोई देवता उनकी परीक्षा करनेके लिये ब्राह्मण-वेशमें उनके पास उपस्थित हुए हैं।

एक दिन श्रीनिमाइ खोलाबेचा* ब्राह्मण श्रीधरके घर गये। श्रीश्रीधर लोगोकी दृष्टिमें अत्यन्त दरिद्र थे, उनकी धोतीमें सैंकड़ो पैबन्द लगे थे, वे जीर्णशीर्ण पर्णकुटीमें रहते थे, घरमें धातुका बर्तन एक भी नहीं, साधारण लोहेके बर्तनमें पानी पीते थे, थोड़ा-केला-मोचा‡ आदि साधारण वस्तुओंको बेचकर जो कुछ पाते थे, उसीके द्वारा अत्यन्त श्रद्धाके साथ भगवान्‌का सामान्य नैवेद्य सग्रह करते थे।

श्रीनिमाइने श्रीधरके पास जाकर पूछा,—“तुम श्रीलक्ष्मीकान्तकी सेवा करते हो, फिर भी तुम ऐसे दरिद्र क्यों हो? दूसरे लोग चण्डी, विषहरी आदि देवताओंकी पूजा करके कितनी सासारिक उन्नति करते

* केलेके पेडके ऊपरी भागको बेचनेवाले।

† फूले हुए केलेके पेडके भीतरी नरम डडको, ‘थोड’ कहते हैं, इसकी भाजी बनती है।

‡ केलेके फूलको ‘मोचा’ कहते हैं, इसकी भी भाजी बनती है।

है ?” उत्तरमें श्रीश्रीधरने कहा,—“राजा सुन्दर महलमें रहकर, बढिया द्रव्योका भोजन करके तथा दूधके फेनके समान शय्यापर सोकर जैसे दिन काटते हैं, पक्षी वृक्षके ऊपर घोंसला बनाकर और नाना स्थानोंसे लायी हुई यत्किञ्चित् वस्तुएँ भोजन करके भी उसी प्रकार दिन काट लेते हैं। सभी अपना-अपना कर्मफल भोग करते हैं।” * श्रीनिमाइने कहा,—“तुम्हारे पास बहुत गुप्त धन है, तुम उसे छिपाये रखते हो, देखता हूँ कबतक छिपाकर रख सकते हो। मैं शीघ्र ही लोगोके सामने उसे प्रकट कर दूँगा।” इस प्रकार श्रीनिमाइ श्रीश्रीधरके साथ हँसी-बिनोदके बहाने भक्तकी महिमा प्रकट करते और श्रीश्रीधरसे प्रतिदिन बिना मूल्य केलोका थोड, केला और मूली आदि लाया करते थे।

एक दिन आकाशमें पूर्णचन्द्रको देखकर श्रीनिमाइको ‘श्रीवृन्दावन-चन्द्रके भावका उद्दीपन हो गया और उसी भावमें अपूर्व मुरलीध्वनि करने लगे। केवल श्रीशचीमाताके सिवा और कोई भी उस मुरलीध्वनिको नहीं सुन सका। श्रीशचीदेवीने इस मधुर ध्वनिको सुनकर घरसे बाहर आकर देखा कि श्रीनिमाइ श्रीविष्णु-मन्दिरके द्वारपर बैठा है। श्रीशचीदेवीने वहाँ जाकर फिर उस वशीध्वनिको नहीं सुन पाया। परन्तु वहाँ देखा कि पुत्रके वक्ष-स्थलपर साक्षात् चन्द्रमण्डल शोभा पा रहा है।

* रत्न घरे थाके, राजा दिव्य खाय, परे’।

पक्षिगण थाके, देख, वृक्षेर उपरे ॥

काल पुन सबार समान हई’ याय।

सबे निज-कर्म भुञ्जे ईश्वर-इच्छाय ॥

—चै० भा० आ० १२।१८६-१९०

[राजाके घरमें रत्न रहते हैं, वह बढिया खाता पहनता है, देखो पक्षिगण वृक्षके ऊपर रहते हैं। सबका काल समान ही बीतता है। सभी ईश्वरकी इच्छासे अपने कर्मका फल भोग करते हैं।]

एक दिन श्रीश्रीवास पंडित राहमे श्रीनिमाइको देखकर बोले,—
 “निमाइ, तुम अब भी श्रीकृष्णके भजनमे मन न लगाकर क्यो व्यर्थ
 दिन काट रहे हो ? रातदिन पढने-पढानेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ?
 लोग कृष्णभक्तिको जाननेके लिये ही पढते-सुनते हैं , यदि वह कृष्णभक्ति
 ही प्राप्त न हुई, तो फिर इस प्रकारकी निष्फल विद्यासे क्या लाभ ?
 अतएव और अधिक समय व्यर्थ नष्ट न करो ।” श्रीनिमाइ अपने
 भक्तके मुखसे यह बात सुनकर बोले,—“पंडित, तुम भक्त हो, तुम्हारी
 कृपासे मुझे निश्चय ही कृष्ण-भजनकी प्राप्ति होगी ।”



सतरहवाँ परिच्छेद

दिग्विजयि-जय

जिस समय श्रीनिमाइ पंडित नवद्वीपमें अध्यापकोके शिरोमणि
 होकर अवस्थान करते थे, उसी समय सरस्वतीसे वर प्राप्त एक दिग्वि-
 जयी महापंडित सब देशोके पंडितोको तर्कयुद्धमें जीतकर पंडित-समाजके
 प्रधान केन्द्र नवद्वीपके पंडितोको जीतनेके लिये आये । दिग्विजयीके
 साथ हाथी, घोडे और बहुतसे शिष्य थे । दिग्विजयीने गर्वके साथ आकर
 पंडितोको तर्कयुद्धके लिये ललकारा । नवद्वीपकी पंडितमंडली इस प्रकार
 एक महादिग्विजयीके आनेका समाचार सुनकर बहुत ही चंचल और
 चिंतित हो उठी ।

इधर श्रीनिमाइ पंडितके छात्रोने जब यह समाचार श्रीनिमाइको
 जाकर सुनाया तब वे उन लोगोसे बोले,—“दर्पहारी भगवान् अहंकारीके
 दर्पको सदा ही चूर्ण करते हैं । फलवान् वृक्ष और गुणवान् जन सदा ही
 विनीत रहते हैं । हैहय, नहुष, वेण, वाण, नरक, रावण आदि राजा

अपनेको महादिग्विजयी मानकर अहंकारसे प्रमत्त हो गये थे। अन्तमें भगवान् ने उनके सारे गर्वको चूर्ण कर दिया था। नवद्वीपमें नये आये हुए इस दिग्विजयीके अहंकारको भी भगवान् ही शीघ्र चूर्ण-चूर्ण कर देंगे।”—इतना कहकर श्रीनिमाइ पंडित उसी दिन सध्याकालमें छात्रोंके साथ गंगाके तीर बैठकर दिग्विजयीके उद्धारकी बात सोच रहे थे। उस दिन थी पूर्णिमा-तिथि, रातके पूर्वकालमें ही दिग्विजयी श्रीनिमाइ पंडितके समीप आकर उपस्थित हो गये। श्रीनिमाइके छात्रोंसे अति अद्भुत तेज और कान्तिसे युक्त श्रीनिमाइ पंडितका परिचय प्राप्तकर दिग्विजयी, निमाइ पंडितसे बातें करने लगे। श्रीनिमाइने दिग्विजयीकी सादर अभ्यर्थना करके कहा,—“सुना है कि आप काव्यशास्त्रके अनुलनीय पंडित हैं, यदि आप पापनाशिनी गंगाकी महिमाका वर्णन करे, तो उसे सुनकर सबके पाप-ताप दूर हो सकते हैं।” श्रीनिमाइकी यह बात सुनते ही दिग्विजयी तत्काल एक ही साथ सैकड़ों मेघगर्जनकी ध्वनिकी भाँति गम्भीर स्वरसे गंगाकी महिमाके श्लोक अति शीघ्रतापूर्वक उच्चारण करने लगे। सभी दिग्विजयीकी इस प्रकारकी कवित्वशक्ति देखकर दंग रह गये। दिग्विजयी एक पहर तक इस प्रकार अनर्गल श्लोक उच्चारण करके चुप हुए, तब श्रीनिमाइने उस स्तुतिमें से एक पूर्ण श्लोक* उच्चारण करके दिग्विजयीसे उसकी

* दिग्विजयीका रचित श्लोक यह था —

“महत्त्व गगाया सततमिदमाभाति नितरा

यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्ति-सुभगा ।

द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा ।

भवानीभर्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुतगुणा ॥”

अर्थात् श्रीगंगाजीका यह महत्त्व सर्वदा निश्चित रूपसे देदीप्यमान हो रहा है कि इन्होंने श्रीविष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न होनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, द्वितीय श्रीलक्ष्मीके समान इनका चरण सुरनर-गणके द्वारा पूजित होता है, तथा यह भवानी-भर्ता (श्रीशिवजी)के मस्तकमें धृत होकर अद्भुत गुणशालिनी हो गयी है।

व्याख्या करनेके लिये कहा। इससे दिग्विजयीने विस्मित होकर निमाइसे पूछा,—“मैं तो इतनी देर आँधीके समान श्लोक पढता रहा, आपने किस प्रकार इसके बीचसे 'इस श्लोकको स्मरण कर लिया?'”

श्रीनिमाइ पंडित बोले,—“आप जिस प्रकार देवताके वरदानसे श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, उसी प्रकार कोई श्रुतिधर भी हो सकता है।” श्रीनिमाइ पंडितने दिग्विजयी-रचित उस श्लोकके गुण-दोषोंका विचार करनेके लिये कहा। तब दिग्विजयी स्वरचित श्लोकके सारे गुण ही वर्णन करने लगे। तब श्रीनिमाइ पंडित उनसे बोले कि,—“यदि आप असन्तुष्ट न हो तो मैं आपके कवित्वके विषयमें कुछ विचार करूँ। आपके उच्चारित श्लोकमें दो ‘अविमृष्ट-विधेयाश’ (अथवा ‘विधेया-विमर्श’) नामक दोष, एक ‘विरुद्धमति’ (अथवा ‘विरुद्धमतिकृत्’) नामक दोष, एक ‘भग्नक्रम’ (अथवा ‘भग्न-प्रक्रमता’) नामक दोष, एक ‘पुनरात्त’ (या ‘समाप्तपुनरात्तता’) नामक दोष—कुल ये पाँच दोष हैं। इसमें ‘अनुप्रास’ और ‘पुनरुक्तवदाभास’—ये दो शब्दालंकार तथा ‘उपमा’, ‘विरोधाभास’ और ‘अनुमान’ ये तीन अर्थालंकार—कुल पाँच अलंकार हैं। श्लोकस्थ इन पाँच दोषों और पाँचों अलंकारोंका विवेचन कर रहा हूँ, सुनिये।

(१) ‘इद’ (यह)—यह ‘उद्देश्य-अश या ‘अनुवाद’ पद ‘महत्त्व गंगाया’ (गंगाका महत्त्व) —इस मूल ‘विधेय’ अशके पूर्व उक्त न होकर बादमें उक्त होनेके कारण ‘अविमृष्ट-विधेयाश’ दोष आ गया है। ‘अनुवाद’ या ज्ञातवस्तुके विषयमें पूर्वमें उल्लेख न करके तत्संबन्धी अज्ञात विषय या ‘विधेय’का पूर्वमें उल्लेख करने पर वाक्यार्थ बोधमें बाधा उत्पन्न होती है। (२) ‘द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव’ (द्वितीय-श्रीलक्ष्मीके समान)—इस सामासिक पदमें विधेयवाचक ‘द्वितीय’ शब्दके बाद अनुवादवाचक ‘श्रीलक्ष्मी’ शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे ‘अविमृष्ट-विधेयाश’ दोष तो हुआ ही है, अतिरिक्त इसके सामासका प्रयोजन गौण होकर श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ श्रीगंगाजीकी तुल्यताका बोध करनेवाला

विवक्षित अर्थ भी नष्ट हो गया है। (३) 'भवानी' शब्दमें भव-पत्नी या शिव-पत्नी सतीका अर्थ निहित है, अतएव 'भवानीभर्ता' पदसे शिवका बोध होनेपर भी 'शिवपत्नीके भर्ता' अर्थात् शिवपत्नी भवानीके शिवके अतिरिक्त भी दूसरे कोई स्वामी है, इस प्रकारका विरुद्ध या प्रतिकूल अर्थ व्यञ्जित होनेसे 'विरुद्धमतिकृत्' नामक दोष होता है। (४) श्लोकके चतुर्थपादमें 'भवानीभर्तुर्या शिरसि विभवति' (जो महादेवके मस्तकपर विराजमान है) यहाँ 'विभवति' क्रियापदके उल्लेखमें ही वाक्यकी समाप्ति हो जाती है, वाक्यकी समाप्तिके बाद फिर 'अद्भुत-गुणा' (अद्भुत-गुणशालिनी)—इस विशेषणपदका प्रयोग करनेसे 'समाप्तपुनरात्तता' नामक दोष आ गया। (५) श्लोकके प्रथमपादमें 'त'का अनुप्रास, तृतीयपादमें 'र'का अनुप्रास तथा चतुर्थपादमें 'भ'का अनुप्रास है, परन्तु द्वितीयपादमें कोई अनुप्रास न होनेके कारण श्लोकका आद्यन्त एकसा नहीं हो पाया। अतएव इसमें 'भग्नक्रम' नामक दोष हो गया है। श्लोकमें ये पाँच दोष हैं।

अब पाँच अलकारोका विचार सुनिये। (१) श्लोकके प्रथम, तृतीय और चतुर्थ—इन तीन पादोंमें 'अनुप्रास' अलकार है। (२) 'श्री' शब्दका एक अर्थ है—'लक्ष्मी'। अतएव 'श्रीलक्ष्मी' शब्द कहनेपर एक लक्ष्मी शब्द ही पुनरुक्त-सा जान पड़ता है। परन्तु पृथक्-पृथक् अर्थमें व्यवहृत होनेके कारण वस्तुतः यहाँ पुनरुक्ति नहीं है। यहाँ 'पुनरुक्तवदाभास'-नामक अलकार हो गया है। (३) 'द्वितीय-श्रीलक्ष्मी-रिव' पदमें उपमान लक्ष्मीमें तथा उपमेय गगामें अर्चनीयत्वरूप समान धर्मका सम्बन्ध होनेके कारण 'उपमा' अलकार हुआ। (४) साधारणतः गगामें ही (जलमें ही) कमल उत्पन्न होता है, कभी कमलसे गगाकी (जलकी) उत्पत्ति नहीं होती। श्लोकस्थ 'एषा श्रीविष्णोश्चरण-कमलोत्पत्ति-सुभगा' (श्रीविष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न होनेके कारण यह गगा सौभाग्यवती)—इस वाक्यमें साधारण नियमके साथ विरोध दीख पड़ता है; परन्तु प्रकृत-पक्षमें यहाँ कोई विरोध नहीं है, क्योंकि,

ईश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे श्रीविष्णुके चरण-कमलसे गंगाका जन्म संभव हो गया है। अतएव यहाँ 'विरोधाभास' अलंकार हुआ।
(५) श्रीविष्णुके श्रीचरणसे उत्पत्तिरूप साधन द्वारा गंगाके महत्वरूप साध्य-वस्तुके साधनमें 'अनुमान' अलंकार है।

इस प्रकार यद्यपि इस श्लोकमें पाँच अलंकार दिखाई देते हैं, तथापि पूर्वकथित पाँच दोषोंके कारण सब विनष्ट हो गया, क्योंकि भरतमुनि कहते हैं,—

‘रसालंकारवत् काव्यं दोषयुक् चेद्विभूषितम् ।

स्याद्वपुः सुन्दरमपि शित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥’

[नाना प्रकारके भूषणोंसे भूषित सुन्दर देह एकमात्र श्वेत कुण्डके द्वारा दूषित होनेपर जिस प्रकार अनादृत होती है, उसी प्रकार काव्य नाना प्रकारके अलंकारोंसे भूषित होनेपर भी यदि उसमें एक भी दोष हो तो वह अनादृत हो जाता है।]

इसके पश्चात् दिग्विजयीकी सारी प्रतिभा म्लान हो उठी। श्रीनिमाइके शिष्यगण हास्य करनेके लिये उद्यत हो रहे थे कि श्रीनिमाइने उनको रोक दिया तथा दिग्विजयीको नाना प्रकारसे आश्वासन दिया और उत्साहित करके कहा कि वे उस रात्रिको विश्राम करें और ग्रथादि देखकर पुन दूसरे दिन आवें।

दिग्विजयी मनमें अत्यन्त लज्जित और दुःखित होकर सोचने लगे कि मैंने षड्दर्शनके असाधारण पंडितको भी पराजित किया है, परन्तु आज दैवदुर्विपाकवश अन्तमें शिशु-शास्त्र व्याकरणके एक तरुण अध्यापकके द्वारा मुझे पराजित होना पड़ा। इसका रहस्य क्या है? हो सकता है कि श्रीसरस्वती देवीके चरणोंमें ही मुझसे कोई अपराध हो गया होगा—यह सोचकर सरस्वती-मन्त्र जपते-जपते वह कवि निद्रित हो गये। स्वप्नमें देखते क्या है कि श्रीसरस्वती देवी उनके समीप उपस्थित होकर श्रीनिमाइ पंडितके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहती है,—“श्रीनिमाइ ठाकुर इस पृथ्वीके पंडित नहीं है, यह सर्वशक्ति-

मान् स्वयं भगवान् है, उनकी ही स्वरूप-शक्ति पराविद्याकी मैं छाया हूँ। इतने दिनोंके बाद तुमको मन्त्रजपका फल प्राप्त हुआ है, तुम्हें अनन्त-ब्रह्माण्डके स्वामीका दर्शन प्राप्त हुआ है, तुम शीघ्र ही श्रीनिमाइके चरणोंमें क्षमाप्रार्थना और आत्म-समर्पण करो।”

दिग्विजयी निद्रासे उठते ही श्रीनिमाइके पास पहुँचे तथा अपने स्वप्नकी बात और सरस्वतीदेवीके उपदेशको उनसे निवेदन किया। श्रीनिमाइने दिग्विजयीसे वेदोंमें वर्णित पराविद्याकी बात कही, **भक्ति ही पराविद्या है**, भक्तिकी प्राप्ति ही विद्याकी अवधि है। पराविद्याके प्राप्त होनेपर जीव तृणादपि सुनीच बन जाता है। पराविद्यारूपी वधूका जीवन ही श्रीहरिनाम है। राजाका राज्यसुख, योगीका योगसुख, ज्ञानीका ब्रह्मसुख या मुक्तिसुख—सभी पराविद्याके सामने अति तुच्छ है।

श्रीनिमाइ पंडितने जब दिग्विजयीको जीत लिया, तो नवद्वीप-निवासी पंडितोंने श्रीनिमाइको ‘**वादिसिंह**’ पदवीसे विभूषित करनेकी इच्छा प्रकट की। देश-विदेशमें श्रीनिमाइकी कीर्ति फैल गई।

इस दिग्विजयी पंडितको कोई-कोई निम्बार्क-सम्प्रदायके गागुल्य भट्टके शिष्य ‘केशव भट्ट’, तथा कोई इनको ‘केशव काश्मीरी’ बतलाते हैं। ‘निम्बार्क-सम्प्रदाय’की प्रधान गद्दी ‘सलीमाबाद’में इस सम्प्रदायकी शिष्य-परम्पराके वर्णनमें देखा जाता है कि,—गोपीनाथ भट्टके शिष्य केशवभट्ट, केशवभट्टके शिष्य गागुल्य भट्ट और गागुल्य भट्टके शिष्य ‘केशव काश्मीरी’ हुए हैं। श्रीभक्तिरत्नाकर’में गागुल्य भट्टके स्थानमें ‘गोकुलभट्ट’ नाम देखा जाता है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत छ गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने ‘श्रीहरिभक्ति-विलास’ और उसकी ‘दिग्दर्शिनी’ टीकामें ‘क्रमदीपिका’के लेखक ‘केशव भट्ट’का नाम उल्लेख किया है। आगे चलकर इसी केशवभट्टको निम्बार्क-सम्प्रदायकी गुरु-परम्पराके अन्तर्गत ले लिया गया है, बहुतोका ऐसा विचार है।

अठारहवाँ परिच्छेद श्रीनिमाइका पूर्ववंग-विजय और श्रीलक्ष्मीदेवीका अन्तर्धान

श्रीनिमाइने अपनी गार्हस्थ्य-लीलामें जीवजगत्को आदर्श गृहस्थ-धर्मकी शिक्षा दी है। गृहस्थको चाहिये कि, वह घरके नित्य प्रभु श्रीविष्णु भगवान्की विधिपूर्वक पूजा-अनुष्ठान करे। वह श्रीभगवान्के प्रसाद, वस्त्रादि उपकरणोको अतिथि, वैष्णव-अभ्यागत तथा सन्यासियोंमें वितरण करे। ब्राह्मण अयाचित प्रतिग्रह-धर्मको स्वीकार करनेपर भी समस्त भोज्य सामग्री, अर्थ, वस्त्रादि मुक्तहस्तसे सत्पात्रो और दीन-दुखियोको दान करे। अतिथि-सम्मान, विशेषतः वैष्णव-सन्यासीका सम्मान करना गृहस्थके लिये अपरिहार्य कर्तव्य है, गृहस्थ अपनी पत्नी को कभी अपने भोग सुखमें नियुक्त न करके अतिथियो और भगवद्भक्त सन्यासियोंकी भिक्षाके लिये उपयोगी विष्णु-नैवेद्य तैयार करने तथा विष्णु-सेवा कार्यमें नियुक्त करे। यदि गृहस्थ एकदम दरिद्र भी हो, तथापि तृण, जल, आसन अथवा मधुर वाक्यके द्वारा अतिथिकी पूजा करे। अतिथिकी सेवा करना गृहस्थमात्रके लिये परम धर्म है।

प्रभु से परम-व्ययी ईश्वर-व्यभार ।
दुःखितेरे निरवधि देन पुरस्कार ॥
दुःखीरे देखिले प्रभु बड़ दया करि' ।
अन्न, वस्त्र, कड़ि-पाति देन गौरहरि ॥
निरवधि अतिथि आइसे प्रभु-घरे ।
या'र येन योग्य प्रभु देन सवाकारे ॥
कोनदिन सन्यासी आइसे दश बिश ।
सबा' निमन्त्रेन प्रभु हड़या हरिष ॥

सेइक्षणे कहि' पाठायेन जननीरे ।

कुडि सन्यासीर भिक्षा झाठ करिवारे ॥

—चै० भा० आ० १४।११-१५

[वे प्रभु अत्यन्त व्यय करनेवाले तथा ईश्वरकी नाई व्यवहार करने-वाले हैं । दुखियोको निरन्तर सहायता प्रदान करते हैं । दुखियोको देखकर प्रभु श्रीगौरहरि अत्यन्त दया परवश हो उन्हें अन्न-वस्त्र, पैसा-स्पया आदि देते हैं । प्रभुके घर निरन्तर अतिथि आते हैं । जो जिसके योग्य होता है, प्रभु सबको वही देते हैं । किसी दिन दस-बीस जन सन्यासी उपस्थित होते तो प्रभु उनका सानन्द हृदयसे स्वागत करते और उसी क्षण माताजीको कहला भेजते कि बीस जन सन्यासी के भोजन की शीघ्र व्यवस्था करें ।]

तबे लक्ष्मीदेवी गया परम-सन्तोषे ।

रान्धेन विशेष, तबे प्रभु आसि' बैसे ॥

सन्यासिगणरे प्रभु आपने बसिया ।

तुष्ट करि' पाठायेन भिक्षा कराइया ॥

—चै० भा० आ० १४।१८-१९

[तब श्रीलक्ष्मीदेवी जाकर परम सन्तोषके साथ अच्छी-अच्छी रसोई बनाती हैं, फिर प्रभु आकर बैठते हैं और सन्यासियोको प्रभु स्वयं बैठकर उन्हें खिलाते तथा सन्तुष्ट करके भेजते हैं ।]

गृहस्थेरे महाप्रभु शिखायेन धर्म ।

“अतिथिर सेवा—गृहस्थेर मूल कर्म ॥

गृहस्थ हइया अतिथि-सेवा ना करे' ।

पशु-पक्षी हैते 'अधम' बलि' ता'रे ॥”

—चै० भा० आ० १४।२१-२२

[महाप्रभु गृहस्थको धर्म सिखलाते हैं कि अतिथिकी सेवा गृहस्थका मूल कर्म है । गृहस्थ होकर जो अतिथि-सेवा नहीं करता उसको पशु-पक्षीसे भी 'अधम' कहते हैं ।]

स्वयं श्रीलक्ष्मी-नारायण श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीगौरसुन्दरके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं, यह जानकर श्रीब्रह्मा-शिव-शुक्र-व्यास-नारदादि भिक्षुकके वेषमें भगवत्प्रसाद-प्राप्तिकी लालसासे श्रीमायापुरमें श्रीनिमाइ पण्डितके घर आया करते थे ।

आदर्श कुलवधू श्रीलक्ष्मीदेवी अरुणोदयके पूर्व ही विष्णुगृहके समस्त कार्य करती, श्रीविष्णुपूजाकी सामग्रीको तैयार करती तथा श्रीतुलसीकी सेवा करती थी । श्रीतुलसीसेवाकी अपेक्षा सास-माता श्रीशचीदेवीकी सेवामें श्रीलक्ष्मीदेवी सदा ही अधिक मन लगाती थी ।

कुछ समयके पश्चात् श्रीनिमाइ पण्डितने अर्थ-संग्रहके बहाने छात्रोंको साथ लेकर पूर्वी बगालमें जाकर पद्मा नदीके किनारे अवस्थान किया । श्रीनिमाइकी पांडित्य-प्रतिभासे मुग्ध होकर वहाँ असंख्य छात्र श्रीनिमाइके पास अध्ययनके लिये आते थे । श्रीमन्महाप्रभुकी पूर्वदेशमें शुभ-विजय हुई थी, इसी कारण आज भी पूर्वी बगालकी आबाल-वृद्ध-वनिता श्रीचैतन्यके सकीर्तनसे उत्फुल्ल हो उठती हैं । परन्तु कभी-कभी कुछ पाखंड स्वभावके लोगोंने उदरपोषणकी सुविधाके लिये अपनेको अवतारके रूपमें प्रचार करके देशवासियोंका सर्वनाश किया है । श्रीचैतन्यदेवके सिवा कलिकालमें दूसरा कोई भगवान्का अवतार नहीं हुआ । राठदेशमें भी कुछ लोगोंने अपनेको 'अवतार' कहकर प्रकट किया है ।*

श्रीनिमाइ पण्डित जिस समय पूर्वी बगालमें अवस्थान कर रहे थे, उस समय श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीगौरनारायणके विरहको सहन न कर सकनेके कारण पतिके चरण-कमलोका ध्यान करते-करते अन्तर्धान हो गयी ।

श्रीनिमाइ पण्डितके पूर्वी बगालमें रहते समय वहाँ श्रीतपनमिश्र नामके एक महासौभाग्यवान् ब्राह्मण उनके पास आये । उन ब्राह्मणने अनेक लोगोसे धर्मके विषयमें नाना प्रकारके उपदेश सुने थे, परन्तु जीवके लिये सबपिक्षा परम मंगलजनक साधन और साध्य (प्रयोजन)

* चै० भा० आ० १४।८२-८८ सख्या देखनी चाहिये ।

क्या है, इसका निरूपण करनेमें असमर्थ होकर वे अत्यन्त उद्वेगके साथ समय बिता रहे थे, इसी समय एक दिन रातके पिछले पहर उन्होंने एक शुभ स्वप्न देखा। उसमें एक दिव्य पुरुषके द्वारा श्रीनिमाइ पंडितके पास जानेका आदेश मिला। तपन मिश्रने जब श्रीनिमाइके पास जाकर उपदेशके लिये प्रार्थना की, तब श्रीनिमाइ बोले,—
“तुम निरन्तर,—

‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥’

—इस सोलह नामके बत्तीस अक्षरके महामन्त्रको निर्वन्धपूर्वक ग्रहण करो। यही सर्व देश-काल-पात्रमें एकमात्र साधन और प्रयोजन है। कपट छोड़कर अनन्य भावसे आर्त्तिके साथ इस नामका भजन करो।”

श्रीतपन मिश्रने श्रीनिमाइ पंडितसे उनका अनुगमन करनेके लिये अनुमति माँगी। तब उन्होंने मिश्रसे कहा,—“तुम शीघ्र काशी जाओ, काशीमें तुम्हारे साथ फिर हमारी भेंट होगी।”

श्रीनिमाइ पंडित पूर्वी बगालसे अर्थादि सचय करके घर लौटे और माताके आगे सारा अर्थ समर्पण कर दिया। बहुतसे शिक्षार्थी उनके साथ पूर्वी बगालसे नवद्वीप आये। घर आनेपर पंडितने गृह-लक्ष्मीके अन्तर्धानकी बात सुनकर माताको प्रबोध देकर कहा,—

—“माता, दुःख भाव’ कि कारणे ?

भवितव्य ये आछे, से खण्डिबे केमने ?

एइमत काल-गति, केह का’रो नहे ।

अतएव, ‘संसार अनित्य’ वेदे कहे ॥

ईश्वरेर अधीन से सकल-संसार ।

संयोग-वियोग के करिते पारे आर ?

अतएव ये हइल ईश्वर-इच्छाय ।

हइल से कार्य, आर दुःख केने ताय ?

स्वामीर अग्रेते गगा पाय ये सुकृति ।

ताँर बड़ आर के-वा आछे भाग्यवती ?”

—चै० भा० आ० १४।१८३-१८७

[माता, दु ख क्यो करती हो ? जो कुछ भावी है, उसको कैसे टालोगी ! कालकी ऐसी ही गति है, कोई किसीका नहीं है । इसीलिये वेद ससारको अनित्य कहते हैं । यह सारा ससार ईश्वरके अधीन है । दूसरा सयोग-वियोग कौन कर सकता है ? अतएव जो कुछ हुआ सो ईश्वरकी इच्छासे हुआ । जो कार्य हुआ, उसके लिये दु ख क्यो ? स्वामीसे पहले जिस पुण्यवती स्त्रीको गगालाभ होता है, उससे बढकर भाग्यवती दूसरी कौन है ?]



उन्नीसवाँ परिच्छेद

सदाचार-शिक्षादान

श्रीनिमाइ पंडित जिस समय मुकुन्द-सजयके घर चडी-मडपमें बैठकर अध्यापन करते थे, उस समय यदि कोई छात्र ललाटमें ऊर्ध्वपुंड्र तिलक* न देकर पढने आता तो पंडित उसे इस प्रकार लज्जित करते कि वह छात्र दूसरी बार बिना तिलक लगाए पढने नहीं आ सकता । श्रीनिमाइ पंडित कहते कि,—“जिस ब्राह्मणके ललाटमें तिलक नहीं, वेद उस ललाटको श्मशान-तुल्य कहता है ।” इतना कहकर प्रभु उस छात्रको पुन तिलक लगाकर सध्यादि करनेके लिये घर भेज देते थे । शास्त्रमें कहा गया है,—

* वैष्णवके ललाटपर जो ऊर्ध्वतिलक होता है उसका नाम ‘ऊर्ध्वपुंड्र तिलक’ है । उसको ‘श्रीहरिमन्दिर’ भी कहते हैं ।

यच्छरीर मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम् ।

द्रष्टव्यं नैव तत्तावत् श्मशानसंदृशं भवेत् ॥

शखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।

गर्दभन्तु समारोप्य राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ॥

—ह०भ०वि० ४।१८२, २४८, गौ० गौ०प्र०स०

[ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् कपाल, उदर, वक्षस्थल, कण्ठ, दक्षिणकुक्षि, दक्षिणबाहु, दक्षिणस्कन्ध, वाम कुक्षि, वाम बाहु, वाम स्कन्ध, ग्रीवा, और कटि—इन बारह स्थानोंमें गोपीचन्दनादिके द्वारा अंकित ऊर्ध्वमुख श्रीहरि-मन्दिर-तिलक जिस मनुष्य-शरीरमें नहीं रहता, वह श्मशान-तुल्य है, अतएव दर्शनयोग्य नहीं है । शख-चक्रादि तिलक-चिह्न और ऊर्ध्वपुण्ड्रहीन ब्राह्मणाधमको राजा गधेपर चढाकर अपने राज्यसे बाहर निकलवा देंगे ।]

हम तो स्वादेशिकताका बहुत गर्व करते हैं, परन्तु इसी बगलमें अध्यापक और छात्रगणके लिये जो वेदसम्मत अवश्य पालनीय सदाचार थे, वे भी आज हमारे लिये लज्जाके विषय हो गये हैं । शिखा, तिलक, गलेमें तुलसीकी माला धारण करना आधुनिक सभ्य समाजमें मानो असभ्यताके लक्षण और उपहासकी वस्तु हो उठे हैं—या ये साम्प्रदायिकताके लक्षण माने जा रहे हैं । इन सबका परित्याग कर वेद-विरोधीकी स्वेच्छाचारिताको वरण करना ही क्या उदारता और सार्वजनीनताका आदर्श है ? अथवा यह सब कालका प्रभाव है ।

श्रीनिमाइ पंडितके छात्र घरसे पुनः तिलक धारण करके आनेपर ही उनके समीप पुनः पढ़नेका अधिकार प्राप्त करते थे ।

श्रीनिमाइ पंडित सभीके साथ नाना प्रकारसे हास-परिहास किया करते थे, विशेषतः श्रीहट्ट-निवासियोंके शब्दोच्चारणको लेकर विशेष रूपसे रँगरलियाँ करते थे । केवल परस्त्रीके साथ श्रीनिमा किसी प्रकारका हास-परिहास नहीं करते थे, वे परस्त्रीको आँखें उठाकर भी नहीं देखते थे । वे केवल सन्यासलीलाके बाद ही परस्त्रीके साथ

सभाषणमें सावधान रहे हो, ऐसी बात नहीं है, गार्हस्थ्य लीलाके समय भी वे स्त्रियोके सम्बन्धमें विशेष सतर्क रहते थे। उन्होंने अपने आचरणके द्वारा इस आदर्शकी शिक्षा दी है। ठाकुर श्रीवृन्दावन लिखते हैं,—

एइ मते चापल्य करेन सबा' सने ।
 सबे स्त्री-मात्र ना देखेन दृष्टि-कोणे ॥
 'स्त्री' हेन नाम प्रभु एइ अवतारे ।
 श्रवनओ ना करिला,—विदित ससारे ॥
 अतएव यत महामहिम सकले ।
 'गौरांग-नागर' हेन स्तव नाहि बले ॥

—चै० भा० आ० १५। २८-३०

[इस प्रकार सबके साथ चपलता करते हैं, परन्तु स्त्रीमात्रको दृष्टिकोणसे भी बिल्कुल नहीं देखते। ससारको यह विदित है कि इस अवतारमें 'स्त्री' इस नामपर प्रभुने कभी कान ही नहीं दिया—अतएव जितने सब महामहिमावाले हैं, वे 'गौरांग-नागर' इस प्रकार स्तव नहीं करते।]

इस प्रसंगमें सुविज्ञ भक्तिसिद्धान्तविद् व्यक्तियोंके लिये कुछ बातें कहना आवश्यक है। श्रीगौरसुन्दर स्वयं भगवान् हैं। वे समस्त प्रकृतिके नित्य पति हैं। उन्होंने जीवोंको शिक्षा देनेके लिये जो लीला की है, वह जीवोंके लिये अवश्य पालनीय है, परन्तु उस विधिके द्वारा विभुचैतन्य भगवान्को बाँधा नहीं जा सकता। इसी कारण श्रीकविराज गोस्वामिप्रभुने लिखा है,—

विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्यकीर्तनैः ।

प्रेम-नाम-प्रदानैश्च गौरो दीव्यति यौवने ॥

—चै० च० आ० १७।४

[विद्या, सौन्दर्य, सुन्दर वेश, सम्भोग, नृत्य, कीर्तन, प्रेम-नाम-प्रदान आदि लेकर श्रीगौरसुन्दरने यौवनमें लीला-विलास किया है।]

अणुचैतन्य जीवके लिये सम्भोग बन्धनका कारण है, परन्तु विभु-चैतन्य परमेश्वरका यह नित्य स्वभाव है। श्रीठाकुर वृन्दावन श्री-निमाइ पंडितके रूप-वर्णनके प्रसंगमें विभिन्न द्रष्टाओंके विभिन्नरूपमें दर्शन करनेका वर्णन करते हुए कहते हैं,—

यतेक 'प्रकृति' देखे मदन-समान ।

'पाषंडी' देखये येन यम विद्यमान ॥

'पंडित' सकल देखे येन बृहस्पति ।

एइ मत देखे सबे, यार येन मति ॥

—चै० भा० आ० ११।१०-११

[सभी प्रकृतियों (स्त्रियों) ने उनको कामदेवके समान देखा। पाखंडियोंने साक्षात् यमके रूपमें देखा। सब पंडितोंने देखा, मानों बृहस्पति है, इस प्रकार जिसकी जैसी मति थी, सबने उसी प्रकार देखा।]

यही श्रीभगवान्की भगवत्ता है। श्रीकृष्णने जब श्रीबलदेवके साथ कसके रगमंडपमें प्रवेश किया था, उस समय भी उनको विभिन्न द्रष्टाओंने विभिन्न रूपसे देखा था।

स्वयं श्रीठाकुर वृन्दावनने भी एकाधिक बार कहा है,—

विश्वम्भर-मूर्ति येन मदन-समान ।

दिव्य गन्ध-माल्य, दिव्य वास-परिधान ॥

—चै० भा० म० ३।१८२

[विश्वम्भरकी मूर्ति मानो कामदेवके समान है। दिव्य गन्ध, माला और दिव्य-वस्त्र पहने हुए है।]

श्रीठाकुर वृन्दावनकी इस उक्तिका यही तात्पर्य है कि स्वयं भगवान् श्रीगौरहरिमें सभोगरस-विग्रहत्व अवश्य ही है, नहीं तो उनकी भगवत्ता निरर्थक हो जाती है। नवद्वीप-वासिनी प्रकृतिगण भी श्री-गौरहरिको कोटिकन्दर्प-सुन्दर सभोगरस-विग्रहरूपमें दर्शन कर सकती हैं, परन्तु श्रीगौरलीलाकी विशेषता यह है कि श्रीगौरहरि अपनी व्रजलीलाके श्यामरूपके समान दूसरोके इस प्रकारके दर्शन या

संभाषणका कोई प्रत्युत्तर (reciprocation) प्रदान नहीं किया। श्रीस्वरूप-रामरायके द्वारा कथित 'राधाभावद्युतिसुवर्लित' श्रीकृष्णस्वरूप की आराधना ही श्रीश्रीगौरलीलाकी परम विशेषता है।



बीसवाँ परिच्छेद श्रीनिमाइ पंडितका दूसरीबार विवाह

श्रीनिमाइ पंडित नवद्वीपमें श्रीमुकुन्द-सजयके घरमें अध्यापन कार्यके लिये नियुक्त हुए। प्रातःकालसे दोपहरतक अध्यापन करते और अपराह्नसे अर्धरात्रितक पाठ-विचार किया करते। छात्रगण एक वर्षतक श्रीनिमाइके पास अध्ययन करके ही सिद्धान्तमें पंडित हो जाते थे।

इधर श्रीशचीमाता पुत्रके दूसरे व्याहके लिये उत्सुक हो उठी। श्रीनवद्वीपमें श्रीसनातन मिश्र नामक एक परम विष्णुभक्त, परोपकारी, अतिथि-सेवा-परायण, सत्यवादी जितेन्द्रिय, सद्ब्रजजात ब्राह्मण रहते थे। वे अवस्थापन्न व्यक्ति थे। उनकी पदवी थी 'राजपंडित'। श्रीकाशीनाथ पंडितको घटक बनाकर श्रीशचीमाताने श्रीसनातन मिश्रकी परमभक्तिमती कन्या श्रीविष्णुप्रियाके साथ निमाइका विवाह सम्बन्ध निश्चित कराया। श्रीबुद्धिमन्त खा नामके एक धनाढ्य सौभाग्यवान् व्यक्तिले स्वेच्छासे पंडितके इस विवाहके समस्त व्ययभारको वहन किया। शुभ दिनमें, शुभ लग्नमें बड़े समारोहके साथ अधिवास उत्सव सम्पन्न हुआ। श्रीनिमाइ पंडितने एक सुसज्जित पालकीमें बैठकर गोधूलि-लग्नमें राजपंडितके घरकी ओर यात्रा की। इस विवाह की बारात अद्वितीय थी। परम समारोहके साथ श्रीश्रीलक्ष्मी-नारायण-स्वरूप श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गकी विवाहक्रिया सम्पन्न हुई। एकमात्र

श्रीविष्णुके प्रीत्यर्थ श्रीसनातन मिश्रने श्रीनिमाइ पंडितके हाथमें अपनी कन्याको अर्पण किया और जामाताको अनेको प्रकारकी वस्तुएं दहेजमें दी। दूसरे दिन अपराह्णमें श्रीविष्णुप्रियादेवीके साथ पालकीमें बैठकर श्रीनिमाइ पंडितने पुष्पवृष्टि और गीत-वाद्य-नृत्यादिके साथ अपने घरकी ओर शुभ-यात्रा की।



इक्कीसवाँ परिच्छेद

श्रीगया-यात्रा

एक ओर श्रीनिमाइ पंडित नवद्वीपमें अध्यापककी लीला दिखला रहे थे, और दूसरी ओर नवद्वीपमें भक्तिविरोधी नाना प्रकारके मत-वाद प्रबल होकर बढ़ रहे थे। कुछ लोग श्रीभगवान्की सेवाकी बात कानोसे सुनना भी सहन नहीं कर सकते थे। वे लोग झूठमूठ वैष्णवोंकी निन्दा करते थे।*

अपनेको प्रकट करनेका उपयुक्त समय आ गया है, ऐसा विचारकर श्रीनिमाइ पंडितने पितरोका श्राद्ध करनेके बहाने बहुतेरे शिष्योंको

* चतुर्दिके पाषंड बाड्ये गुरुतर ।

‘भक्तियोग’ नाम हड़ल शुनिते दुष्कर ॥

निरवधि वैष्णव-सबेरे दुष्टगणे ।

निन्दा करि’ बुले, ताहा शुनेन आपने ॥

—चै० भा० आ० १७।५, ८

[चारों ओर पाखंडी लोग बहुत अधिक बढ़ गये। ‘भक्तियोग’ नाम सुनना कठिन हो गया। दुष्टगण सब वैष्णवोंकी निरन्तर निन्दा करते फिरते थे, उसे श्रीनिमाइ सुना करते।]

साथ लेकर श्रीगया-यात्राका अभिनय किया। पंडितकी इस गया-यात्राका गूढ़ उद्देश्य साधारण लोग समझ नहीं सके।

रास्तेमें चलते समय नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंके कौतुक और स्वच्छन्द विहारको देखकर श्रीनिमाइ पंडितने साथके लोगोसे कहा,—

लोभ-मोह-काम-क्रोधे मत्त पशुगण ।

कृष्ण ना भजिले एइमत सर्बजन ॥

संगिगणे हासिया बुझान भगवान् ।

ये बुद्धि पशुते, से मानुषे विद्यमान ॥

कृष्णज्ञान नाजि मात्र पशुर शरीरे ।

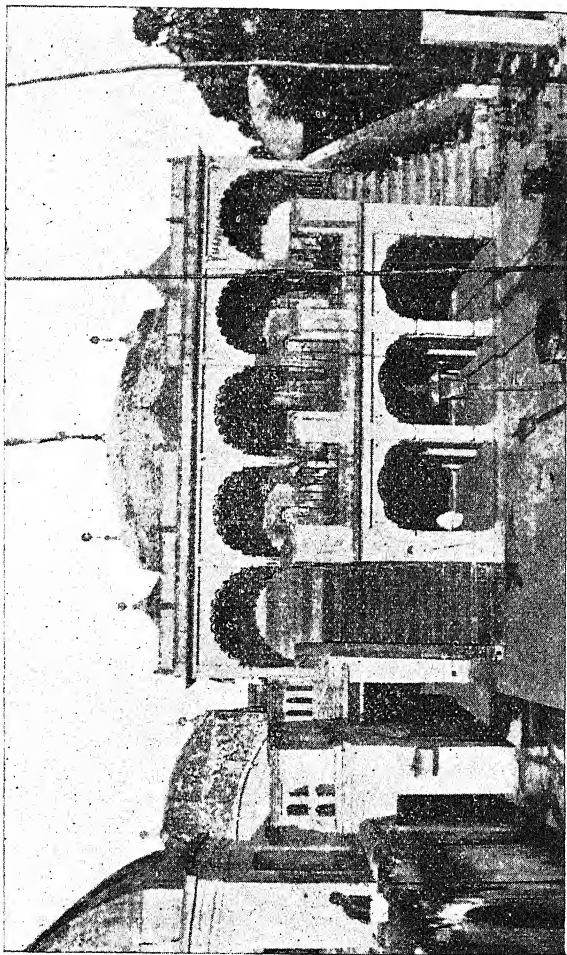
मनुष्ये ना भजे कृष्ण—‘पशु’ बलि ता’रे ॥

—चै०म०आ०, कै०ली०—गयायात्रा २५-२७

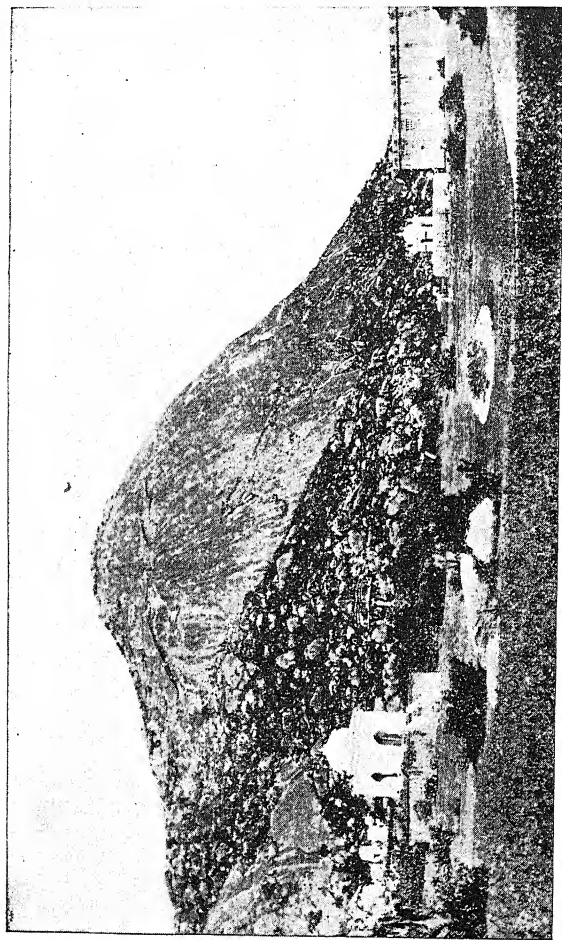
[पशुगण लोभ, मोह, काम, क्रोधमें मत्त हैं। कृष्णको न भजनेपर सब लोग ऐसे ही हैं। भगवान् अपने साथियोंको हँसकर समझाते हैं कि जो बुद्धि पशुमें है, वही मनुष्यमें भी है। पशुके शरीरमें केवल कृष्णका ज्ञान नहीं है। जो मनुष्य कृष्णको नहीं भजता, उसको पशु कहते हैं।]

श्रीनिमाइ चलते-चलते ‘चिर’-नदीके किनारे आकर उपस्थित हुए। वही स्नान-सध्यादि करके ‘मन्दार’ पर्वतपर पहुँचे।

जिस प्रकार श्रीमथुरामें ‘श्रीकेशव’, श्रीनीलाचलमें ‘श्रीपुरुषोत्तम’, श्रीप्रयागमें ‘श्रीवेणीमाधव’, केरलदेश, दक्षिणात्य और आनन्दारण्यमें ‘श्रीवासुदेव’, ‘श्रीपद्मनाभ’ और ‘श्रीजनार्दन’, श्रीविष्णुकाचीमें ‘श्री-वरदराज-विष्णु’ श्रीमायापुरमें (श्रीहरिद्वार और श्रीधाममायापुर-नव-द्वीपमें) ‘श्रीहरि’ हैं, उसी प्रकार श्रीमन्दारमें ‘श्रीमधुसूदन’ विराजमान हैं। श्रीनिमाइ पंडित इस स्थानमें शकाब्द १४२७ या सन् १५०५ ईस्वीमें गये थे। उस समय पर्वतके तिम्रभागमें श्रीमधुसूदनका श्रीविग्रह अधिष्ठित था। श्रीचैतन्य-पादपद्माकृत इस पुण्यतम स्थानकी स्मृति-पूजाके लिये वहाँ श्रीश्रीविश्ववैष्णव-राजसभाके पात्रराज गोलोक-गत श्रीमत् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने सन् १६२६



श्रीमन्दारमें श्रीमधुसूदनदेवका वर्तमान श्रीमंदिर



श्रीगौर-पादांकित श्रीमंदारपर्वत तथा उपत्यका ; पर्वतके निम्नभागमें दक्षिणकी ओर श्रीमत् भवित्सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर द्वारा प्रतिलिखित श्रीगौर-पादपद्मका श्रीमंदिर ;
उससे लगा हुआ श्रीमधुसूदनदेवका पुरातन श्रीमंदिर और भग्नावशेष ।

ई० की १५ वी अक्तूबरको 'श्रीचैतन्य-पादपीठ' स्थापित करके उसके ऊपर एक मंदिर बनवा दिया है ।

श्रीनिमाड पंडितने गयाकी ओर जाते समय लोकानुकरणमें अपनी देहमें ज्वर प्रकाशित करके एक वैष्णव-ब्राह्मणका चरणोदक पान कर अपनी ज्वर-मुक्तिका अभिनय किया । श्रीनिमाडकी इस लीलाका यथार्थ उद्देश्य साधारण लोग नहीं समझ सके । ब्राह्मणके चरणोदकके द्वारा जीवकी त्रितापज्वाला नष्ट होती है तथा वैष्णवके चरणोदकके द्वारा उसे कृष्णप्रेम प्राप्त होता है,—यह शिक्षा-प्रदान करना ही श्रीमन्महाप्रभुका उद्देश्य था, और साधारण लोग जिससे उनको सामान्य मनुष्यमात्र जानकर उनके स्वरूपको समझ न सकें—यह भी था उनका एक दूसरा उद्देश्य, क्योंकि वे 'प्रच्छन्न अवतारी' हैं । ब्राह्मणका चरणोदक-पान करके उस विषयमें श्रीनिमाडने कहा,—

कृष्ण ना भजिले 'द्विज' नहे कदाचित ।

पुराण-प्रमाण एइ शिक्षा आछे नीत ॥

चाण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः ।

विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥

—चै० म० आ०, कै०ली०—गयायात्रा ५१-५२

[कृष्णको न भजने पर कभी द्विज नहीं हो सकता । इसमें पुराणका प्रमाण है । यह शिक्षा नित्य है । विष्णुभक्तिपरायण पुरुष यदि चाण्डालकुलमें भी उत्पन्न हुआ हो तो वह ब्राह्मण-मुनिकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु विष्णु-भक्तिसे रहित ब्राह्मण चाण्डालकी अपेक्षा भी निकृष्ट है ।]

श्रीठाकुर वृन्दावनने भी महाप्रभुके इस विप्र-चरणोदक-पानके रहस्यके विषयमें इस प्रकार कहा है,—

ये ताहान दास्य-पद भावे' निरन्तर ।

ताहान अवश्य दास्य करेन ईश्वर ॥

अतएव नाम ता'न 'सेवक-वत्सल' ।

आपने हारिया बाढायेन भृत्य-बल ॥

—चै० भा० आ० १७।२५-२६

[जो निरन्तर ईश्वरके दास्य-पदकी कामना करते हैं, ईश्वर भी उनको दास्य करते हैं। अतएव उनका नाम 'सेवक-वत्सल' है। आप हारकर भृतरूप भक्तका सदा वे गौरव बढ़ाया करते हैं।]

श्रीनिमाइ शिष्योंके साथ क्रमश 'पुनपुन' तीर्थमें आकर उपस्थित हुए। वहाँ 'पुनपुन' नदी प्रवाहित होती है। यह पटनाके ठीक अगले 'पुनपुन' स्टेशनके पास अवस्थित है।

पुनपुन तीर्थमें आकर श्रीनिमाइने पितृदेवकी पूजा की और उसके बाद गया पहुँचे। गयामें ब्रह्मकुण्डमें स्नान और पितरोकी पूजा करके उन्होंने 'चक्रवेड' तीर्थमें श्रीगदाधरके श्रीपादपद्मका दर्शन किया। यहाँ ब्राह्मणोंके मुखसे श्रीगदाधरके श्रीचरणका माहात्म्य सुनकर श्रीनिमाइने प्रेमके पूर्ण सात्विक-विकारोको प्रकट किया। इतने दिनो बाद श्रीमहाप्रभुने जगत्के सामने आत्म-प्रकाश किया। श्रीनिमाइको अबतक भक्तगण भी केवल पंडित ही समझते थे, उनके 'फक्किका' पूछनेके डरसे दूर-ही-दूर भागते रहते थे, इतने दिनोतक महाप्रभुने ससारमें प्रेमभक्ति-प्रदानके लक्षणोंको प्रकट नहीं किया था, परन्तु गयामें आकर महाप्रभुने अपनी प्रेमभक्तिके उत्सके उद्घाटनकी पहले-पहल सूचना दी। वेगवती गगोत्तरीकी धाराके समान श्रीनिमाइके नेत्रोंसे प्रेमकी अश्रुगंगा प्रवाहित होने लगी। दैवयोगसे वहाँ ही श्रीईश्वरपुरीके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार हुआ। पारस्परिक दर्शनसे दोनोंके हृदयमें कृष्णप्रेमकी प्रबल तरंग लहराने लगी। महाप्रभुने अपनी गया-यात्राके मूल उद्देश्यको प्रकट करते हुए कहा,—

प्रभु बले,—“गया-यात्रा सफल आमार ।

यतक्षणे देखिलाड चरण तोमार ॥

तीर्थे पिण्ड दिले से निस्तरे पितृगण ।
 सेह,—या'रे पिण्ड देय, तरे' सेइ जन ॥
 तोमा' देखिलेइ मात्र कोटि-पितृगण ।
 सेइक्षणे सर्वबन्ध पाय विमोचन ॥
 अतएव तीर्थ नहे तोमार समान ।
 तीर्थेरो परम तुमि मगल-प्रधान ॥
 संसार-समुद्र हैते उद्धारह मोरे ।
 एइ आमि देह समर्पिलाड तोमारे ॥
 “कृष्णपादपद्मे अमृत-रस पान ।
 आमारे कराओ तुमि'—एइ चाहि दान ॥”

—चै०भा०आ० १७।५०-५५

[प्रभुने कहा,—“जिस क्षण तुम्हारे श्रीचरण-दर्शन हुए, उसी क्षण मेरी गया-यात्रा सफल हो गई । तीर्थमें पिण्डदान करनेपर पितृ-गण तर जाते हैं, जिसको पिण्ड दिया जाता है, वह पुरुष तरता है । पर तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही करोड़ों पितरोंकी उसी क्षण समस्त बन्धनोंसे मुक्ति हो जाती है । अतएव तीर्थ तुम्हारे समान नहीं है, तुम तीर्थके भी परम मगल-प्रधान हो । मुझे संसार-समुद्रसे तार दो, मैंने यह देह तुम्हे समर्पित कर दी । श्रीकृष्ण-चरण-कमलका अमृतरस मुझे पान कराओ । मैं यही दान चाहता हूँ ।”]

श्रीनिमाइ पंडितने विश्वको बतलाया कि, “सर्वश्रेष्ठ तीर्थफल है—‘साधुसंग’ । जबतक मनुष्यके भाग्यमें सद्गुरुका दर्शन नहीं होता, जबतक जीव सद्गुरुके चरण-कमलोंमें आत्मसमर्पण करके भगवान्की सेवाके माधुर्यको उपलब्ध नहीं कर पाता, तभी तक उसका गया श्राद्ध, तीर्थस्थान, लौकिक-पूजा-पार्वण, दान-ध्यानादि वेदविहित सत्कर्ममें अधिकार है, तभीतक इन कार्योंके लिये रुचि और प्रयोजनशीलता उपलब्ध होती है । गयामें पिण्डदान करनेपर जिनके उद्देश्यसे पिण्डदान किया जाता है, केवल उनकी ही सामयिक क्लेश-शान्ति होती है, परन्तु

वैष्णव, गुरु तथा साधुके दर्शनमात्रसे ही कोटि-कोटि पितरोका उद्धार हो जाता है। अतएव महाभागवतके श्रीचरणकमलोके साथ तीर्थोंकी समानता नहीं है। महाभागवतके श्रीपादपद्मरेणुमें इतनी शक्ति है कि वह श्रीकृष्णके पादपद्मोंके प्रेमामृत-रसका पान करा सकती है।

जबतक श्रीचैतन्यदेवने जगत्में आविर्भूत होकर सार्वभौमिक-धर्म श्रीहरिनाम-सकीर्तनकी प्रचार-लीला प्रकट नहीं की, तबतक ही सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिमें स्नान दानादि पुण्यकर्मोंका लोग बहुत सम्मान-प्रदान करते थे। जबतक श्रीनिमाइ पंडितने श्रीईश्वरपुरीपादके समान कृष्ण-तत्त्वविद् महाभागवतके समीप आत्मसमर्पण करनेकी लीला नहीं दिखलायी थी तबतक ही उन्होंने गया-श्राद्धादि कर्मकाण्डकी प्रयोजनशीलता लोगोंको बतलायी। जो लोग अनन्य-भावसे महाभागवतके चरणोंका आश्रय लेकर श्रीकृष्णपादपद्म-प्रीतिको ही परम प्रयोजन रूपमें अनुभव करते हैं, उनको फिर अलगसे गया-श्राद्ध या पिण्ड-प्रदानकी आवश्यकता नहीं रहती, यही श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा है।* किन्तु शरणागतके अनुकरणसे अधिकारका उल्लंघन करनेपर 'इतो भ्रष्टस्ततो नष्ट', होना पड़ता है, यह भी स्मरण रखना चाहिए।

श्रीनिमाइ पंडित श्राद्धादि कार्य समाप्त करके, अपने डेरेपर लौट आये और अपने हाथसे भोजन बनाया। उसी समय कृष्णप्रेमसे आविष्ट श्रीईश्वरपुरीपाद भी वहाँ आकर उपस्थित हुए। श्रीनिमाइने जो भोजन तैयार किया था, वह समस्त श्रीईश्वरपुरीपादको भोजन करानेके उद्देश्यसे उनके सामने अपने हाथोंसे परोस दिया।

* एवमेकान्तिना प्राय कीर्तन स्मरण प्रभो ।

कुर्वता परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्त रोचते ॥

—ह० भ० वि० २०वाँ विलासका उपसहार-धृत-

‘विष्णुरहस्य’-वाक्य

[इस प्रकार अनन्य-भावसे परम प्रेमपूर्वक प्रभुका कीर्तन-स्मरण करनेवालोंको और कोई कार्य नहीं रुचता ।]

एक दिन एकान्तमें श्रीनिमाइ पडितने श्रीपुरीपादसे अत्यन्त दीनताके साथ मन्त्र-दीक्षा प्रदान करनेके लिये प्रार्थना की। श्रीपुरीपादने सानन्द श्रीनिमाइ पडितको दशाक्षर-मन्त्रकी दीक्षा प्रदान की। श्रीनिमाइ पडितने श्रीईश्वरपुरीकी प्रदक्षिणा करके उनसे आत्मसमर्पण और कृष्णप्रेमकी प्राप्तिकी प्रार्थना की। समस्त ससारके गुरुने लोक-शिक्षाके लिये गुरुके चरणोका आश्रय लेनेकी लीला प्रकट की। महा-भागवतके चरणोका आश्रय लेकर अपनेको पूर्णरूपसे समर्पण किये बिना कोई कभी परमार्थ-राज्यमें प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकता, यह शिक्षा देनेके लिये ही सारे ससारके गुरुओंके गुरु श्रीनवद्वीपचन्द्रने गुरु-ग्रहण करनेकी लीला प्रकट की।

श्रीनिमाइ पडितने श्रीईश्वरपुरीके साथ कुछ समय गयामें अवस्थान किया। अन्तमें आत्मप्रकाशका समय आ उपस्थित हुआ। दिन प्रतिदिन उनकी प्रेमभक्तिके समस्त सात्विक-विकार प्रकट होने लगे। एक दिन वे निर्जनमें बैठकर इष्टमन्त्रका ध्यान करनेके समय कृष्ण-विरहमें व्याकुल होकर “कृष्ण रे ! बाप रे ! मेरे जीवनसर्वस्व हरि, तुम मेरे प्राणोको चुराकर कहाँ छिप गये ?” —इस प्रकार आर्त्तनाद करके क्रन्दन करने लगे। परम गम्भीर श्रीनिमाइ पडित अतिशय विह्वल होकर धूलमें लोट रहे हैं—उच्चस्वरसे रो रहे हैं। साथके छात्रोंने आकर उनको स्वस्थ करनेके लिये कितनी ही चेष्टा की, परन्तु—

प्रभु बले,—“तोमरा सकले याह घरे ।

मुइ आर ना याइमु संसार-भितरे ॥

मथुरा देखिते मुइ चलिमु सर्वथा ।

प्राणनाथ मोर कृष्णचन्द्र पाड यथा ॥”

—चै० भा० आ० १७।१२३-१२४.

[प्रभुने कहा,—“तुम सब घर जाओ। मैं अब ससारमें नहीं जाऊँगा। मैं अपने निश्चयानुसार मथुरा देखनेके लिये जाता हूँ, जहाँ मेरे प्राणनाथ कृष्णचन्द्रको पाऊँगा।]

छात्रगण कृष्णप्रेमोन्मत्त पंडितको नाना प्रकारसे सान्त्वना देने लगे । किन्तु कृष्णविरहिणी गोपीके भावमे मग्न श्रीनिमाइ किसी प्रकार बातोसे आश्वस्त न हो सके । अन्तमे एक दिन रात्रिके अवसानमे अत्यन्त कृष्णविरहमे उन्मत्त होकर वे मथुराकी ओर दौड़ पड़े । उच्च-स्वरसे “कृष्ण रे ! मेरे बाप रे ! तुमको कहाँ पाऊँगा ।” —इस प्रकार उच्चारण करते-करते वे दौड़े । कुछ दूर जाते ही एक मृदु-गभीर आकाशवाणी हुई,—

*

*

*

एखने मथुरा ना याइबा, द्विजमणि !

याइबार काल आछे, याइबा तखने ।

नवद्वीपे निज-गृहे चलह एखने ॥

तूमि श्रीवैकुण्ठनाथ लोक निस्तारिते ।

अवतीर्ण हइयाछ सबार सहिते ॥

अनन्त-ब्रह्माण्डमय करिया कीर्तन ।

जगतेरे विलाइवा प्रेमभक्ति-धन ॥

सेवक आमरा, तबु चाहि कहिवार ।

अतएव कहिलाड चरणे तोमार ॥

—चै० भा० आ० १७।१२६-१३२, १३५

[हे द्विजश्रेष्ठ, अभी मथुरा मत जाओ । जानेका जब समय आयगा, तब जाना । अभी नवद्वीप अपने घर चलो । तुम श्रीवैकुण्ठनाथ,—लोगोका निस्तार करनेके लिये सबके साथ अवतीर्ण हुए हो । इस अनन्त ब्रह्माण्डमें कीर्तन करके जगत्को प्रेमभक्ति-धन वितरण करो । हम लोग सेवक हैं यद्यपि हमलोगोको ऐसा कहना शोभा तो नहीं देता, फिरभी तुम्हारे चरणोंमें निवेदन करते हैं ।]

आकाश-वाणीने बतला दिया कि श्रीनिमाइके गृहत्यागका समय अभी उपस्थित नहीं हुआ है । अभी कुछ समयके लिये उनको अपनी जन्मभूमि श्रीनवद्वीप-मंडलमे ही प्रेमभक्ति-वितरण करना आवश्यक है ।

आकाश-वाणी सुनकर श्रीनिमाइ पडित रुक गये और डेरेपर लौटकर उन्होंने श्रीईश्वरपुरीकी आज्ञा ग्रहण पूर्वक छात्रोंके साथ श्रीनवद्वीपके लिये प्रत्यागमन किया ।



बाईसवाँ परिच्छेद

अद्भुत भावान्तर

गयासे लौट आनेके बाद श्रीनिमाइ पडित सबके सामने गयाधामकी महिमा वर्णन करने लगे । एकान्तमें श्रीमान् पडितादि कुछ नवद्वीप-वासी अन्तरंग भक्तोंके सामने गयाके विष्णुपाद-तीर्थकी बात उच्चारण करते ही श्रीनिमाइके शरीरमें अपूर्व प्रेमके विकार प्रकट होने लगे । भक्तगण श्रीनिमाइके उस प्रेम विकारको देखकर विस्मित हो गये ।

श्रीनिमाइ पडित बाह्यदशा प्राप्तकर श्रीमान् पडित प्रभृतिको बुलाकर बोले,—“आज तुम लोग अपने-अपने घर जाओ । कल प्रातः काल शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घरपर आना, वही तुम लोगोको मैं अपने दुःखकी बात बताऊँगा ।”

दूसरे दिन प्रभातकालमें श्रीश्रीवास पडितक्री वहिर्वाटिकामे श्रीगदा-धर, श्रीगोपीनाथ, श्रीरामाइ और श्रीश्रीवास पडित प्रभृति वैष्णवगण परस्पर कृष्णकथा कहते हुए पुष्प-चयन कर रहे थे, उसी समय श्री-श्रीमान् पडित भी वहा आ गये और उन्होंने हँसते-हँसते उन्हें वैष्णवोंको श्रीनिमाइ पडितके अति अद्भुत भावान्तरकी बात बतायी । श्रीश्रीमान् की यह बात सुनकर सभी महा आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे । पहले ही श्रीश्रीवास पडित बोले,—

“गोत्रं नो वर्द्धताम् । ‘गोत्र बाड़ाउन कृष्ण आमा सबकार’ ।”

—चै० भा० म० १।७३-७४

[श्रीकृष्ण हम सबकी संख्या बढ़ावें ।]

तब,— “तथास्तु तथास्तु” बले भागवतगण ।

“सबेइ भजुक कृष्णचन्द्रे चरण ॥”

—चै० भा० म० १।७६

[सब भागवतगण ‘ऐसा ही हो—ऐसा ही हो’ बोल उठे । सभी श्रीकृष्ण- चन्द्रके चरणकमलका भजन करें ।]

श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर श्रीश्रीमान् पंडित, श्रीश्रीवास पंडित, श्रीगदाधर पंडित और श्रीसदाशिव प्रभृति वैष्णवगण सम्मिलित हुए । श्रीनिमाइ पंडित इनके सामने भगवद्विरहसे उद्दीप्त होकर “हे कृष्ण, तुम कहाँ हो, हे कृष्ण, तुम कहाँ हो ? तुम सामने आकर कहाँ छिप गये ।”—इस प्रकार कहते-कहते मूर्च्छित हो गये । भक्तगण भी तब प्रेमानन्दमें मूर्च्छित हो गये । कुछ समय बाद विश्वभर बाह्यदशमें आकर पुन उच्चस्वरसे यह कहते हुए क्रन्दन करने लगे,—

“कृष्ण रे, प्रभु रे, मोर कोन् दिके गेला ?”

—चै० भा० म० १।९१

[ऐ कृष्ण, ऐ मेरे प्रभु, तू किस ओर चला गया ?]

रोते-रोते पुन पृथ्वीपर गिर पड़े, भक्तगण भी उनको घेरकर रोने लगे । उच्च कीर्तनकी ध्वनि तथा प्रेम-क्रन्दनसे श्रीशुक्लाम्बरका घर मुखरित हो उठा ।

श्रीशचीमाता पुत्रके इस भावको देखकर वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश भीतर-ही-भीतर आशंकित हो उठी और पुत्रके कल्याणके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगी । समय-समयपर श्रीशचीमाता पुत्रवधूको बुलाकर पुत्रके समीप बैठाती थी, परन्तु कृष्णके विरहमें उन्मत्त-प्राय

श्रीनिमाइ उस ओर दृष्टिपात भी नहीं करते थे ।* केवल हर समय 'कृष्ण कहाँ, कृष्ण कहाँ' कहकर क्रन्दन और हुकार करते थे । श्री-विष्णुप्रिया भयसे भाग जाती थी, श्रीशचीदेवी भी भयभीत हो जाती थी । कृष्णविरहमे व्याकुल निमाइको रातमें निद्रा नहीं आती, वे कभी उठते, कभी बैठते और कभी भूमिमें लोटने लगते । परन्तु बाहरके आदमीको देखकर वे अपने भीतरके भावको छिपा लेते थे ।

एक दिन प्रातः काल श्रीनिमाइ पण्डित गंगा-स्तन करके आये, उसी समय उनके पहलेके छात्रगण पाठ लेनेके लिये उनके पास उपस्थित हुए । छात्रोंके बार-बार अनुरोध करनेपर श्रीनिमाइ पण्डित पढ़ाने बैठे, छात्रोंने 'हरि' बोलकर पोथी खोली । इससे पण्डित अत्यन्त आनन्दित हुए, हरिनाम सुनते ही उनका बाह्य-ज्ञान लुप्त हो गया । श्रीनिमाइ पण्डित आविष्ट होकर सूत्र, वृत्ति, टीकामें केवल हरिनाम व्याख्या करने लगे, कृष्णनाम छोड़कर और कहीं कुछ नहीं है—

प्रभु बले,—“सर्वकाल सत्य कृष्णनाम ।
सर्वशास्त्रे 'कृष्ण' बड़ ना बलये आन ॥
हर्ता, कर्ता, पालयिता कृष्ण से ईश्वर ।
अज्ञ-भव-आदि, सब—कृष्णेर किंकर ॥
कृष्णेर चरण छाड़ि, ये आर बाखाने ।
वृथा जन्म याय ता'र असत्य-वचने ॥
आगम-वेदान्त-आदि यत दरशन ।
सर्वशास्त्रे कहे 'कृष्णपदे भक्तिधन' ॥

* लक्ष्मीरे आनिजा पुत्र-समीपे बसाय ।
दृष्टिपात करियाओ प्रभु नाहि चाय ॥

—चै० भा० म० १।१३७

[लक्ष्मीको लाकर पुत्रके पास बैठाती है, पर प्रभु आँखें उठाकर भी उसकी ओर नहीं देखते ।]

मुग्ध सब अध्यापक कृष्णेर मायाय ।

छाडिया कृष्णेर भक्ति अन्य पथे याय ॥

—चै० भा० म० १।१४८-१५२

[प्रभुने कहा,—“सर्वकालमे कृष्णनाम सत्य है। समस्त शास्त्र ‘कृष्ण’के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते। वह कृष्ण हर्ता, कर्ता, पालनकर्ता ईश्वर है। ब्रह्मा, शिव आदि सब कृष्णके किरर हैं। कृष्णके चरणको छोड़कर जो दूसरी चीजका बखान करता है, उसका असत्य वचन (उच्चारण)के कारण जन्म वृथा जाता है। आगम-वेदान्त-आदि जितने दर्शन हैं सभी शास्त्र, ‘श्रीकृष्णचरणोमे भक्तिधन’का वर्णन करते हैं। सब अध्यापक कृष्णकी मायासे मुग्ध हैं, इसीमे वे कृष्णकी भक्तिको छोड़कर दूसरे मार्गपर जाते हैं।]

कृष्णेर भजन छाडि’ ये शास्त्र बाखाने ।

से अधम कभु शास्त्र-मर्म नाहि जाने ॥

शास्त्रेर ना जाने मर्म, अध्यापना करे ।

गदभेर प्राय येन शास्त्र बहि’ मरे ॥

पडिआ-शुनिआ लोक गेल छारे-खारे ।

कृष्ण-महामहोत्सवे बञ्चिला ताहारे ॥”

—चै० भा० म० १५७-१५९

[श्रीकृष्णके भजनको छोड़कर जो शास्त्रका व्याख्यान करता है, वह अधम कभी शास्त्रका मर्म नहीं जानता। जो शास्त्रका मर्म न जानकर अध्यापन करता है, वह मानो गदहेकी भाँति शास्त्रका भार ढोता हुआ मरता है। पढ़-सुनकर लोग चौपट हो गये। कृष्ण महामहोत्सवसे वे वंचित ही रह गये।]

श्रीनिमाइ पडितने छात्रोसे पूछा,—“आज मैंने सूत्रोकी कैसी व्याख्या की?” छात्रोने उत्तर दिया,—“आपकी व्याख्या हमारी समझमें कुछ भी नहीं आयी, आपने प्रत्येक शब्दको केवल ‘कृष्ण’ कहकर व्याख्या की है, इसका तात्पर्य क्या है?” पडितने कहा,—“आज

पोथी बाँधकर रख दो, चलो गंगास्नान करने चले।” गंगास्नान करके वे घर लौट आये, श्रीतुलसीमे जल दिया, विधिपूर्वक श्रीगोविन्दकी पूजा की, तुलसीमजरीसहित श्रीकृष्णको भोगनिवेदन करके प्रसाद ग्रहण किया।

श्रीशचीमाताने पूछा,—“निमाइ, तुमने आज पोथीमे क्या पढा ?”
निमाइने उसके उत्तरमे कहा,—

* *—“आज पडिलाड कृष्णनाम।

सत्य कृष्ण-चरण-कमल गुणधाम ॥

सत्य कृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन।

सत्य कृष्णचन्द्रेर सेवक ये-ये जन ॥

सेइ शास्त्र सत्य—कृष्णभक्ति कहे याँय।

अन्यथा हइले शास्त्र पाषडत्व पाय ॥”

—चै० भा० म० १।१६३-१६५

[आज मैने कृष्णनाम पढा, गुणोके धाम श्रीकृष्ण-चरणकमल सत्य है। श्रीकृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन सत्य है। जो-जो मनुष्य कृष्णचन्द्रके सेवक हैं, वे सत्य हैं। जिस शास्त्रमें कृष्णभक्ति कही गयी है, वही शास्त्र सत्य है। ऐसा न होनेपर तो शास्त्र पाषडत्वको प्राप्त होता है।]

भगवदवतार श्रीकपिलदेवजीने जिस प्रकार माता श्रीदेवहूतिको उपदेश दिया था, उसी प्रकार श्रीनिमाइ पडितने भी अपनी माताको भागवत-धर्मकी कथाका उपदेश दिया। जीवके आवागमन और गर्भवासके दुःखका उल्लेख करके उन्होने बतलाया कि कृष्ण-सेवाको छोड़कर दूसरा कोई भी कल्याणका उपाय नहीं है,—

जगतेर पिता—कृष्ण, ये ना भजे बाप।

पितृद्रोही पातकीर जन्म-जन्म ताप ॥

—चै० भा० म० १।२०२

[कृष्ण जगत्के पिता हैं, जो बापकी सेवा नहीं करता उस पितृद्रोही पापीको जन्म-जन्ममें सन्ताप मिलता है।]

श्रीनिमाइ पंडित आहार-बिहार, शयन-स्वप्नमें अर्हनिश कृष्णके सिवा और कोई बात न सुनते और न ही बोलते। छात्रगण प्रातः काल उनके पास पढ़नेके लिये आते, परन्तु पढ़ाने बैठनेपर पंडितके मुखसे 'कृष्ण' शब्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं निकलता,

“सिद्धो वर्णसमाम्नायः” *—बले शिष्यगण ।

प्रभु बले,—“सर्व-वर्णें सिद्ध नारायण ॥”

शिष्य बले,—“वर्णं सिद्ध हइल केमने ?”

प्रभु बले,—“कृष्ण-दृष्टिपातेर कारणे ॥” †

शिष्य बले,—“पंडित, उचित व्याख्या कर’ ।”

प्रभु बले,—“सर्वक्षण श्रीकृष्ण सोडर ॥

कृष्णेन भजन कहि—‘सम्यक् आम्नाय’ ‡ ।

आदि-मध्य-अन्ते कृष्ण-भजन बुझाय ॥”

—चै० भा० म० १।२५२-२५५

* ‘कलाप’ या ‘कातन्त्र’-व्याकरणका प्रथम सूत्र है—“सिद्धो वर्ण-समाम्नाय” अर्थात् स्वर और व्यंजन वर्णका पाठक्रम चिर प्रसिद्ध है। प्रभुके छात्रगण इस कलाप-व्याकरणके प्रथम सूत्रका उच्चारण करके कहने लगे कि,—“वर्णपाठकी रीति तो सुप्रसिद्ध है न ?” इसके उत्तरमें प्रभुने कहा,—“सारे वर्ण नित्य-शुद्ध-पूर्ण-मुक्त चिन्मयी परमुखा विद्वद्-रूढि-वृत्तिसे श्रीनारायणका ही प्रतिपादन करते हैं ।”—गौ० भा०

† छात्रोंके वर्णसिद्धिका कारण पूछनेपर प्रभुने कहा,—“वाच्य-विग्रह श्रीकृष्णके निरीक्षण हेतु है अर्थात् श्रीकृष्ण ही अभिन्न पूर्ण-नित्य-शुद्ध-मुक्त-वाचक, व्यञ्जक या सूचक अथवा द्योतक है, इसलिये प्रत्येक वर्ण ही नित्य सिद्ध है ।”—गौ० भा०

‡ ‘सम्यक् आम्नाय’,—“आमनति उपदिशति विष्णो पर पदम्, आम्नायते सम्यगभ्यस्यते मुनिभिरसौ, आम्नायते उपदिश्यते परधर्मोऽनेनेति आम्नाय ‘वेद’, समम्नाय ।” भा० १०।४७।३३ श्लोकमें ‘समाम्नाय’-शब्दसे श्रीधरस्वामी पादकृत टीकामें—“समाम्नायो वेद ।”

आमनति अर्थात् विष्णुके परमपदका उपदेश करते हैं। आम्नायते अर्थात् सम्यक् अभ्यस्त होते हैं मुनिगणके द्वारा, आम्नायते उपदिष्ट होते हैं परमधर्म इसके द्वारा—‘आम्नाय’—वेद ।

[शिष्योने कहा,—“सिद्धो वर्णसमाम्नाय ” । प्रभुने कहा,—“सब वर्णोंमें नारायण सिद्ध है ।” शिष्योने कहा,—“वर्ण सिद्ध कैसे हुआ ?” प्रभुने कहा,—“कृष्णके दृष्टिपात करनेसे ।” शिष्योने कहा,—“पंडितजी, उचित व्याख्या कीजिये ।” प्रभुने कहा,—“सब समय श्रीकृष्णका स्मरण करो । समग्र वेद कृष्णके भजन करनेकी बात कहते हैं । आदि-मध्य-अन्तमें कृष्ण-भजन ही उपदेश करते हैं ।”]

श्रीनिमाइ पंडितकी व्याख्याको सुनकर उनके छात्रगण हँसने लगे , किसीने कहा,—“मस्तिष्कमें वायुके प्रकोपके कारण वे इस प्रकारकी व्याख्या कर रहे हैं ।” एक दिन छात्रोंने श्रीनिमाइके अध्यापक श्रीगगादास पंडितके पास जाकर श्रीनिमाइ पंडितकी इस प्रकारकी विकृत-व्याख्या (?) के विषयमें शिकायत की । उपाध्याय श्रीगगादासने अपराह्णमें छात्रोंके द्वारा श्रीनिमाइको बुलवाकर पूछा,—“निमाइ, तुम श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती जैसे पंडितके दौहित्र हो, मिश्र-पुरन्दरके समान पिताके पुत्र हो, तुम्हारा मातृकुल और पितृकुल दोनों ही पांडित्यके गौरवसे विभूषित है । सुन रहा हूँ कि, तुमने आजकल लिखना-पढ़ना छोड़ दिया है, ठीक-ठीक अध्यापन नहीं कर रहे हो । क्या अध्ययन छोड़ देनेसे ही भक्ति होती है ? तुम्हारे पिता और नाना क्या भक्त नहीं ? मेरे सिरकी शपथ, तुम पागलपन छोड़कर अच्छी तरह शास्त्र पढ़ाओ ।”

श्रीनिमाइ श्रीगगादाससे बोले,—“आपके श्रीचरणोंकी कृपासे यहाँ नवद्वीपमें कोई ऐसे नहीं है, जो तर्कमें मुझपर विजय प्राप्त कर सकें । मैं जिसका खडन करता हूँ, देखूँ तो नवद्वीपमें ऐसे कौन है, जो उसका मडन कर सकें । मैं नगरके बीच बैठकर सबके सामने अध्यापन करूँगा, देखूँ किसकी शक्ति है जो मेरी व्याख्याका खडन कर सके ।”

गगाके किनारे एक पुरवासीके घर बैठकर श्रीनिमाइ इस प्रकार अपनी व्याख्याका गौरव बतलाते और आत्मश्लाघा करते । एक दिन श्रीमद्भागवतके पाठक श्रीरत्नगर्भ आचार्य श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धसे याज्ञिक ब्राह्मणियोंके श्रीकृष्णके रूपदर्शन विषयक श्लोकको पढ़ रहे

थे । श्रीनिमाइ पंडितके कानमे वह श्लोक पडा, वे उसी क्षण प्रेमसे मूर्छित हो गये, पश्चात् बाह्य-दशा प्राप्त करके वे छात्रोके साथ गंगाके किनारे गये । दूसरे दिन प्रातः काल पुनः श्रीनिमाइ पंडितने छात्रोको पढाना प्रारम्भ किया । छात्रोने पूछा,—“धातु किसे कहते हैं ?” पंडित बोले,—“कृष्णकी शक्ति ही धातु है, देखूँ किसमें शक्ति है जो मेरे इस अर्थका खण्डन कर सकता है ।” इतना कहकर श्रीनिमाइ पंडित छात्रोको नाना प्रकारसे सदुपदेश देने लगे । दस दिनों तक इसी प्रकार व्याकरणके प्रत्येक सूत्रकी कृष्णपर व्याख्या करके अन्तमें छात्रोको सदाके लिये विदा देते हुए श्रीनिमाइ बोले,—“तुम लोग मेरे पास अब पढनेको मत आना, मुझे कृष्णको छोडकर और किसी बातकी स्फूर्ति नही होती है, तुम लोगोको जहाँ सुविधा हो वही जाकर अध्ययन करो ।” इतना कहकर श्रीनिमाइने अश्रुपूर्ण नयनोसे पुस्तकमे ‘डोरी’ बाँधी, तथा सबके अन्तमें श्रीकृष्णके चरण-कमलोकी शरण लेनेके लिये सबको अन्तिम उपदेश दिया ।

श्रीगौरहरि छात्रोसे बोले,—

“पडिलाड, शुनिलाड यत दिन धरि’ ।

कृष्णे कीर्तन कर’ परिपूर्ण करि’ ॥”

—चै० भा० म० १।४०५

[इतने दिन पढा-सुना, अब पूर्णरूपसे श्रीकृष्णका कीर्तन करो ।]

तब छात्रोके यह पूछनेपर कि श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन क्या है और किस प्रकार किया जाता है, तो श्रीशचीनन्दने श्रीनाम-सकीर्तनकी रीति बतलायी,—

“(हरे) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥”

—चै० भा० म० १।४०७

इस नामका उच्चारण करते-करते छात्रोको लेकर प्रभु हाथसे ताली देते हुए सकीर्तन, नृत्य तथा महाप्रेमावेशमें सात्विक-विकारोको

प्रकट करने लगे। इससे कुछ छात्रोंने, जो विशेष सौभाग्यशाली थे, अर्थकरी विद्याका अनुशीलन त्यागकर परमार्थकरी विद्या अर्थात् भक्तिमार्गको ग्रहण किया।

श्रीगौरसुन्दरने व्याकरणके प्रत्येक सूत्रकी जिस प्रकार श्रीकृष्ण-नामपरक व्याख्या की थी, लोग जिससे उसी प्रकारके आदर्शसे अनु-प्राणित होकर व्याकरण पढ़ते-पढ़ते भी श्रीकृष्ण-नामका अनुशीलन कर सकें, इसी उद्देश्यसे श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद श्रीमत् श्रीजीवगोस्वामीपादने “श्रीहरिनामामृत व्याकरण”की रचना की। इसमें व्याकरणका प्रत्येक सूत्र हरिनाम-परक बनाकर ग्रथित किया गया है।



तेईसवाँ परिच्छेद

वैष्णव-सेवा-शिक्षादान

श्रीनिमाइ पंडितने जड-विद्याके अनुशीलन अर्थात् जड-विद्याके अध्ययन और अध्यापनकी लीलाका परित्यागकर परविद्या अर्थात् श्रीकृष्णभक्तिके अनुशीलनके आदर्शको प्रदर्शित किया। भगवद्भक्तकी सेवाके बिना किसीको भक्ति-विद्या प्राप्त नहीं होती—इसे समझानेके लिये वे भगवान् होकर भी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं भक्तोंकी सेवा करने लगे। अबसे श्रीश्रीवास पंडित प्रभृति वैष्णवोंको देखते ही श्रीनिमाइ पंडित उनको नमस्कार एवं उनसे कृपा-प्रार्थना करते। जब वैष्णव लोग गंगाके घाटपर स्नान करनेके लिये आते तब श्रीगौर-सुन्दर अत्यन्त यत्नपूर्वक किसीके वस्त्रका जल निचोड़ देते और किसीके

हाथमे धोती उठा देते, किसीके लिये गगाकी मिट्टी सग्रह कर देते और किसीकी फूलकी डालियाँ लेकर घर पहुँचा देते थे ।*

“कृष्ण भजिवार यार आछे अभिलाष ।

से भजुक कृष्णेर मगल प्रिय दास ॥”

—चै० भा० म० २।५५

[जिसको कृष्ण भजनेकी अभिलाषा हो, वह श्रीकृष्णके मगलमय प्रिय दासको भजे ।]

भक्तगण श्रीगौरसुन्दरके वैष्णव-व्यवहारसे अत्यन्त सतुष्ट होकर उनके सामने बहुत दिनोकी सचित व्यथा खोलकर कह देते थे,—

“एइ नवद्वीपे, बाप ! यत अध्यापक ।

कृष्णभक्ति बाखानिते सबे हय ‘बक’ ।”

—चै० भा० म० २।६६

[बाबा, इस नवद्वीपमें जितने अध्यापक हैं, कृष्णभक्तिकी व्याख्या करनेमें सब ‘बगुले’ बन जाते हैं ।]

कभी-कभी श्रीगौरसुन्दर अभक्त-संप्रदायके दौरात्म्यकी बाते सुनकर—

“संहारिमु सब” बलि’ करये हुकार ।

“मुजि सेइ, मुजि सेइ”, बले’ बारे-बार ॥

—चै० भा० म० २।६६

[‘सबका सहार कर दूँगा’, कहकर हुकार करते और बार-बार कहते कि ‘मैं वही हूँ, मैं वही हूँ’ ।]

श्रीशचीमाता श्रीगौरसुन्दरके इन सब भावोको देखकर ‘उनको वायुव्याधि हो गई है’, ऐसा समझने लगी । तब अनेको लोग अनेको प्रकारकी औषधिकी व्यवस्था भी करने लगे । पुत्र-वात्सल्यके कारण सरल चित्तवाली श्रीशचीमाताने श्रीश्रीवास पंडितको बुलाकर उनकी सम्मति लेनी चाही । श्रीश्रीवास पंडितने आकर श्रीगौरसुन्दरको देखकर समझ लिया कि प्रभुके शरीरमें श्रीकृष्ण-प्रेमके विकार प्रकट हुए हैं ।

* चै० भा० म० २।४४-४५ देखिये ।

श्रीश्रीवासकी बातको सुनकर श्रीशचीमाताको आश्वासन तो मिला, परन्तु पुत्र पीछे कही कृष्णभक्त होकर ससारका परित्याग न कर दे— इस चिन्ताने ही अप्राकृत-वात्सल्यरससे मुग्ध श्रीशचीमाताके हृदयपर अधिकार कर लिया ।

एक दिन श्रीगौरसुन्दर श्रीगदाधर पंडितको साथ लेकर श्रीमायापुरमें ‘अद्वैत-भवन’में श्रीअद्वैताचार्यको देखनेके लिये गये । देखते क्या है कि आचार्य दोनों भुजाएँ उठाकर हुंकार करके गगाजल तुलसीके द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा कर रहे हैं । श्रीअद्वैताचार्यको देखते ही महाप्रभु विश्वम्भर महान् प्रेमावेशसे मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़े । श्री-श्रीआचार्यने अपने भक्तियोगके प्रभावसे प्रच्छन्नावतारी श्रीगौरहरिको पहचान लिया । श्रीअद्वैताचार्य पूजाका उपकरण लेकर श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणोंकी पूजा करते-करते ‘नमो ब्रह्मण्यदेवाय’—मन्त्र-श्लोकका पुन-पुन सानन्द पाठ करने लगे । श्रीगदाधरने श्रीअद्वैताचार्यको इस प्रकार स्तुति करते देखकर, दाँतोतले जीभ दबाकर श्रीआचार्यसे कहा,— “बालकके प्रति आपका इस प्रकारका व्यवहार उचित नहीं है ।” श्रीमदाचार्य बोले,—“गदाधर, तुम कुछ दिनोंके बाद ही इस बालकको जान सकोगे कि ये कौन हैं ?” श्रीगौरसुन्दरने बाह्य-दशा प्राप्त करनेके बाद आत्मगोपन करके श्रीअद्वैताचार्यकी स्तुति आरम्भ की और भावाविष्ट आचार्यकी चरणधूलि ग्रहण की ।

श्रीअद्वैताचार्य बोले,—“विश्वम्भर, सभी वैष्णवोंकी इच्छा है कि वे तुम्हारे साथ मिलकर श्रीकृष्ण-सकीर्तन करे, श्रीकृष्णकथाके रसमें कालयापन करे तथा निरन्तर तुम्हारा दर्शन प्राप्त करते रहें ।” श्रीगौर-हरि आचार्यकी बातसे सहमत हो गये ।

इधर श्रीअद्वैतप्रभु श्रीगौरहरिके भक्त-वात्सल्यकी परीक्षा करनेके लिये चुपकेसे शान्तिपुरमें अपने घर चले गये ।

महाप्रभु भक्तगणोंके साथ प्रतिदिन श्रीकृष्णकीर्तन करते थे , प्रभुके प्रेमावेशको देखकर सन्दिग्ध व्यक्ति भी हृदयमें प्रभुकी ‘ईश्वर’के

रूपमे उपलब्धि होती थी। विभिन्न भक्त अपने-अपने विभिन्न रसोंके अनुसार प्रभुको अनुभव करने लगे। बाह्यदशामे, महाप्रभु भक्तोंका गला पकड़कर रोते-रोते 'श्रीकृष्णकर्णामृत'के श्लोकका कीर्तन करते थे,—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि, हरे त्वदालोकनमन्तरेण ।

अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो, हा हन्त ! हा हन्त ! कथं नयामि ॥

—श्रीकृष्णकर्णामृत, ४१

तोमार दर्शन बिने,

अधन्य एइ रात्रि-दिने,

एइ काल ना याय काटन ।

तुमि अनाथेर बन्धु,

अपार करुणासिन्धु,

कृपा करि' देह' दरशन ॥

—चै० च० म० २।५६

[तुम्हारे दर्शनोके बिना, इन अधन्य रात्रि-दिनोमे यह समय नहीं काटा जाता। तुम अनाथके बन्धु हो, अपार करुणाके सागर हो, कृपा करके दर्शन दो।]

श्रीविश्वम्भर अन्तरंग भक्तोंके सामने अपने कृष्ण-वियोगजनित दुःखको अत्यन्त दीन भावसे निवेदन करते थे। गोपी-भावसे विभावित होकर गयासे लौटते समय कन्हाई-नाट्यशालामें वे किस प्रकार एक अपूर्व तमाल-श्यामल सुन्दर-किशोर मुरलीवदन श्रीकृष्णका दर्शन पाकर पुनः उस दर्शनसे वंचित हो गये थे, यह बात कहते-कहते वे प्रेम-मूर्छित हो जाते थे। घर जाकर भी विश्वम्भर घरका कामकाज नहीं कर पाते थे। सर्वदा कृष्ण-प्रेमानन्दके आवेशमे मग्न रहते थे। सदा ही मुँहमें 'कृष्ण कहाँ?', 'कृष्ण कहाँ?', वैष्णवको देखते ही 'कृष्ण किस स्थानमें है?', यदि कोई कुछ पूछता, तो 'कृष्ण कहाँ?',—यही बात बोलते थे। एक दिन श्रीगदाधरको देखकर श्रीविश्वम्भरने 'पीतवसन श्यामल कृष्ण कहाँ है?' यह प्रश्न पूछा। "तुम्हारे हृदयमें ही कृष्ण है"—श्रीगदाधरके यह कहनेपर श्रीविश्वम्भर नखाग्रके द्वारा अपने वक्षस्थलको विदीर्ण करनेके लिये उद्यत हो गये। श्रीगदाधरने

बहुत ही कठिनाईसे उन्हें रोकते हुए सान्त्वना दी। इससे श्रीशची-माताने श्रीगदाधरको निरन्तर श्रीविश्वम्भरके पास रहनेके लिये कहा।

श्रीशचीनन्दन प्रतिदिन अपने सहचरोके साथ सारी रात अपने घरमें उच्च-स्वरसे कीर्तन करते थे। इससे नवद्वीपके बहिर्मुख लोगोकी नीद टूट जानेके कारण वे नाना प्रकारकी कटूक्ति, विशेषतः श्रीश्रीवास पंडितके प्रति नाना प्रकारका गर्जन-तर्जन और भय-प्रदर्शन करते थे। पाखण्डी लोग कहने लगे,—“हिन्दूधर्म-विरोधी राजानुचरण शीघ्र ही इस प्रकारकी कीर्तन-ध्वनि सुनकर वैष्णवोको पकडकर ले जायेंगे और उनके ऊपर अत्याचार करेंगे। श्रीविश्वम्भर निर्भय होकर नवद्वीप-नगरमें भ्रमण करते थे। एक दिन श्रीविश्वम्भर श्रीनृसिंह पूजामे रत श्रीश्रीवासके किवाड बन्द घरके पास जाकर दरवाजेपर पदाघात करते हुए बोले,—“श्रीवास, तू किसकी पूजा करता है? देख तेरे अभिष्ट देव यहाँ उपस्थित हैं।”

श्रीश्रीवास पंडित श्रीगौरहरिको चतुर्भुजी मूर्तिमे देखकर स्तम्भित हो उठे। श्रीगौरहरिने अपना तत्त्ववर्णन तथा अपने अवतारका कारण बतलाकर एव श्रीअद्वैताचार्यका प्रभुकी परीक्षाके हेतु शान्तिपुर गमन आदि विषयोका उल्लेख करते हुए श्रीश्रीवास पंडितको अपनी स्तुति करनेके लिये कहा। पंडितने ‘नौमीडय तेऽभवपुषे तडिदम्बराय’ (भा० १०।१४।१) श्लोकका पाठ करके प्रभुका स्तव किया। गोष्ठीके साथ श्रीश्रीवास पंडितने प्रभुके आदेशसे उनकी पूजा की। महाप्रभु श्रीश्रीवासको अभयदान देते हुए बोले कि, ‘वे भक्तिविरोधी अहिन्दू राजाको भी अपने अनुचरोके साथ श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त कराएँगे।’ उस समय श्रीश्रीवासकी भतीजी श्रीनारायणी—‘श्रीचैतन्यभागवत’के लेखक श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी माता—केवल चार वर्षकी बालिका थी। महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीनारायणी ‘हा कृष्ण!’ कहकर प्रेमाश्रु-विसर्जन करने लगी। प्रभुकी इच्छासे चार वर्षकी बालिका भी

कृष्णप्रेममे उन्मत्त हो सकती है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण प्रदर्शन करके महाप्रभु ने श्रीश्रीवासको निर्भय कर दिया ।



चौबीसवाँ परिच्छेद

श्रीमुरारि-गुप्तके घरमें

श्रीगौरसुन्दर क्रमशः अपने आत्मस्वरूपको प्रकट करने लगे । एक दिन श्रीमुरारि-गुप्तके घरमें श्रीवराह-मूर्तिको प्रकट किया । जो लोग भगवान्‌को निरतिशय निराकार निर्विशेष कल्पना करके उनकी अचिन्त्य शक्तिको नहीं मानते हैं, श्रीगौरसुन्दर श्रीवराहरूपमें उनके प्रति इस प्रकार क्रोध प्रकट करने लगे,—

“हस्त-पद-मुख मोर नाहिक लोचन ।
 एइ मत बेदे मोरे करे’ विडम्बन ॥
 काशीते पडाय बेटा प्रकाश-आनन्द ।
 सेइ बेटा करे’ मोर अंग खड खड ॥
 बाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने ।
 सब अंगे हइल कुष्ठ, तबू नाहि जाने ॥
 सर्वयज्ञमय मोर ये अंग पवित्र ।
 अज-भव-आदि गाय याहार चरित्र ॥
 पुण्य पवित्रता पाय ये-अंग-परशे ।
 ताहा ‘मिथ्या’ बले’ बेटा केमन साहसे ?”

—चै० भा० म० ३।३६-४०

[वेदकी विकृत-व्याख्या करते हुए कहता है, मेरे हाथ, पैर, मुख, नेत्र नहीं है । काशीमें बेटा प्रकाशानन्द पढाता है, वह मेरे अंगके टुकड़े-टुकड़े करता है । वेदकी व्याख्या करता है, पर मेरे विग्रहको नहीं

मानता । सारे अगमें कुष्ठ हो गया तो भी वह नहीं समझता । मेरा जो शरीर सर्वयज्ञमय और पवित्र है, ब्रह्मा-शकर जिसका चरित्र गाते हैं, जिसके अगस्पर्शसे पुण्य पवित्रता प्राप्त होती है, उसको वह बेटा किस साहससे मिथ्या कहता है ?]

महाप्रभु श्रीवराहमूर्तिमें कहते हैं, कि,—काशीमें प्रकाशानन्द नामक एक प्रसिद्ध सोऽह्वादी अध्यापक वेदोकी व्याख्या करते समय श्रीभगवान्‌के सुमधुर सच्चिदानन्द आकारकी निन्दा करता रहता है । श्रीभगवान्‌के नित्य आकारको स्वीकार न करनेके कारण प्रकाशानन्द भगवान्‌के श्रीचरणोका बड़ा अपराधी है । इस अपराधके फल-स्वरूप उसके सारे शरीरमें कुष्ठ रोग हो गया था, तथापि उसके हृदयमें ज्ञानोदय नहीं हुआ । मैं अपने भक्तके चरणोंमें किये गये अपराधको किसी प्रकार सहन नहीं कर सकता । यदि मेरा पुत्र भी मेरे भक्तसे द्वेष करता है तो उस प्रिय पुत्रका भी मैं विनाश कर देनेके लिये तैयार हूँ । मैं भक्तकी रक्षाके लिये अपने निज पुत्रको भी काटकर फेंक सकता हूँ । 'नरक' नामका मेरा एक महा बलवान् पुत्र हुआ था । मैंने उसे धर्मोपदेश दिया था । मुझसे सदुपदेश प्राप्त कर उसका जीवन कुछ दिनोंके लिये पवित्र हो गया था, परन्तु काल-क्रमसे बाण-राजाके दुष्ट ससर्गसे मेरे भक्तोके प्रति विरुद्धाचरण करनेकी उसे दुर्बुद्धि हो गयी ; इस कारणसे मैंने उस भक्तद्रोही पुत्रको काटकर भक्तकी रक्षा की थी । अपने प्रति अपराधी व्यक्तिको मैं क्षमा करता हूँ, परन्तु अपने भक्तके प्रति अपराध करनेवालेको मैं कभी क्षमा नहीं करता ।”

वेदने प्राकृत आकारका निषेध करनेके लिये ही परब्रह्मको निराकार या निर्विशेष कहा है । इसके द्वारा प्राकृत आकार और प्राकृत विशेष धर्मका निषेध करके अप्राकृत नित्य सच्चिदानन्द आकार ही स्थापित किया गया है । भगवान्—सर्वशक्तिमान् हैं । हम लोग अपने विचारमें जिसका सामजस्य नहीं कर पाते, भगवान्‌के लिए वह भी संभव है । भगवान्‌का नित्य चिदानन्द आकार भी हमारे ही आकारके समान

अन्तित्य आकार होगा, इस प्रकारका अनुमान करना, भगवान्की सर्वशक्तिमत्ताको अस्वीकार करना मात्र है,—यही है प्रच्छन्न नास्तिकता। जो सर्वशक्तिमान् हैं उनमें समस्त शक्तियाँ हैं। जिनमें सारी शक्तियाँ नहीं ह, वे परमेश्वर नहीं हैं।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

ठाकुर श्रीहरिदास

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्रायः तीस-पैंतीस वर्ष पहले उस समयके यशोहर प्रदेशके 'बूढ़न' * ग्राममें ठाकुर श्रीहरिदास आविर्भूत हुए। कोई-कोई कहते हैं कि श्रीहरिदास मुसलमान-कुलमें अवतीर्ण हुए, और किसीके मतसे वे ब्राह्मण माता-पितासे अवतीर्ण होकर शैशवमें ही मातृपितृहीन हो गये थे, तथा अहिन्दूके घरमें लालन-पालन होनेके कारण 'अहिन्दू' माने गये। बाल्यकालसे ही श्रीहरिदासकी श्रीहरिनाममें स्वाभाविक रुचि थी। वे यशोहर जिलेके 'बेनापोल' गाँवमें निर्जन बनमें एक कुटि बनाकर प्रतिदिन दिनरातमें तीन लाख हरिनाम लेते और ग्रामस्थ ब्राह्मणके घर भिक्षा लेकर अपना निर्वाह करते थे। श्रीहरिदासके इस प्रकारके चरित्रसे मुग्ध होकर सभी लोग श्रीहरिदास-जीके प्रति हृदयसे श्रद्धा-भक्ति करते थे। परन्तु उसी गाँवके उस समयके मत्सर-स्वभावके जमींदार रामचन्द्र खाने, युवक श्रीहरिदासका

* पहले 'बूढ़न' परगना यशोहर जिलेके अन्तर्गत था, किन्तु आजकल खुलना जिलेके अन्तर्गत सातक्षीरा महकमेमें है। २४ परगना जिलेके बसिरहाट महकमेसे जलमार्ग द्वारा साँतापुल तक लगभग २६ मील मोटरलचमें जाकर वहाँसे पैदल चलकर दस मीलके भीतर बूढ़न परगना है, किन्तु बूढ़न गाव कहाँ था यह अभी तक ठीक नहीं जाना जा सका है। कोई-कोई इस स्थानके केडागाछि गावको ठाकुर श्री-हरिदासका आविर्भाव-स्थान बताते हैं।

वैराग्य नष्ट करनेके लिए एक सुन्दरी वेश्याको उनके पास भेजा । वह कुलटा श्रीहरिदासका धर्म नष्ट करनेके लिये लगातार तीन रात नाना प्रकारकी चेष्टा करके भी कृतकार्य न हो सकी । घड़ीभर भी श्रीहरिदासको श्रीहरिनाम-सकीर्तनके सिवा दूसरा कोई कार्य करते न देखकर उस वेश्याका चित्त बदल गया । तब वह वेश्या श्रीहरिदासजीसे क्षमा-प्रार्थना करती हुई अपने पापमय जीवनका परित्याग करके श्रीहरिनामका आश्रय लेनेके लिये व्याकुल हो उठी । नामाचार्य श्रीहरिदासने वेश्याको उसके घरका सर्वस्व ब्राह्मणोंको दानकर सदा तुलसीकी सेवा तथा रातदिन तीन लाख हरिनाम लेनेके लिये उपदेश प्रदान किया तथा स्वयं 'बेनापोल' त्याग करके चाँदपुरमे * जाकर श्रीबलराम आचार्यके घर रहने लगे ।

श्रीबलराम आचार्य हरिदास ठाकुरकी कृपा प्राप्त कर तथा उनकी सेवा करके कृतार्थ हो गये । गोवर्धन मजुमदारके पुत्र श्रीरघुनाथ उस समय बालक और छात्र थे । बालक श्रीरघुनाथ श्रीबलराम आचार्य के घर जाकर श्रीहरिदास ठाकुरका दर्शन और कृपा प्राप्त करते थे । उस समय श्रीबलराम आचार्यकी प्रार्थनासे श्रीहरिदास हिरण्य-गोवर्धनकी सभामें गये । ठाकुर श्रीहरिदास प्रतिदिन तीन लाख हरिनामका जप और कीर्तन करते थे । उस सभाके पड़ितोमे किसी-किसीने नामाभासको ही शुद्ध नाम समझकर नामकीर्तनका फल—'पापक्षय और मुक्तिलाभ' स्थापित किया । परन्तु श्रीहरिदास ठाकुरने श्रीमद्भागवतके प्रमाणसे यह घोषित किया कि, 'श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति ही नामका फल है तथा पापनाश और मुक्ति नामाभासका फल है ।' उसी समय गोपाल चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मणने इस सिद्धान्तको सुनकर अत्यन्त क्रोध-

* चाँदपुर—हुगली जिलेमें 'त्रिवेणी'के समीप यह गाँव था । स्थानीय कायस्थ जमीदार हिरण्य और गोवर्धन मजुमदारके पुरोहित थे श्रीबलराम आचार्य । श्रीगोवर्धन मजुमदार श्रीरघुनाथदास-गोस्वामी प्रभुके पूर्वाश्रमके पिता थे । हिरण्य मजुमदारके ही छोटे भाई गोवर्धन थे ।

पूर्वक कहा,—“कोटि जन्ममें ब्रह्मज्ञान होनेपर भी जो मुक्ति नहीं प्राप्त होती, नामाभासके द्वारा उस मुक्तिकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।” उद्धत चक्रवर्ती अत्यन्त स्पृहकि साथ श्रीहरिदास ठाकुरसे बोले,—“यदि आपके कथनानुसार नामाभासके फलसे मुक्ति न हो तो आप दण्डस्वरूप अपनी नाक काट लेंगे?” श्रीहरिदास अत्यन्त दृढताके साथ बोले,—“यदि हरिनामके आभाससे मुक्ति न हो, तो निश्चय ही मैं अपनी नाक काट लूँगा।” तीन दिन बीतते ही न बीतते देखा गया कि उस दुर्जन ब्राह्मणकी ही अतिसुन्दर ऊँची नाक और चम्पाकी कलीके समान हाय पैरकी अगुलियाँ कुण्ड-व्याधिसे आक्रान्त हो उठी।

श्रीहरिदास ब्राह्मणकी यह अवस्था देखकर अत्यन्त ही दुःखित हुए और वहाँसे ‘शान्तिपुर’ चले आये।

उस समय श्रीमत् अद्वैताचार्य श्रीहट्ट (सिलहट्ट)से आकर शान्तिपुर में वास करते थे। ‘फुलिया*’ और ‘शान्तिपुर’में उस समय ब्राह्मण-समाज प्रबल था। श्रीअद्वैताचार्यने श्रीहरिदासके श्रीनाम-भजनके लिये एक निर्जन स्थानमें एक ‘गुफा’ तैयार करा दी। आचार्य प्रतिदिन श्रीहरिदासको अपने घर भोजन कराते थे। उन्ही दिनो श्रीअद्वैताचार्यके पितरोंके श्राद्धका समय आनेपर उन्होंने श्रीहरिदासको वह श्राद्ध-पात्र प्रदान किया,—

‘तुमि खाइले ह्य कोटि-ब्राह्मण-भोजन’।

एत बलि’ श्राद्ध-पात्र कराइला भोजन ॥

—चै० च० अ० ३।२२०

[‘तुम्हारे भोजन करनेसे करोड़ो ब्राह्मणोंका भोजन करना होता है’, इतना कहकर श्राद्ध-पात्र भोजन करा दिया।]

उसी समय एक रात स्वयं मायादेवी श्रीहरिदासको छलनेके लिये आयी, परन्तु श्रीहरिदासकी कृपासे माया भी कृष्ण-नाम प्राप्तकर धन्य

* शान्तिपुरके निकट एक गाँव।

हो गयी। मुसलमान-कुलमें उत्पन्न होकर श्रीहरिदास हरिनाम लेने है, यह सुनकर काजीने नवाबके पास श्रीहरिदासके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। नवाबके कर्मचारियोंने श्रीहरिदासको पकड़कर कारागारमें बन्दी कर दिया। श्रीहरिदास कारागारमें भी अन्यान्य अपराधी बन्दियोंको सदुपदेश प्रदान करने लगे। नवाबने श्रीहरिदाससे उनको अपने जातीय-धर्मके उल्लंघनका कारण पूछा, तो श्रीहरिदास ठाकुर बोले,—

* * *

शुन, बाप ! सबारइ, एकइ ईश्वर ॥

नाम-मात्र भेद करे' हिन्दुये यवने ।

परमार्थे 'एक' कहे कोराणे पुराणे ॥

—चै० भा० आ० १६।७६-७७

[सुनो बापजी, सबके ईश्वर एक ही हैं। हिन्दू और यवन उन्हें अलग-अलग नामसे पुकारते हैं, सिर्फ यही अंतर है। मूलतः कुरान और पुराण दोनों ही उसी एक (ईश्वरकी) बात कहते हैं।]

श्रीहरिदासकी इस बातसे काजी सन्तुष्ट न हुआ और श्रीहरिदासको दण्ड देनेके लिये नवाबसे अनुरोध किया। नवाबके नाना प्रकारके भय प्रदर्शन करनेपर भी हरिदास ठाकुर बिन्दुमात्र भयभीत नहीं हुए उल्टे सुदृढ़ भावसे बोले,—

“खण्ड-खण्ड हइ' देह याय यदि प्राण ।

तबु आमि वदने ना छाडि हरिनाम ॥”

—चै० भा० आ० १६।१५४

[देहके टुकड़े-टुकड़े होकर चाहे प्राण भी चले जायें, तब भी मैं मुँहसे हरिनाम नहीं छोड़ूँगा।]

काजीके आदेशसे उसके कर्मचारियोंने श्रीहरिदासको अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक बाईस बाजारोंमें वेनाघात करनेपर भी श्रीहरिदासके शरीरमें किसी प्रकार दुःखका चिह्न प्रकट नहीं हुआ और न प्राण-

वियोग ही हुआ, इससे वे लोग बहुत विस्मित हो उठे। पीछे कही मारनेवालोका किसी प्रकारका अमगल न हो जाय, इसके लिये श्रीहरि-दासने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की,—

“ए-सब जीवेरे, कृष्ण ! करह प्रसाद ।

मोर द्रोहे नहु ए-सबार अपराध ॥”

—चै० भा० आ० १६।११३

[हे कृष्ण, इन सब जीवोपर कृपा करो। मेरे प्रति द्रोह करनेके कारण इन सबका अपराध न लेना।]

श्रीहरिदासको मार न सकनेके कारण काजीके कर्मचारियोंको काजी कठोर दण्ड देगा, यह सुनकर श्रीहरिदासने कृष्णके ध्यानमें समाधि लगाकर अपनेको मृतवत् प्रदर्शित किया। श्रीहरिदासको कब्रमें गाड़नेसे कही उसकी सद्गति हो जायगी, यह सोचकर श्रीहरिदासको असद्गति प्राप्त करानेके उद्देश्यसे काजीने श्रीहरिदासको श्रीगगामें फेंक देनेका आदेश दिया। श्रीहरिदास बहुते-बहुते किनारेपर आये और बाह्यदशा प्राप्तकर पुन ‘फुलिया’ ग्राममें उपस्थित हुए और वही पूर्ववत् उच्च स्वरसे श्रीकृष्णनाम-कीर्तन करते रहे।

फुलियामें जिस गुफामें श्रीहरिदास भजन करते थे, वहाँ एक महान् विषधर सर्प रहता था। ओझा लोगोके अनुरोधसे जब श्रीहरिदास उस गुफाको त्याग करनेकी इच्छा करने लगे तब वह सर्प अपने-आप गुफा त्याग करके चला गया।

एक दिन किसी गृहस्थके घर एक भगवद्भक्त नागराजाविष्ट सर्पक्रीडक (सँपेरा) कालिय-दमनका गीत गाते-गाते नृत्य करने लगा। श्रीहरिदास ठाकुर अचानक कहीसे वहाँ आ उपस्थित हुए तथा श्रीकृष्णके कालियनाग-दमन-लीलाका गान सुनकर प्रेमावेशसे मूर्छित होकर गिर पड़े। उनके शरीरमें अद्भुत सात्विक भाव प्रकट हो उठे। इससे वह सपेरा हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया। दर्शक लोग प्रेमोन्मत्त महाभाभवतवर श्रीहरिदासकी श्रीचरणधूलि लेकर अपने-अपने अग्रमें

लेपन करने लगे। यह देखकर मत्सर-स्वभाव एक भण्ड धूर्त ब्राह्मण इसी प्रकारकी सम्मान-प्राप्तिकी आशासे श्रीहरिदास ठाकुरका अनुकरण करके नाचते-नाचते जमीनपर गिर पड़ा और मूर्छित होनेका कपट जाल बिछाया। सँपेरा उस ब्राह्मणकी धूर्तताको ताड़ गया और उस भण्डको बेत मारकर जर्जरित करके उसे वहाँसे भगा दिया। भावाविष्ट सँपेरेने सबको श्रीहरिदासके अप्राकृत भावावेशकी अकृत्रिमता तथा मत्सरयुक्त पाखंडी ब्राह्मणके स्पर्द्धामूलक अभिनयका भेद लोगोको समझा दिया।

उन दिनो बहिर्मुख व्यक्तिमात्र ही उच्च (स्वरसे) हरिकीर्तनके विरोधी थे, तथा उच्च हरिकीर्तनके फलसे देशमें नाना प्रकारकी दुरवस्था उपस्थित होती है, इस प्रकारका अभियोग लगाकर उच्च कीर्तन करनेवाले वैष्णवोंके विरुद्ध आचरण करते थे। 'हरिनिदी' ग्रामके दुष्ट-प्रकृतिके एक ब्राह्मणने एक दिन श्रीहरिदासको बुलाकर कहा,—“उच्च-स्वरसे श्रीहरिनामकीर्तन करना अशास्त्रीय है, मन-ही-मन जप करना ही शास्त्रीय विधि है, पंडित सभामें इसका विचार होना चाहिए।” ठाकुर श्रीहरिदासने शास्त्रके प्रमाणों द्वारा बता दिया कि मन-ही-मन नाम जप करनेसे केवल अपना ही उपकार होता है, परन्तु उच्च कीर्तनके द्वारा अपना और दूसरेका भी उपकार होता है,— यहाँ तक कि पशु-पक्षी, वृक्ष-लताके लिये भी उससे सुकृत-सचय होता है।

उस समय श्रीनवद्वीप-श्रीमायापुरमें श्रीअद्वैताचार्यकी पाठशाला और वैष्णव-सभा थी। नवद्वीपमें श्रीहरिदासको पाकर श्रीअद्वैतप्रभु विशेष आनन्दित हुए।

श्रीगयासे लौटनेके बाद धीरे-धीरे श्रीगौरसुन्दरने हरिसकीर्तनका नेतृत्व ग्रहण किया। श्रीश्रीवासके घर जो नित्य सकीर्तनोत्सव प्रारम्भ हुआ, उसके प्रधान सहायक हुए—ठाकुर श्रीहरिदास और श्रीश्रीवास पंडित।



छब्बोसवाँ परिच्छेद

श्रीनित्यानन्दके साथ मिलन और श्रीन्यास-पूजा

ईस्टर्न रेलवेके लूप लाइनपर 'मल्लारपुर' स्टेशनसे प्रायः चार कोस पूर्व वीरभूम जिलेमें प्राचीन 'एकचाका' वा 'एकचक्र' ग्राम अवस्थित है। श्रीनित्यानन्द प्रभुके पुत्र श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) प्रभुके नामानुसार पञ्चात् इस स्थानका नाम 'वीरचन्द्रपुर' हो गया। श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व मैथिल ब्राह्मण श्रीहाडो वा श्रीहाडाइ ओझा तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीपद्मावतीके घर उपर्युक्त 'एकचाका'-गाँवमें माघ शुक्ल त्रयोदशी तिथिको श्रीनित्यानन्दप्रभु अवतीर्ण हुए।

एक वैष्णव-सन्यासी अतिथि-रूपमें उपस्थित होकर श्रीहाडाइ-पद्मावतीके प्राणोकी पुतली द्वादश-वर्षीय श्रीनित्यानन्दको भिक्षा-स्वरूपमें ले गया। उस वैष्णव-सन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्दने बहुतसे तीर्थोंका भ्रमण किया। उसी पश्चिम-भारतमें भ्रमण करते समय श्रीनित्यानन्दके साथ सपार्षद महाप्रेमिक श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादका साक्षात्कार और प्रेमालाप हुआ।

बीस वर्षतक भारतके समस्त तीर्थोंमें घूमकर अन्तमें श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवृन्दावन आये। उसी समय श्रीगौरसुन्दरने श्रीनवद्वीपमें अपना स्वरूप प्रकट किया था। श्रीनित्यानन्द मानो श्रीगौरसुन्दरके महाप्रकाशकी अपेक्षा करके ही श्रीवृन्दावनमें वास कर रहे थे। श्रीवामनवद्वीपमें श्रीगौरसुन्दरने आत्मप्रकाश किया है, यह जानकर श्रीनित्यानन्दने श्रीवृन्दावनसे अति शीघ्र नवद्वीपमें आकर श्रीनन्दनाचार्यके घर अवस्थान किया। श्रीनन्दनाचार्य नवद्वीपवासी वैष्णव थे।

इधर श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्दके आनेके पूर्व ही वैष्णवोंसे कह दिया था कि दो ही तीन दिनमें कोई एक महापुरुष नवद्वीपमें आयेंगे। उस समय वैष्णव लोगोंने श्रीमहाप्रभुकी बातके रहस्यको नहीं समझा

था । जिस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीनवद्वीपमें आये, उसी दिन महाप्रभु ने वैष्णवोंसे कहा कि उन्होंने गत रातको एक स्वप्न देखा है, मानो तालध्वजाके रथमें नीलवस्त्र धारण किये हुए एक महापुरुष उनके घरके द्वारपर आये हैं । महाप्रभुने श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीश्रीवास पंडित को नवद्वीपमें उन महापुरुषका पता लगानेके लिये कहा । पंडित श्रीश्रीवास और श्रीहरिदास समस्त नवद्वीपमें तथा आसपासके गाँवोंके प्रत्येक घरमें पता लगाकर भी किसी भी महापुरुषको कहीं देख न सके । महाप्रभुके पास जब वे लोग यह समाचार लेकर लौटे तो स्वयं महाप्रभु उन दोनोंको लेकर सीधे श्रीनन्दनाचार्यके घरमें उपस्थित हुए तथा वहाँ एक अदृष्टपूर्व ज्योतिर्मय महापुरुषको दिखलाया । ये ही हैं वे पतित-पावन श्रीनित्यानन्द ।

महाप्रभुने भक्तोंके सामने श्रीनित्यानन्दकी महिमा प्रकट की । एक पूर्णिमाकी रात्रिमें महाप्रभुकी इच्छासे श्रीनित्यानन्द प्रभुने 'श्रीव्यास-पूजा' करनेका सकल्प किया । सर्वशास्त्रकर्ता श्रीव्यासकी कृपासे ही हमलोग श्रीभगवान्की सारी कथाएँ जान सकते हैं, इसीलिये साधुलोग श्रीव्यास-पूजा किया करते हैं । श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा भी 'व्यास-पूजा' है । श्रीमायापुरमें श्रीश्रीवास पंडितके घर इस व्यास-पूजाका आयोजन हुआ । सर्वशास्त्रज्ञाता श्रीश्रीवास पंडित व्यास-पूजाके आचार्य बने । पहले दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीवास पंडितके घरका द्वार बन्द करके भक्तगणके साथ अधिवास-सकीर्तन किया । दूसरे दिन प्रातःकाल गंगा-स्नानादि कृत्य सम्पन्न करके श्रीनित्यानन्द-प्रभुने श्रीश्रीवासप्रदत्त वनमाला श्रीगौरहरिके गलेमें पहनाकर श्रीव्यास-पूजा सम्पन्न की । श्रीगौरहरिने श्रीनित्यानन्दप्रभुको अपनी शख-चक्र-गदा-पद्म-हल-मूसल धारण की हुई षड्भुज-मूर्तिका दर्शन कराया ।

दिन भर श्रीव्यासपूजा-महोत्सवका सकीर्तन हुआ । श्रीगौरहरिने श्रीव्यासका प्रसाद वैष्णवगणको अपने हाथसे वितरण किया । श्रीश्रीवास पंडितके दास-दासी तक श्रीभगवान्का प्रसाद पाकर धन्यातिधन्य हुए ।



सत्ताईसवाँ परिच्छेद श्रीअद्वैताचार्यके सामने आत्मप्रकाश

श्रीव्यास-पूजाके बाद भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरने श्रीश्रीवास पंडितके छोटे भाई श्रीश्रीराम (श्रीरामाई) पंडितको श्रीअद्वैताचार्यके पास शान्ति-पुर भेजकर अपनी प्रकाश-वार्ताके विषयमें सूचित किया,—श्रीअद्वैत आचार्यने जिनके लिये इतनी आराधना की थी, वे प्रभु ही गोलोकसे भूलोकमें अवतीर्ण हुए हैं, तीर्थ-भ्रमणके अन्तमें श्रीनित्यानन्द भी श्रीमन् महाप्रभुके सग आकर मिल गये हैं ।

श्रीअद्वैताचार्य श्रीरामाई पंडितका दर्शनकर आनन्दसे विह्वल हो उठे तथा श्रीरामाईसे सारी बातें सुनकर अपनी पत्नी श्रीसीतादेवीके साथ नाना प्रकारकी भेंट लेकर महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीनवद्वीपकी ओर चल पड़े । आचार्यने महाप्रभुके साथ विनोद करनेके लिये रास्तेमें श्रीरामाईसे कहा दिया कि वे महाप्रभुसे जाकर कहें,—“आचार्यने आपके अनुरोध करनेपर भी नवद्वीपमें आना स्वीकार नहीं किया ।” इधर अद्वैताचार्य छिपे रूपमें श्रीनन्दनाचार्यके घर रहने लगे । सर्वान्तर्यामी श्रीश्रीगौरसुन्दर आचार्यके मनकी बात जानकर भावावेशमें विष्णुके सिंहासनपर बैठकर कहने लगे,—“आचार्य आ रहे हैं ! आचार्य आ रहे हैं ! आचार्य मेरे अन्तर्यामित्वकी परीक्षा करना चाहते हैं ! मैं जान गया हूँ, श्रीअद्वैताचार्य श्रीनन्दनाचार्यके घरमें छिपे हुए हैं । रामाई, तुम अभी जाकर उनको ले आओ ।” श्रीमन्महाप्रभुके आदेशानुसार रामाई श्रीअद्वैताचार्यको लानेके लिये श्रीनन्दनाचार्यके घर गये और उनसे सारी बातें कही, तब सहधर्मिणीके साथ श्रीअद्वैताचार्यने आनन्दपूर्वक दूरसे ही भूमिष्ठ होकर प्रणाम और स्तुति पाठ करते-करते श्रीमहाप्रभुके सामने आकर उनके अपूर्व महैश्वर्यका दर्शन किया । श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुकी महिमा और अद्वैतकी दयाके विषयमें कीर्तन

करते-करते महाप्रभुके श्रीचरणोंको प्रक्षालन कर पचोपचारसे उनकी पूजा की और “नमो ब्रह्मण्यदेवाय” श्लोकका उच्चारण करते हुए, प्राणधन श्रीगौरनारायणको प्रणाम किया। उस समय महाप्रभुने अपने गलेकी माला श्रीअद्वैताचार्यको प्रदान कर उनको वर माँगनेके लिये कहा। श्रीअद्वैताचार्य बोले,—“प्रभो, मैं और क्या वर माँगूँगा ? जो वर मैंने चाहा था, वह सभी पा चुका। तुम्हारे सामने नृत्य करनेमें समर्थ हो रहा हूँ, इसीमें मेरा समस्त अभीष्ट पूर्ण हो गया है। प्रभो, यदि तुम मुझको वर देना ही चाहते हो तो तुमसे इसी वरके लिये प्रार्थना करता हूँ कि विद्या, धन, कुल और तपस्याके मदसे मत्त वैष्णवा-पराधीको छोड़कर पृथ्वीपर जितने स्त्री, शूद्र, मूर्ख, चण्डाल, अधम हैं वे सभी तुम्हारे प्रेमरससे आप्लुत हो सके।”

श्रीअद्वैताचार्यकी इस प्रार्थनाके प्रभावसे ही पृथ्वीके आपामर जीव-जगत् (जगत्के पामरसे लेकर ऊँचेसे ऊँचे सभी जीव) श्रीगौरमुन्दरके अपार्थिव प्रेमके अधिकारी हुए हैं।



अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि

श्रीगौरमुन्दर एक दिन अचानक ‘पुण्डरीक’। ‘पुण्डरीक’। कहकर उच्चस्वरसे रोने लगे। सब लोगोंने समझा कि,—कृष्णका एक नाम ‘पुण्डरीक’ है, जान पड़ता है कि महाप्रभु कृष्णको पुकार रहे हैं। परन्तु महाप्रभुने सबसे कहा कि,—“पुण्डरीक विद्यानिधि नामक एक अद्भुत-चरित्रवाले भक्त शीघ्र ही श्रीमायापुरमें आवेंगे।” सचमुच ही शीघ्र श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि नवद्वीपमें आकर उपस्थित हुए।

चटगाँव शहरसे करीब १२ मील उत्तर 'हाटहजारी' थानेके अन्तर्गत और उस स्थानसे दो मील पूर्वकी ओर उस 'मेखला' गाँवमें १४०७ शकाब्दमें माघ मासकी श्रीपंचमी-तिथिको वाणेश्वर गंगोपाध्याय और गंगादेवीके घरमें श्रीपुण्डरीक आविर्भूत हुए ।* श्रीवाणेश्वर घोर शाक्त थे और भैरवी-चक्रमें 'कौलाचार्य'के नामसे उनको सम्मान प्राप्त था ।



श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिकी भजन-कुटी

है कि, जब श्रीपुण्डरीकने श्रीमाधवेन्द्रसे कृपा-प्रार्थना की, तब श्रीपुरी-

* यह विवरण श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिके श्रीपाटस्थ प्राचीन हस्त-लिखित पोथी और वंश-परिचयसे संगृहीत है ।

† जो लोग अप्राकृत स्वरूपशक्ति श्रीराधाकी दासियोंके अनुगत होकर श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते हैं वे शुद्ध शाक्त हैं, और जो अचित् शक्तिके सेवक हैं, वे विद्ध शाक्त हैं ।

श्रीपुण्डरीक घोर शाक्त-समाजमें अवतीर्ण होकर भी बचपनसे ही विद्ध शाक्त-धर्मका† खंडन करने लगे । वे पाठाभ्यास के लिये उस समयके प्रसिद्ध विद्यापीठ श्रीनवद्वीपमें गये थे । श्रीनवद्वीपमें उनका घर था । श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामी प्रभु जिस समय श्रीमायापुर-नवद्वीपमें विचरण करते थे, उसी समय श्रीपुण्डरीकने श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादसे भागवती दीक्षा प्राप्त की । कहा जाता

गोस्वामीने श्रीपुण्डरीकसे कहा था,—“तुम्हारे माता-पिता, आत्मीय-स्वजन और समाज सभी शक्ति-उपासक हैं। यदि तुम शुद्ध वैष्णव-धर्म ग्रहण करते हो तो तुमपर भीष्म निर्यातिन प्रारम्भ हो जायगा, यहाँ तक कि तुमपर प्राण-सकट आ सकता है।”

तब श्रीपुण्डरीकने श्रीपुरी गोस्वामीके सामने हाथ जोड़कर निवेदन किया, —‘प्रभो मैं निर्यातिनके भयसे नहीं डरता। श्रीप्रह्लादने अपने पिता हिरण्यकशिपु और दैत्य-समाजकी लाछना सहकर हरिभजन किया था। उनके आदर्शका अनुसरण कर मैं भी उस प्रकारकी लाछना सहन करनेके लिये प्रस्तुत हूँ, आप मुझपर कृपा करें। आपकी कृपा प्राप्त किये बिना मैं जीवन धारण नहीं करूँगा।’

इससे सतुष्ट होकर श्रीमाधवेन्द्रने श्रीपुण्डरीकको शिष्यरूपमें ग्रहण किया। श्रीपुण्डरीकने श्रीनवद्वीपमें अध्ययन समाप्त कर पंडित-समाजसे ‘विद्यानिधि’की उपाधि प्राप्त की। दीक्षा प्राप्त करनेके बाद जब वे चटगाँव लौटे, तब उनके वैष्णव-वेशको देखकर स्थानीय विद्ध-शाक्त-समाज अत्यन्त रुष्ट हुआ। विद्यानिधि समाजको कुछ भी नहीं मानते, यह देखकर समाजके लोगोंने उनके माता-पितासे कहा कि यदि वे लोग इस प्रकारके कुलागार पुत्रका (?) परित्याग नहीं करते हैं तो हम लोग उनको समाज-च्युत कर देंगे। समाजके शासन, निषेध और शत-शत निर्यातिनके भयसे श्रीपुण्डरीक तनिक भी शुद्ध-भक्तिसे विचलित नहीं हो रहे हैं, यह देखकर शाक्त-समाज, विद्यानिधि ‘बहिस्तन्त्र’ हो गये हैं अर्थात् तन्त्रोक्त कार्यके बाहर अधर्मका आचरण कर रहे हैं, इस प्रकारका प्रचार करने लगा।

श्रीमथुरानाथ श्रीकृष्णके प्रति श्रीब्रजवासियोका विप्रलम्भ-प्रेम, जिस प्रकार श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीरघुपति उपाध्याय, सनोडिया विप्र प्रभृति श्रीगौरपार्षदगणको प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिको भी प्राप्त हुआ। श्रीब्रजलीलामें जो वृषभानुराज हैं, वही श्रीगौरलीलामें श्रीपुण्डरीक

विद्यानिधि है। इसी कारण श्रीगौरसुन्दर (श्रीराधा-भावमे) श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिको 'बाप' कहकर सम्बोधन करते थे।

श्रीपुण्डरीककी लौकिक उपाधि थी—'विद्यानिधि'। श्रीमन्महा-प्रभुने नाम दिया था—'प्रेमनिधि' और 'आचार्यनिधि'। श्रीपुण्डरीकने सर्वत्र परविद्यावधूके जीवन श्रीहरिनामका प्रचार किया था, इसी कारण उनका नाम पड़ा 'आचार्यनिधि'। महापुरुष या महाभाग-वत आचार्य यदि गृहस्थके आकारमें या विषयीके आकारमें अवस्थान करे तो उनको गृहस्थ या सामान्य विषयीके रूपमें देखना अपराध है, यही शिक्षा देनेके लिये आचार्यनिधि श्रीपुण्डरीक वैष्णव-विरोधी कुलमें, विषयी और गृहस्थके आकारमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीगदाधर पंडित गोस्वामी-प्रभुने एक अभिनय प्रकट कर—इस अपराधसे हमारी रक्षा की है।

चटगाँवके पटिया थानेके 'छनहरा' गाँवमें श्रीमुकुन्द दत्त ठाकुर आविर्भूत हुए। वे श्रीमहाप्रभुके समीप कीर्तन करते थे। श्रीमुकुन्द श्रीपुण्डरीककी महिमासे अवगत थे। उन्होंने श्रीगदाधर पंडितको श्रीपुण्डरीककी महिमा बतलाकर उन अद्भुत वैष्णवका दर्शन करनेके लिये उनसे अनुरोध किया। श्रीगदाधर पंडित बाल-ब्रह्मचारी थे और विषयोसे विरक्त थे। पहले-पहल श्रीपुण्डरीकको देखकर उनमें भक्ति होना तो दूर रहा, अश्रद्धा ही उत्पन्न हो गयी। पुण्डरीक राजकुमारके समान चन्द्रातपके नीचे, बहुमूल्य पलगपर, ऊँची गद्दीके ऊपर बैठे हैं, महीन वस्त्र पहने हुए हैं, उनके चारो ओर कितने ही प्रकारकी विलासकी सामग्री पड़ी है। दो व्यक्ति सर्वदा मोर-पखसे हवा कर रहे हैं। गदाधरके मनमें आया,—क्या इस प्रकारका विलासी आदमी भी कभी भक्त हो सकता है। श्रीमुकुन्द श्रीगदाधरके मनकी बात समझ गये, उन्होंने श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्णकी महिमाको व्यक्त करनेवाला एक श्लोक ज्यो ही पढ़ा त्यो ही श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि अद्भुत अप्राकृत प्रेमके आवेशमें मूर्छित हो गये। उनके शरीरमें प्रेमके समस्त सात्विक-विकार प्रकट हो आये। श्रीगदाधर श्रीप्रेमनिधिके अद्भुत चरित्रको

देखकर विस्मित हो उठे और उन्होंने यह सोचकर कि इन महा-पुरुषके चरणोंमें मेरा अपराध हुआ है, उन्हींके चरणोंका आश्रय लेकर अपना अपराध मार्जन करानेके लिये दृढ निश्चय किया। श्रीगदाधर पंडितने श्रीविद्यानिधिसे दीक्षा लेनेकी अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए श्रीमहाप्रभुसे अनुमति माँगी, श्रीमहाप्रभुने श्रीगदाधरको तुरन्त श्रीविद्यानिधिके चरणोंका आश्रय लेनेका आदेश दिया।

बाह्य आकृति और क्रिया-मुद्रा देखकर महाभागवत या महापुरुषका चरित्र नहीं समझा जा सकता। श्रीविद्यानिधिके चरित्रके द्वारा यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।



उन्तीसवाँ परिच्छेद श्रीश्रीवास-मन्दिरमें संकीर्तन-रास

श्रीनवद्वीपमें श्रीश्रीवास-भवन श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दके संकीर्तन प्रचारका प्रधान केन्द्र बना। इसी कारण 'श्रीवास-अङ्गन' महाप्रभुकी 'संकीर्तन-रासस्थली' के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीश्रीवासके घर एक वर्ष-तक यह संकीर्तन-रास हुआ था। कहना न होगा कि इसी स्थानसे भुवनमंगल संकीर्तन समस्त विश्वमें फैला।

श्रीश्रीवास पंडितका श्रीनित्यानन्दके प्रति सुदृढ विश्वास देखकर एक दिन श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवाससे कहा,—“श्रीवास, तुमने हमारी अत्यन्त गुप्तनिधि श्रीनित्यानन्दको जब विशेष रूपसे पहचान लिया है तब तुमको मैं एक वर देता हूँ,—

बिडाल-कुक्कुर-आदि तोमार बाड़ीर ।

सवार आमाते भक्ति हइबेक स्थिर ॥

—चै० भा० म० ८।२१

[तुम्हारे घरके सभी लोगोकी यहाँतक कि, बिल्ली-कुत्तोकी भी मुझमें अटल भक्ति होगी ।]

जो लोग श्रीभगवानकी सेवामें निश्छल अनुराग रखते थे, वैसे ही लोगोको बुलाकर उनलोगोके साथ श्रीमन्महाप्रभुने प्रति रात्रि श्री-श्रीवासके आँगनमें श्रीकृष्ण-सकीर्तन आरम्भ किया । किसी-किसी दिन आचार्य श्रीचन्द्रशेखरके घर भी इसी प्रकारका कीर्तन होता था ।

श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीहरिदास, श्रीगदाधर, श्रीश्रीवास, श्रीविद्यानिधि, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीहिरण्य, श्रीगगादास, श्रीवनमाली, श्रीविजय, श्रीनन्दनाचार्य, श्रीजगदानन्द, श्रीबुद्धिमन्त खॉ, श्रीनारायण, श्रीकाशीश्वर, श्रीवासुदेव, श्रीराम, श्रीगोविन्द, श्रीगोविन्दानन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीजगदीश, श्रीश्रीधर पंडित, श्रीश्रीमान्, श्रीसदाशिव, श्रीवक्त्रेश्वर, श्रीश्रीगर्भ, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीब्रह्मानन्द, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीसजय प्रभृति एकप्राण भक्तगण श्रीमन्महाप्रभुके साथ प्रतिरात्रि श्रीश्रीवास-मन्दिरमें सकीर्तन-नृत्य करते थे ।

अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी चिन्ता और आवेशके साथ अत्यन्त तीव्र व्याकुलता जब चित्तराज्यपर अधिकार कर लेती है, तभी हृदयसे जिह्वामें श्रीकृष्णनामकी प्लुत-ध्वनि बाहर निकलती है । जो नास्तिक है, देहको ही सब कुछ मानते हैं, इहलोकके सिवा और कुछ नहीं मानते, वे इसकी उपलब्धि नहीं कर सकते । जिस प्रकार बन्ध्याको पुत्र-स्नेहकी उपलब्धि नहीं हो सकती, इस लोकको ही सर्वस्व बतलानेवाले लोगोको भी उसी प्रकार कृष्णप्रेमकी बात हृदयमें नहीं उतर सकती । ऐसे लोगोको 'पाखंडी' कहा जाता है । इस प्रकारके पाखण्डी लोग महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यको विविध दृष्टिसे देखते और नाना प्रकारसे समालोचना करते थे । कुछ लोग कहते थे कि,—“भक्तगण

व्यर्थ ही चिल्ला-चिल्लाकर मर रहे हैं।” दूसरे कहते थे कि,—“ये लोग मद्यपान करके अत्यन्त मतवाले होकर प्रलाप करते हैं।” कोई कहता,—“ये लोग मधुमतीसिद्धि-विद्यामें पारदर्शी हैं, उसी मन्त्रके प्रभावसे गुप्तरूपमें नीतिविरुद्ध कार्य करते हैं।” जिसकी जैसी चित्तवृत्ति होती, वह उम्मी भावसे महाप्रभु और उनके भक्तोंके विषयमें नाना प्रकारकी बातें कहता था ।

पाखण्डी सम्प्रदायको जब श्रीश्रीवासके घरमें प्रवेशका अधिकार नहीं मिला, तब वह महाप्रभु और भक्तोंके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी कुत्सित बातें करने और नाना प्रकारका भय दिखलाने लगा । किसीने कहा,—“श्रीनिमाइ पंडित पहले अच्छे थे, अब कुसगदोषमें नष्ट हो गये हैं, मद्यपान, व्यभिचार आदि दोषोंमें फँस गये (१) हैं”—इस तरह नाना प्रकारकी बातें करने लगे । कोई कहता,—“इन्हीलोगोंके कारण देशमें दुर्भिक्ष और अनावृष्टि होती है और देशकी अर्थनैतिक अवस्था शोचनीय हो गयी है।” कोई कहता,—“इन लोगोंने ब्राह्मणोंका धर्म भूलकर मूर्ख और भावुकोंका धर्म ग्रहण किया है, लोगोंकी जात बिगाड़ रहे हैं और वर्णाश्रम धर्ममें व्यभिचार ला रहे हैं।” कोई कहता,—“श्रीवास पंडित ही सब अनर्थोंका मूल हैं । इसके घर-द्वारको तोड़कर नदीमें बहा देने तथा इसको गाँवसे निकाले बिना गाँवका कल्याण नहीं है । इसके घरमें जिस प्रकार कीर्तन बढ़ रहा है, उससे शीघ्र ही अहिन्दू शासक गाँवके ऊपर अत्याचार आरम्भ कर देंगे।”

श्रीचैतन्यके भक्तलोग बहिर्मुख व्यक्तियोंकी इन सारी बातोंपर कान न देकर श्रीमन्महाप्रभुके साथ हरिसकीर्तनमें प्रमत्त रहते थे । प्रेम-कल्पतरु महाप्रभु बाह्यज्ञानशून्य होकर निरन्तर नृत्य-कीर्तन करते । उनकी आत्तिको देखकर सबका हृदय विदीर्ण हो जाता । एकादशीके दिन प्रातःकालसे आरम्भ कर सारी रात कीर्तन होता रहता । महाप्रभुका क्रन्दन और भूमिमें लोटना देखकर पाषाण भी पिघल जाता । इस सकीर्तन-रासका दर्शन करने तथा इस भुवन-मंगल श्रीहरिध्वनिको

श्रवण करनेके लिये अदृश्यरूपसे कोटि-कोटि वैष्णव और देवता लोग उपस्थित रहते थे । श्रीचैतन्यलीलाके व्यास ठाकुर श्रीवृन्दावनने इस सकीर्तन-रासके वर्णन-प्रसंगमें इस प्रकार लिखा है,—

हइल पापिष्ठ-जन्म, तखन ना हइल ।

हेन महा-महोत्सव देखिते ना पाइल ॥

—चै० भा० म० ८।१६८

[पापिष्ठ-जन्म अब हुआ पर उस समय नहीं हुआ । ऐसा महा-महोत्सव देख नहीं सका ।]

बहिर्मुख व्यक्ति गृहके भीतर प्रवेशाधिकार न पाकर श्रीश्रीवास पंडितका अपमान करनेके लिये अनेको प्रकारकी चेष्टाएँ करते थे । एक दिन 'गोपाल-चापाल' नामक एक ब्राह्मण-सन्तान देवीपूजाके उपहारके साथ मद्यका पात्र श्रीश्रीवास पंडितके घरके बंद द्वारके बाहर रख गया । उस वैष्णवापराधके कारण कुछ ही दिनोंमें उसे गलित कुष्ठ रोग हो गया । असह्य यन्त्रणासे कातर होकर उसने महाप्रभुसे कृपाकी भीख माँगी, परन्तु उसके अपराधकी गुस्ता देखकर महाप्रभुने उस समय उसको क्षमा प्रदान नहीं किया । महाप्रभु सन्यास ग्रहण करनेके बाद नीलाचलसे लौटकर जब 'कुलिया'में अवस्थान कर रहे थे, उस समय गोपाल-चापाल महाप्रभुके शरणापन्न हुआ, महाप्रभुने उसको उपदेश दिया कि—'तुम श्रीश्रीवास पंडितको सन्तुष्ट करो ।' श्रीश्रीवासकी कृपासे गोपालका अपराध नष्ट हो गया ।

एक ब्राह्मण श्रीवास पंडितके घर श्रीमन्महाप्रभुका सकीर्तन देखनेके लिये आये, परन्तु द्वार बन्द रहनेके कारण वे घरके भीतर प्रवेश न कर सके । ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित होकर चले गये । दूसरे एक दिन उस ब्राह्मणने श्रीमन्महाप्रभुको गंगाके घाटपर देखकर अपना यज्ञोपवीत तोड़ करके महाप्रभुको शाप दिया—“तुम्हारा सासारिक सुख नष्ट हो जाय ।” यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त उल्लसित हुए । क्योंकि श्रीकृष्ण-सुखके लिये अनुसन्धान करनेवाला मनुष्य सासारिक सुखके

लिये लालायित नहीं होता। श्रीकृष्ण-सुखका चिन्तन ही जीवका एक-मात्र चरम उद्देश्य है। जिस-किसी निवृष्ट योनिमें जन्म ग्रहण करके भी तुच्छ क्षणिक और अन्तमें अशेष कष्टप्रद सासारिक सुख प्राप्त किया जाता है।



तीसवाँ परिच्छेद

‘सात-ग्रहरिया भाव’ अथवा ‘महाप्रकाश’

एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीवासके घर श्रीविष्णु-विग्रहकी खाटके ऊपर बैठकर अद्भुत ऐश्वर्य प्रकट किया। श्रीमहाप्रभु एक-एक करके विष्णुके सभी अवतारोके रूखोको प्रकट करने लगे। ये अद्भुत भाव सात पहर तक होते रहे, अतएव भक्त लोग इसे ‘सात-ग्रहरिया भाव’ या ‘महाप्रकाश’ कहते हैं। भक्तोंने ‘पुरुषसूक्त’*के मन्त्रसमूहका पाठकर गगाजलसे महाप्रभुका अभिषेक और विविध उपचारोंसे पूजा करके भोग चढाया। यह अभिषेक ‘राजराजेश्वर अभिषेक’ के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीधरको बुलवा भेजा और सबके सामने श्रीश्रीधरका माहात्म्य कीर्तन करने लगे। लोग श्रीश्रीधरको ‘थोड-मोचा’ (केलेके थम्मे और फूल) बेचनेवाला दरिद्र व्यक्तिमात्र समझते थे और उनकी महिमासे अवगत न थे। दूसरी ओर बहिर्मुख पाखण्डी लोग श्रीश्रीधरको क्या-क्या न कहते थे,—

* ‘पुरुषसूक्त’—ऋग्वेदके प्रसिद्ध मन्त्र।

महाचाषा बेटा, भाते पेट नाहि भरे ।

क्षुधाय व्याकुल हआ रात्रि जागि' मरे ॥

—चै० भा० म० ६।१४८

[बेटा बड़ा गँवार है । भोजनसे पेट नहीं भरता, अतः भूखसे व्याकुल होकर रात-रात भर जागकर मरता है ।]

जब श्रीश्रीधर उपस्थित हुए तो श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीधरकी हरि-सेवाकी बात सबको सुनाई, श्रीश्रीधरने भी महाप्रभुकी स्तुति की । श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीधरसे कहा,—“श्रीधर । तुमको मैं अष्ट-सिद्धिका वर दे रहा हूँ ।” श्रीश्रीधरने कहा,—“प्रभो, आप मुझे ठगना चाहते हैं ?” इतनी बड़ी पृथ्वीके अधिपतिके पास क्या कोई मुट्ठीभर भिक्षाकी याचना करेगा ? मैं यह सब कुछ भी नहीं चाहता, अष्ट सिद्धि तो तुच्छ हैं, ज्ञानी-योगी-ऋषिगण जिस मुक्तिकी आकांक्षा करते हैं, वह भी श्रीभगवान्की सेवाके सामने अत्यन्त तुच्छ वस्तु है । जो ब्राह्मण प्रतिदिन मेरा ‘थोड़-केला’ और ‘मोचा’ (केलेके थम्भे, केले और केलेके फूल) छीन लेते हैं, वे ही ब्राह्मण जन्म-जन्मान्तरमें मेरे प्रभु हो—यही मेरी प्रार्थना है, मैं और कुछ नहीं चाहता ।” व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीश्रीधरके सम्बन्धमें लिखा है,—

कि करिबे विद्या, धन, रूप, यश, कुले ।

अहंकार बाडि' सब पडये निर्मूले ॥

कला-मूला बेचिया श्रीधर पाइल याहा ।

कोटिकल्पे कोटीश्वर ना देखिबे ताहा ॥

अहंकार-द्रोह-मात्र विषयेते आछे ।

अधःपात फल तार' ना जानये पाछे ॥

—चै० भा० म० ६।२३४-२३६

[विद्या, धन, रूप, यश, कुलसे क्या करोगे ? अहंकार बढनेसे तो सबका अधःपतन होता है । केला-मूली बेचकर श्रीधरने जो कुछ प्राप्त किया, करोडो कल्पोंमें कोटिपति तो उसको देख भी नहीं पाते ।

विषयमें केवल अहंकार और द्रोह है। उसका फल आगे चलकर अध पतन है, विषयी इसे नहीं जानते।]

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमुरारि गुप्तको श्रीरामचन्द्र-रूपमें दर्शन देकर उसपर कृपा की और सबके सामने श्रीमुरारिकी महिमाको प्रकट करते हुए बोले,—“एक बार भी जो आदमी श्रीमुरारिकी निन्दा करेगा, कोटि-कोटि गंगा-स्नानसे भी उसका निस्तार न होगा गंगा-हरिनाम ही उसका सहार करेगा।”*

ठाकुर श्रीहरिदासको बुलाकर श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—

“एइ मोर देह हैते तुमि मोर बड।

तोमार ये जाति, सेइ जाति मोर दढ ॥”

—चै० भा० म० १०।३६

[इस मेरे शरीरसे तुम मेरे बडे हो, तुम्हारी जो जाति है निश्चय ही वही मेरी जाति है।]

“पापिष्ठ विधर्मियोने तुम्हारे प्रति जो अत्याचार किया है, मैंने उसको अपने शरीरपर ले लिया है, यह देखो, मेरे शरीरपर उसके चिह्न है।” श्रीमन्महाप्रभुने तब श्रीहरिदासको वर प्रदान करके कहा कि तुमसे कभी कोई अपराध नहीं होगा, तुम भक्तिके स्वाभाविक अधिकारी हो। ठाकुर श्रीहरिदासके चरित्रके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने हम लोगोको शिक्षा दी है,—

जाति, कुल, क्रिया, धने किछु नाहि करे।

प्रेमधन, आति बिना ना पाइ कृष्णरे ॥

ये-ते कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे।

तथापिओ सर्वोत्तम सवशास्त्रे कहे ॥

—चै० भा० म० १०।६६-१००

* चै० भा० म० १०।३० सख्या देखिये।

[जाति, कुल, क्रिया, धन कुछ नहीं करते । प्रेमधन और आर्त्त-भावके बिना कृष्णको नहीं प्राप्त किया जा सकता । वैष्णवका जन्म जिस-किसी भी कुलमें क्यों न हो, तथापि वह सर्वोत्तम है, यह सब शास्त्र कहते हैं ।]

श्रीमन्महाप्रभु जब श्रीविष्णु-खाटपर महाज्योति प्रकाश करके उपविष्ट थे, तो श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुके मस्तकके ऊपर छत्र धारण किया था । श्रीगौरहरिने श्रीमदद्वैतकी ओर देखकर हँसते-हँसते श्रीगीतके एक श्लोकका प्रकृत पाठ और भक्तिमूलक तात्पर्य सुनाया तो आचार्य प्रेमसे विह्वल हो उठे । श्रीश्रीगौरहरि—श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द दोनोंके ही ईश्वर हैं ।

अर्हनिश लओआय ठाकुर नित्यानन्द ।

“बल, भाइ सब—‘मोर प्रभु गौरचन्द्र ॥”

चैतन्य स्मरण करि’ आचार्य-गोसांनि ।

निरवधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाइ ॥

—चै० भा० म० १०।१५६-१६०

[ठाकुर नित्यानन्द दिनरात नाम लिवाते हैं, भाई सब—‘मेरे प्रभु गौरचन्द्र’ बोलो । श्रीचैतन्यको स्मरण करके आचार्य गोस्वामी निरन्तर रोते हैं और कुछ भी स्मरण नहीं है ।]

श्रीविश्वभरने भक्तोको अपना अभीष्ट वर माँगनेके लिये कहा तो श्रीअद्वैताचार्य बोले,—“प्रभो, मूर्ख, नीच और पतितके ऊपर तुम अनुग्रह करो मैं इतना ही वर चाहता हूँ ।” श्रीगौरहरिने ‘तथास्तु’ कहकर आचार्यके वचनके प्रति सम्मति प्रकट की ।



इकतीसवाँ परिच्छेद 'खड़-जाठिया बेटा'

श्रीमन्महाप्रभुके 'महाप्रकाशके' दिन सब भक्तोंने उनके पास आनेका अधिकार प्राप्त किया था और महाप्रभु भी एक-एक करके सभी उपस्थित भक्तोंके ऊपर कृपा करते थे ।

महाप्रभुके कीर्तन-गायक श्रीमुकुन्द उस समय घरके भीतरी पदोंके बाहर खड़े थे, वे महाप्रभुके सामने उपस्थित न हो सके । श्रीमुकुन्द तो श्रीमन्महाप्रभुको प्रतिदिन कीर्तन सुनाया करते हैं , आज उसी मुकुन्दके प्रति महाप्रभुका ऐसा असन्तोष क्यों है, यह बात किसीकी समझमें नहीं आ रही थी । श्रीश्रीबास पंडितने श्रीमुकुन्दके प्रति कृपा करनेके लिये श्रीमन्महाप्रभुसे प्रार्थना की तब वह बोले,—“मैं उसपर कृपा नहीं कर सकता, मुकुन्द समन्वयवादी है—वह 'बेटा खड़ जाठिया'* है । जो सभीके धर्ममतोंके लिये 'हाँ जी', 'हाँ जी' करके सभी दलोंमें मिल जाते हैं, ह्लादिनीकी वृत्ति जो अव्यभिचारिणी भगवद्भक्ति है, उसे भी अन्यान्य मतोंके समान ही एक लोककल्पित मत-विशेष समझते हैं , जब जिस सभामें जाते हैं, तब उसीके मतके अनुरूप बातें कहने लगते हैं, ऐसे समन्वयवादी लोग एक हाथ मेरे पैरपर और दूसरा हाथ मेरे गलेपर रखकर मुझसे कपटका आचरण करते हैं । किसी समय वे लोगोंको दिखलानेके लिये दैन्य प्रकाशित कर दाँतोमें तृण धारण करते हैं, तो कभी लाठी लेकर मुझे मारने आते हैं । यथेच्छाचारिता कभी उदारता नहीं हो सकती । भक्ति और अभक्ति—दूध और इमलीको एक करके कोई कभी भगवान्की कृपा प्राप्त नहीं

* खड़—तृण, जाठि—लाठी । अर्थात् जो प्रयोजनके समय पर तो हाथ जोड़ता है और प्रयोजन न होनेपर लट्टु या आँखें दिखाता है, उसे 'खड़जाठिया' कहते हैं ।

कर मकता। जो लोग भक्तिके साथ दूसरे साधनको समान समझते हैं, वे मुझे लाठी मारते ह।* वे यद्यपि समय-समयपर भक्तिका स्वाँग रचकर पूजा, कीर्तन, पाठ आदिका अभिनय करते हैं, तथापि उनके इस प्रकारके कपट भावसे म सन्तुष्ट नहीं होता। उनकी यह सारी स्तव-स्तुतिगों मेरे अगपर वज्राघात-सी लगती है। श्रीमुकुन्द भक्त-समाजमे हरिकीर्तन करता है, भक्तिकी बातें करता है और फिर मायावादीके पास 'योगवाशिष्ठ'का मायावाद भी स्वीकार करता है।”

श्रीमुकुन्द घरके बाहरसे ही महाप्रभुकी ये सारी बातें सुन रहे थे और मन-ही-मन विचार कर रहे थे कि जब शुद्धभक्तिदेवीके चरणोमे अपराध करनेके कारण मैं महाप्रभुकी कृपासे वंचित हो गया हूँ, तब मेरे लिये अपराधमय शरीरका त्याग कर देना ही समीचीन है।

श्रीमुकुन्दने वैहत्यागके पहले महाप्रभुसे एक अन्तिम बात पूछनेकी इच्छा प्रकट की तथा श्रीश्रीवास पंडितके द्वारा महाप्रभुसे पुछवा भेजा कि—“मैं क्या किसी दिन भी महाप्रभुके दर्शन नहीं पा सकूंगा?” श्रीमुकुन्द अनुतापकी अग्निसे दग्ध हो गये थे और उनकी आँखोसे अनर्गल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। श्रीमुकुन्दके दुःखको देखकर भक्तगण भी रोने लगे।

श्रीश्रीवास पंडितके प्रश्नके उत्तरमे श्रीमहाप्रभुने उनको बताया कि कोटि जन्मके बाद मुकुन्द महाप्रभुका दर्शन पायेंगे। श्रीमुकुन्द महाप्रभुकी इस बातको सुनकर 'पाऊँगा', 'पाऊँगा' कहते हुए परमानन्दमे महानृत्य करने लगे, कितनी ही देर क्यों न हो, किसी-न-किसी दिन तो श्रीमहाप्रभुके दर्शन प्राप्त होंगे ही, इस आशाने श्रीमुकुन्दके हृदयको उल्लसित कर दिया। मायावादी लोग चिद्विलास स्वीकार नहीं करते। अतएव वे कभी भी लीला-पुरुषोत्तमकी नित्य सेवाके अधिकारी नहीं होते—इस अवस्थाके अधीन अब नहीं होना पड़ेगा, यह समझकर ही श्रीमुकुन्द आनन्दसे इतने उल्लसित हुए।

श्रीमुकुन्दकी इस प्रकारकी उल्लासकी बाते सुनकर महाप्रभुने भक्तोको आज्ञा दी,—“तुम सब मुकुन्दको मेरे पास अभी ले आओ।” यह बात सुनकर मुकुन्दने चौदको हाथमें पा लिया। श्रीमुकुन्द महाप्रभुके पास उपस्थित हुए तो महाप्रभुने कहा,—“मुकुन्द, तुम्हारा अपराध नष्ट हो गया है। अब तुम मेरी कृपाको ग्रहण करो। जब तुम ‘कोटि जन्मके बाद भी भक्ति प्राप्त करनेकी’ बातको अव्यर्थ समझकर उल्लसित हो गये तब मैं समझ गया कि तुम्हारे हृदयमें ऐकान्तिकी भक्ति विराजिता है। तुम्हारे द्वारा लोकशिक्षाके लिये ही मैंने इस प्रकारका आदर्श दिखलाया। तथाकथित समन्वयवादी लोग भक्तिके चरणोंमें अपराधी हैं। वे प्रच्छन्न नास्तिक हैं,—तुम्हारे आदर्श द्वारा इस शिक्षाका मैंने प्रचार किया। वस्तुतः तुम मेरे नित्य दास हो, अतएव तुम्हारे हृदयमें चित् और जडके समन्वयवादका अनर्थ कभी प्रवेश नहीं कर सकता।”

श्रीमहाप्रभुके वचनोको सुनकर मुकुन्द अत्यन्त सकुचित हुए और अधिकतर दैन्यभावसे कहने लगे,—“मैं सेवाहीन मन्दभागी आदमी हूँ। इसी कारण मैंने तन, मन, वचनसे भक्तिके असमोर्ध्वत्वको स्वीकार नहीं किया। भक्ति सुखमय वस्तु है, भक्तिहीन होकर तुम्हें देखनेका अभिनय करके भी मैं क्या सुख पाऊँगा? दुर्योधनने श्रीकृष्णके विराट रूपका दर्शन किया था, तथापि भक्तिके अभावसे उसको किसी सुखकी प्राप्ति न हो सकी तथा विश्वरूप दर्शन करनेपर भी उसका सबश विनाश हुआ। श्रीकृष्ण जब ‘रुक्मिणी-हरण’के लिये गये थे तब शिशुपालके पक्षके बहुतसे राजाओंने गरुडवाहन श्रीकृष्णके दर्शन किये थे, तथापि भक्तिके अभावसे वे आनन्द लाभ नहीं कर सके। हिरण्यकशिपु और हिरण्यकशिपु श्रीबराहदेव तथा श्रीनृसिंहदेवके दर्शन करके भी भक्तिके अभावसे वे उल्लसित नहीं हो पाये, इधर यज्ञपत्नी, पुरनारी, मालाकार प्रभृति सामान्य व्यक्तियोंने भी भक्तियोगके प्रभावसे श्री-भगवान्का सेवाधिकार प्राप्त कर लिया। श्रीभगवान्की सेवाको प्राप्त करना ही उनका यथार्थ दर्शनलाभ है।”

श्रीमुकुन्दका निरुपाधि भक्तिके प्रति अनुराग देखकर महाप्रभु विशेष आनन्दित हुए और श्रीमुकुन्दको वर प्रदान करके बोले,—“मुकुन्द, तुम्हारी भक्ति मुझे बड़ी प्यारी लगती है। तुम जहाँ कृष्ण-गुणगान करते हो, वही मैं अवतीर्ण होता हूँ।” फिर बोले,—

“भक्तिस्थाने अपराध कैले, घुचे भक्ति।

भक्तिर अभावे घुचे दर्शन-शक्ति ॥

भक्ति विलाइमु मुइ—बलिल तोमारे।

आगे प्रेमभक्ति दिल तोर कण्ठस्वरे ॥

येखाने येखाने ह्य मोर अवतार।

तथाय गायन तुमि हइबे आमार ॥”

—चै० भा० म० १०।२५६, २५८, २६१

[भक्तिदेवीके चरणोंमें अपराध करनेपर भक्ति मिट जाती है, भक्तिके अभावमें दर्शन-शक्ति मिट जाती है। मैं भक्तिका वितरणे कहूँगा, यह तुमसे कहा। पहले तुम्हारे कण्ठस्वरमें प्रेमभक्ति दी थी। जहाँ-जहाँ मेरा अवतार होगा, वहाँ-वहाँ तुम मेरे गायक होगे।]

इस लीलाके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने एक विशेष शिक्षा दी है। कई बार अव्यभिचारिणी भगवद्भक्तिके अनुशीलनको सकीर्ण साम्प्रदायिकता समझकर लोकप्रीति प्राप्त करनेके लिये सब दलोकी सब बातोंमें ‘हाँ जी’, ‘हाँ जी’, करनेकी जो प्रवृत्ति लोगोमें देखी जाती है, वह उदारता नहीं है, वह कपटता है और परमेश्वरके प्रति ऐकान्तिकी प्रीतिके अभावको प्रकट करती है। भगवान्‌के अनुरागियोंके चरित्रमें भगवान्‌की सेवा, अर्थात् उनके सुखानुसंधानके प्रति ही अनन्यनिष्ठा होगी; वह कल्पित निष्ठा नहीं, रूढिवाद नहीं। रूढिवादमें तत्त्वान्धता होती है। श्रीहरिके प्रति प्रीति नहीं होती, पर अव्यभिचारिणी भक्तिमें तत्त्व और सिद्धान्तकी स्वाभाविक पारदर्शिता तथा जिन-जिन विषयोसे भगवान्‌की इन्द्रियतृप्ति होती है उनके सिवाँ अन्य विषयोके प्रति सर्वतोभावसे तीव्र निरपेक्षता होती है। लोक-प्रीति या निजेन्द्रिय-

प्रीतिके यूपकाष्ठमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी इन्द्रियप्रीतिको बलि दे देना कभी उदारता नहीं हो सकती। वह तो उच्छृंखलता तथा हीनतम नास्तिकता मात्र है।



बत्तीसवाँ परिच्छेद

जगाइ-माधाइ-उद्धार

श्रीविश्वभरने श्रीनवद्वीपके घर-घर श्रीकृष्णनामका प्रचार करनेके लिये ठाकुर श्रीहरिदास और श्रीनित्यानन्द प्रभुको नियुक्त किया था। एक दिन नित्यानन्द प्रभु घर-घर नामका प्रचार करके रात्रिके समय श्रीमहाप्रभुके घरकी ओर लौट रहे थे, उसी समय 'जगाइ', 'माधाइ' नामक दो शराबी ब्राह्मण-पुत्रोंके साथ श्रीनित्यानन्दका साक्षात्कार हो गया। ससारमें ऐसा कोई पाप आज तक नहीं पैदा हुआ, जिसको उन्होंने न किया हो। सदा ही सब समय शराबी मतवाले लोगोंके साथ रहनेके कारण केवल उनको 'वैष्णवोंकी निन्दा' करनेका अवसर नहीं मिलता था। पतितपावन श्रीमन्नित्यानन्द और ठाकुर हरिदासने जगाइ-माधाइके ऊपर कृपा करनेका निश्चय किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु मानो उनके ऊपर कृपा करनेके लिये ही उस रातमें श्रीनवद्वीपमें घूम रहे थे। जगाइ-माधाइने श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखा। माधाइ 'अवधूत' नाम सुनते ही क्रोधसे पागल हो गया और श्रीमन्नित्यानन्दके सिरपर 'मुटकि' (फूटी हॉडी) फेक दी। जगाइने यह देखकर माधाइको रोका। माधाइके द्वारा श्रीनित्यानन्दके श्रीअंगपर चोट लगनेकी बात सुनकर श्रीमहाप्रभु दल-बलके साथ वहाँ उपस्थित हुए और महान्

क्रोधसे सुदर्शन चक्रका आह्वान किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमहाप्रभुसे कहा,—“जगाइने मेरी रक्षा की है, आप उसे क्षमा करे।” श्रीमन्महा-प्रभु जगाइके ऊपर प्रसन्न हो गये। इससे माधाइका चित्त भी बदल गया। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने माधाइको क्षमा कर दिया। उन दोनोंको बहुत ही अनुताप हुआ और जीवनमें फिर कभी हम कोई भी पाप कार्य नहीं करेंगे, केवल निष्कपट हरिसेवामें ही जीवनयापन करेंगे—ऐसी प्रतिज्ञा की। यह देखकर उनके प्रति श्रीमहाप्रभु तथा भक्तोकी कृपा हो गयी। श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपासे दो दस्यु भी अपनी पापप्रवृत्तिका सदाके लिये त्यागकर ‘महाभागवत’ हो गये। महाप्रभुने भक्तोको ऐसा उपदेश दिया कि कोई उनके पूर्वचरित्रोका स्मरण कर भविष्यमें उनका अनादर या अश्रद्धा न करे।

ब्राह्मण-कुलीन-प्रधान नदीया नगरमें मुसलमान कुलमें अवतीर्ण ठाकुर श्रीहरिदासके द्वारा नाम-प्रचारका आदर्श तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा जगाइ-माधाइकी उद्धार-लीलाको प्रकट कर श्रीमहाप्रभुने यह सूचित किया कि, वैष्णवाचार्य प्राकृत जाति-कुलके अन्तर्गत नहीं है, वे (मर्त्य-जगत्से परे) अतिमर्त्य—जगद्गुरु हैं। उन्होंने यह भी सूचित किया कि जो लोग हरिनामका प्रचार करे, वे हरिकथा और हरिनाम वितरणके बदलेमें किसी प्रकारका धन-द्रव्य आदि ग्रहण न करे। श्रीहरिकथा और श्रीहरिनाम साक्षात् श्रीहरि हैं। श्रीहरिको बेचनेकी चेष्टाके समान दूसरा कोई अपराध नहीं है। इस लीलामें महाप्रभुने एक और शिक्षा दी है कि, सब प्रकारके अपराध क्षम्य हो सकते हैं, परन्तु वैष्णवापराधको क्षमा करनेका सामर्थ्य स्वयं श्रीभगवान्में भी नहीं है। जिस वैष्णवके प्रति अपराध हुआ है उसीसे निष्कपट भावसे क्षमाप्रार्थना करनी होगी। जो लोग वैष्णवापराधसे मुक्त हैं उन्हींपर श्रीगौरसुन्दर कृपा करते हैं।

महाप्रभुने क्रोधमें आकर सुदर्शन चक्रका आह्वान किया था, उसमें भी एक रहस्य है। भक्तद्वेषीके ऊपर क्रोध प्रदर्शन ही क्रोधवृत्तिका

सद्व्यवहार है, जैसे, हनुमानने रावणके प्रति क्रोध करके श्रीरामचन्द्रजी की सेवा की थी ।

जिस व्यक्ति या वस्तुके प्रति जिसकी आसक्ति होती है, उस व्यक्ति या वस्तुको अतिक्रमण करनेवालेके प्रति क्रोध होना ही स्वाभाविक धर्म है । भगवान्की भक्तके प्रति आसक्ति या प्रीति है और भक्तकी श्रीभगवान्के प्रति आसक्ति या प्रीति स्वाभाविक है । श्री-श्रीभगवान्को अतिक्रम करनेवालेके प्रति भक्तको तथा भक्तको अतिक्रम करनेवालेके प्रति भगवान्को क्रोध न हो, केवल निरपेक्षता मात्र बनी रहे, तो इससे प्रीतिका अभाव ही प्रमाणित होगा । प्रेमिक भक्त—भगवद्विद्वेषी, भक्त-विद्वेषी, भक्ति-विद्वेषीके प्रति क्रोध प्रकट करते हैं । उनका क्रोध साधारण प्रकृतिके लोगोके क्रोधके समान जगत्में झझट बढ़ानेवाला, रजोगुण तमोगुणके कारण नहीं होता, वह सुमंगलप्रद प्रेमविशेष होता है ।

भगवान्से द्वेष करनेवालोमें भी इष्टदेवताकी स्फूर्ति होनेके कारण किसी-किसी महाभागवतकी अनभिनिवेशरूप उपेक्षा देखी जाती है । कोई-कोई महाभागवत भगवान् और भक्तसे द्वेष करनेवालेमें इष्टदेवकी स्फूर्ति होनेके कारण उनकी वन्दना तक करते हैं । उत्तम महाभागवत श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीकृष्ण-विद्वेषी कसको 'भोजकुलका कुलागार' कहकर क्रोध प्रदर्शन किया था । और महाभागवतप्रवर श्रीमत् उद्धवजीने भक्तश्रेष्ठ पाण्डवोके विद्वेषी धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी वन्दना की थी । इस प्रकार महाभागवतके द्वारा भगवान् और भक्तसे द्वेष करनेवालेकी निन्दा या वन्दना, दोनोंमें ही अपने इष्टदेवकी स्फूर्ति हो जाती है । बहिर्मुख व्यक्ति इस रहस्यको न समझ सकनेके कारण महाभागवतके आचरणको विरोधी समझते हैं ।

जगाइ-माधाइ श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त कर पहलेके नाना प्रकारके दुष्कर्मोंके लिये अनुतापालनसे निरन्तर दग्ध होने लगे और उन्होने साधुसगमें तीव्रतापूर्वक हरिभजन करना आरम्भ

कर दिया । पहलेकी सारी बातों, सगो और स्मृतियोंको पूर्णतया उन्होंने परित्याग कर दिया । वे प्रतिदिन तडके उठकर गंगास्नान करके दो लाख कृष्णनाम लेते थे तथा पूर्वके दुष्कर्मोंके लिये अनुत्पत्त होकर 'श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द'—नाम ले-लेकर कन्दन करते थे । माधाइ श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंको पकड़कर बारबार क्षमा प्रार्थना करते थे । श्रीनित्यानन्दके आदेशसे माधाइ प्रतिदिन 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए गंगाघाटकी सेवा, घाटपर आये हुए व्यक्तियोंको दण्डवत् प्रणाम तथा उनसे पूर्वकृत अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करते थे । कठोर तपस्याके प्रभावसे माधाइ 'ब्रह्मचारी' के नामसे प्रसिद्ध हुए । माधाइ अपने हाथ कुदाली लेकर गंगाका घाट साफ करते थे, वह घाट 'माधाइके घाट'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । श्रीनवद्वीप परिक्रमाके मार्गमें श्रीमायापुरमें यह 'माधाइका घाट' आज भी देखनेमें आता है ।



तैतीसवाँ परिच्छेद श्रीगौराङ्गकी विभिन्न-लीला

[१]

श्रीगौरहरि प्रतिदिन रातको अपने भक्तोंके साथ श्रीश्रीवासके घरका द्वार बन्द करके सकीर्तन-नृत्य करते थे । एक दिन श्रीवासकी सास, व्यर्थ कौतूहलवश कीर्तन-भवनके एक कोनेमें 'डोलमुडि' * देकर

*अनाज रखनेकी बड़ी टोकरीको 'डोल' कहते हैं, उसमें शरीर ढककर छिप जानेको 'डोलमुडि' देना कहते हैं ।

छिप गयी। छिपनेसे क्या होता, जिसके पास सुकृति नहीं है ऐसा व्यक्ति अप्राकृत सकीर्तन-रासको क्या अपनी चेष्टासे देख सकता है ? सकीर्तन-रासके नायक श्रीगौरहरि नाचते-नाचते बारबार कहने लगे,—“आज हमको उल्लास क्यों नहीं हो रहा है ? श्रीवास, देखो कोई बहिरंग व्यक्ति यहाँ कहीं छिपा तो नहीं है ?” सबने श्रीवासके घरका चप्पा-चप्पा छान डाला। श्रीवासने स्वयं सारा घर खोजकर देख लिया, पर किसी बहिरंग आदमीको न देखा। श्रीगौरहरि भक्तोंके कहनेपर नृत्य आरम्भ करके फिर बोले,—“आज किसी प्रकार भी कीर्तनमें सुख नहीं मिल रहा है।” तब भक्तगण अपनेको ही बहिर्मुख और अपराधी होनेकी आशंका करके अत्यन्त व्यथाका अनुभव करने लगे। श्रीश्रीवास पड़ितने फिर अनुसन्धान करके देखा कि उनकी सास ‘डोल-मुड़ि’ देकर छिपी हुई है। श्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें रत, कृष्णा-वेशमें महामत्त पड़ित श्रीश्रीवासने सासका केश पकड़कर घरेसे बाहर करनेका आदेश दिया। तब श्रीमन्महाप्रभुका चित्त उल्लसित हुआ तथा उन्होंने आनन्दसे कीर्तन आरम्भ किया।

इस लीलाके द्वारा भक्तराज श्रीश्रीवास पड़ितने ससारके लोगोंको शिक्षा दी कि, श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धान ही जीवके सारे शिष्टाचार और मर्यादाका शिरोमणि है। जहाँ श्रीश्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें बाधा पड़ती है वहाँ लौकिक मर्यादा-संरक्षणकी दुर्बलता या जडासक्ति स्वीकार्य नहीं है, परन्तु, श्रीश्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें जिनको आवेश नहीं होता वे कपट-भक्ति दिखलाने जाकर स्वाभाविक प्रीतिके आदर्शका यदि अवैध अनुकरण करेंगे तो उन्हें ‘इतो अष्टस्ततो नष्ट’ ही होना पड़ेगा।

[२]

श्रीगौरहरि श्रीअद्वैताचार्यको जब ‘दास’के (सेवक) रूपमें ग्रहण करते, तब आचार्यको विशेष प्रीति होती, परन्तु श्रीगौरहरि आचार्यको जबं गुरुतुल्य समझकर चरणयुगल धारण करनेके लिये प्रवृत्त होते तो श्रीआचार्य अत्यन्त व्यथित होते। इस कारण जब श्रीश्रीविश्वम्भर

प्रेमावेशमें मूर्छित हो जाते थे, तब श्रीअद्वैताचार्य श्रीगौरहरिके श्रीचरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके, अश्रुद्वारा पाद-प्रक्षालन, पदधूलि सिरपर धारण तथा विविध उपचारोंसे श्रीगौरहरिके श्रीचरणोंकी पूजा करके मनोवासना पूर्ण करते थे। एक दिन महाप्रभु नृत्य करते-करते मूर्छित हो गये, सुयोग देखकर श्रीअद्वैताचार्यने श्रीगौरहरिकी चरणरेणु अपने सर्वांगमें लेपन कर ली। कुछ क्षणोंके बाद श्रीगौरहरिने पुन नृत्य आरम्भ करके भक्तोंके सामने चित्तके अनुल्लासकी बात कह सुनायी। तब श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने भयसे श्रीमन्महाप्रभुकी चरणरेणु चुरानेकी बात स्वीकार करके क्षमा प्रार्थना की। श्रीगौरहरि श्रीअद्वैताचार्यके प्रति क्रोध प्रकट करनेके बहाने श्रीअद्वैताचार्यका गुण-वर्णन करने लगे।

[३]

श्रीनवद्वीपमें श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नामके एक विष्णु-भक्त ब्राह्मण रहते थे। वे दिन रात 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहकर ऋन्दन करते रहते थे और भिक्षा द्वारा जीविका निर्वाह करते थे। लोग उनको भिखारी ही समझते थे, उनकी वैष्णवताको नहीं समझ पाते थे। महाप्रभु उनकी झोलीसे छोटे कण-सहित चावलोको छीनकर खाने लगे। श्रीभगवान् अर्थके वश नहीं है, प्रीतिके वश है। दाम्भिक धनवान्का कोई नैवेद्य भगवान् ग्रहण नहीं करते, परन्तु प्रेमी अकिंचनकी अति सामान्य वस्तु भी स्वयं माँगकर ग्रहण करते हैं।

एक दिन महाप्रभु श्रीविश्वम्भरने श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारीसे कहा,—“तुम्हारे हाथका पकाया अन्न भोजन करनेकी मेरी बड़ी ही इच्छा है। तुम कुछ भय मत करो, मुझे अन्न दो।” भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरकी इस प्रकारकी पुन पुन प्रार्थनासे अत्यन्त सकुचित होकर श्रीशुक्लाम्बरने दीनतापूर्वक श्रीविश्वम्भरसे कहा,—“मैं एक नराधम, पापी, पतित, घृणित, भिक्षुक हूँ, और आप साक्षात् सनातन धर्मस्वरूप हैं। मुझे आप वृत्तित न करें।”

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“मैं तुम्हें तनिक भी वचना नहीं करता । तुम्हारे हाथका पकाया हुआ अन्न खानेकी मेरी बड़ी ही इच्छा होती है । तुम शीघ्र डेरेपर जाकर नैवेद्य तैयार करो । मैं आज दोपहरको निश्चय ही तुम्हारे डेरे पर आऊँगा ।”

श्रीशुक्लाम्बरने श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंसे इस विषयमें युक्ति पूछी तो भक्तगण बोले,—“श्रीभगवान् भक्तिवश है, उन्होंने शूद्राके पुत्र विदुरके सामान्य अन्नको माँगकर खाया था, यह उनके प्रेमका स्वभाव है ।”

श्रीशुक्लाम्बरने स्नान करके अत्यन्त सावधानीसे सुवासित जल चूहेपर चढ़ाया और कहीं स्पर्श न हो इसका विचार करके ऊपरसे उसमें सुंदर ‘गर्भथोड’* एव उत्तम चावल डाल दिया तथा हाथ जोड़कर ‘जय कृष्ण, गोविन्द, गोपाल, बनमाली’—इन नामोंका वह कीर्तन करने लगे । श्रीलक्ष्मीदेवीकी कृपादृष्टिसे भोजन तैयार हुआ । उसी समय श्री-नित्यानन्द आदिको साथ लेकर श्रीविश्वम्भर श्रीशुक्लाम्बरकी कुटीमें आये, अपने हाथसे अन्न ग्रहण कर विष्णुको निवेदन किया और बिना छुए ही इस प्रकारके अमृत-तुल्य भोजन बनानेकी और ‘गर्भ-थोड’ के स्वादकी प्रशंसा करते-करते भक्तगणके साथ श्रीमहाप्रभुने भिक्षुकके घर भोजन किया और दोपहरको वही विश्राम किया । वहाँ ही लिपिकर श्रीविजयदासको श्री मन्महाप्रभुने अपना वैभव दिखलाया ।

[४]

श्रीगौरहरिने ‘हरेनाम’ श्लोकके अर्थकी व्याख्या करके श्रीहरि-नामके द्वारा ही कलिकालमें जीवकी सर्वसिद्धि होती है, अन्य किसी साधनका प्रयोजन नहीं है और अन्य साधनके साथ हरिनाम-ग्रहणकी तुलना करनेसे भी अपराध होता है, यह शिक्षा दी । किस प्रकार नाम लेना चाहिये, इसके सम्बन्धमें भी कृपापूर्वक शिक्षा दी है,—

* ‘गर्भ-थोड’—ऐसे केलेके पेडका भीतरी हिस्सा जिसमें फूल ही फूल निकला हो, केले न निकले हो, उसे ‘गर्भ-थोड’ कहते हैं ।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
 कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
 कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार ।
 नाम हैते ह्य सर्व-जगत्-निस्तार ॥
 दाढ्यं लागि 'हरेर्नाम'—उक्ति तिनबार ।
 जङ्गलोक बुझाइते पुनः 'एव' कार ॥
 'केवल'-शब्दे पुनरपि निश्चय-करण ।
 ज्ञान-योग-तप-आदि कर्म-निवारण ॥
 अन्यथा ये माने, तार नाहिक निस्तार ।
 नाहि, नाहि, नाहि—तिन उक्त 'एव' कार ॥
 तूण हैते नीच हवा सदा ल'वे नाम ।
 आपनि निरभिमानी अन्ये दिवे मान ॥
 तरुसम सहिष्णुता वैष्णव करिबे ।
 भर्त्सना, ताड़ने का'के किछु ना बलिबे ॥
 काटिलेह तरु येन किछु ना बोलय ।
 शुकाइया मरे, तबु जल ना मागय ॥
 एइमत वैष्णव का'रे किछु ना मागिबे ।
 अयाचित-वृत्ति, किंवा शाक-फल खा'बे ॥
 सदा नाम ल'बे, यथा-लाभेते सन्तोष ।
 एइमत आचार करे' भक्तिधर्म पोष ॥

—चै० च० आ० १७।२१-३०

[हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही सत्य है। इस कलियुगमें इस नामके बिना कोई गति नहीं, कोई गति नहीं, कोई गति नहीं। कलिकालमें नाम-रूपमें कृष्णका अवतार है। नामसे ही समस्त जगत्का निस्तार होता है। दृढताके लिये 'हरेर्नाम' तीनबार कहा और जड (मूर्ख या अज्ञ) लोगोको समझानेके लिये फिर 'एव' लगाया। 'केवल' शब्द फिर भी निश्चयके लिये तथा ज्ञान, योग, तप, कर्म,

आदिके निवारणके लिये लगाया। जो अन्यथा समझता है उसक निस्तार नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार कहकर उनमें 'एव' लगाया तृणसे भी नीच होकर सदा नाम ले। स्वयं निरभिमानी होकर दूसरेका मान दे और वैष्णव वृक्षके समान सहिष्णुता करे। भर्त्सना या ताड़ना करनेपर भी किसीको कुछ न कहे। जैसे वृक्षको काट लेनेपर भी वह कुछ नहीं बोलता। सूखकर मर जाता है, तब भी जल नहीं माँगता, वैसे ही वैष्णव किसीसे कुछ न माँगे। अयाचित वृत्तिसे रहे या साग फल खाये। सदा नाम लेता रहे, जो मिल जाय उसीमें सन्तोष करे, इस प्रकार आचरण करके भक्तिधर्मका पोषण करे।]

[५]

एक दिन निशाकालमें महाप्रभुने सकीर्तन-नृत्य समाप्त किया, इसी समय एक ब्राह्मणी आकर बारबार श्रीमहाप्रभुके चरणोंकी धूल लेने लगी। यह देखकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त व्यथित हुए और उसी क्षण शीघ्रतापूर्वक दौड़कर गगामें कूद पड़े। श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदासने श्रीमन्महाप्रभुको गगासे बाहर निकाला। उस रातको श्रीमहाप्रभु श्रीविजय आचार्यके घर रहे। प्रातःकाल भक्तगण महाप्रभुको घर ले आये।

अबतक श्रीमहाप्रभुने सन्यास-ग्रहण-लीला प्रकट नहीं की थी, उनकी गार्हस्थ्य-लीलाके समय ही यह घटना घटी थी। जो साधक जीव, गृहस्थ या सन्यासी गुरु-गोस्वामीके वेषमें स्त्रियोंके द्वारा अपनी चरण-सेवा, चरण-स्पर्श आदि कार्य कराते हैं तथा उसको प्रश्रय प्रदान करते हैं, उनको सावधान करनेके लिये ही भगवान् श्रीगौरसुन्दरने यह आदर्श स्थापित किया था। गृहस्थ व्यक्ति भी चरणधूलि दान आदिके बहाने पर-स्त्रीका स्पर्श न करे। छोटे हरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा महाप्रभुने ज्ञानमिश्र साधक-सयासियोंको आचारकी शिक्षा दी है।

[६]

श्रीश्रीवासके घरके समीप कोई मुसलमान दर्जी श्रीवासका कुर्ता सीता था। दर्जी श्रद्धापूर्वक श्रीमन्महाप्रभुका नृत्य देखकर मुग्ध हो

गया, महाप्रभुने उस भाग्यवान् दर्जीको अपना रूप दिखलाया। वह दर्जी तभीसे “मैंने क्या देखा। मैंने क्या देखा।।” —यह कहता हुआ प्रेममें पागल होकर आनन्दसे नृत्य करने लगा।

[७]

एक दिन महाप्रभु भक्तोंके सामने श्रीनामके माहात्म्यका वर्णन कर रहे थे। उसे सुनकर कोई छात्र बोल उठा,—“नाममें भला इतनी क्या महिमा है। यह तो केवल नामको बड़ा बनानेके लिये अति-स्तुति मात्र है। केवल नामसे ही सर्वसिद्धि होगी और किसीसे नहीं होगी—इस प्रकारकी साम्प्रदायिकता और रूढ़िवाद पंडित-समाजमें नहीं चल सकता।” नामके अतुलनीय माहात्म्यको अति-स्तुति समझना श्रीनामका ‘अर्थवाद’ रूप ‘नामापराध’ है, यही सत्शास्त्रोका सिद्धान्त है। इसी कारण शास्त्रोके सम्मानकी रक्षा करनेवाले महाप्रभुने उस नामापराधी छात्रका मुख देखनेसे सबको मना कर दिया और भक्तोंको साथ लेकर उसी क्षण सचेल (पहनी हुई धोती तथा उत्तरीयके सहित। चेल-वस्त्र, सचेल-पहने हुए वस्त्र सहित) गंगास्नान किया।

[८]

एक दिन महाप्रभु घरसे बहुत दूर ‘गगाकी चड’* पर जाकर सकीर्तन कर रहे थे, उसी समय आकाशमें घनघोर घटा धिर आई। महा-प्रभुने मेघोको हट जानेका आदेश दिया। वे तत्काल हट गये। इस कारण उस गगाकी चडको लोग ‘मेघकी चड’के नामसे पुकारते हैं। एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीबलदेवके आवेशमें यमुनाकर्षण-लीला प्रकट करते हुए ‘मधु लाओ’, ‘मधु लाओ’ कहने लगे। उस समय श्रीचन्द्र-शेखर आचार्य तथा श्रीवनमाली आचार्य आदि भक्तोंने प्रभुके हाथोंमें स्वर्ण-मूसलका दर्शन किया था।

*गगाकी धाराके रास्ता बदल देनेके कारण अर्थात् गगाकी धाराके हट जानेके कारण निकली हुई भूमिको ‘गगाकी चड’ कहते हैं।

चौंतीसवां परिच्छेद

आम्र-महोत्सव

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर नगर-सकीर्तन करते-करते थक गये। मध्याह्न कालमें भक्तोंको श्रान्त और क्षुधार्त देखकर भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरने उनकी सेवाके लिये एक ऐश्वर्य दिखलाया।

सपार्श्व महाप्रभु जिस स्थानपर आकर उपस्थित हुए थे, उसी स्थानमें एक भक्तके आगमने ही महाप्रभुने विश्राम किया और वहाँ ही एक आमका बीज रोपा। आश्चर्यकी बात है कि देखते-ही-देखते एक ही घड़ीमें वहाँ एक आमका वृक्ष उत्पन्न होकर बढ़ने लगा और उस वृक्षमें अगणित पके आम लगने लगे। महाप्रभुने शीघ्र ही उस वृक्षसे दो सौ आम सग्रह करवाये, उनको जलसे धोकर कृष्णका भोग लगाया और तत्पश्चात् भक्तोंने उस आम्र-प्रसादको ससम्मान ग्रहण किया। इस प्रकारके अपूर्व आम कभी भी किसीने नहीं देखे थे। आममें गुठली और छिलके नहीं थे, वे सुन्दर पीले और लाल रंगके आम थे। एक-एक आम खानेसे ही एक-एक आदमीकी उदरपूर्ति और परितृप्ति हो जाती।

वैष्णव लोग आमका फल खाकर तृप्त हो गये हैं, यह देखकर महाप्रभु अत्यन्त उल्लसित हुए। महाप्रभुने उस स्थानमें ऐसा ऐश्वर्य दिखलाया कि उस भक्तके आँगनमें बारहों महीने इस प्रकारके आम फलने लगे और महाप्रभु भी नगर-कीर्तनके बाद प्रति दिन उसी स्थानपर आकर उसी प्रकार भक्तोंके साथ आम्र-महोत्सव करने लगे।

जिस स्थानपर महाप्रभुका यह आम्र-महोत्सव हुआ था, वह स्थान आजतक 'आम्रघट्ट' अथवा 'आमघाटा' के नामसे प्रसिद्ध हो रहा है। नवद्वीपघाट स्टेशनसे कृष्णनगर जानेवाली जो लाइट रेलवे है उसमें महेशगज स्टेशनके बाद ही यह 'आमघाटा' स्टेशन है।

श्रीमुरारि गुप्तके नामसे आरोपित कडचा (श्लोकमय सूत्रग्रन्थ अथवा सूत्र रूपमें लिखा हुआ जीवन-चरित्र) में आम्नवृक्ष रोपने और उसमें फल लगनेका विवरण इस प्रकार वर्णित है,—

एक दिन श्रीविश्वम्भरने भक्तोंको पुकार कर कहा,—“तुम हमारी नटबाजी देखो ! यह देखो ! मैं इस अद्भुत बीजको रोप रहा हूँ । यह देखो, निमेष भरमें ही इससे अकुर निकल कर तुरन्त ही वृक्षरूपमें परिणत हो गया । यह देखो, इसमें मजरी निकल आयी—देखो, देखो, फल लग गये । यह देखो, फल पक गये—यह देखो, मैंने फल तोड़ लिये । अब देखो, न फल है और न वृक्ष है—यह सभी मायाके द्वारा रचा गया था । इस मैदानमें यह ऐन्द्रजालिक कार्य अब बिल्कुल ही नहीं रहा । वृक्षी प्रकार मायाकृत सारे कर्म अनर्थक होने परभी श्रीभगवान्की सेवाके उद्देश्यसे किये जानेपर उससे विपुल लाभ होता है । परमेश्वरके लिये चाहे कोई भी कार्य क्यो न किया जाय, वह सबका सब सार्थक होता है ।”

श्रीकविकर्णपूरके ‘श्रीचैतन्यचरितामृत-महाकाव्य’में भी श्री-मन्महाप्रभुकी इच्छामें इस प्रकार भूमिमें आम्न बीजका रोपण, उसमें वृक्ष, शाखा, फलका आविर्भाव और उसके बाद ही सबका अन्तर्धान तथा इस प्रसंगमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा भक्तगणको शिक्षा-प्रदान करनेकी लीला दृष्टिगोचर होती है ।

एवं हि विश्वमखिल वित्तथं यदेतन्निष्पाद्यते सततमीश्वरसेवनाय ।
तत्सारथकं भवति सम्यगसत्यमेतत्, सत्यं भवेदशुचि यत्तद्विदं शुचि स्यात् ॥
तस्माज्जनैः सकलमेव परेश्वरस्य, सेवार्थमप्यनृतमेतदिहावचेयम् ।
ससार एव न हि तस्य भवेद्विरोधी, सेवापरस्तु न हि बाध्यत एव कैश्चित् ॥

—चै० च० म० ६।३३-३४ ।

[यह निखिल अनित्य विश्व यदि निरन्तर परमेश्वरके सुखानुसन्धान के लिए हो तो उससे यह असत्य ससार भी सम्यक् रूपसे सार्थक हो जाता है, क्योंकि परमेश्वरको समर्पित होनेपर अपवित्र वस्तु भी

पवित्र हो जाती है। अतएव इस पृथ्वीपर यदि मनुष्य सारी अनित्य वस्तुओंको केवल परमेश्वरकी सेवाके निमित्त आहरण करे तो यह ससार उसका विरोधी नहीं हो सकता। हरिसेवामें रत व्यक्तिको कोई भी बाधा नहीं दे सकता।]

श्रीकविराज गोस्वामी प्रभुने इस लीलामें श्रीगौरहरिकी कृपासे भक्तगणके आम्रसेवन और सवत्सर-कीर्तनके अन्तमें इस प्रकारके आम्र-महोत्सवके अनुष्ठानकी कथा अपने ग्रन्थमें लिखी है और श्रीकविकर्णपूर आदि लीला-लेखकोने श्रीमन्महाप्रभुकी माया द्वारा रचित, भक्तोंको शिक्षा देनेके लिये इसका सामयिक लीला-विशेषके रूपमें वर्णन किया है। वस्तुतः, परमेश्वर या तदीयजनकी सेवाके उद्देश्यसे किया हुआ अनित्य व्यापार भी नित्य सार्यकतामें पर्यवसित होता है— इस चरम शिक्षाको लेकर श्रीमन्महाप्रभुके पक्षमें नित्य आम्र-महोत्सव-लीला प्रकट करना अथवा और भिन्न-लीला-प्रकाशन करना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। अनन्त लीलामयको ससीम ऐन्द्रजालिकके समान देखने जाना दृप्त द्रष्टाकी मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं है। अविचिन्त्य सर्वशक्तिमान् ईश्वरके लिये सभी सभव हैं।

'आमघाटा' स्टेशनके पास ही 'सुवर्णविहार' नामक श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोंसे अंकित सकीर्तन-स्थान आज भी दिखलायी देता है। यह 'सुवर्णविहार' अति प्राचीन कालमें 'गौडराजेन्द्रपुर' नामसे गौडदेशकी राजधानी थी। जब बौद्धधर्मका बड़ा प्रसार हुआ, तब इस स्थानका नाम 'सुवर्णविहार' पड़ा। इस स्थानसे मालदह जिलेके समीप 'कर्ण-सुवर्ण' और ढाका जिलेका 'सुवर्ण-ग्राम' (सोणारगाँव)—त्रिकोणावस्थित भूखण्ड गौडदेशकी प्रादेशिक राजधानीके नामसे मध्य युगमें वर्णित हुआ है। सुवर्णविहारमें कुछ दिन पालवशके राजाओंने निवास किया था। वर्तमान कालमें वह जमीनके अन्दर अवस्थित है। यह श्रीमायापुरके पूर्व-दक्षिण कोणमें 'जलगी' नदीके दूसरे किनारेपर अवस्थित है। 'आतो-मुर' अथवा 'अन्तर्द्वीपके मैदान' से इस स्थानकी उच्च भूमि आज भी

दिखलायी देती है। श्रीश्रीनिवास प्रभुको श्रीईशान ठाकुरने आतोपुरके मैदानसे सुवर्णविहार दिखलाया था। सत्ययुगमें 'श्रीसुवर्णसेन' नामके एक विशेष प्रतिष्ठित राजा थे। उन्होने अत्यन्त वृद्धावस्था पर्यन्त सुखसे राजसिंहासनका उपभोग किया था। पूर्व जन्ममें अर्जित किसी विशेष पुण्यके फलस्वरूप वैष्णवश्रेष्ठ श्रीनारदजी सुवर्णसेनके प्रासादमें आ उपस्थित हुए। महाराज सुवर्णसेन विषयी होते हुए भी अतिथि और वैष्णवोंकी सेवामें रत रहते थे। उन्होने अत्यन्त आदरपूर्वक देवर्षि श्रीनारदकी पूजा की। श्रीनारदमुनिने कृपा करके जो तत्वोपदेश महाराजको प्रदान किया, उससे उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनको श्रीनारदजीकी कृपासे ज्ञात हुआ कि जिस स्थानमें वे निवास करते हैं वह स्थान 'श्रीनवद्वीप-मङ्गल' के अन्तर्गत है। कलिकाल में इसी स्थानमें सुवर्णवर्ण श्रीगौरहरि सपार्षद अवतीर्ण होकर अपनी अभूतपूर्व औदार्य-लीला प्रकट करेंगे। श्रीनारदमुनि 'श्रीगौर' नामका माहात्म्य कीर्तन कर वीणाके स्वरमें श्रीगौर-नामका कीर्तन करते-करते प्रेमसे विह्वल होकर कहने लगे,—“कब वह धन्य कलिका आगमन होगी, जब कि श्रीगौरहरि सपार्षद अवतीर्ण होकर विश्वमय प्रेमकी बाढ बहावेंगे।” इसके बाद श्रीनारदजी अन्यत्र चले गये। श्रीनारदके मुखसे निकले हुए गौरनामको सुनकर राजाके मनमें विषय-वासनाका बीज निर्मूल हो गया। वे प्रेमसे 'हा गौराग' कहकर नाचने लगे। उनके हृदयमें दैन्यका उद्रेक हुआ। एक दिन महाराज सुवर्णसेनने नीदमें देखा कि श्रीगौर-गदाधर अपने पार्षदोंके साथ महाराजके आगमनमें 'हरे, कृष्ण' बोलते हुए नृत्य कर रहे हैं और सबको सप्रेम आलिङ्गनके द्वारा कृतार्थ कर रहे हैं। महाराजने और भी देखा कि श्रीगौरहरि मानो एक साक्षात् सुवर्णकी पुतली हैं, उपनिषद्में कहे गये—“यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम्।” (मुण्डकोपनिषत् ३-३)। रुक्मवर्ण—सोनेका रंग, अनर्पितचर—जो पहले कभी प्रदान नहीं किया गया। वही रुक्मवर्ण पुरुष अनर्पितचर प्रेमप्रदान करनेके लिये पसरा

(प्रेमकाखोमचा) लिये घूम रहा है, यह देखते-देखते राजाकी नीद टूट गयी । नीद टूटनेपर अत्यन्त विरहकातर होकर वे 'गौर।' 'गौर।' पुकारकर क्रन्दन करने लगे । उसी समय दैववाणी (आकाशवाणी) हुई,—“हे महाराज, आप धैर्य धरिये, श्रीगौरहरि जब कलिकालमें नवद्वीप-मण्डलमें अवतीर्ण होंगे, उस समय आप 'श्रीबुद्धिमन्त खाँ'के नामसे परिचित होकर उनकी श्रीचरण-सेवाका अधिकार प्राप्त करेंगे ।”



पैंतीसवां परिच्छेद

श्रीबुद्धिमन्त खाँ

‘श्रीचैतन्य-चरितामृत’में श्रीकृष्णदास कविराज-गोस्वामिपाद लिखते हैं कि,—

श्रीचैतन्ये अति प्रिय बुद्धिमन्त खान् ।

आजन्म आज्ञाकारी तैंहो सेवक-प्रधान ॥

—चै० च० आ० १०।७४

[बुद्धिमन्त खाँ श्रीचैतन्यके अति प्रिय, आजन्म आज्ञाकारी और प्रधान सेवक थे ।]

श्रीबुद्धिमन्त खा थे,—महाप्रभुके पडोसी तथा अत्यन्त अनुगत धन-वान् ब्राह्मण भक्त । महाप्रभु जिस समय नवद्वीपमें अध्यापककी लीला प्रकट कर रहे थे, उसी समय प्रभु एक दिन वायु-व्याधिके बहाने अपूर्व प्रेमभक्तिके विकारोको प्रकट किया था, इसे पाठकगण पहले ही पढ चुके हैं । उसी समय श्रीबुद्धिमन्त खाँने अत्यन्त वात्सल्य-रससे मुग्ध होकर श्रीनिमाइ पडितकी वायु-व्याधिकी चिकित्सा करवायी थी ।

जिस समय श्रीनिमाइ पडितका श्रीविष्णुप्रियासे ब्याह हुआ, उस समय इन्ही श्रीबुद्धिमन्त खॉने वरपक्षकी ओरसे ब्याहका सारा व्ययभार अपने सिर लिया था। श्रीबुद्धिमन्त खॉने अत्यन्त उत्साहसे कहा था,—

ए-विवाह पण्डितेर कराइब हेन ।

राजकुमारेर मत लोके देखे येन ॥

—चै० भा० आ० १५।७२

[पडितके इस विवाहको ऐसा राजकुमारके समान कराऊंगा कि लोग देखेंगे ।]

पृथ्वीके लोग, अधिक क्या, तत्कालीन नवद्वीपके अधिवासीगण अपने पुत्र-कन्याके ब्याहमें, शौकीन धनाढ्य लोग कुत्ते-बिल्लीके विवाहमें बहुत पैसे खर्च करके अपनी इन्द्रियोको तृप्त किया करते थे, परन्तु श्रीबुद्धिमन्त खॉ सचमुच ही ऐसे बुद्धिमान् थे कि, उन्होने एक मात्र नित्य सेव्य श्रीगौर-नारायणके ब्याहमें अपना समस्त धन लगा दिया था, इसे ही वैष्णव-महापुरुषोंकी भाषामें—‘कनकके द्वारा माधवकी सेवा’ कहते हैं ।*

*“मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रय ।
लभते निश्चला भक्ति मय्युद्धव सनातने ॥”

—भा० ११।११।२४

[मेरे प्रीत्यर्थ एकमात्र मेरे आश्रित होकर पुण्यकर्म, विषयभोग एवं अर्यार्जन करते रहनेपर भी हे उद्धव ! सनातन-भजनीय मुझमें सर्वदा अहैतुकी और नित्य अव्यवहित रहनेवाली श्रवण कीर्तनादिमयी भक्ति प्राप्त होती है ।]

“यश्चार्थो धनसग्रहस्तमपि मदर्थे मत्सेवामात्रोपयोगित्वेनैवाचरन् सेवमानो मदपाश्रय आश्रयान्तरशून्यचेताश्च सन् तामेव कथाश्रवणादि-लक्षणा भक्ति मयि निश्चला सर्वदाव्यभिचारिणी अव्यवहिता अहैतुकी लभते, तत्पुखेन कैवल्यादावप्यनादरात्, न च भजनीयस्य चलतया वा सा चलिष्यतीति मन्तव्यमित्याह—सनातने इति ।”

—भ० स० ७२ अनुच्छेद

नवद्वीप-लीलामें श्रीबुद्धिमन्त खाने अर्थके द्वारा श्रीलक्ष्मीपति श्रीगौरहरिकी सेवा की। जब श्रीचन्द्रशेखरके घर महाप्रभुने पारमार्थिक नाट्यमंचका उद्बोधन किया था, उस समय श्रीबुद्धिमन्त खाने उस अभिनयके लिये समस्त वस्त्राभूषणोको संग्रह कराया था।



छत्तीसवां परिच्छेद

श्रीचन्द्रशेखरके घर नाट्याभिनय

आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर श्रीहट्टमे आविर्भूत हुए थे। श्रीजगन्नाथ मिश्रके समान इन्होंने भी श्रीनवद्वीप-मायापुरमें आकर वास किया था। ये 'नवनिधि'में अन्यतम होनेके कारण 'आचार्यरत्न'के नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके घर समय-समयपर श्रीमन्महाप्रभुका सकीर्तन-विलास होता था। श्रीचन्द्रशेखरके घर महाप्रभुने कृष्णलीला-नाट्याभिनयका प्रथम प्रवर्तन किया था अर्थात् नीव डाली थी, इसी कारण यह स्थान 'व्रजपत्तन' नामसे प्रसिद्ध है।

एक दिन महाप्रभुने भक्तोके सामने हरिलीला-नाटकका अभिनय करनेकी इच्छा प्रकट करके श्रीनवद्वीपके धनाढ्य भक्तवर श्रीसदाशिव

[धनसंग्रहरूप जो अर्थ है, वह भी मेरी सेवाके उपयोगके रूपमें मेरे उद्देश्यसे ही आचरण करते-करते (भजन करनेवाला) मदाश्रित होकर, मेरे सिवा अन्य सबके आश्रयको परित्यागकर, अन्तमें मुझमें कथा-श्रवणादि लक्षणमयी, निश्चला और सर्वदा अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त करता है, तब वैसे भक्तिसुखको प्राप्त कर कैवल्य आदि मुक्तिके प्रति भी मेरे शुद्ध भक्तकी अनादर बुद्धि हो जाती है। भजनीय वस्तु और भक्ति अनित्य है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। इसी लिये 'सनातन' शब्दका प्रयोग हुआ है।]

और श्रीबुद्धिमत खाँको शख (शखकी चूडियाँ), अँगिया, रेशमी साड़ी और गहने आदि सामग्री सग्रह करनेके लिये कहा। महाप्रभुने यह निर्देश कर दिया कि श्रीगदाधर श्रीरुक्मिणीका, श्रीब्रह्मानन्द श्रीरुक्मिणी की बूँठी सखीका, श्रीनित्यानन्द श्रीयोगमायाका, ठाकुर श्रीहरिदास कोतवालका, श्रीश्रीवास श्रीनारदका तथा श्रीश्रीराम पंडित स्नातकका वेश ग्रहण करके अभिनय करेंगे, और महाप्रभु स्वयं श्रीलक्ष्मीका वेश ग्रहण करके नृत्य करेंगे, एव जो लोग वास्तविक जितेन्द्रिय हैं उनको ही यह नृत्य देखनेका अधिकार होगा, ये बातें बतला दी गयीं।

प्रकृति-स्वरूपा नृत्य हूँबे आमार ।

देखिते ये जितेन्द्रिय, ताँर अधिकार ॥

सेइ से याइबे आजि बाड़ीर भितरे ।

येइ जन इन्द्रिय धरिते शक्ति धरे ॥

—चै० भा० म० १८।१८-१९

[प्रकृति (स्त्री)के स्वरूपमें मेरा नृत्य होगा; जो जितेन्द्रिय है, उसीको देखनेका अधिकार है। आज घरके भीतर वही मनुष्य जाय, जो इन्द्रियोके निग्रहकी शक्ति रखता हो।]

श्रीमन्महाप्रभुकी बातको सुनकर सबसे पहले श्रीअद्वैताचार्य लोक-शिक्षाके लिये दीनतापूर्वक बोले,—“इस नृत्यके देखनेका मेरा तनिक भी अधिकार न होगा, क्योंकि मैं अजितेन्द्रिय हूँ।” श्रीश्रीवास पंडित बोले,—“मेरी भी यही बात है।” इनके वचन सुनकर श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“यदि तुम लोग इसमें योगदान न करोगे, तो किनको लेकर मैं अभिनय करूँगा?” सभी वैष्णवोंकी ओर दृष्टि निक्षेप करके श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—“किसीको कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम सभी महायोगेश्वर हो सकोगे, कोई भी मुझे देखकर मुग्ध न होगा, मैं यह आश्वासन देता हूँ।”

श्रीगौरसुन्दरकी इस श्रीकृष्ण-लीलाके अभिनयका दर्शन करनेके लिये श्रीनवद्वीपवासी आबाल-वृद्ध-वनिता श्रद्धालु सभी श्रीचन्द्रशेखरके

घरमे उपस्थित हुए। श्रीशचीमाताके साथ श्रीविष्णुप्रिया देवी तथा वैष्णवोंके परिवार अभिनय देखनेके लिये श्रीचन्द्रशेखरके घरमें इकट्ठे हुए। महाप्रभुकी इच्छाके अनुसार श्रीअद्वैताचार्य महा-विदूषकके समान नाना प्रकारसे नृत्य करने लगे। “राम कृष्ण, बोलो, हरि गोपाल गोविन्द।” —यह कहकर श्रीमुकुन्दने कीर्तनका शुभ आरम्भ किया। ठाकुर श्रीहरिदासने बैकुण्ठके कोतवालके वेशमें हाथमें दण्ड लेकर सबको सावधान कर दिया,—“सोधु सावधान! आज जगत्के प्राण महालक्ष्मीके वेशमें नृत्य करेगे। तुम सभी कृष्ण भजन करो, कृष्णकी सेवा करो और कृष्णनाम कीर्तन करो।” श्रीहरिदासको देखकर अन्यान्य अभिनयकारियोंने पूछा,—“तुम कौन हो? और इस स्थानमें क्यों आये हो?” श्रीहरिदास बोले,—“मैं बैकुण्ठका कोतवाल हूँ। मैं चिरकालसे—सदा ही श्रीकृष्णको पुकारता हुआ घूमता रहता हूँ। मेरे प्रभु गोलोकसे इस भूलोकमें प्रेमभक्ति वितरण करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। आज तुम लोग सावधान होकर उस प्रेम-भक्तिको लूट लो।” यह कहते-कहते ठाकुर श्रीहरिदास श्रीमुरारि गुप्तके साथ परिभ्रमण करने लगे। उसके बाद श्रीश्रीवास पंडितने श्रीनारदका वेश धारण करके रगमचर्चमें प्रवेश किया, श्रीश्रीरामाड पंडितने हाथमें आसन और कमण्डलु लेकर श्रीश्रीवासके पीछे-पीछे चले। श्रीअद्वैताचार्यने बड़े ही गभीर स्वरसे श्रीश्रीवाससे पूछा,—“तुम कौन हो? किस लिये यहाँ आये हो?” श्रीश्रीवास बोले,—“मेरा नाम ‘नारद’ है। मैं कृष्ण-गुणगान करते हुए अनन्त ब्रह्माण्डोमें घूमता हूँ, मैं श्रीकृष्णको देखनेके लिये बैकुण्ठ गया था। वहाँ सुना कि वह नदीया नगरमें गये हुए हैं, इसलिए मैं यहाँ आया हूँ।”

श्रीशचीमाताने श्रीनारदके वेशमें श्रीश्रीवास पंडितको देखकर श्रीमालिनीसे पूछा,—“क्या ये ही पंडित श्रीश्रीवास हैं?” श्रीशचीमाता प्रेमसे मूर्छित हो गयी, तब पतिव्रताओंने ‘कृष्ण-नाम’ सुनाकर श्रीशची-माताको बाह्य ज्ञान कराया।

श्रीमहाप्रभु दूसरे घरमे श्रीरुक्मिणीका वेश सजते-सजते श्री-रुक्मिणीके भावमे मग्न हो गये। श्रीगौरसुन्दरका प्रेमाश्रु स्याही बना, हाथकी अँगुलियाँ लेखनी बनी, और पृथ्वीका पृष्ठ पत्र (कागज) के रूपमे परिणत हो गया। श्रीरुक्मिणीके भावमे महाप्रभु श्रीकृष्णको पत्र * लिखने लगे,—

“याँहार चरण-धूलि सर्व-अगे स्नान ।
उमापति चाहे, चाहे यतिक प्रधान ॥
हेन धूलि-प्रसाद ना कर' यदि मोरे ।
मरिब करिया ब्रत, बलिलुँ तोमारे ॥
यत जन्मे पाड तोर अमूल्य चरण ।
तावत् मरिब, शुन, कमललोचन ॥”

—चै० भा० म० १८।१४-१६

[जिनकी चरणधूलिमें उमापति (शकर) तथा जितने प्रधान देव है सर्वांग स्नान करना चाहते हैं, वह धूलि-प्रसाद यदि मुझे नहीं प्रदान करोगे तो मैं व्रत करके मर जाऊँगी, जितने जन्मोके बाद तुम्हारे अमूल्य चरण प्राप्त करूँगी, उतने जन्म मरती रहूँगी। हे कमललोचन, सुनो, मैं यह तुमसे कहे देती हूँ।]

पहले पहरमें यह अभिनय हुआ, दूसरे पहर श्रीगदाधर और श्रीब्रह्मानन्दके अभिनयके समय जब वैष्णवोका वाद-प्रतिवाद और श्रीगदाधरका गोपिका-वेशमे प्रेम नृत्य हो रहा था, उस समय वही श्रीगौरसुन्दरने आद्याशक्तिके वेशमे रगमचपर प्रवेश किया। श्रीनित्यानन्द श्रीयोगमायाके वेशमें प्रेमरसमें विभोर हो, मत्त होकर टेढ़े-मेढ़े चलने लगे। श्रीनित्यानन्दके योगमायाके वेशको देखकर ही लोगोंने श्रीगौर-

*श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, ५२ अध्यायमें ७ श्लोकोमें श्रीरुक्मिणीने पत्र लिखकर एक ब्राह्मणके द्वारा श्रीकृष्णके पास भेजा था, उसी प्रकारके श्रीकृष्णसेवा-विरह-कातरा श्रीरुक्मिणीके भावमे महाप्रभु मग्न हो गये।

सुन्दरको पहचाना, नही तो, श्रीगौरसुन्दरका वेश देखकर तो कोई भी उनको पहचान नहीं सका था। श्रीमन्महाप्रभुको कोई लक्ष्मी, कोई सीता, कोई महालक्ष्मी, कोई पार्वती, कोई श्रीराधा, कोई गंगा, कोई मूर्तिमती दया और कोई महेशमोहिनी महामाया—इस प्रकार अपनी-अपनी भावानुरूप मूर्तिमें देखने लगे। जिन्होंने आजन्म श्रीमहाप्रभुके दर्शन किये थे, वे भी उनको देखकर पहचान न सके। अधिक क्या, श्रीशचीमाता भी श्रीगौरसुन्दरके अभिनयसे विस्मित होकर सबसे पूछने लगी,—“ये क्या स्वयं श्रीलक्ष्मी देवी बैकुण्ठसे आ गयी है?”

जिस रूपको देखकर महायोगेश्वर महादेव तक मोहित हो जाते हैं, उस रूपको देखकर जो वैष्णवोंको मोह नहीं हुआ, यह श्रीगौरसुन्दर की कृपाका ही एकमात्र निदर्शन है। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे उन श्रीलक्ष्मीदेवीके दर्शनकर सबके हृदयमें मातृभावका उदय हो गया। श्रीगौरसुन्दर जगज्जननीके भावमें नृत्य करने लगे और उनके अनुचर लोग समयोचित गाना गाने लगे। इस लीलाके द्वारा महाप्रभुने सबको विष्णुशक्तिके यथार्थ स्वरूपकी शिक्षा दी। श्रीविष्णुकी एक ही शक्ति ‘योगमाया’ और ‘महामाया’के नामसे प्रकाशित होती है। योगमाया ही—उन्मुखमोहिनी स्वरूप-शक्ति है और महामाया—विमुखमोहिनी छायाशक्ति है। भगवान्‌के भक्त एक ही शक्तिके दोनो प्रकारके प्रकाशको ठीक-ठीक जानकर स्वरूप शक्तिका आश्रय लेते हैं।

व्यपदेशे महाप्रभु शिष्याय सबारे ।
पाछे मोर शक्ति कोन जने निन्दा करे' ॥
लौकिक वैदिक यत किछु कृष्णशक्ति ।
सबार सम्माने हय कृष्णे दृढ-भक्ति ॥
देवद्रोह करिले कृष्णेर बड़ दुःख ।
गणसह कृष्णपूजा करिले से सुख ॥

—चै० भा० म० १८।१४७ १४६

[पीछे कोई व्यक्ति मेरी शक्तिकी निन्दा करे, इसलिये महाप्रभु उस बहाने सबको शिक्षा देते हैं—“लौकिक वैदिक जितनी भी कृष्णशक्ति है, उन सबका सम्मान करनेसे कृष्णमें दृढ भक्ति होती है। देवद्रोह करनेपर कृष्णको बड़ा दुःख होता है। और गणोंके साथ कृष्णपूजा करनेसे उन्हें सुख होता है।”]

श्रीमहाप्रभुके आद्याशक्तिके वेशमें नृत्य करते समय श्रीनित्यानन्द मूर्छित होकर गिर पड़े, यह देखकर भक्तगण प्रेमावेशमें उच्च स्वरमें रोदन करने लगे। कुछ क्षणोंके बाद श्रीगौरसुन्दर श्रीगोपीनाथ-विग्रहको गोदमें लेकर महालक्ष्मीके भावमें सिंहासनपर चढ़ गये। भक्तगणने भी उनका स्तवन करते हुए उनकी कृपा-प्रार्थना की। इस प्रकार अभिनय-आनन्दोत्सवमें मानो बहुत ही शीघ्र सारी रात बीत गयी। प्रभात हो गया। वैष्णवगण और पतिव्रता स्त्रियाँ विषादके कारण धैर्य धारण नहीं कर सकी। महाप्रभु एक ही साथ लक्ष्मी, पार्वती, दया और महानारायणीके भावमें स्तन्यपान कराने लगे। इससे भक्तोंके दुःख दूर हुए और सभी प्रेमरसमें मत्त हो उठे। श्रीठाकुर वृन्दावनने लिखा है,—

सप्तदिन श्रीआचार्य-रत्नेर मन्दिरे ।

परम अद्भुत तेज छिल निरन्तरे ॥

चन्द्र, सूर्य, विद्युत् एकत्र येन ज्वले ।

देखये सुकृति-सब महा-कुतूहले ॥

—चै० भा० म० १८।२२६-२२७

[सात दिनोत्तक आचार्यरत्नके मन्दिरमें निरन्तर परम अद्भुत तेज रहा, मानो चन्द्रमा, सूर्य और बिजली एक ही साथ जैसे जल रहे हो। सभी पुण्यात्मा लोग महान् कौतूहलसे इसे देखते रहे।]

इस प्रकारसे बगदेशकी प्राचीन राजधानी और सकीर्तन-धर्मकी आदि आविर्भाव-भूमि श्रीधाम-मायापुर नवद्वीपमें सर्वप्रथम स्वयं सकीर्तन-प्रवर्तक श्रीगौरसुन्दरकी इच्छासे पारमार्थिक रगमचका उद्बोधन

हुआ। बगालके यथार्थ इतिहास-लेखक श्रीगौरसुन्दरकी इस कृपाका अनुसन्धान करेगे तो धन्यातिधन्य हो सकेंगे।*



सैंतीसवाँ परिच्छेद

दारि-संन्यासीके घरमें

एक दिन श्रीगौराग और श्रीनित्यानन्द श्रीमायापुरसे शान्तिपुरमे श्रीअद्वैताचार्यके पास जा रहे थे, रास्तेमें वे 'ललितपुर' नामक एक गाँवमे जा पहुँचे। गंगाके पूर्वी किनारे हाटडागाके आगे यह गाँव पडता है। ललितपुरमें एक गृही-बाउल अथवा दारिसंन्यासी † रहता था। श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यानन्द उस संन्यासीके घर उपस्थित हुए। संन्यासीने "विद्या, धन, उत्तम विवाह और वशवृद्धि हो"—यह कहकर महाप्रभुको आशीर्वाद दिया। इसपर श्रीमहाप्रभु बोले,— "संन्यासिवर! यह तो आशीर्वाद नहीं है, 'कृष्णकी कृपा हो'—इसीका नाम आशीर्वाद है। 'विष्णुभक्ति प्राप्त हो'—यही आशीर्वाद अक्षय और अव्यय है। अतएव इस प्रकारका आशीर्वाद देना आपके लिये उचित नहीं है।"

* १३४७ बगाब्दके बैशाख मासके बगला मासिक 'भारतवर्ष' पत्रिकामें "चारि शताधिक वत्सर पूर्वैर नाट्याभिनय" शीर्षक लेखमें अध्यापक श्रीमणीन्द्र मोहन वसु, एम०-ए०, महाशयने स्वीकार किया है कि,— "यही बगालके प्राचीनतम अभिनयका निदर्शन है"।

† तामसिक तान्त्रिक संन्यासी (?) संन्यासी-वेश धारण करके भी जो गृहस्थ (?) की भाँति पर-स्त्रीके साथ रहते हैं, उन्हीको 'दारि-संन्यासी' कहते हैं।

यह सुनकर सन्यासीने हँसते हुए कहा,—“पहले मैंने जो सुना था, उसका आज साक्षात् प्रमाण मिल गया। आजकल लोगोको अच्छा कहो तो वे डडा लेकर मारने आते हैं। कहाँ तो मैंने प्रसन्न मनसे इस लडकेको उत्तम आशीर्वाद दिया और कहाँ यह उसीमे दोष बता रहा है। पृथ्वीपर जन्म लेकर जिसको सुन्दरी कामिनीका सभोग और धन-दौलतकी प्राप्ति न हुई, उसका जीवन ही व्यर्थ है। तुम्हारे शरीरमें यदि ‘विष्णु-भक्ति’ हो और तुम्हारे पास अर्थ नहीं हो, तो तुम क्या खाकर बचे रहोगे ?”

श्रीगौरमुन्दरने कहा,—“लोग अपने-अपने कर्मोंके अनुसार फल भोग करते हैं। धन-जनके लिये कामना करके भी तो लोगोको उसकी प्राप्ति नहीं होती। शरीरको ठीक तरहसे रखनेकी अनेक चेष्टाएँ करनेपर भी शरीरमें अलक्षितभावसे रोग प्रवेश कर जाता है। इन सब बातोको सब लोग नहीं समझते। विषयसुखमे लोगोकी रुचि देखकर वेदने अनको प्रकारके काम्य-कर्मोंकी प्ररोचना की है। श्रीगंगास्नान करनेसे और श्रीहरि-नाम लेनेसे धन-पुत्रकी प्राप्ति होगी, इस लोभसे भी यदि विषयीलोग ‘गंगास्नान करें और हरिनाम लेनेको तैयार हो, तो कभी साधुसगसे वे श्रीगंगाजी और श्रीहरिनामकी यथार्थ महिमाको सम्यक् प्रकारसे हृदयगम कर सकेंगे और तब उनका मंगल हो जायगा—इसी उद्देश्यसे वेदोमें कर्मोंकी नानाप्रकारकी फलश्रुतियोका वर्णन आता है। वस्तुतः कृष्णभक्तिके सिवा दूसरा कोई उत्कृष्ट वर नहीं है।”*

महाप्रभुकी इन सब बातोको सुनकर उस दारि-सन्यासीने श्रीविश्व-भरको विकृत-मस्तिष्क बालक और अपनेको बहुतसे तीर्थोंमें पर्यटन करनेवाला परमज्ञानी बतलाया ।

अनधिकारी व्यक्तिके सामने महाप्रभुकी इन सब बातोका आदर न होगा, यह समझकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने दारि-सन्यासीको मौखिक

सम्मान प्रदान करके चुप किया और उसके घर दोनोंने दुग्ध-फल आदि भोजन किया । दारि-सन्यासीने श्रीनित्यानन्द प्रभुको इशारेसे कुछ मद्यपान करनेके लिये अनुरोध किया । श्रीमहाप्रभुने इसे सुनते ही 'विष्णु ।' 'विष्णु ।' स्मरण करके आचमन किया तथा अति शीघ्र श्री-नित्यानन्दके साथ उस स्थानका त्यागकर गगाजीमे कूद पड़े और गगामे तैर करके 'शान्तिपुर'में श्रीअद्वैताचार्यके घर जा पहुँचे ।

टाकुर श्रीवृन्दावन लिखते हैं,—

स्त्रैण-मद्यपेरे प्रभु अनुग्रह करे ।

निन्दक वेदान्ती यदि, तथापि सहारे ॥

—चै० भा० म० १९।९५

[स्त्रैण और मद्यपायीपर प्रभु अनुग्रह करते हैं, परन्तु निन्दक वेदान्ती भी हो, तब भी, उसका सहार करने हैं ।]

“एक लीलाय करेन प्रभु कार्य पाँच-सात ।”—अर्थात् ‘एक लीलामें प्रभु पाँच-सात कार्य करते हैं ।’ श्रीकविराज गोस्वामिपादकी यह उक्ति महाप्रभुके चरित्रमें सर्वत्र ही देखी जाती है । दारि-सन्यासीके घर जाकर श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दने यह बतलाया कि यथार्थ आशीर्वाद क्या है ? और यह भी बतलाया कि,—“भगवान् कभी-कभी स्त्रैण मद्यपायी प्रभृति पापियोंके ऊपर भी स्वेच्छासे कृपा कर सकते हैं । प्रभुकी कृपासे वे उन सब पापोंको अनायास आनुसंगिक रूपसे सदाके लिये त्याग देते हैं । परन्तु जो लोग भगवान्के नित्य नाम-रूप-गुण-परिकर और लीलाको स्वीकार नहीं करते, वे सब निन्दक, ज्ञानी, कितने ही त्यागी और पंडित क्यों न हो, उनके प्रति भगवान्की कृपा नहीं होती । इस जगह श्रीमन्महा-प्रभुने एक और शिक्षा यह दी है कि, जो लोग मद्यपान तथा परस्त्री-संग आदि पाप कर्म करते हैं उनका संग करना उचित नहीं है । मद्यपानका नाम सुनते ही श्रीमन्महाप्रभु ‘विष्णु’-स्मरण करते हुए गगामे कूद पड़े थे । भगवद्भक्तोंका चरित्र कभी पापयुक्त नहीं रह सकता । वे लोग किसी प्रकारके मादक द्रव्य या नशेके वशीभूत नहीं होते ।

श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घरमें आकर उपस्थित हुए श्रीमन्महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे पूछा कि 'भक्ति और ज्ञानमें कौन श्रेष्ठ है ?' तब श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुके प्रसाद-लाभके लिये ज्ञानको बड़ा बतलाया । श्रीमन्महाप्रभुने बाह्यिक क्रोध दिखाते हुए श्रीआचार्यकी पीठपर मुक्का जमाकर उन्हें डाँट-डपट कर अपने तत्वको प्रकट किया । तब अद्वैत प्रभु आनन्दसे नृत्य करते हुए बोले, —“तुम मुझे पहले ही सम्मान देते, इसी कारण तुम्हारे कृपा-दण्डकी प्राप्तिके लिये ही मैंने यह कौशल किया था , बस, मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा दास रह सकूँ, यही मैं चाहता हूँ ।”



अड़तीसवाँ परिच्छेद श्रीमुरारि गुप्त और श्रीगौरहरि

एक दिन श्रीविश्वम्भर श्रीनित्यानन्दके साथ श्रीश्रीवास-भवनमें बैठे थे । उसी समय श्रीमुरारि गुप्त वहाँ आये और उन्होंने पहले श्रीगौरसुन्दरको और उसके बाद श्रीनित्यानन्दको दण्डवत् प्रणाम किया । यह देखकर लोकशिक्षार्थ श्रीगौरहरिने श्रीमुरारिसे कहा—“तुमने आज शिष्ट व्यवहारका व्यतिक्रम किया है । आज घर जाओ, कल तुम्हें सब मालूम हो जायगा ।”

श्रीमुरारिने उसी दिन रातमें स्वप्नमें देखा कि, श्रीनित्यानन्द मल्ल-वेशमें जा रहे हैं । उनके हाथमें हल-मूसल है और श्रीअनन्त देव फण फैलाये श्रीनित्यानन्दके सिरपर छत्रकी तरह शोभित हो रहे हैं । श्रीविश्वम्भर श्रीनित्यानन्दके मस्तकपर पखा झलते-झलते उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं । श्रीविश्वम्भर हँसते हुए श्रीमुरारिसे कहते हैं—“मैं छोटा हूँ, श्रीनित्यानन्द मेरे बड़े भाई हैं ।”

श्रीमुरारिने अपनी स्वप्न-समाधिमे श्रीनित्यानन्द-तत्त्वको जानकर दूसरे दिन श्रीश्रीवासभवनमें जाकर पहले श्रीनित्यानन्दकी चरण-वन्दना करके पश्चात् श्रीविश्वम्भरके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। श्री-विश्वम्भरने हँसते-हँसते पूछा,—“मुरारि, आज तुम्हारा व्यवहार दूसरी तरह क्यों है ?” श्रीमुरारिने उत्तर दिया,—“प्रभो, तुमने जैसी प्रेरणा दी, मैंने वैसा ही किया। वायुके वेगसे जिस प्रकार शुष्क तूण उड़ा करता है, उसी प्रकार तुम्हारी शक्तिसे जीव कार्य किया करता है।”

श्रीविश्वम्भरने मुरारिके प्रति सन्तुष्ट होकर अपने तत्त्वको व्यक्त किया। तथा अपना उच्छिष्ट ताम्बूल कृपापूर्वक श्रीमुरारिको प्रदान किया। श्रीविश्वम्भरने ईश्वरावेशमें ईश्वरके नित्य नाम-रूप-गुण-लीलाको मिथ्या प्रतिपादन करनेवाले काशीके प्रसिद्ध सन्यासी प्रकाशानन्दको लक्ष्य कर क्रोधलीला प्रकट की —

सन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते ।

मोरे खंड-खंड बेटा करे' भालमते ॥

पड़ाय वेदान्त, मोर विग्रह ना माने ।

कुष्ठ कराइलुं अंगे, तबु नाहि जाने ॥

अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगेते बैसे ।

ताहा मिथ्या बले' बेटा केमन साहसे ?

सत्य कहो मुरारि ! आमार तुमि दास ।

ये ना माने मोर अंग, सेइ धाय नाश ॥

अज, भवानन्त प्रभुर विग्रह से सेवे ।

ये विग्रह प्राण करि' पूजे सबैदेवे ॥

पुण्य पवित्रता पाय ये अंग-परशे ।

ताहा मिथ्या बले' बेटा केमन साहसे ॥

सत्य सत्य करो तोरे एइ परकाश ।

सत्य मुइ, सत्य मोर दास, ता'र दास ॥

सत्य मोर लीलाकर्म, सत्य मोर स्थान ।
 इहा मिथ्या बल', मोरे करे' खान-खान ॥
 ये यश-श्रवणे आदि अविद्या-विनाश ।
 पापी अध्यापके बल'—'मिथ्या से विलास' ॥
 ये यश-श्रवण-रसे शिव दिगम्बर ।
 याहा गाय आपने अनन्त महीधर ॥
 ये यश-श्रवणे शुक-नारदादि मत्त ।
 चारिवेदे बाखाने ये यशोर महत्त्व ॥
 हेन पुण्यकीर्ति-प्रति अनादर यार ।
 से कभु ना जाने गुप्त, मोर अवतार ॥

—चै० भा० म० २०।३३-४४

[सन्ध्यासी प्रकाशानन्द काशीमें रहता है, वह बेटा अपने तर्कसे मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देता है। वेदान्त पढाता है, मेरे विग्रहको नहीं मानता। उसके शरीरमें कोढ़ करा दिया, तब भी उसे ज्ञान नहीं हुआ, उसकी आँखें नहीं खुली। अनन्त ब्रह्माण्डोकी मेरे अग्रमें स्थिति है, उसको वह बेटा किस साहससे मिथ्या बतलाता है? सत्य कहता हूँ—मुरारि, तुम मेरे दास हो, जो मेरे श्रीअग्रको नहीं मानता, उसका नाश हो जाता है। ब्रह्मा, शिव, अनन्त सब प्रभुके विग्रहका सेवन करते हैं। जिस विग्रहको प्राण-समान सब देवता पूजते हैं, जिस अग्रके स्पर्शसे पुण्यकी पवित्रता-प्राप्ति होती है, उसको बेटा किस साहससे मिथ्या बतलाता है। मैं सत्य-सत्य तुम्हारे सामने यह प्रकट कर रहा हूँ। मैं सत्य हूँ, मेरा दास सत्य है, उसका दास सत्य है, मेरा लीलाकर्म सत्य है, मेरा स्थान सत्य है। इनको मिथ्या बतलाकर मुझे खड-खड करता है। जिस यशके श्रवणसे अविद्याका मूल तक नष्ट हो जाता है, पापी अध्यापक उस बिलासको मिथ्या कहता है। जिस यशके श्रवण-रसको पाकर शिव दिगम्बर है, जिसको महीधर अनन्त स्वयं गाते हैं, जिस यशका श्रवण करके शुक-नारद आदि मत्त

हो रहे हैं , चारो वेद जिस यशके महत्वका बखान करते हैं ऐसे पुण्य-कीर्तिके प्रति जिसका अनादर है, गुप्त, वह कभी मेरे अवतारको नहीं जानता ।]

श्रीविश्वम्भरने 'भाई', सम्बोधन करके श्रीमुरारिको आलिंगन किया, एव श्रीनित्यानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि कर लेनेके कारण उनको अत्यन्त आदर प्रदान किया ।

श्रीमुरारि घर जाकर पत्नीके दिये हुए अन्नका एक-एक ग्रास श्रीकृष्णके उद्देश्यसे अर्पण करके भूमिपर डालने लगे । दूसरे दिन प्रातः काल श्रीविश्वम्भर श्रीमुरारिके घर आकर बोले कि, मुरारिके प्रदान किये हुए अन्नको खानेसे उनको अजीर्ण हो गया है तथा चिकित्साके लिये गुप्तके पास आये हैं । इतना कहकर श्रीविश्वम्भरने श्रीमुरारिके सामान्य जलपात्रसे अजीर्ण व्याधि-शमनके लिये जलपान किया । श्रीमुरारि यह देखकर मूर्च्छित हो गये ।

फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवास-मन्दिरमें चतुर्भुज मूर्ति धारण कर 'गरुड' 'गरुड', कहकर पुकारने लगे । श्रीमुरारिने गरुडके भावमें विभावित होकर प्रभुके समीप अपना गरुडके रूपमें परिचय दिया । उन्होंने प्रभुकी द्वापरयुगीय लीलामें गरुडरूपसे प्रभुकी सेवा की थी, यह बताकर श्रीगौरहरिको उन्होंने अपने कंधेपर चढ़नेके लिये अनुरोध किया । श्रीमुरारि महाप्रभुको कन्धेपर चढ़ाकर श्रीश्रीवासके आँगनमें सर्वत्र परिभ्रमण करने लगे । भक्तगण श्रीमुरारिके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगे ।

श्रीमुरारि गुप्तने श्रीगौरसुन्दरके लीला-सगोपनके पूर्व ही अपने अन्तर्धानके लिये सकल्प करके एक तेज हथियारको अपने घरमें छिपाकर रक्खा था । अन्तर्यामी महाप्रभु यह जानकर श्रीमुरारिके घर आये और गुप्तको इस प्रकारका कार्य करनेसे निषेध किया तथा सर्व-तोभावेन उनपर कृपा की ।



उन्तालीसवाँ परिच्छेद

देवानन्द पंडित

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु नगर-भ्रमण करते-करते प्रसिद्ध श्रीसार्व-भौम भट्टाचार्यके पिता महेश्वर विशारदके 'विद्यानगर'में स्थित घरके पास पहुँचे। यहाँ 'देवानन्द पंडित' नामक एक मोक्षकामी ब्राह्मण रहते थे। देवानन्द आजन्म ससारसे विरक्त, तपस्वी और ज्ञानी थे। वे श्रीमद्भागवतके 'महा-अध्यापक'के नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीमद्भागवतका पाठ करनेपर भी उनके हृदयमें भक्ति नहीं थी—उनके हृदयमें मुक्तिकी वासना ही प्रबल थी। दैवात् एक दिन महाप्रभुने उस मार्गसे जाते समय देवानन्दकी भागवत-व्याख्या सुनी। इस व्याख्याको सुनकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे,—

* *,—बेटा कि अर्थ बाखाने ?

भागवत-अर्थ कोन जन्मेओ ना जाने ॥

* * *

महाचिन्त्य भागवत सर्वशास्त्रे गाय ।

इहा ना बुझये विद्या-तप-प्रतिष्ठाय ॥

* * *

भागवते अचिन्त्य-ईश्वर-बुद्धि या'र ।

से जानये भागवत-अर्थ भक्तिसार ॥

—चै० भा० म० २१।१३, २३, २५

[बेटा कैसे अर्थकी व्याख्या करता है ? भागवतका अर्थ किसी जन्ममें भी नहीं जानता। भागवत महान् अचिन्त्य है, यह सब शास्त्र गाते हैं, इसको विद्या, तप और प्रतिष्ठासे नहीं समझा जा सकता। जिसकी भागवतमें अचिन्त्य ईश्वर-बुद्धि है, वह जानता है कि भागवतका अर्थ भक्तिसार है ।]

महाप्रभुकी इस लीलासे श्रीमद्भागवत-पाठके अधिकारीका निर्णय हुआ है। जागतिक पाण्डित्य, उच्चवशमें जन्म अथवा जागतिक पुण्य-पवित्रता होनेसे ही श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त नहीं समझा जा सकता। भगवान्‌मे ऐकान्तिक सेवावृत्तिके द्वारा ही श्रीमद्भागवतके अर्थकी यथार्थ उपलब्धि होती है।

शुद्ध वैष्णव-श्रेष्ठ श्रीश्रीवास पंडितके चरणोंमें देवानन्दने पहले अपराध किया था। एक दिन देवानन्द पंडित श्रीमद्भागवतकी व्याख्या कर रहे थे, उस समय महाभागवतवर पंडित श्रीश्रीवास यदृच्छासे ही देवानन्दके घर जा पहुँचे और भागवतका श्लोक सुनते ही रसिकवर श्रीश्रीवास पंडितसे सब प्रेमविकार प्रकट हो गये। देवानन्द पंडितके कुछ पापी छात्रोंने गुरुके पाठमें बाधक समझकर श्रीश्रीवास पंडितको घरसे बाहर खींचकर ला गिराया। देवानन्द पंडितने अपने छात्रोंको मना नहीं किया। यद्यपि देवानन्दने स्वयं प्रवृत्त होकर महाभागवत श्रीश्रीवास पंडितके प्रति कुछ भी बुरा व्यवहार नहीं किया, तथापि छात्रोंके ऐसे व्यवहारको गौण समझा एव मौन रहकर अनुमोदन ही किया, इसीसे बड़ा भारी वैष्णवापराध हो गया।

बहुत दिनों बाद देवानन्दको देखकर श्रीविश्वम्भरको श्रीश्रीवास पंडितके प्रति किए हुए देवानन्दके उस अपराधकी बात याद आ गयी, इससे महाप्रभुने कृपापूर्वक देवानन्दको वाक्य-दण्ड देकर लोकको शिक्षा-प्रदान की। देवानन्द श्रीचैतन्यके वाक्य-दण्डको सिरपर धारण करके लज्जाके मारे निहत्तर हो रहे।

चैतन्येर दण्ड ये मस्तके करि' लय।

सेइ दण्डे ता'र प्रेमभक्ति-योग हय॥

—चै०भा० म० २१।७६

[श्रीचैतन्यके दण्डको जो मस्तकपर धारण कर लेता है, उस दण्डसे उसको प्रेमभक्तिकी प्राप्ति होती है।]

सन्यास-लीला प्रकट करनेके बाद श्रीमहाप्रभुने जब नीलाचलसे गौडदेशकी विजय-यात्रा की थी, तब वे 'कुलिया' ग्राममें आये थे।

श्रीगौरसुन्दरकी गृहस्थ-लीलाके समय देवानन्द पंडितका श्रीगौरहरिके चरणकमलोमें विश्वास नहीं था। श्रीचैतन्यदेवके प्रियपात्र प्रेमिकवर श्रीवक्त्रेश्वर पंडित घटनाक्रमसे कृपापूर्वक देवानन्द पंडितके आश्रयमें जाकर रहे थे। श्रीवक्त्रेश्वरकी, सेवाके प्रभावसे और उनके सगके फलसे देवानन्दका श्रीचैतन्यके चरणकमलोमें विश्वास हो गया। श्रीचैतन्य नीलाचलसे 'कुलिया'में पधारे हैं, यह सुनकर देवानन्द पंडित श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये प्रभुके समीप पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभुने इस बार देवानन्दके समस्त अपराधोका खडन करके उनपर कृपा की। श्रीवक्त्रेश्वर पंडितकी कृपासे देवानन्दपर महाप्रभुकी कृपा हुई। उनकी कृपासे अभिषिक्त होकर देवानन्द अब श्रीमद्भागवतकी व्याख्या तथा अध्यापन किस प्रकार करेगे, इस विषयमें उन्हें श्रीमहाप्रभुके द्वारा उपदेश प्राप्त हो गया। श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—

आदि-मध्य-अन्ते भागवते एइ कय ।
 विष्णुभक्ति नित्यसिद्ध अक्षय अव्यय ॥
 अनन्त ब्रह्माण्डे सबे सत्य विष्णुभक्ति ।
 महाप्रलयेओ या'र थाके पूर्ण-शक्ति ॥
 मोक्ष दिया भक्ति गोप्य करे' नारायणे ।
 हेन भक्ति ना जानि कृष्णेर कृपा-बिने ॥
 भागवतशास्त्रे से भक्तितर तत्त्व कहे ।
 तेजि भागवत-सम कोन शास्त्र नहे ॥
 येन-रूप मत्स्य-कूर्म-आदि अवतार ।
 आविर्भाव-तिरोभाव येन ता' सबार ॥
 एइमत भागवत कारो कृत नय ।
 आविर्भाव-तिरोभाव आपनेइ हय ॥
 भक्तियोगे भागवत व्यासेर जिह्वाय ।
 स्फूर्ति से हइल मात्र कृष्णेर कृपाय ॥

—चै० भा० अ० ३।५०६-५१२

[आदि, मध्य और अन्तमें भागवतमें यही कहा है कि विष्णुभक्ति नित्यसिद्ध, अक्षय और अविनाशी है। अनन्त ब्रह्माण्डमें केवल विष्णु-भक्ति सत्य है, महाप्रलयमें भी जिसकी पूर्णशक्ति विद्यमान रहती है। नारायण मोक्ष देकर भक्तिको छिपा लेते हैं, ऐसी भक्तिको कृष्णकी कृपाके बिना नहीं जाना जा सकता। भागवतशास्त्रमें उस भक्तिका तत्व कहा गया है। इस कारण भागवतके समान कोई शास्त्र नहीं है। जैसे मत्स्य, कूर्म आदि अवतार हैं, उन सबका जैसे आविर्भाव-तिरोभाव होता है, वैसे ही भागवत किसीके द्वारा रचित नहीं है, उसका अपने-आप ही आविर्भाव-तिरोभाव होता है। भक्तियोगसे कृष्ण की कृपाके कारण ही श्रीव्यासकी जिह्वामें भागवत स्फूर्त हुई।]

‘भागवत बुद्धि’ हेन या’र आछे ज्ञान ।

सेइ ना जानये भागवतेर प्रमाण ॥

अज्ञ हई’ भागवते ये लय शरण ।

‘भागवत-अर्थ ताँ’र हय दरशन ॥

प्रेममय भागवत—श्रीकृष्णेर अङ्ग ।

ताहाते कहेन यत गोप्य कृष्णरंग ॥

वेदशास्त्र-पुराण कहिया वेदव्यास ।

तथापि चित्तेर नाहि पायेन प्रकाश ॥

यखने श्रीभागवत जिह्वाय स्फुरिल ।

ततक्षणे चित्तवर्त्ति प्रसन्न हइल ॥

हेन ग्रन्थ पड़ि’ केह सकटे पड़िल ।

शुन अकपटे द्विज, तोमारे कहिल ॥

आदि-मध्य-अवसाने तुमि भागवते ।

भक्तियोग मात्र बाख्खानिओ सर्वमते ॥

तबे आर तोमार नहिब अपराध ।

सेइक्षणे चित्तवृत्त्ये पाइबा प्रसाद ॥

[जिसको ऐसा ज्ञान है कि मैं भागवतको समझता हूँ वह भागवत की मर्यादाको नहीं जानता। जो अज्ञानी होकर भागवतकी शरण लेता है, उसको भागवतके अर्थका दर्शन होता है। प्रेममय भागवत श्री-कृष्णका अंग है। उसमें श्रीकृष्णकी गोपनीय लीलाओंका वर्णन है। वेदशास्त्र एवं पुराणोंको वेदव्यासने कहा, तथापि उनको चित्तकी प्रसन्नता नहीं मिली। जब उनकी जिह्वासे श्रीभागवतकी स्फूर्ति हुई उसी क्षण उनकी चित्तवृत्ति प्रसन्न हो गयी। ऐसे ग्रन्थको पढ़कर भी कोई सकटमें पड़ गया। हे द्विज, सुनो, मैंने निष्कपटरूपसे तुमसे कहा है,—तुम भागवतके आदि, मध्य और अन्तमें सब मतोंमें केवल भक्तियोगकी ही व्याख्या करना। इससे फिर तुम्हें अपराध नहीं होगा और उसी क्षण चित्तवृत्तिमें प्रसाद (प्रसन्नता)की प्राप्ति हो जायगी।]



चालीसवाँ परिच्छेद श्रीशचीमाता और वैष्णवापराध

सच्चे साधुकी निन्दाके समान दूसरा कोई अपराध नहीं है। साधुकी निन्दा अनेक प्रकारसे होती है। साधु या वैष्णवको साधारण दृष्टिसे देखनेपर साधु-निन्दा होती है। वैष्णवके सम्बन्धमें मिथ्या अपवाद, वैष्णवकी भक्तिका उदय होनेके पहलेका दोष, पूर्व दोषोंके क्षय होनेपर बचे हुए दोष, दैवोत्पन्न दोष, उनके शरीरगत दोष अथवा प्रकृतिगत दोष, जैसे—उनके जाति-वर्ण प्रभृति तथा अंग-विकृति अथवा कर्कश स्वभाव आदिको लेकर हरिनाम-भजन-परायण-व्यक्तिकी निन्दा करनेसे

परिच्छेद] वैष्णवापराधका गुरुत्व और उसका खंडन १८१

‘वैष्णवापराध’ होता है। वैष्णवापराधके रहते श्राहरिनामकी कृपा प्राप्त नहीं होती, कृष्णकृपा होनेपर भी प्रेम-लाभ नहीं होता।

श्रीगौरसुन्दरने अपनी माताको लक्ष्यकर समस्त आत्मकल्याणकी कामना करनेवालोको इस प्रकार शिक्षा दी है। एक दिन श्रीगौरसुन्दर श्रीश्रीवासके मन्दिरमें श्रीविष्णुके पलगपर चढ़कर अपने स्वरूपका वर्णन करने लगे और उन्होंने सबको वर प्रदान किया। श्रीवास पड़ितने श्रीशचीमाताको प्रेम प्रदान करनेके लिये श्रीगौरसुन्दरसे प्रार्थना की, तब महाप्रभु बोले,—“श्रीवास, तुम इस बातको मुखपर न लाना। मैं माताजीको प्रेम प्रदान नहीं कर सकता, क्योंकि वैष्णवोंके प्रति उनका अपराध हुआ है।” यह सुनकर श्रीश्रीवास पड़ित बोले,—“प्रभो, तुम्हारी यह बात सुनकर तो हम लोगोकी देहत्याग करनेकी इच्छा होती है। तुम्हारे जैसे पुत्र जिनके गर्भसे आविर्भूत हुए, उनको क्या प्रेमयोगमें अधिकार नहीं है। श्रीशचीमाता सबकी जीवन-स्वरूपा है, तुम बचना छोड़कर उन्हें भक्ति दान करो। फिर, पुत्रके प्रति माताका अपराध ही क्या हो सकता है? और यदि अज्ञातरूपसे कोई अपराध हो भी गया हो तो उसका खंडन करके उनके ऊपर कृपा करो।”

यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले,—“मैं अपराध-खण्डन करनेका केवल उपाय बतला सकता हूँ। वैष्णवापराध क्षमा करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है। जिस वैष्णवके प्रति अपराध होता है, वे कृपा करके क्षमा कर दें, तभी उस अपराधका मार्जन होता है, नहीं तो नहीं होता। अम्बरीषके प्रति दुर्वासाने अपराध किया था, उसे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर क्षमा न कर सके। जब अम्बरीषने क्षमा किया तभी दुर्वासा मुनि अपराधसे मुक्त हो सके। श्रीअद्वैताचार्यके प्रति माताजी का अपराध हुआ है। उनके क्षमा करनेपर माताजीको प्रेम-प्राप्तिकी योग्यता होगी। माताजी यदि आचार्यकी चरण-धूलि मस्तकपर ग्रहण करे, तभी मेरी आज्ञासे उनको प्रेम-भक्ति प्राप्त होगी।”

श्रीगौरसुन्दरकी यह बात सुनकर उसी समय सब लोग श्रीअद्वैताचार्य के पास गये और वहाँ इन सारी बातोंको कह सुनाया। आचार्यने यह बात सुनकर श्रीविष्णुका स्मरण करते हुए कहा,—“तुम लोग क्या मुझे मार डालना चाहते हो? जिनके गर्भसिन्धुसे हमारे प्रभु श्रीगौरचन्द्र उदित हुए हैं, वे मेरी माता हैं—मैं उनका पुत्र हूँ। मैं उनकी ही चरण-धूलिका अधिकारी हूँ। वे स्वयं विष्णुभक्ति-स्वरूपिणी हैं। श्रीदेवकी और श्रीयशोदा जो वस्तु हैं, वही श्रीशचीमाता भी हैं।”

इस प्रकार श्रीशचीमाताके स्वरूपका वर्णन करते-करते श्रीअद्वैत आचार्य प्रेमाविष्ट हो गये। उनकी बाह्य सजा लुप्त हो गयी। यही उत्तम सुयोग और अवसर समझकर श्रीशचीमाताने आचार्यकी चरण-धूलि अपने सिरपर ग्रहण की और वे प्रेमसे विह्वल हो गयी। इस दृश्यको देखकर वैष्णव लोग उच्चस्वरसे जयध्वनि करने लगे। महाप्रभु विष्णु-पलंगपर बैठे प्रसन्न-चित्तासे हँसते हुए बोले,—“अब माताजीका वैष्णवापराध नष्ट हो गया और उनको विष्णु-भक्ति प्राप्त हो गयी।”

इस लीलाके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने जो शिक्षा दी है उसे मैं श्रीचैतन्य-लीलाके व्यासकी भाषामें उद्धृत करता हूँ,—

जननीर लक्ष्ये शिक्षागुरु भगवान् ।

करायें वैष्णवापराधे सावधान ॥

‘शूलपाणि-सम यदि वैष्णवेरे निन्दे ।

तथापिह नाश पाय’, कहे शास्त्रवृन्दे ॥

इहा ना मानिया ये सुजन-निन्दा करे ।

जन्मे-जन्मे से पापिष्ठ दैव-दोषे मरे ॥

अन्येर कि दाय, गौर-सिंहेर जननी ।

ताँहारेओ ‘वैष्णवापराध’ करि’ गणि ॥

—चै० भा० म० २२।५४-५७

[जननीको लक्ष्य करके शिक्षागुरु भगवान्ने वैष्णवापराधसे सबको सावधान कर दिया। शूलपाणि महादेवके समान देव भी यदि वैष्णवकी

निन्दा करें तो वे भी नाशको प्राप्त होते हैं, ऐसा शास्त्रवृन्द कहते हैं। इसको न मानकर जो सुजनोकी निन्दा करते हैं, वे पापिष्ठ जन्म-जन्ममें दैव-दोषसे मरते रहते हैं। दूसरेकी क्या गिनती, स्वयं जो गौरसिंहकी जननी हैं, उनपर भी वैष्णवापराध माना जाता है।]

श्रीश्रीशचीमाताने वस्तुतः श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी किसी प्रकार निन्दा नहीं की, केवल अप्राकृत वात्सल्य-रसमयी श्रीशचीदेवीने इस प्रकारकी मानसिक आलोचना की थी कि उनके पुत्र श्रीमद्विश्वरूप पहले श्रीअद्वैताचार्यकी सगतिमें पड़कर ससारसे विरक्त हो सन्यासी हो गये थे और श्रीगौरसुन्दर भी श्रीअद्वैताचार्यके सगमें सर्वदा कीर्तनादिमें प्रमत्त होकर सासारिक सुखसे उदासीन हो गये हैं। परन्तु इसके द्वारा भी श्रीशचीदेवीके अपराधाभासका अभिनय हुआ था, इसे श्रीगौर-सुन्दरने लोक-शिक्षार्थ प्रदर्शित किया।



इकतालीसवाँ परिच्छेद

दुग्धफलाहारी ब्रह्मचारी

श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवासके घर प्रति रातको सकीर्तन करते हैं, यह सुनकर एक ब्राह्मण ब्रह्मचारीको वह सकीर्तन-नृत्य देखनेकी साध हुई। वह ब्रह्मचारी बाल-ब्रह्मचर्य पालन करके केवल दुग्ध-पान और फल भक्षण कर कठोर तपस्या करते थे। उनके जीवनमें कोई पाप छू भी नहीं गया था। ब्रह्मचारीने श्रीश्रीवास पंडितसे विशेष अनुनय-विनय करके महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यको देखनेके लिये श्रीश्रीवासके घरमें स्थान माँगा। श्रीश्रीवासने ब्रह्मचारीके अत्यन्त अनुरोधसे तथा उनके

ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और निष्पाप जीवनका स्मरण कर ब्रह्मचारीजीको घरमें प्रवेशका अधिकार दिया और वहाँ गुप्त रूपसे रहनेके लिये कह दिया ।

इधर महाप्रभु भक्तोंके साथ हरिसकीर्तन आरम्भ करनेके कुछ ही क्षणों बाद कहने लगे,—“आज मानो मेरे हृदयमें आनन्दकी स्फूर्ति नहीं हो रही है, जान पड़ता है यहाँ किसी बहिरंग मनुष्यने प्रवेश किया है ।” श्रीश्रीवास पण्डित बोले,—“यहाँ किसी बुरे आदमीने प्रवेश नहीं किया है, एक निष्पाप बाल-ब्रह्मचारी, दुग्धफलाहारी, तपस्वी ब्राह्मण विशेष श्रद्धाके साथ आपका सकीर्तन सुनने और नृत्यका दर्शन करने आये है ।” यह सुनकर महाप्रभुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन ब्रह्मचारीको तत्काल ही घरसे निकाल देनेकी आज्ञा दी,—

डुइ भुज तुलि' प्रभु अँगुली देखाय ।

'पयःपाने कभु मोरे केह नाहि पाय ॥

चण्डालेओ मोहार शरण यदि लय ।

सेइ मोर, मुनि ता'र, जानिह निश्चय ॥

संन्यासीओ मोर यदि ना लय शरण ।

सेह मोर नहे, सत्य बलिहँ वचन ॥

गजेन्द्र-बानर-गोपे कि तप करिल ।

बल' देखि, ता'रा मोरे केमते पाइल ॥

असुरेओ तप करे', कि हय ताहार ।

बिने मोर शरण लइले, नाहि पार ॥'

—चै० भा० म० २३।४२-४६

[देखो भुजाएँ उठाकर प्रभु अँगुली दिखाते (हुए बोले),—“दूध पीकर कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता । चाण्डाल भी यदि मेरी शरण लेता है तो वह मेरा है और मैं उसका हूँ, यह निश्चय जानो । संन्यासी भी यदि मेरी शरण नहीं लेता, तो वह मेरा नहीं, यह मैंने सत्य वचन कहा है । गजराज, बदर और गोपोंने कौनसा तप किया था

बताओ तो उन्होंने मुझको कैसे प्राप्त किया। असुर भी तप करते हैं उससे क्या होता है। मेरी शरण लिये बिना निस्तार नहीं है।]

भय और लज्जासे ब्रह्मचारी श्रीश्रीवासके घरसे चले गये, परन्तु वे श्रीमन्महाप्रभुके ऊपर क्रोध करनेके बदले मन-ही-मन सोचने लगे,—
“आज मेरा परम सौभाग्य है। मैंने जो अपराध किया था, उसीका दण्ड पाया परन्तु मुझे आज साक्षात् वैकुण्ठके दर्शन हुए।”

अन्यान्य बहिर्मुख लोगोके समान ब्रह्मचारीकी श्रीमन्महाप्रभुकी अथवा उनके भक्तोकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नहीं हुई। इसीसे उनको शीघ्र ही महाप्रभुकी कृपा प्राप्त हुई। पश्चात् महाप्रभुने ब्रह्मचारीको अपने पास बुलाया और अपना चरणकमल उनके मस्तकपर रखकर उपदेश दिया,—

प्रभु बले,—“तपः करि’ ना करह बल।

विष्णु-भक्ति सर्वश्रेष्ठ जानह केवल ॥”

—चै० भा० म० २३।५४

[प्रभुने कहा,—“तप करता हूँ इसका बल न बघारना। केवल विष्णुभक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ समझना।]

बहुतेरे अपने ब्रह्मचर्य, कुलीनता और तपस्याके अभिमानमें गर्व करके सोचते हैं कि भगवद्भक्तगण उनको हरिसकीर्तन आदिमें अधिकार अथवा भक्तोमें श्रेष्ठ स्थान क्यों नहीं प्रदान करेंगे? परन्तु लोकशिक्षक महाप्रभुने इस लीलाके द्वारा इस प्रकारके विचारकी असारता बतला दी है। और यह भी बतला दिया कि केवल नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, सन्यास या निष्पाप जीवनके द्वारा ही महाप्रभुकी कृपा या भगवद्भक्ति प्राप्त नहीं होती। सुनीति या कुनीति कोई भगवद्भक्तिका सोपान या अग्न नहीं है। भगवद्भक्ति श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके भक्तोकी अहैतुकी कृपाके द्वारा ही प्राप्त होती है।



बयालीसवाँ परिच्छेद

चाँद काजी

श्रीमहाप्रभुने श्रीहरिनाम-प्रचारके प्रारम्भमें श्रीश्रीवासके आँगनके निकटवर्ती नगर-निवासियोको पहले ताली दे-देकर 'हरि-नाम' लेनेकी आज्ञा दी। क्रमशः नवद्वीपके द्वार-द्वार मृदग करताल आदि वाद्योके साथ सकीर्तनका प्रचार प्रारम्भ हुआ। 'बख्तियार खिलजी'के आनेके बादसे नवद्वीपके फौजदार 'चाँदकाजी'के समय तक 'हिन्दुत्व'का अत्यन्त ह्रास हो गया था। हिन्दू लोग डरसे कभी भी श्रीभगवान्का नाम प्रकटरूपमें उच्चारण करनेका साहस नहीं करते थे। परन्तु श्रीचैतन्य-देवके आविर्भावके बाद उनके निर्देशानुसार जब नवद्वीपके घर-घर मृदग-करताल लेकर उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन होने लगा, तब नवद्वीपके तत्कालीन शासनकर्त्ता चाँदकाजी यह जानकर एक दिन सायंकाल श्रीमायापुरमें श्रीश्रीवासके आँगनके समीपवर्ती एक कीर्तनकारी नगरवासीके घर जा पहुँचा और उसने उनका मृदग तोड़ दिया। जाते समय यह भय दिखा गया कि भविष्यमें कोई नगरवासी इस प्रकार कीर्तनादि करेगा, तो उनको विशेष रूपसे दंडित और जातिभ्रष्ट कर दिया जायगा। जिस स्थानमें चाँदकाजीने नगरवासीके मृदगको तोड़ दिया था वह स्थान तबसे 'खोलभागार डागा' (मृदग तोड़नेका स्थान)के नामसे प्रसिद्ध होकर आज भी श्रीमायापुरमें निर्दिष्ट है।

नगरके क्षुब्ध सज्जनोंने यह सारी घटना श्रीमहाप्रभुसे निवेदन की। तब श्रीमहाप्रभु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये तथा उन्होंने सबको और भी जोर-जोरसे सकीर्तन करनेका आदेश दिया। नागरिकोंके हृदयमें काजीका भय विद्यमान है, यह जानकर श्रीमन्महाप्रभुने उसी दिन सध्याके समय श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर प्रभृति भक्तोंके साथ होकर तथा समस्त नगरवासियोंको एकत्र करके तीन

विभिन्न दलोमें विराट् कीर्तनमडली सगठित की। और तत्पश्चात् महासकीर्तनका जुलूस निकालकर नवद्वीप नगरमें भ्रमण करते हुए काजीके घरके दरवाजेपर जा पहुँचे। काजी डरसे अपने घरके भीतर छिप रहा। श्रीमहाप्रभुने काजीको बाहर बुलवाया और उससे इस्लाम-धर्मके सम्बन्धमें नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे। काजी महाप्रभुके मुखसे धर्म-सिद्धान्त सुनकर निश्चिन्त हो गया। काजीने बतलाया कि जिस दिन उसने मृदग तोड़कर नवद्वीप-वासियोंको कीर्तन करनेसे मना किया था, उसी रातको एक मनुष्यके समान शरीर और सिंहके समान मस्तकवाली महाभयकर मूर्ति उसकी छातीपर कूदकर चढ़ बैठी और दाँत किटकिटाती हुई उसे भय दिखलाकर बोली,—“तुमने हरिकीर्तनका मृदग तोड़ा है, मैं तुम्हारा कलेजा फाड़ डालूँगा और तुम्हें सबश मार डालूँगा।” काजीने इतना कहकर महाप्रभुको अपनी छातीमें नृसिंहके नखोंके निशान दिखलाये। काजीने और भी बतलाया कि,—उस दिन उसका एक प्यादा, जिसको उसने कीर्तनमें बाधा देनेके लिये भेजा था, उसके (काजीके) पास आकर कहने लगा कि कहींसे अचानक आगकी एक लपट आकर उसके मुँहमें लगी और उसकी सारी दाढ़ीको जलाकर मुँहको भी दग्ध कर दिया। उस प्यादेने उसको यह भी कहा कि,—“मैंने हिन्दुओंसे कहा कि तुम लोग कोई-कोई ‘कृष्णदास’, ‘रामदास’, ‘हरिदास’—इस प्रकारके नाम परिचयमें ‘हरि हरि’ बोलते हो। ‘हरि हरि’ शब्दसे—हरण करता हूँ यानी ‘चोरी करता हूँ, चोरी करता हूँ’—यह अर्थ होता है। इससे जान पड़ता है कि दूसरोके घरकी धन-संपत्ति चुरानेके अभिप्रायसे ही तुम लोग ‘हरि हरि’ शब्द उच्चारण करते हो। जिस दिन मैंने उनके साथ इस प्रकारका परिहास किया है, उसी दिनसे मेरी जिह्वा इच्छा न होते हुए भी ‘हरि हरि’ बोल रही है।” काजीने यह भी बतलाया कि इसके बाद एक दिन क्रुद्ध पाखण्डी हिन्दुओंने उसके पास आकर यह शिकायत की कि,—“निमाइ हिन्दू-धर्मको नष्ट कर रहा है, पहले

मगलचड़ी, विषहरि-पूजामें रात्रि-जागरण करना ही लोगोमें धर्म-कर्म समझा जाता था, परन्तु निमाइ पंडित 'गया'से लौटकर बिल्कुल विपरीत धर्म चला रहा है। मृदंग-करतालके साथ समय-असमय उच्च कीर्तन करनेकी ध्वनिसे हमलोगोके कानोमें ताले लग गये हैं, रातमें निद्रामें बाधा पड़ती है और नगरमें शान्ति भग हो रही है। निमाइ अपना नाम बदलकर इस समय सर्वत्र अपनेको 'गौरहरि' कहकर प्रचार करता है। इससे हिन्दू-धर्म नष्ट हो गया, नवद्वीप नगर नष्ट हो गया। इसका फल यह हो रहा है कि कुछ नीच लोगोकी स्पर्धा बढ रही है। हिन्दू-धर्ममें 'ईश्वरका नाम' मन-ही-मन लेनेकी ही व्यवस्था है, परन्तु यह निमाइ विपरीत मत चलाकर समस्त नवद्वीपकी शान्ति भग कर रहा है। अतएव आप जब हमारे गाँवके शासनकर्त्ता हैं तब आप इसकी कोई व्यवस्था करे। निमाइको बुलाकर शीघ्र उसे नवद्वीपसे बाहर निकाल दें।"

श्रीमहाप्रभु काजीके मुखसे श्रीहरिनाम-उच्चारण सुनकर उसके प्रति प्रसन्न हो गये और उसको स्पर्श करके बोले कि, जब आपने 'हरि', 'कृष्ण', 'नारायण' नाम उच्चारण कर लिया तो आपके सब अशुभ दूर हो गये हैं। काजीने श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोका स्पर्शकर उनके चरणोंमें भक्तिकी याचना की। नवद्वीप नगरमें जिससे फिर सकीर्तनमें बाधा न पड़े, इसके लिये महाप्रभुने काजीसे अनुरोध किया तब काजीने प्रतिज्ञा की कि,—“हमारे वशमें कभी कोई कीर्तनमें बाधा नहीं दे सकेगा। मैं अपने वशमें इसकी शपथ देकर जाऊँगा।” आज भी श्रीमायापुर-नवद्वीपमें काजीके वशधरगण श्रीनवद्वीप-परिक्रमाके समय कृष्ण-सकीर्तनमें योगदान करते हैं।



तैत्तलोसवाँ परिच्छेद श्रीमन्महाप्रभुका विश्वरूप-प्रदर्शन

एक दिन श्रीअद्वैताचार्य श्रीश्रीवासके आँगनमें गोपी-भावमें नृत्य और कीर्तन कर रहे थे। किसी प्रकार भी उनका नृत्य समाप्त होते न देखकर समस्त भक्तोंने मिलकर आचार्यको स्थिर किया। श्रीश्रीवास और श्रीरामाई स्नान करने चले गये तब श्रीअद्वैताचार्य प्रेम-विभोर हो श्रीश्रीवासके आँगनमें बार-बार लोटने लगे। आचार्यकी इस आर्त-दशाकी बात श्रीमन्महाप्रभुके पास उनके घर पहुँची। उसी क्षण श्रीगौरमुन्दर श्रीश्रीवासके घर आये तथा श्रीअद्वैताचार्यको लेकर उन्होंने श्रीविष्णु-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया एव आचार्यसे पूछा कि उनकी अभिलाषा क्या है ? श्रीमद् आचार्य बोले,—“प्रभो, तुमने श्रीकृष्णावतारमें श्रीअर्जुनको जो ‘विश्वरूप’ दिखाया था, वह मुझे दिखाओ।”

‘श्रीमद्भगवद्गीता’के एकादश अध्यायमें इस ‘विश्वरूप’का वर्णन है। विश्वरूप प्रदर्शन करनेके पहले श्रीभगवान् श्रीकृष्णने श्रीअर्जुनसे कहा है,—

पश्य मे पार्थ ! रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥
पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानदिवनौ महतरतथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥
इहैकस्थं जगत् कृत्स्न पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश ! यच्चाप्यदृष्टुमिच्छसि ॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

—गीता ११।५-८

श्रीकृष्णने कहा,—“हे अर्जुन, तुम मेरे योगैश्वर्यको देखो। मेरे शत-शत और सहस्र-सहस्र नाना प्रकारके दिव्य रूपों और नाना प्रकारकी

आकृतियोंको प्रत्यक्ष करो। हे भारत, आदित्यसमूह, वसुसमूह, रुद्रसमूह, दोनों अश्विनीकुमार, समस्त मरुद्गण और अनेको अदृष्टपूर्व आश्चर्य-रूपोंको देखो। सचराचर जगत् और जो-कुछ देखना चाहो, सब-कुछ मेरे इस ऐश्वर्यमय स्वरूपमें एक स्थानमें अवस्थित है। अतएव हे अर्जुन, और जो-जो देखना चाहो, वह सभी तुम मेरे श्रीकृष्ण-स्वरूपमें एक देशमें देखो। इस मानव-चक्षुके द्वारा तुम मुझको नहीं देख सकोगे। तुम मेरे नित्य-पार्षद हो, तुम्हारा जो अपना, स्वाभाविक निरुपाधिक प्रेम-चक्षु है, उसके द्वारा कृष्ण-स्वरूपका दर्शन करो। यह कृष्ण-स्वरूप ही मेरा नित्य स्वरूप है, और मेरा योगैश्वर्यमय विराट् रूप प्राकृत और अनित्य है, क्योंकि उसका सम्बन्ध विश्वके साथ है। अतएव तुमको मैं देवताओंके उपयोगी ऐश्वर्यमय दिव्यचक्षु प्रदान करता हूँ। उसके द्वारा मेरे ऐश्वर्यमय स्वरूपके दर्शन करो।”

श्रीकृष्णने निज-पार्षद श्रीअर्जुनको देवताओंके लिये उपयोगी चक्षु (दिव्यचक्षु) प्रदान कर अपने ऐश्वर्यमय रूपका दर्शन कराया था तथा अपने नित्य द्विभुज रूपको छिपा लिया था, श्रीगौरहरिने भी श्रीअद्वैत आचार्यके सम्मुख वी किया।

नगर-भ्रमण करते-करते अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्दने श्रीश्रीवास-मन्दिरके विष्णु-मूर्तिके बन्द द्वारपर आकर अपने आगमनकी सूचना दी। श्रीगौरसुन्दर द्वार खोलकर श्रीनित्यानन्दको घरके भीतर ले गये।

विश्वकी प्रकाण्ड मूर्तिका प्रतीक स्वरूप है—“विश्वरूप”। वह नित्य नहीं है। श्रीविष्णुके अवतारके नित्य नाम, रूप, गुण, पार्षद और लीलाके साथ उसकी समानता नहीं है। श्रीअर्जुनने ऐसा ही विचार प्रदर्शन किया था। जब उन्होंने विश्वरूपके उपसंहारके लिये प्रार्थना की तो श्रीकृष्णने अपने द्विभुज रूपको दिखलाया था।*

*“स्वक रूप दर्शयामास भूय” (गीता ११।५०) इति नराकार-चतुर्भुजरूपस्यैव स्वकत्वनिर्देशात्। तद्विश्वरूप न तस्य साक्षात्स्वरूपमिति स्पष्टम्।” (कृ० सं० ८२)।

श्रीमन्महाप्रभुके सामने श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके विश्वकी प्रकाण्ड प्राकृत मूर्तिके दर्शन करनेकी अभिलाषाका अभिनय और महाप्रभुके द्वारा उसके प्रदर्शनमें एक गूढ रहस्य छिपा है। श्रीमन्महाप्रभुके समकालीन युगमें ही श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र और अनुगतके रूपमें अपना परिचय देनेवाले कुछ लोग श्रीमन्महाप्रभुको स्वयं भगवान् स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं थे। वे लोग श्रीमन्महाप्रभुको श्रीअद्वैताचार्य-प्रभुका सेवक कहनेके लिये आग्रहशील थे। विश्वरूप-लीलाका प्रदर्शन करके श्रीमन्महाप्रभुने दिखला दिया कि, विश्वके उपादान-कारणके अधीश्वर श्रीअद्वैताचार्यप्रभुके भी प्रभु श्रीमन्महाप्रभु हैं। विश्वकी प्रकाण्डमूर्ति श्रीश्रीगौरकृष्ण-स्वरूपके एक अगमें अवस्थित है।

एक महाप्रभु, आर प्रभु दुइ जन।

दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण ॥

—चै० च० आ० ७।१४

[एक महाप्रभु है और दो जने प्रभु हैं। दोनों प्रभु महाप्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।]



अर्थात् उन्होंने पुन 'स्वक अर्थात् स्वकीय स्वरूपको दिखलाया था'—गीताकी इस उक्तिके द्वारा नराकार चतुर्भुज रूपका ही स्वकत्व अर्थात् स्वीयरूपत्व निदिष्ट होता है, अतएव 'विश्वरूप' उनका (श्रीकृष्णका) साक्षात् स्वरूप नहीं है, यही स्पष्ट है।

चौवालीसवाँ परिच्छेद 'दुःखी', नहीं 'सुखी'

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामें हम सुनते हैं,—

दीनेरे अधिक दया करे' भगवान् ।

कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान ॥

—चै० च० अ० ४।६८

[भगवान् दीनोपर अधिक दया करते हैं , कुलीन, पण्डित, धनीको बड़ा अभिमान है ।]

यह बात श्रीमन्महाप्रभुने सर्वत्र अपने आचरणमें प्रदर्शित की है । उन्होंने दिखलाया है कि,—“येई भजे सेइ बड, अभक्त—हीन, छार ।” अर्थात् जो भगवान्की सेवा करता है, वही बड़ा है, अभक्त तो हीन, नगण्य है । श्रीचैतन्य-लीलाके व्यास श्रीवृन्दावनने सच-मुच ठीक ही गाया है,—

श्रीबासेर दास-दासी यॉहारे देखिल ।

शास्त्र पड़ियाओ केह ताँहा ना जानिल ॥

मुरारि-गुप्तेर दासे ये प्रसाद पाइल ।

केह माथा मुडाइया ताहा ना देखिल ॥

यावत्-काल गीता-भागवत सबे पड़े ।

केह-वा पड़ाय,- कारो धर्म नाहि नड़े ॥

केह केह परिग्रह किछु नाहि लय ।

वृथा आकुमार-धर्में शरीर शोषय ॥

बड़ क्रीति हइले चैतन्य नाहि पाइ ।

भक्ति-वश सबे प्रभु—चारि बेदे गाइ ॥

—चै० भा० म० १०।२७६-२७७, २७३-२७४, २७९

[श्रीवासके दास-दासियोने जिनको देखा, शास्त्र पढ़कर भी उनको किसीने नहीं जाना। मुरारि-गुप्तके सेवकने जो प्रसाद प्राप्त किया, सिर मुँडाकर भी उसे किसीने नहीं पाया। गीता-भागवत पढ़ते या पढ़ाते समय लोग गीता-भागवतके बनाये धर्मको न मानकर अपने धर्मको यानी अपने सिद्धान्त या विचारको ही लिये बैठे रहते हैं। कोई-कोई दूसरेसे दान-स्वरूप कुछ नहीं लेते। व्यर्थमे बाल-ब्रह्मचर्य धारणकर या योगसाधनके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालते हैं, किन्तु इससे क्या होता है? इस प्रकार चाहे कितनी ही प्रशंसा, कितनी ही कीर्ति क्यों न प्राप्त कर ले, चैतन्यकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् तो भक्तिके वशमे हैं—यही चारो वेद गाते हैं।]

इसमें हम देखते हैं श्रीश्रीवासके घरकी दासी और श्रीमुरारि गुप्तके घरके नौकरने जो अनुग्रह प्राप्त किया है, माया मुँडाकर सन्यासी सजकर, बाल-ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक शरीरको सुखाकर, दूसरोके दानादि ग्रहण करनेमे अनिच्छा प्रकट कर तथा गीताका अध्ययन-अध्यापन करके भी अनेको तपस्वी, कुलीन, ब्राह्मण, पंडित तथा धनी लोगोंने उसे प्राप्त नहीं किया। लोगोके सामने कीर्तिमान् होनेपर ही श्रीचैतन्य-देवकी कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती है। एकमात्र अहैतुकी भक्तिसे ही श्रीचैतन्यचन्द्र वशीभूत होते हैं, इसका उज्ज्वल प्रमाण हमको श्रीश्रीवासके घरकी एक दासीके चरित्रमें दिखाई देता है।

श्रीश्रीवास पंडित तथाकथित सन्यासी नहीं थे या तथाकथित बाल-ब्रह्मचारी नहीं थे। वे थे—श्रीगौर-मुखानुसन्धानमय गृहके नित्य गृहस्थ। उन्होने भक्तिके द्वारा श्रीमहाप्रभुको इस प्रकार वशमे कर लिया था कि उनके घरमे प्रभुका नित्य सकीर्तन-विलास होता था। सकीर्तनके बाद महाप्रभु जब भक्तोसे परिवेष्टित होकर श्रीश्रीवासके आँगनमे बैठते थे, तब किसी-किसी दिन भक्तगण महाप्रभुको घरमे ही स्नान करा देते थे। जब तक महाप्रभु नृत्य करते थे, तब तक श्रीश्रीवास के घरकी एक दासी महाप्रभुके स्नानके लिये गंगासे कई घड़े जल वहन

करके ले आती थी। उस दासीका नाम था 'दु खी'। 'दु खी'ने गगाजलसे भरे हुए घड़े चारो ओर सजा रखे हैं यह देखकर एक दिन महाप्रभुने पंडित श्रीश्रीवाससे पूछा,—“प्रतिदिन कौन गगासे इतना जल लाया करता है?” पंडित बोले,—“प्रभो, 'दु खी'ही यह सेवा करती है।” महाप्रभुने कहा,—“आजसे तुममें से कोई उसे 'दु खी' न कहना, सभी उसको 'सुखी' कहकर पुकारना। इस प्रकारकी भक्तिमतीका नाम 'दु खी' रहे, यह किसी प्रकार भी योग्य नहीं है। जो वैष्णवके घरकी परिचारिका है, वैष्णव-सेवा ही जिनका व्रत है उनके समान पृथ्वीमें दूसरा कौन सुखी है?”

श्रीश्रीवासकी परिचारिकाके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी यह आशीर्वाद-वाणी सुनकर भक्तगण परम आनन्दित हुए और उसी दिनसे उसे 'सुखी' कहकर पुकारने लगे। श्रीश्रीवास पंडित भी अब उस महा-भाग्यवती श्रीगौर-सेविकाके प्रति दासी बुद्धि न रखकर उसका नित्य-गौर-सेविकाके रूपमें दर्शन करने लगे।

पाठकगण, यहाँ श्रीश्रीवासकी दासीके भाग्यके साथ श्रीश्रीवासकी सासके भाग्यकी तुलना कीजिये। दासी होकर भी निष्कपट और अहंतुकी सेवा-वृत्तिके बलसे वह परम सुखी हो गयी। और श्रीश्रीवासकी सास होनेका अभिमान करके भी उसे श्रीश्रीवासके घरसे निकलना पडा और वह महा दु खी हो गयी। दुग्धफलाहारी ब्रह्मचारीके समान क्या दासीने कोई कठोर तपस्या की थी? अथवा उनके पास कोई धन, कुल, विद्या, पाण्डित्य और तपस्या थी? इसीलिये श्रीचैतन्य-लीलाके व्यासने कहा, है,—

प्रेमयोगे सेवा करिलेइ कृष्ण पाइ ।

माथा मुडाइले यमदण्ड ना एड़ाइ ॥

दासी हइ' ये प्रसाद 'दु खी'रे हइल ।

वृथा-अभिमानी सब ताहा ना देखिल ॥

—चै० भा० म० २५।१६, २२

[प्रेमयोगसे सेवा करनेपर ही कृष्ण मिलते हैं। सिर मुँडा लेनेसे यमदण्डसे नहीं छूट सकते। दासी होकर दुःखीको जिस प्रसादकी प्राप्ति हुई, वृथा अभिमानी सब उसको देख भी नहीं पाये।]



पैतालीसवाँ परिच्छेद श्रीश्रीवासके पुत्रकी परलोक-प्राप्ति

श्रीश्रीवास पंडित शुद्ध भक्तोके आदर्श-स्वरूप हैं। किस प्रकार वैष्णव-गृहस्थको श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके सुखानुसन्धानके लिये सर्वदा समस्त इन्द्रियोसे और सर्वतोभावसे सचेष्ट रहना चाहिये, इसका सर्वोत्तम आदर्श, श्रीश्रीवास पंडितने गृहस्थलीलाका अभिनय करके सुधी-जीव-जगत्को सिखा दिया है।

शास्त्रमें 'गृहस्थ' और 'गृहव्रत'—ये दो शब्द सुननेमें आते हैं। जो हरिसेवा-परायण गृहस्थ हैं, उनकी आत्मा, देह, गृह, पुत्र, परिजन—सभी कृष्ण-सेवाके उपकरण हैं। उनका ससार कृष्णके सुखानुसन्धानका ससार है। और जो लोग गृहव्रत हैं (गृह ही जिनके लिये सर्वस्व है) उन लोगोका ससार—भोगका ससार—मायाका ससार अर्थात् आत्मेन्द्रिय-सुखानुसन्धानका ससार है। वे अपने-अपने देह-गोह आदिमें आसक्त होकर पुण्य और पापके भोक्ताके रूपमें सुख और दुःखकी चरखीपर घूमते रहते हैं।

विश्वमें श्रीचैतन्यका जो सकीर्तन-धर्म प्रचारित हुआ, वह वैष्णव-गृहस्थकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीश्रीवासके भजनमय गृहसे ही प्रकट हुआ था। श्रीश्रीवासने श्रीगौरसुन्दरके सकीर्तन-यज्ञमें सर्वस्व

आहुति दे दी थी। उनकी समस्त चेष्टाएँ उस सकीर्तन-यज्ञकी समिधा-स्वरूप बन गयी थी। अतएव श्रीश्रीवासका घर—भोगका आगार नहीं, वह इस प्राकृत-जगत्मे वैकुण्ठका अवतार है।

एक दिन श्रीश्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवासादि भक्तोंके साथ सकीर्तन-विलासमे प्रमत्त हो रहे थे। अकस्मात् व्याधिग्रस्त होकर श्रीश्रीवासके पुत्रने श्रीश्रीवासके घरमें ही परलोक गमन किया। अन्त पुरकी स्त्रियाँ शोकसे विह्वल होकर क्रन्दन करने लगी। क्रन्दनकी ध्वनि सुनकर पंडित श्रीश्रीवासने अन्त पुरमे प्रवेश करके देखा कि उनके पुत्रकी परलोकप्राप्ति हो गई है। जो भगवद्भक्त है, वे इससे अधीर क्यों हो ? इसीलिये परम गभीर महातत्वज्ञानी भक्तराज श्रीश्रीवासने नारियोंको इस प्रकार प्रबोध देने लगे,—“तुम लोग शान्त होओ, रोओ मत। जिनका नाम केवल एक बार श्रवण करनेसे महापातकी भी श्रीकृष्णधाममे गमन करते हैं, वही प्रभु सपार्षद साक्षात् रूपमे यहाँ नृत्य कर रहे हैं, ऐसे समयमे जिनका परलोक-गमन हुआ है, उनके लिये क्या शोक करना चाहिए ? यदि मुझे कभी इस शिशुके समान भाग्य मिल जाय, तो मैं अपनेको कृतार्थ मानूँगा। यदि कहो कि तुम ससार-धर्ममे आसक्त हो, इसलिये शोकको नहीं रोक सकती, तो मैं कहूँगा कि इस रोनेके लिये बहुत समय है। सावधान ! इस समय तुम लोगोके रोनेके हो-हल्लेसे श्रीमन्महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यके सुखमे किसी प्रकारकी भी बाधा नहीं होनी चाहिये। यदि तुम्हारा रोनेका हो-हल्ला सुनकर श्रीमन्महाप्रभुको किसी प्रकार बाह्यदशा प्राप्त हो जायगी, तो निश्चय जान लो कि मैं गगामे डूबकर आत्महत्या कर लूँगा।”

श्रीश्रीवास पंडितकी बात सुनकर अन्त पुरकी सभी स्त्रियाँ शान्त हो गयी। श्रीश्रीवास पंडित पुनः श्रीमन्महाप्रभुके साथ सकीर्तनमें योगदान करके निरुद्वेग और परम आनन्दसे सकीर्तन करने लगे। कुछ समयके बाद भक्तोंको एक दूसरेसे ज्ञात हुआ कि पंडितके पुत्रका देहान्त हो गया है, तथापि किसीके मुखसे कुछ नहीं निकला। कुछ

समयके बाद सर्वज्ञ श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं ही कहा,—“आज मेरा चित्त न जाने किस प्रकार कर रहा है । जान पड़ता है, पंडितके घर कोई विशेष दुःख आ गया है ।” श्रीश्रीवास पंडित बोले,—“प्रभो, जिस स्थानमें तुम सानन्द नृत्य कर रहे हो, वहाँ फिर दुःख कैसे हो सकता है ?”

अन्यान्य भक्तोंने श्रीमन्महाप्रभुके पास श्रीश्रीवास पंडितके पुत्रके परलोक-गमनकी बात कही । श्रीमन्महाप्रभुने पूछा,—“पंडितके पुत्रको इहलोक त्याग किए हुए कितनी देर हुई ?” भक्तोंने कहा,—“अठ्ठाई पहर हुआ होगा ।” परन्तु पंडितने आपके सकीर्तनके आनन्दमें बाधा पड़नेके डरसे यह बात किसीके भी सामने प्रकट नहीं की । यह बात सुनकर महाप्रभु कहने लगे,—“मैं इस प्रकारके भक्तका सग कैसे छोड़ूँगा ।”

“पुत्रशोक ना जानिल ये मोहोर प्रेमे ।

हेन सब-संग मुझि छाड़िब केमने ॥”

—चै० भा० म० २५।५२

[जो मेरे प्रति अगाध प्रेम रखनेके कारण पुत्रशोकके आगे भी नहीं झुका, ऐसेका सग मैं कैसे छोड़ूँगा ?]

—यह कहते-कहते महाप्रभु रोने लगे । श्रीमन्महाप्रभुके इस सकेतभरी बातको सुनकर भक्तगण सभी चिन्तित हो गये,—“न जाने, श्रीमन्महाप्रभु गृहस्थ-लीलाका परित्याग कर शीघ्र ही कहीं सन्यास-लीला प्रकट करेंगे ।” परलोकगत शिशुके सत्कारके लिये सभी व्यस्त हो गये, परन्तु श्रीमन्महाप्रभु मृत शिशुको लक्ष्य करके कहने लगे,—“तुम श्रीवासका घर छोड़कर किस लिये अन्यत्र जा रहे हो ?”

कैसे आश्चर्यकी बात है । श्रीमन्महाप्रभुकी कृपाके प्रभावसे मृत-शिशुके मुखसे भी तत्वकी बात निकल पड़ी । शिशु बोलने लगा,—“प्रभो, आप जिसके प्रति जैसा विधान करते हैं, उसको अन्यथा करने

की सामर्थ्य किसमे है ? मेरे लिये इस समय जहाँ जानेकी व्यवस्था हुई है, मैं वहीं जा रहा हूँ। जितने दिन इस घरमे रहनेका सौभाग्य था, उतने दिन इस स्थानमे रहा, अब इस समय दूसरे स्थानमे जा रहा हूँ, सपार्षद आपके श्रीचरणोमे कोटि-कोटि नमस्कार है। आप मेरे शत-शत अपराधोका अपने गुणके द्वारा मार्जन कर दे।” इतना कहकर ही शिशु चुप हो गया। मृत-पुत्रके मुँहसे इस प्रकारकी अपूर्व तत्वकी बात सुनकर श्रीश्रीवासका सारा परिवार पुत्रशोकको भूल गया। सपरिवार श्रीश्रीवासने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोको पकड़कर रोते-रोते प्रभुके चरणोमे अर्हुतुकी प्रेमभक्तिकी याचना की।

पाठकगण, श्रीश्रीवासके इस आदर्शके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने हम-लोगोको जो महती शिक्षा प्रदान की है, उसकी तुलना नहीं है। साधारण गृहव्रत मनुष्य और हरि-भजनपरायण गृहस्थका आकार बाह्य-दृष्टिसे देखनेपर एक होते हुए भी दोनोंकी अन्तर्निष्ठा बिल्कुल ही पृथक् होती है। वैष्णव-गृहस्थ ‘कृष्णके ससारमे रहते हैं, वे ‘माया-के ससार’मे नहीं रहते। ‘कृष्णके ससार’का अर्थ ही है—श्रीनाम-सकीर्तनका ससार। उस ससारके प्रभु ही हैं—श्रीचैतन्यरसविग्रह श्रीकृष्णनाम। शुद्ध-वैष्णव कभी अपनेको ‘प्रभु’ होनेका अभिमान नहीं करते। श्रीकृष्णनामको ‘ससारके प्रभु’ के रूपमे उपलब्ध करनेपर शोक-मोह आदि अनात्म-धर्म आक्रमण नहीं कर सकते। तब ये सभी श्रीकृष्णकी सेवामे अनुकूल व्यापारके रूपमे दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीश्रीवास आदि चारो भाइयोंने शरणागत आदर्श, वैष्णव-गृहस्थकी चित्त-वृत्ति कैसी होनी चाहिये, इसको दिखला दिया है। उन लोगोंने विपद या शोकमें मोहित न होकर दीनभावसे श्रीमहाप्रभुसे कहा,—

ओहे प्राणेश्वर !, ए-हेन विपद,

प्रतिदिन येन हय ।

याहाते तोमार, चरण-युगले,

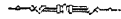
आसक्ति बाडिते रय ॥

विपद-सम्पदे, सेइ दिन भाल,
 ये-दिन तोमारे स्मरि ।
 तोमार स्मरण- रहित ये-दिन,
 से-दिन विपद हरि ॥

[हे प्राणेश्वर, ऐसी विपत्ति प्रतिदिन ही हो, जिससे तुम्हारे चरणयुगलमें आसक्ति बढ़ती रहे । विपत्ति-सम्पत्तिमें वही दिन उत्तम है, जिस दिन तुम्हें स्मरण करते हैं । हे हरि, तुम्हारे स्मरणसे रहित जो दिन है, वह दिन मेरे लिये विपत्तिका है ।]

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवास पंडितसे कहा,—“मैं और श्रीनित्यानन्द ये दो पुत्र जबतक तुम्हारे हैं, तबतक तुमको क्या दुःख है ? पुत्र-शोकादि अवश्यभावी सासारिक दुःख तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकते । तुम्हारी बात तो दूर रही, जो तुम्हारा दर्शन और स्मरण करने हैं उनको भी ससार स्पर्श नहीं करता ।”

श्रीगौरहरि सारे भक्तोंके साथ श्रीश्रीवासके परलोकगत बालकको लेकर कीर्तन करते हुए गंगाके तीर गये और बालककी यथोचित अन्त्येष्टि-क्रिया करके सबने गंगास्नान किया ।



छियालीसवाँ परिच्छेद श्रीमन्महाप्रभुके संन्यासकी सूचना

एक दिन श्रीगौरसुन्दर अपने घरमें बैठे कृष्ण-विरह-विधुरा गोपीके भावमें विरह-व्याकुल-हृदय हो ‘गोपी, गोपी’ नाम उच्चारण कर रहे थे, उसी समय एक विरुद्ध-प्रकृतिका छात्र महाप्रभुके पास आकर

बोला,—“आप कृष्ण नाम न लेकर ‘गोपी, गोपी’—इस प्रकार स्त्रीका नाम क्यों उच्चारण कर रहे हैं? ‘गोपी’ नाम लेनेसे क्या पुण्य होगा?” यह बात सुनकर श्रीमहाप्रभु गोपीभावमें श्रीकृष्णके प्रति क्रोध और दोषारोपण करने लगे, बहिर्मुख विद्यार्थी इस दोषारोपणका अर्थ कुछ भी नहीं समझ सका।

गोपी-भावसे विभावित हुए श्रीमहाप्रभु छात्रको कोई कृष्ण-पक्षपाती व्यक्ति समझ कर डडा लेकर मारनेके लिये क्रोधमें भरकर उसके पीछे दौड़े।* छात्र भयसे भाग खडा हुआ। इस घटनाको सुनकर नवद्वीपके सारे ब्राह्मण और छात्रगण क्षुब्ध हो उठे और वे श्रीगौर-सुन्दर पर प्रहार करनेके लिये षड्यन्त्र करने लगे।

श्रीमन्महाप्रभुने यह सुनकर पहेलीके बहाने कहा,—

करिल पिप्पलिखंड कफ निवारिते ।

उलटिया आरौ कफ बाडिल देहेते ॥

—चै० भा० म० २६।१२१

[कफ दूर करनेके लिये पिप्पलीखंड बनाया था, पर वह कफ तो देहमें उलटा बढ गया।]

कहाँ तो नदीयावासीके नित्य-मगलके लिये श्रीहरिनामका प्रचार किया, और कहाँ आज उनके लिये व्यवस्थित औषधि ही उनके अपराधकी वृद्धिका कारण बन गयी।

श्रीगौरसुन्दर एक दिन श्रीनित्यानन्दको एकान्तमें बुलाकर अपने सन्यास-ग्रहणके सकल्प और उसके कारणोका निर्देश करते हुए बोले कि,—“वे जगत्के उद्धारके लिये पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं, परन्तु नवद्वीपवासी उनके चरणोमें अपराध कर रहे हैं, वे सन्यास ग्रहण करके उनके

* स्वधामगत श्रीश्यामलाल गोस्वामी महाशयने अपने ‘श्रीश्री-गौरसुन्दर’ ग्रन्थमें इस छात्रका ‘कृष्णानन्द आगमवागीश’के नामसे उल्लेख किया है। (उक्त ग्रन्थका १३१३ बगान्द सस्करण, १२१ पृष्ठ देखें।)

दरवाजेके भिखागी बन जायँगे तब सन्यासी-बुद्धिसे ही वे शायद श्रद्धाके नेत्रोंसे देखेंगे और उनका उपदेश सुनकर मंगल-लाभ कर सकेंगे ।

श्रीमुकुन्दके घर जाकर श्रीमहाप्रभुने उनको 'कृष्णमंगल' गाना गानेके लिये कहा तथा पश्चात् उनके सामने भी सन्यास-ग्रहण करनेका अपना अभिप्राय प्रकट किया । इसके बाद उन्होंने श्रीगदाधरके घर जाकर उनके सामने भी अपनी सन्यास-ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की । श्रीगदाधरने श्रीमहाप्रभुको नाना प्रकारसे निषेध करते हुए कहा,—“प्रभो ! सन्यासी होनेसे ही क्या कृष्ण मिल सकते हैं ? क्या गृहस्थ-व्यक्ति वैष्णव नहीं हो सकता ? तुम अनाथिनी माताका किस प्रकार परित्याग करोगे ? पहले ही तो तुम्हें जननी-बधका भागी होना पड़ेगा ।”*

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुने और भी कुछ अन्तरंग भक्तोंके सामने अपने सन्यासकी बात प्रकट की । सभीके सिरपर मानो वज्रपात हो गया । महाप्रभु सन्यासी होंगे, यह सुनकर भक्तगण क्रन्दन करने लगे । श्रीमन्महाप्रभुने उनको अनेकों प्रकारसे समझाया । लोग-परम्परासे श्रीशचीमाताके कानोंमें भी यह दारुण समाचार पहुँचा । श्रीशचीमाताने विलाप करते हुए रो-रोकर निमाइको कितना समझाया—

ना याइय, ना याइय बाप, मायेरे छाडिया ।

पाप जीउ आछे तोर श्रीमुख चाहिया ॥

—चै० भा० म० २७।२२

[बेटा, माको छोडकर मत जाना, मत जाना । तेरा श्रीमुख देखकर ही तो अबतक यह पापमय जीवन धारण किए हुए हूँ ।]

श्रीशचीमाताके विलापको सुनकर पाषाण भी द्रवीभूत हो गया, परन्तु जिनका हृदय वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी कोमल है—उन लोक-शिक्षक महाप्रभुको उनके सुदृढ सकल्पसे कोई भी विचलित न कर सका । उन्होंने माताको बहुत सान्त्वना देते हुए कहा,—

* चै० भा० म० २६।१७२-१७४

आनेर तनय आने रजत-सुवर्ण ।

खाइले बिनाश पाय—नहे परधर्म ॥

आमि आनि' दिब कृष्णप्रेम हेन धन ।

सकल-सम्पदमय कृष्णेर चरण ॥

—चै० म० म० १४८ पृष्ठ

[दूसरेके लडके चाँदी सोना लाने हैं, वह भोग करने पर नाश हो जाता है—यह सर्वश्रेष्ठ-भगवत्सेवारूप धर्म नहीं है । म कृष्णप्रेम जैसा परम धन ला दूँगा । श्रीकृष्णके चरण सर्वसम्पदमय ह ।]

श्रीगौरसुन्दर श्रीशचीमाताको समझाकर बोले,—“शीघ्र ही सकीर्तनके सहयोगसे मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें दो बार जन्म लूँगा ।”

श्रीमन्महाप्रभुकी यह भविष्यत्-वाणी शीघ्र ही सफल हो गयी । उनके सन्यास-लीलाके पश्चात् ही श्रीविष्णुप्रिया देवीने विरह-व्यथित होकर अपने हृदयसे हृदयनाथ श्रीगौर-सुन्दरकी श्रीमूर्तिको प्रकट किया और तभीसे सभी लोग श्रीगौरनामका कीर्तन करने लगे । इस प्रकार श्रीशचीनन्दन 'श्रीमूर्ति' और 'श्रीनाम' इन दो रूपोंमें जगत्के जीवोंके सामने प्रकट हो गये ।

माता, पिता और स्त्रीकी सेवाको छोड़कर भगवान्की सेवा या भगवद्भक्ति-प्रचारके लिये जीवनोत्सर्ग करनेका बहुतसे लोग न्यायानुकूल नहीं समझते, वस्तुतः जो लोग श्रीहरि-सेवाके मर्मको नहीं समझते, वे ही ऐसा विचार करते हैं । श्रीहरिके सतोषके द्वारा ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, देश, समाज और विश्वका यथार्थ उपकार किया जाता है और समस्त प्राणियोंकी यथार्थ तुष्टि होती है । वृक्षके मूलमें जल देनेसे ही शाखा, पत्र, पुष्प, फल—सभी सजीवित और सर्वद्विज होते हैं । इस प्रकार सन्यासका उज्ज्वल आदर्श भगवदवतार श्रीकपिलदेव और मुक्तकुल शिरोमणि श्रीशुकदेवजीमें भी देखा जाता है । श्रीकपिलदेवजीने स्वामिहीना जननी श्रीदेवहूतिको और श्रीशुक-

देवजीने अपने पिता श्रीव्यासदेवको घरमें छोड़कर जिस प्रकार श्री-हरिकीर्तनके लिये सर्वस्व त्याग दिया था, उसी प्रकार श्रीनिमाइ भी,—

शची-हेन जननी छाडिया एकाकिनी ।

चलिलेन निरपेक्ष हई' न्यासिमणि ॥

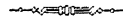
परमार्थे एइ त्याग—त्याग कभु नहे ।

ए-सकल कथा बुझे कोन महाशये ॥

—चै० भा० म० ३।१०३-१०४

[शची जैसी जननीको अकेली छोड़कर सन्यासी-शिरोमणि निरपेक्ष होकर चले गये । परमार्थकी दृष्टिमें यह त्याग—कभी त्याग नहीं है । इन सब बातोंको आशयवाले पुरुष ही समझ सकते हैं ।]

पहले कहा जा चुका है कि, एक ब्राह्मण श्रीश्रीवास पंडितके अवसद्ध द्वारके घरमें श्रीमन्महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यमें योगदान न कर सकनेके कारण दूसरे दिन श्रीमन्महाप्रभुको गंगा-घाटपर देखकर अत्यन्त दुखी हो अभिशाप देते हुए कहा था,—“तुम्हारा सासारिक सुख नष्ट हो जाय ।” श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मणके अभिशापको सुनकर आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे ।* इस घटनाके बाद श्रीगौरमुन्दरने सन्यास-ग्रहण-लीला प्रदर्शन कर यह बतलाया कि,—“जगत्के लोगोंके लिये अमंगलसूचक अभिशाप भी श्रीकृष्णसे अनुकूलतामें ग्रहण किये जानेपर आत्माके लिये नित्य मंगलकारक हो जाते हैं ।” वस्तुतः श्रीभगवान् किसी भी अभिशापके पात्र नहीं हो सकते । उनकी यह लीला जीवोंको शिक्षा देनेके लिये है ।



सैतालीसवाँ परिच्छेद

श्रीनिमाइका संन्यास

श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्दसे अपने सन्यास लेनेकी निश्चित तिथि और 'कटवा' * नगरमें श्रीकेशव भारती नामक सन्यासीसे सन्यास लेनेका अपना अभिप्राय बतलाकर कहा कि वे इस बातको केवल श्रीशचीमाता, श्रीगदाधर, श्रीब्रह्मानन्द, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीमुकुन्द—इन पाँच व्यक्तियोंको जना दे। सन्यास-लीला-आविष्कारके पहले दिन महाप्रभुने सब भक्तोंको लेकर दिन भर कीर्तन किया, सन्ध्याके समय गंगाका दर्शन और नमस्कार करने गये, घर लौटकर भक्तोंसे घिरकर बैठ गये। सबको अपने गलेकी प्रसादी माला देकर बोले,—

“बल कृष्ण, भज कृष्ण, गाओ कृष्ण नाम।

कृष्ण बिनु केह किछु ना भाविह आन ॥

यदि आमा'प्रति स्नेह थाके सवाकार।

तबे कृष्ण-व्यतिरिक्त ना गाइबे आर ॥

कि शयने, कि भोजने, किबा जागरणे।

अहनिश चिन्त कृष्ण, बलह बदने ॥”

—चै० भा० म० २८।२६-२८

[कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्णका नाम गान करो। कृष्णको छोड़कर कोई कुछ भी मत सोचना। यदि मेरे प्रति सबका स्नेह हो तो कृष्णके सिवा और कुछ भी मत गाना। क्या सोते, क्या भोजन करते और क्या जागते—दिन रात कृष्णका चिन्तन करना और मुखसे कृष्ण ही बोलना।]

* ईस्टर्न रेलवे की बण्डेल-बरहरवा लाईनपर बर्दवान जिलेमें कटवा (Katwa) नामका रेलवे स्टेशन है। यह स्थान गंगाके किनारे स्थित है।

सन्ध्या होनेके बाद श्रीश्रीवर एक कढ़ू हाथमे लेकर श्रीमन्महा-
प्रभुके पास आये और उसके कुछही क्षणो पश्चात् एक भाग्यवान् व्यक्ति
थोडा-सा दूध उपहार-रूपमे दे गया। श्रीमहाप्रभुने श्रीशचीमातामे
कहकर दूध और कढ़ू का पाक बनवाया और उमे भोजन करके विश्राम
किया। श्रीगदाधर और श्रीहरिदास श्रीमन्महाप्रभुके पास सोये रहे।
श्रीशचीमाता जानती थी कि आज निमाइ गृह-त्याग करेगे। उनके
नेत्रोमे नीद नही थी—दोनो नेत्रोमे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने
लगी। सबेरा होनेमें अभी चार घडी बाकी है यह जानकर श्रीमहा-
प्रभुने गृहत्यागका उद्योग किया। श्रीगदाधर पडितने श्रीगौरसुन्दरका
अनुगमन करना चाहा, परन्तु श्रीमहाप्रभुने अकेले जानेकी अपनी इच्छा
प्रकट की। श्रीशचीदेवी श्रीनिमाइके जानेकी तैयारी समझकर दर-
वाजेपर जाकर बैठ गयी, श्रीनिमाइ उस समय जननीको अनेक प्रकारमे
प्रबोध देकर और उनकी चरणधूलि सिरपर लेकर घरमे निकल गये।

इसके बाद श्रीशचीमाता प्रायः जडवत् हो गयी। भक्त लोग
प्रातः काल श्रीमहाप्रभुको प्रणाम करनेके लिये आये तो देखा कि, श्री-
शचीमाता बाहर द्वारपर बैठी हुई है। श्रीश्रीवासने कारण पूछा तो
श्रीशचीमाता कुछ उत्तर न दे सकी, केवल आँसू बहाने लगी। पश्चात्
अत्यन्त कष्टपूर्वक किसी प्रकार बोली,—“भक्तगण ही भगवान्की वस्तु
के अधिकारी हैं, अतएव निमाइकी जो कुछ वस्तुएं हैं, उनको भक्त लोग
ले जा सकते हैं, मुझे जहाँ इच्छा होगी वहाँ चली जाऊँगी।” भक्त-
गण महाप्रभुके गृहत्याग-लीलाकी बात जानकर प्रायः अचेतन होकर
भूमिपर बैठ गये। कुछ देरतक रोते-रोते सबके सब श्रीशचीमाताको
घेरकर बैठ गये। सारे नदीयामे श्रीमहाप्रभुके गृह-त्यागकी बात फैल
गयी उसे सुनकर पहलेके निन्दक पाखण्डी लोग भी रोने लगे और
निमाइको पहले पहचान न सकनेके कारण विशेष परिताप करने लगे।

श्रीमहाप्रभु अपनी नवद्वीप-लीलाके २४ वे वर्षके अन्तमे माघ मासके
शुक्लपक्षमे उत्तरायणके समय सक्रान्तिके दिन रातके पिछले पहर

नवद्वीपमे 'निदयाके घाट' पर आये ।* कहा जाता है कि नदीयाके निमाइकी निदार्ण सन्यास-लीलाकी स्मृतिमें इस घाटका नाम 'निदयार घाट' हो गया है । इमी घाटने मानो निर्दय अथवा 'निदय' होकर सन्यास-ग्रहणके लिये कृतसकल्प श्रीनिमाइको कटवा जानेका मार्ग प्रदान किया था । श्रीमन्महाप्रभु 'निदयार घाट'से गंगाको तैर कर पार हो 'कटवा' ग्राममे श्रीकेशव भारतीके पास जा पहुँचे और उनसे कृपा-प्रार्थना करने लगे । श्रीमुकुन्द आदि भक्तगण कीर्तन करते रहे । श्रीमन्महाप्रभु आवेशमे नृत्य करने लगे, श्रीचन्द्रशेखर सन्यास-विधिके अनुष्ठान करने लगे । नाई निमाइके केश-मुण्डन करनेके लिये बैठा तो रोने लगा । श्रीनित्यानन्द प्रमुख भक्तगण अविरत अश्रु बहाने लगे ।

इस प्रकारसे प्रायः दिनका अवसान हुआ । किसी तरह क्षौरकर्म समाप्त होनेपर लोक-शिक्षा-गुरु श्रीमन्महाप्रभुने किसी बहानेसे श्री-केशव भारतीके कानमे सन्यास-मन्त्र कहते हुए पूछा कि, उनका सन्यास-मन्त्र यही है न ? श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छाके अनुसार श्रीकेशव भारतीने वही मन्त्र महाप्रभुके कानमें दिया । वस्तुतः सर्वगुरु श्रीमन्महाप्रभुने श्रीकेशव भारतीको ही मन्त्र प्रदान करके शिष्य बनाया । परन्तु जगत्में सद्गुरु-ग्रहण करनेकी एकान्त आवश्यकताको बतलानेके लिये श्रीकेशव भारतीसे कानमे मन्त्र श्रवण करनेकी लीला प्रदर्शित की । श्रीमन्महा-प्रभुने गेरुआ वस्त्र पहना, उससे उनकी अपूर्व शोभा हो गयी । वे सर्वत्र श्रीकृष्ण-कीर्तनका प्रचार करके जगत्में चैतन्यका विधान करते हैं, इसलिये भगवत्प्रेरणासे श्रीकेशव भारतीने श्रीनिमाइका सन्यास-नाम रक्खा—श्रीकृष्णचैतन्य । चारो ओर विपुल 'जय-जय' ध्वनि गूँज उठी ।



* श्रीनिमाइकी सन्यास-ग्रहण-लीलाकी तारीख १४३१ शककी २६वीं माघ, शनिवार, सक्रान्ति-दिवस—बंगाल ६१६ सन् १५१० ई०, पूर्णिमा तिथि है ।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद परिव्राजक-रूपमें श्रीगौरहरि

श्रीकेशव भारतीसे सन्यास लेकर श्रीमन्महाप्रभुने वह रात कटवामे ही बितायी और श्रीचन्द्रशेखर आचार्यको नवद्वीप भेजकर वे क्रमशः पश्चिमकी ओर चलने लगे। श्रीमन्महाप्रभुके आगे श्रीकेशव भारती, पीछे श्रीगोविन्द तथा साथमें श्रीनित्यानन्द, श्रीगदाधर, और श्रीमुकुन्द थे। चलते-चलते श्रीमहाप्रभुने 'अवन्ती नगरी' के त्रिदण्डी-भिक्षुकी गीतिका* का गान करते हुए राठ-देशमें प्रवेश किया और तीन दिनोत्तक उम देगमें भ्रमण किया। श्रीनित्यानन्दकी चतुर्गईमें श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुरके निकट पश्चिम किनारे आ गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने स्थानीय गोपालकोको चुपकेसे कह दिया था कि यदि श्रीमहाप्रभु उनसे श्रीवृन्दावनका मार्ग पूछें तो वे उनको गंगातीरका रास्ता दिखला दें। श्रीनित्यानन्दके कहनेके अनुसार उन लोगोंने वही किया। श्रीमहाप्रभुने भी गंगाको यमुना समझकर स्तुति की। श्रीमहाप्रभु केवल कौपीन (लंगोटी) मात्र पहने चलते थे और कोई दूसरा वस्त्र न था। पहलेमें समाचार पाकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु नौकापर सवार होकर नवीन कोपीन और बाह्य-वस्त्र लेकर अज्ञानक वहाँ आ पहुँचे और महाप्रभुको वह कौपीन और बाह्य-वस्त्र पहनाकर नौकाके द्वारा 'शांतिपुर' ले आये।

श्रीअद्वैत-गृहिणी श्रीसीतादेवीने नाना प्रकारकी भोजनकी सामग्री तैयार की, श्रीअद्वैतप्रभुने उसका श्रीमहाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुको भोग लगाया। श्रीमुकुन्ददत्त और अहिन्दूकुलमें आविर्भूत वैष्णव-श्रेष्ठ ठाकुर श्रीहरिदासको श्रीमन्महाप्रभुने अपने सहित एक साथ बैठकर प्रसाद पानेके लिये बुलाया। वे लोग महाप्रभुके भोजन कर चुकनेपर बचा हुआ भोजन

करेंगे,—इस इच्छासे अपेक्षा करने लगे । श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके भोजनके बाद जब श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमन्महाप्रभुके चरण दबानेकी चेष्टा की, तब महाप्रभु बोले,—

बहुत नाचाइजे तुमि, छाड नाचान ।

मुकुन्द, हरिदास लइया करह भोजन ॥

—चै० च० म० ३ । १०६

[तुमने बहुत नचाया, अब नचाना छोड़ो और मुकुन्द, हरिदासको लेकर भोजन करो ।]

तब श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमुकुन्द और श्रीहरिदासको साथ लेकर प्रसाद-ग्रहण किया । श्रीमहाप्रभुकी इस लीलासे दो शिक्षाएँ मिलती हैं । पहली वे स्वयं श्रीभगवान् होनेपर भी—श्रीब्रह्मा-शिवादि देवताओंके द्वारा नित्य उनका पदसेवन होनेपर भी—लोक-शिक्षाके लिये उन्होंने श्रीअद्वैतप्रभुके द्वारा चरणसेवा स्वीकार नहीं की । साधक सन्यासी या साधक जीवके लिये अपने चरणदबवाने आदि की सेवा ग्रहण करना अकर्तव्य है, विशेषतः मर्यादाका संरक्षण ही साधुका स्वभाव है ।

द्वितीय शिक्षा यह है कि, श्रीभगवान्के वास्तविक भक्तमें जाति-बुद्धि अथवा श्रीभगवान्के प्रसादमें स्थान-काल-पात्रके सम्बन्धमें स्पर्श-दोषका विचार करनेसे भक्तिराज्यसे जीवका पतन हो जाता है । श्रीमुकुन्ददत्त ठाकुर लौकिक ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न नहीं थे और श्रीठाकुर हरिदास तो वर्णाश्रमके बाहर अन्त्यज कुलमें आविर्भूत हुए थे, परन्तु शान्तिपुरके ब्राह्मण-समाजमें सर्वशिरोमणि श्रीअद्वैतने उनकी साथ लेकर अपने घरमें इच्छानुसार अप्राकृत महाप्रसाद ग्रहण किया । इसमें महाप्रभुकी भी प्रत्यक्ष आज्ञा थी । बहुतेरे कहते हैं कि, एकमात्र श्रीक्षेत्रमें ही महाप्रसादमें स्पर्श-दोषका विचार नहीं किया जाता, परन्तु शान्तिपुरमें गृहस्थ-लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके आचरणसे इस कथन की निःसारता प्रमाणित होती है । इस लीलाके प्रकट करनेके पहले

भी श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने ठाकुर श्रीहरिदासको अपने पितृ-श्राद्धका पात्र* (श्राद्धके दिन पितृ-पुरुषके उद्देश्यमें प्रदत्त नैवेद्य-पात्र) प्रदान किया था ।

इन सब दृष्टान्तोंसे कोई-कोई समझते हैं कि, आधुनिक युगमें जो अस्पृश्यता-निवारणका आन्दोलन चल रहा है, श्रीमन्महाप्रभु ही उसके प्रवर्तक हैं, विशेषतः बंगालमें वे ही प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं । परन्तु श्रीमहाप्रभुके चरित्रकी प्रत्येक घटनाकी निरपेक्षभावसे आलोचना करनेपर यह जाना जाता है कि, जिन्होंने वास्तवमें परमार्थका आश्रय ले लिया है, श्रीमहाप्रभुने एकमात्र उन्हीं लोगोंके लिये ही जाति-बुद्धि, तथा केवलमात्र महाप्रसादके सम्बन्धमें ही स्पर्श-दोषके जागतिक विचारका निषेध किया है । नाना प्रकारके ऐहिक भोग अथवा राज-नीतिक या सामाजिक सुविधाओंके उद्देश्य-साधन करनेके लिये जो सब आन्दोलन चल रहे हैं, महाप्रभु उनके प्रवर्तक या समर्थक नहीं हैं । वे पारमार्थिक समाजके ही शिक्षक और नियामक हैं ।

नवीन सन्यासी श्रीगोरहरिके अद्वैताचार्यके घरमें रहते समय शान्तिपुरके सब लोग उनके श्रीचरणोंके दर्शनार्थ आते रहे । सन्ध्या-समय सकीर्तन और नृत्य आरम्भ हुआ । श्रीमुकुन्दके हरिकीर्तन आरम्भ करनेपर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीअग्रगमे आठो सात्विक विकार एक ही साथ प्रकट होने लगे । दूसरे दिन प्रातःकाल नवद्वीपके अनेकों विरहार्त भक्तोंके साथ श्रीशचीमाता डोलीपर चढ़कर शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घर पहुँची, सन्यासी पुत्रके साथ श्रीशचीमाताका साक्षात्कार हुआ । श्रीमहाप्रभुने श्रीअद्वैतके घर दस दिन रहकर श्रीशचीमाताको सान्त्वना प्रदान करके

* यह एकमात्र वेदविद् वैष्णव-ब्राह्मणको प्रदान करना ही शास्त्रका विधान है ।

—गरुड पुराण, पूर्व खंड, ६६ अध्याय

† श्रीकविराज गोस्वामी प्रभुने (चै० च० म० ३।१३६ सख्यामें) शान्तिपुरमें दस दिन रहनेकी बात लिखी है । श्रीकविकर्णपूरने 'श्री-चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक' में (६।५) श्रीचैतन्यके तीन दिन शान्तिपुरमें रहनेकी बात लिखी है ।

नवद्वीपवासी भक्तोंके साथ श्रीहरिकीर्तन किया और शचीमाताके हाथसे तैयार किये हुए पदार्थोंकी भिक्षा ग्रहण की। सन्यासियोंको आचार-शिक्षा देनेके लिये उन्होने श्रीनवद्वीपवासियोंसे कहा—सन्यास-ग्रहण करके किसीको भी अपने आत्मीय-स्वजनके साथ अपने जन्म-स्थानमें रहना उचित नहीं है।”

श्रीशचीमाताने भी, पुत्रकी यह बात सुनकर, ‘निमाइको जिसमें सुख हो वही होना चाहिये’—यह विचारकर उनको ‘नीलाचल’ में रहनेका अनुरोध किया। श्रीमन्महाप्रभुने नवद्वीपवासी सभी लोगोको निरंतर कृष्ण-सकीर्तन, कृष्ण-नाम और कृष्ण-कथाके साथ जीवन-यापन करनेका उपदेश देकर शान्तिपुरके भक्तों और श्रीशचीमाताको बिदा देकर श्रीनित्यानन्द, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदरके साथ छत्रभोग के मार्गसे श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा की।



उन्चासवाँ परिच्छेद

‘पुरी’के मार्गमें और श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें

श्रीमन्महाप्रभु छत्रभोगके मार्गसे ‘वृद्ध-मन्त्रेश्वर’ होते हुए उत्कल राज्यकी एक सीमामें पहुँचे, मार्गमें नाना प्रकारसे आनन्द-कीर्तन और भिक्षादि करते हुए ‘रेमुणा’ग्राममें ‘श्रीक्षीरचोरा श्रीगोपीनाथ’के दर्शन किये और वहाँके अपने भक्तोंसे श्रीईश्वरपुरीके द्वारा कहे गये श्रीमाधवेन्द्रपुरी और श्रीगोपीनाथके प्रसङ्गका वर्णन किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरी-पादके द्वारा कीर्तित ‘अयि दीनदयार्द्रनाथ !’* श्लोकका पाठ

* अयि दीनदयार्द्रनाथ ! हे मथुरानाथ ! कदावलोक्यसे ।

हृदयं त्वदलोककातर दयित ! भ्राम्यति किं करोम्यहम् ।।

—पद्यावली ३३०

[हे दीनदयार्द्रनाथ ! हे मथुरानाथ ! कब तुम्हारे दर्शन प्राप्त होंगे ।

करके श्रीकृष्ण-चैतन्यका कृष्ण-विरह और भी अधिक उद्वेलित हो उठा। वे वहीं वह रात बिताकर दूसरे दिन 'पुरी' की ओर यात्रा करके 'याजपुर' होते हुए 'कटक' पहुँचे। वहाँ 'श्रीसाक्षीगोपाल'* श्रीविग्रहके दर्शन कर श्रीनित्यानन्दप्रभुके मुखसे श्रीगोपालका इतिहास श्रवण किया। 'कटक'



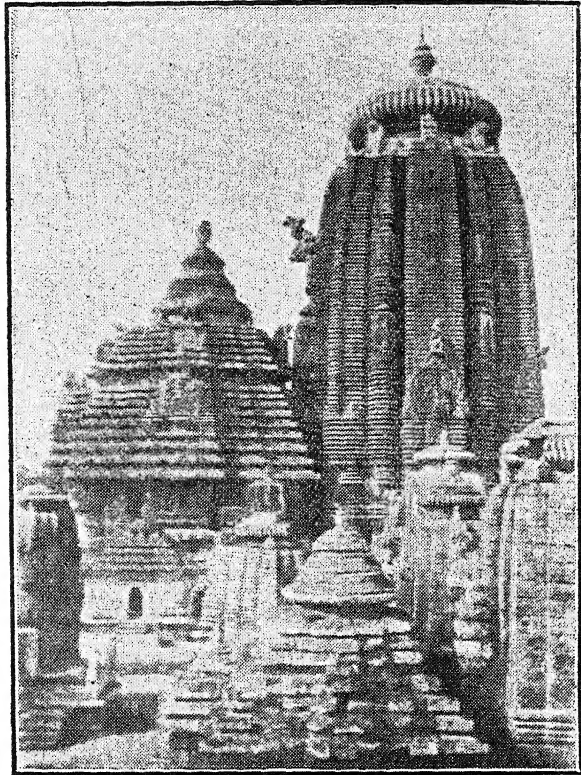
याजपुरमें श्रीचैतन्य-पादपीठ

तुम्हारे दर्शन किये बिना मेरा कातर हृदय चंचल हो उठा है। हे प्रियतम ! मैं अब क्या करूँ ?]

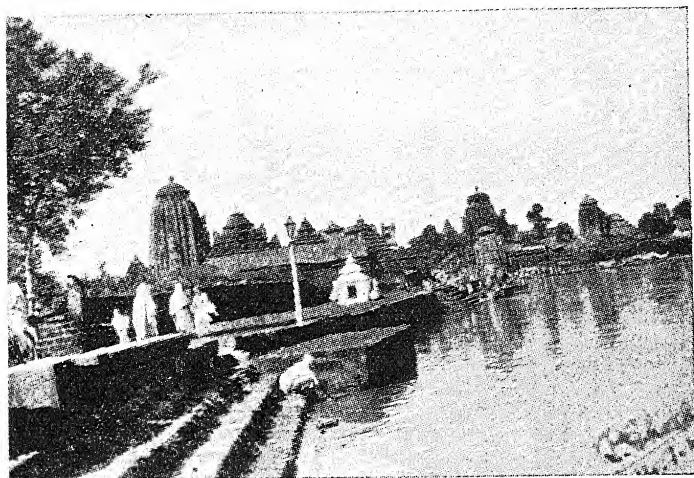
* 'श्रीसाक्षीगोपाल' श्रीविग्रह उस समय कटकमें थे। पश्चात् वे पुरीसे तीन कोस दूर 'सत्यवादी' ग्राममें अधिष्ठित हुए।

से 'भुवनेश्वर' आकर श्रीक्षेत्रपालशिवके दर्शन किये । उसके बाद 'कमलपुर' में 'भार्गी' नदीके तीरपर 'कपोतेश्वर शिव'के दर्शनके बहाने श्रीकृष्णचैतन्य श्रीनित्यानन्दके पास अपना 'दण्ड' रख गये ।

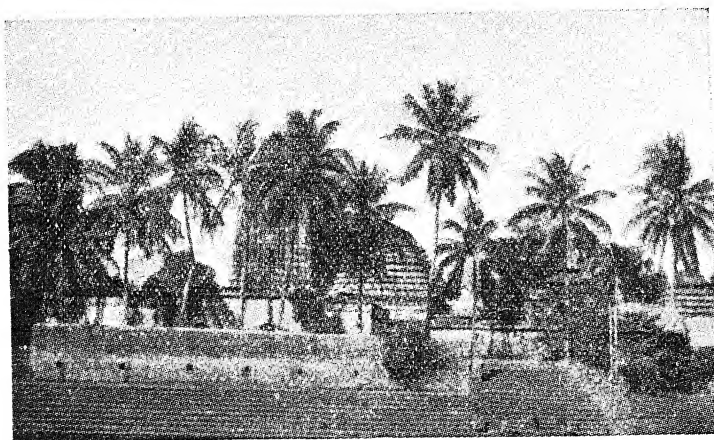
भगवान्‌के लिये साधक जीवके उपयोगी दण्ड (संन्यास-चिह्न) आदिके



श्रीभुवनेश्वरका श्रीमंदिर, यहाँपर श्रीकृष्णचैतन्यदेवका
पदार्पण हुआ था ।



भुवनेश्वरमें श्रीविन्दुसरोवरके तीर पर श्रीग्रनन्तवासुदेवका श्रीमंदिर



साक्षीगोपालमें श्रीश्यामकुंडके तीर पर श्रीसाक्षीगोपालजीका श्रीमंदिर

धारणकी कोई आवश्यकता नहीं है,—यह समझानेके लिये श्रीनित्यानन्दने



श्रीगौर-सुन्दरके दण्ड के तीन टुकड़े करके उसे 'भार्गी' नदीमें बहा दिया ।

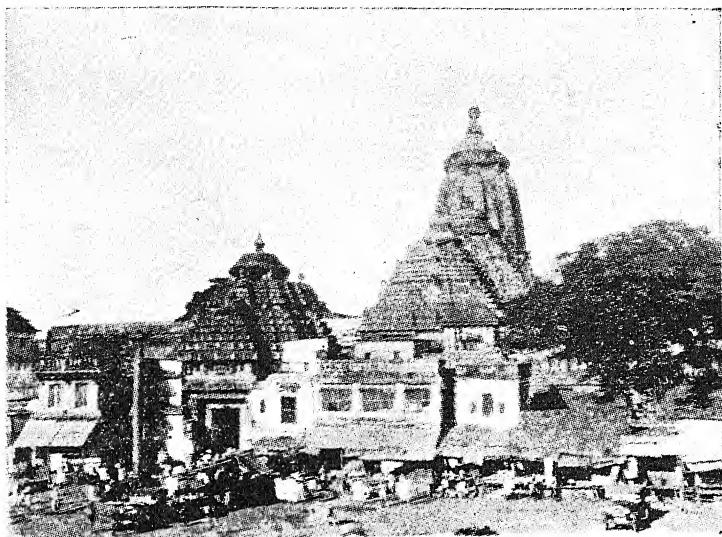
'आठारनालाके' समीप पहुँचने पर श्रीमन्-महाप्रभुने अपना दण्ड न पाकर क्रोध प्रकट किया तथा साथियों-को पीछे रखकर ही अकेले श्रीजगन्नाथ-जीके मन्दिरकी ओर दौड़े । श्रीमहाप्रभुके इस प्रकार बाह्य क्रोध दिखलानेमें गूढ़ शिक्षा यही है कि, भगवान् या परमहंस वैष्णवके लिये आत्म-संशोधनके विधानकी आवश्यकता अवश्य नहीं है, परन्तु अनर्थ-युक्त* साधकके काय, मन और वाणीको

पुरीके श्रीमन्दिरका सिंहद्वार और
उसके सामने अरुण-स्तम्भ

* जिनकी जगत्की वस्तुओंमें आसक्ति है, भगवान्के चरणोंमें सब समयके लिये स्वभाविक प्रीति उत्पन्न नहीं हुई उनको 'अनर्थयुक्त' कहा जाता है ।

दण्डित करना* परम आवश्यक है, नहीं तो, उनके वास्तव मंगलकी संभावना नहीं।

श्रीगौरहरि श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर प्रेमावेशमें उनको आलिंगन करनेके लिये दौड़ पड़े। पड़िछा† इसे समझन सकनेके कारण श्रीगौर-हरिको मारनेके लिये तैयार हो गया। पुरीके राजपंडित प्रसिद्ध नैयायिक



श्रीश्रीजगन्नाथदेवके श्रीमंदिरका सिंहद्वार, श्रीछत्रभोग मंडप,
श्रीजगमोहन, श्रीमुखशाला और श्रीगर्भमंदिर

* देह, मन और वाणी—इन तीनोंको संशोधित या शासित करके श्रीकृष्ण-मुखानुसन्धान करनेके लिए ही दण्ड ग्रहण किया जाता है। 'दण्ड' अर्थात् एक प्रकारका डंडा, जो संन्यास लेते समय ग्रहण किया जाता है।

† श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके दारोगाके समान कर्मचारी विशेषको 'पड़िछा' कहते हैं।

एव अद्वैत-वैदान्तिक सार्वभौम भट्टाचार्य उस समय श्रीमन्दिरमें उपस्थित थे, दैवात् श्रीमन्महाप्रभुको इस अवस्थामें देखकर उन्होंने पडिछा को रोक़ा। सार्वभौम युवक सन्यासीके अद्भुत प्रेम-विकारको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और महाप्रभुकी बाह्यदशा प्राप्तिमें विलम्ब देखकर उनको उठवाकर अपने घर ले आये। लोक-परम्परासे महाप्रभुके महाभावकी बात सुनकर सभी भक्त लोग सार्वभौमके घर आकर उपस्थित हुए। सार्वभौमके बहनोई श्रीगोपीनाथ आचार्य अपने पूर्व परिचित श्रीमुकुन्दको देखकर उनके मुँहसे श्रीमहाप्रभुके सन्यास और पुरी आगमनकी सारी बाते सुनी।

श्रीनित्यानन्द आदि भक्तगण सार्वभौमके पुत्र 'चन्दनेश्वर' के साथ श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर आये। इधर सार्वभौमके घर तीसरे पहर श्रीमहाप्रभुको बाह्यदशा प्राप्त हुई। सार्वभौमके साथ श्रीकृष्णचैतन्यका परिचय होनेपर सार्वभौम भट्टाचार्यने अपनी मौसीके घर श्रीमन्महा-प्रभुके ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया।

श्रीमन्महाप्रभुके विषयमें सार्वभौमके साथ वार्तालाप करते हुए श्रीगोपीनाथने श्रीमहाप्रभुको 'स्वयं भगवान्' बतलाया। इससे सार्वभौम और उनके छात्रोंके साथ श्रीगोपीनाथके अनेको तर्क-वितर्क हुए। "परमेश्वरकी कृपाके बिना परमेश्वर-तत्त्व कभी भी जाना नहीं जा सकता, जागतिक विद्या, बुद्धि और पाण्डित्यके द्वारा भी ईश्वरका तत्त्व-ज्ञान नहीं होता। ईश्वर साक्षात् उपस्थित होनेपर भी उनकी मायासे आच्छन्न जीव उनको देख नहीं सकता।"—श्रीगोपीनाथने ये बातें कहकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको एक प्रकारसे चुप करा दिया।



पचासवाँ परिच्छेद

श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य

अद्वैत-वेदान्त-गुरु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यको साधारण सन्यासी-मात्र समझकर और उनकी युवावस्थाको देखकर उन्हें 'वेदान्त'-श्रवण करनेका उपदेश दिया। श्रीमहाप्रभुने इसमें सम्मत होकर सार्वभौमसे लगातार सात दिनो तक मौन रहकर वेदान्त श्रवण किया। सार्वभौमने श्रीकृष्णचैतन्यको सात दिनोतक पूर्णतया मौन देखकर आठवें दिन उसका कारण पूछा तो श्रीमहाप्रभु बोले,—'वे श्रीव्यासकृत सूत्रोको भलीभाँति समझ लेते हैं, उनके अर्थ अत्यन्त स्पष्ट हैं, परन्तु श्रीशंकराचार्य-रचित भाष्यने उन सूत्रोके सहज निर्मल अर्थको ढक दिया है। शंकर-भाष्य वास्तवमें वेदान्त-विरुद्ध है। अद्वैत-प्रकृतिके लोगोको मोहित करनेके लिये श्रीभगवान्‌के आदेशसे श्रीशिवके अवतार शंकराचार्यने इस प्रकारके भाष्यकी कल्पना की है। 'अचिन्त्य-भेदाभेद-सिद्धान्त'* ही वेदान्तका यथार्थ मत है। मायावादी लोग प्रच्छन्न नास्तिक† हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्यके सामने अनेको शास्त्र-प्रमाण विचारोके द्वारा इन सब विषयोको प्रदर्शित किया। अनेको विचार और तर्कोके बाद भट्टाचार्य परास्त हो गये।

इसके बाद जब भट्टाचार्यने श्रीमहाप्रभुसे श्रीमद्भागवतके "आत्मा-

* 'अचिन्त्य-भेदाभेद-सिद्धान्त'की विस्तृत आलोचना आगे एक सौ तीन परिच्छेदमें देखें। इस सबधमें ग्रंथकार रचित झगला भाषामें 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' नामक स्वतन्त्र ग्रंथमें भी विशद आलोचना की गयी है।

† वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।

वेदाश्रये नास्तिक्यवाद बौद्धके अधिक ॥

—चै० च० म० ६।१६८

[वेद न माननेके कारण बौद्ध नास्तिक हैं। परन्तु ऊपरसे वेदको मानते हुए भी जो नास्तिकताका पोषण करते हैं वे बौद्ध से भी बड़े नास्तिक हैं।]

रामाश्च" (भा० १।७।१०) श्लोककी व्याख्या सुननेकी इच्छा प्रकट की तो, श्रीमहाप्रभुने पहले भट्टाचार्यको ही इस श्लोककी व्याख्या करनेके लिये कहा। सार्वभौमने अपनी मनीषा और तर्कशास्त्रके पाण्डित्यके बलसे इस श्लोककी नौ प्रकारसे व्याख्या की। श्रीमहाप्रभुने सार्वभौमकी उस व्याख्यासे किसीको भी बिना स्पर्श किये स्वतन्त्ररूपसे इस श्लोककी अठारह प्रकारसे व्याख्या की। भट्टाचार्य इससे चकित हो उठे और तब उनको आत्मग्लानि होने लगी। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्ममे शरणागतिकी याचना की। तब श्रीमन्महाप्रभु भी श्रीसार्वभौमके ऊपर प्रसन्न होकर पहले उनको अपने चतुर्भुज और पीछे द्विभुज-रूपके दर्शन कराये। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे सार्वभौमके चित्तमे तत्त्व-स्फूर्ति हुई। उन्होंने बहुत ही थोड़े समयमें श्रीमन्महाप्रभुकी स्तुतिसे पूर्ण, एक सौ श्लोकोंकी रचना कर डाली। श्रीसार्वभौमके रचे हुए ये दो श्लोक तो भक्तोंके कण्ठहार बन गये,—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोगशिक्षार्थमेकं पुरुषः पुराणः।

श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्द्यस्तमहं प्रपद्ये ॥*

—चै० च० ना० ६।४३

कालान्तरं भक्तियोगं निजं यः, प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।

आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥†

—चै० च० ना० ६।४४

सार्वभौमके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी इस प्रकारकी अलौकिक कृपा देखकर श्रीगोपीनाथ प्रभृति सभी आनन्दित हो उठे। इसके बाद एक

* वैराग्य अर्थात् कृष्णविरह, विद्या अर्थात् कृष्ण-पादपद्ममे आसक्ति और निजभक्तियोग अर्थात् प्रेमशिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्य रूपधारी एक सनातन पुरुष जो सर्वदा कृपा-समुद्र है, उनके प्रति मैं प्रपन्न होता हूँ।

† काल पाकर अपने भक्तियोगको नष्ट होता देखकर जो 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' नामक महापुरुष उसके पुनः प्रचारार्थ आविर्भूत हुए, उनके श्री चरण-कमलमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर अत्यन्त प्रगाढरूपसे आसक्त हो।

दिन श्रीमन्महाप्रभु ऊषाकालमें श्रीजगन्नाथदेवका 'पाकाल प्रसाद'* लेकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको देनेके लिये उनके घर आये। भट्टाचार्य उस समय 'कृष्ण, कृष्ण' कहते हुए वस शय्या-त्याग कर रहे थे। परन्तु उन्होंने महाप्रभुकी कृपासे लौकिक स्मार्त्तिके जागतिक विचारोंसे मुक्त होनेके कारण उसी क्षण—प्रातः कृत्यादि करनेके पूर्व ही श्रीमहाप्रभुके दिये हुए महाप्रसादको सम्मानपूर्वक ग्रहण किया।

सार्वभौमने एक दिन श्रीमहाप्रभुसे पूछा—'सर्वश्रेष्ठ साधन क्या है?' तो श्रीमहाप्रभुने उनको एक मन्त्र श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन करनेका उपदेश दिया—

हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

—बृहन्नारदीय पुराण, ३८।१२६

और एक दिन सार्वभौमने श्रीमद्भागवतके 'तत्तेनु ऽकम्पा'† ग्लोकके शेषार्थमें 'मुक्तिपदे' पाठके बदले 'भक्तिपदे' पाठ करके श्रीमहाप्रभुको सुनाया। श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“श्रीमद्भागवतके पाठके परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं है।' मुक्तिपद'‡ गब्दसे भी श्रीकृष्णका बोध होता है।”

*जलमें भिगोकर रखे हुए भात या चावल प्रसादको पुरीमें 'पाकाल-प्रसाद' कहते हैं।

† तत्तेऽनुकम्पा सुसमीक्षमाणो भूजान एवात्मकृत विपाकम् ।

हृद्वागवर्णभिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ।

—भा० १०।१४।८

[जो तुम्हारी अनुकम्पा प्राप्त करनेकी आशासे अपने कर्मफलोंको भोगते हुए मन, वाणी और शरीरके द्वारा तुममें आत्मनिवेदनात्मिका प्रणति विधान करते हुए जीवनयापन करते हैं, वे मुक्तिपदमें दायभाक् अर्थात् श्रीकृष्णपादपद्मोंकी प्राप्तिके योग्य पात्र हैं।]

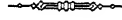
‡ मुक्ति पदे यों'र, सेइ 'मुक्तिपद' हय ।

किवा नवम-पदार्थ 'मुक्ति'र समाश्रय ॥

—चै० च० म० ६।२७२

[जिसके पदमें मुक्ति रहती हो, उसका नाम मुक्तिपद है। अथवा

भट्टाचार्यकी वैष्णवताको देखकर नीलाचल-वासीगण श्रीमन्महाप्रभुको 'साक्षात् कृष्ण' समझने लगे तथा श्रीकाशी मिश्र आदि उत्कलवासीगण श्रीमहाप्रभुके श्रीपाद-पद्मोंमें शरणापन्न हुए ।



इक्कावनवाँ परिच्छेद दाक्षिणात्यकी ओर

श्रीगौरमुन्दर १४३१ शकाब्द माघ मासकी सक्रान्तिके दिन (२९ माघ) पूर्णिमा तिथिको सन्यासग्रहण-लीलाका अभिनय करके फाल्गुन मासमें 'नीलाचल' जा पहुँचे और वहाँ होलिकोत्सवके दर्शन कर चैत्र मासमें सार्वभौमका उद्धार करके १४३२ शकाब्दके वैशाख मासमें उन्होंने दक्षिणकी यात्रा की । श्रीमन्महाप्रभुने जब भक्तोंसे यह प्रस्ताव किया कि वे अकेले ही दक्षिण भ्रमणके लिये जाएँगे तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने विशेष अनुरोध करके 'कृष्णदास' नामक एक सरलचित्त ब्राह्मणको महाप्रभुके साथ कर दिया । सार्वभौमने चार कौपीन और चार बाहु-वस्त्र महाप्रभुके साथ दिये तथा महाप्रभुसे 'गोदावरी'के किनारे श्रीरामानन्द रायके साथ साक्षात्कार करनेकी प्रार्थना की । श्रीनित्यानन्दप्रभु प्रभृति कुछ भक्तलोग 'आलालनाथ' तक श्रीमहाप्रभुके साथ गये थे । केवल कृष्णदास ब्राह्मणको साथ लेकर महाप्रभु अपूर्व भावावेशमें चलने लगे । महाप्रभु श्रीकृष्णविरह-विधुरा गोपीके भावमें उच्च स्वरसे गान करते हुए चले,—

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हे ।

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हे ॥

श्रीमद्भगवत्-कथित सर्ग-विसर्ग आदि दस पदार्थोंमें अन्यतम नवम पदार्थ मुक्तिके सम्यक् आश्रयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही मुक्तितपद है ।]

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! रक्ष माम् ।
 कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! पाहि माम् ॥
 राम ! राघव ! राम ! राघव ! राम ! राघव ! रक्ष माम् ।
 कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! पाहि माम् ॥

—चै० च० म० ७।६६

श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे श्रीहरिनाम सुनकर सभी 'हरि' नामका उच्चारण करने लगे। श्रीमहाप्रभुने शरणागत व्यक्ति मात्रको ही शक्तिसंचार करके वैष्णव बनाया। वे ही वैष्णव लोग, फिर अपने गाँवोंमें जाकर ग्रामवासियोंको वैष्णव बनाने लगे। इस प्रकार समस्त दक्षिण देशके लोग वैष्णव हो गये। श्रीचैतन्यकी कृपा-महिमा श्रीनव-द्वीपकी अपेक्षा दाक्षिणात्यमें कहीं अधिक रूपसे प्रकट हुई। इस प्रकार श्रीमहाप्रभु 'श्रीकूर्मस्थान'में * आकर उपस्थित हुए और श्रीकूर्मदेवका दर्शन और स्तवन करने लगे। उस गाँवमें श्रीकूर्म नामके एक गृहस्थ ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने बहुत श्रद्धा और भक्तिके साथ महाप्रभुको भिक्षा करायी और सपरिवार प्रभुका अत्यन्त दुर्लभ श्रीचरणामृत और प्रसादस्वरूप उच्छिष्ट ग्रहण किया। श्रीगौरहरिने उस ब्राह्मणपर कृपा की तथा 'आचार्य' बनकर अर्थात् स्वयं आचरण करके प्रत्येकके निकट कृष्ण-कथाका प्रचार करनेका उन्हें आदेश दिया,—

या'रे देख, ता'रे कह 'कृष्ण'-उपदेश ।

आमार आज्ञाय गुरु हुआ तार' एइ देश ॥

कभु ना बाधिबे तोमाय विषय-तरंग ।

पुनरपि एइ ठाजि पा'बे मोर सग ॥

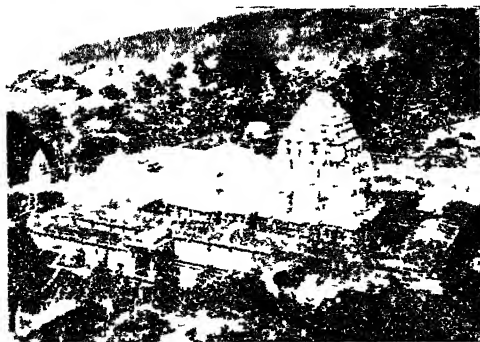
—चै० च० म० ७।१२८-१२९

[जिसको देखो उसीको 'कृष्ण'का उपदेश करो। मेरी आज्ञासे

* कलकत्ता-वाल्टियर लाइनपर 'श्रीकाकुलम् रोड' स्टेशन आता है। इस स्टेशनसे 'श्रीकाकुलम्' शहर पूर्वकी ओर नौ मील पर है। वहाँसे 'श्रीकूर्मम्' या श्रीकूर्मस्थान पूर्व-दक्षिणकी ओर ९॥ मीलपर है।

गुरु होकर इस देशको तार दो। तुमको विषय-तरंगे कभी बाधा नहीं देगी और इसी स्थानपर पुन मेरा सग प्राप्त करोगे।]

श्रीमहाप्रभु जिसके घर भिक्षा करते उन्हीको इस प्रकारका उपदेश और शिक्षा प्रदान करते थे। 'वासुदेव' नामके एक गलित-कुष्ठ रोगसे ग्रस्त ब्राह्मण, कूर्म-ब्राह्मणके घर श्रीमहाप्रभुके दर्शन करने आये और उनसे कृपा याचना की। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवासुदेवको देहरोग और भवरोगसे मुक्त करके 'आचार्य' बनाया। श्रीवासुदेवका उद्धार करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुका 'वासुदेवामृतप्रद' नाम पडा। श्रीमहाप्रभुने क्रमश 'जियडनृसिंह'-क्षेत्र* 'सिहाचल'में जाकर श्रीनृसिंह भगवान्की स्तुति और वन्दना की,—



दूरसे सिहाचल पर्वत, जियड-नृसिंहदेवका श्रीमदिर
तथा श्रीचैतन्यपादपीठके श्रीमदिरका दृश्य

* ईस्टर्न रेलवे (पहलेके बी० एन० आर०) लाइनके अन्तिम स्टेशन वारिडयरके पूर्ववर्ती स्टेशन 'सिहाचल'से प्राय चार मील दूर 'सिहाचल-पर्वत'के ऊपर श्रीनृसिंह भगवान् विराजमान हैं। विशेष जानकारीके लिये साप्ताहिक 'गौडीय' पत्र बगाव्द १३४६, १६ अग्रहायण-संख्या (पृष्ठ संख्या २४४-२४६) देखें।

श्रीनृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह ।

प्रह्लादेश, 'जय पद्मामुखपद्मभृग ॥

—चै० च० म० ८।५

[हे नृसिंह ! हे नृसिंह ! हे नृसिंह ! आपने प्रह्लादपर कृपा की, आपके वक्षसे लक्ष्मी विराज रही हूं, आप लक्ष्मीकान्त हैं, —आपकी जय हो, जय हो, जय हो ।]

इस स्थानमें रातको रहकर दूसरे दिन प्रातः काल पुनः प्रेमावेगमें चलते-चलते गोदावरीके किनारे पहुँचे । गोदावरीको देखकर श्रीगौरहरि के हृदयमें श्रीयमुनाकी स्मृति जाग उठी ।

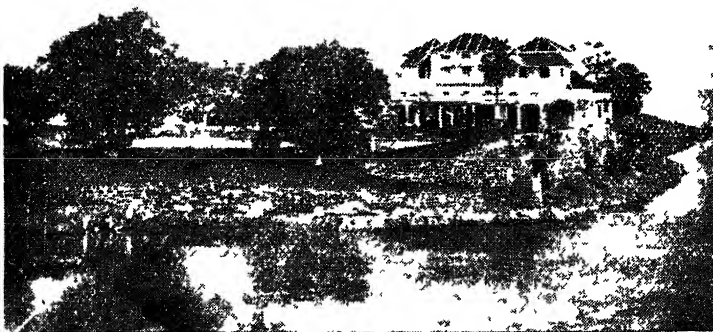


बावनवाँ परिच्छेद श्रीरायरामानन्दके साथ मिलन

दाक्षिणात्यमें 'राजमहेन्द्री' नगरके 'कोटिलिगम्' तीर्थके उस पार 'गोष्पद' या 'पुष्करम्' तीर्थ अवस्थित है । लगभग सन् १५०२ ई० में उडीसाके सम्राट् गजपति श्रीप्रतापरुद्रके अधीन प्रसिद्ध शासक (Governor) श्रीरायरामानन्द गोदावरीके किनारे 'गोष्पद' तीर्थके घाटपर जुलूसके साथ स्नान करनेके लिये आ रहे थे ।

इधर श्रीमहाप्रभुने गोदावरी पार करके राजमहेन्द्री होकर गोष्पद-तीर्थमें आगमन किया । बहुतसे वैदिक ब्राह्मणों और बाजे-गाजेके साथ पालकीमें बैठे एक व्यक्तिको जुलूसमें आते देखकर श्रीकृष्णचैतन्यदेवने उन्हींको 'रामानन्दराय' समझा । श्रीरामानन्दरायने भी एक अपूर्व सन्यासीको देखकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया । श्रीचैतन्यने रामरायको प्रेमपूर्वक आलिंगन-पाशमें बाध लिया, दोनोंमें प्रेमकी तरंगें

बहने लगी। श्रीरामानन्दने श्रीमहाप्रभुसे पाँच-सात दिन वहाँ कृपापूर्वक रहकर श्रीहरि-कथा-कीर्तन करनेके लिये विशेष प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभु उस गाँवमें किसी एक वैदिक वैष्णव-ब्राह्मणके घर रहे और भिक्षा ग्रहण की। सध्याकालमें श्रीरामानन्द रायने अत्यन्त दीनवेशमें आकर महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया। तब महाप्रभुने श्रीरामरायसे कहा,—“जीवके प्रयोजन परम पुरुषार्थ या साध्यका जिसमें निर्णय किया गया हो, ऐसा प्रमाण-सूचक श्लोक पढिये।” तब श्रीरामानन्दरायने ‘श्रीविष्णु-पुराण’का (३।८।८) एक श्लोक पढकर कहा,—“ब्राह्मण, क्षत्रिय,



राजमहेन्द्रोके गोदावरीकिनारेपर पुष्कर-तीर्थ

वैश्य और शूद्र’—ये चार वर्ण, तथा ‘ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी’—ये चार आश्रमोके अपने-अपने वर्ण और आश्रमके आचार अर्थात् स्वधर्म पालनके द्वारा पुरुषोत्तम-विष्णुकी आराधना होती है। उनके सामने वर्णाश्रमके आचार पालन करनेके सिवा अन्य कोई साधन प्रीतिजनक नहीं होता। विष्णुको सन्तुष्ट करना ही ‘पुरुषार्थ’ अर्थात् प्रयोजन या ‘साध्य’ है। वर्णाश्रम-धर्मके आचरणरूप-साधनके द्वारा ही यह साध्य प्राप्त होता है।”

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“स्वधर्ममें रहकर श्रीविष्णुको सन्तुष्ट करना ही ‘साध्य वस्तु’ है, परन्तु वर्ण और आश्रम-धर्मके आचरणरूप साधनके द्वारा साक्षात् रूपसे वह साध्य-वस्तु प्राप्त नहीं होती। ‘विष्णुपुराण’के इस प्रमाणमें सबपिक्षा वहिरंग साधनकी * बात ही कही गयी है, क्योंकि, प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवत (१।२।८)का कहना है,—‘वर्णाश्रम-धर्म अत्यन्त सुन्दररूपसे अनुष्ठित होनेपर भी श्रीवासुदेव या उनके भक्तोंके आश्रयके बिना यदि श्रीवासुदेवकी कथा अर्थात् उनके लीला-वर्णन आदिमें रुचि उत्पन्न नहीं होती, तो इस प्रकारके वर्णाश्रम-धर्मका आचरण वृथा परिश्रममात्र है।’ सकाम वर्णाश्रम-धर्मकी बात तो दूर रही, केवल निवृत्तिपरक धर्म भी ‘हरि-विमुख’ होनेके कारण परमार्थ या ‘साध्य’का प्रदान करनेमें असमर्थ है। श्रीनारदजीने श्रीव्यासजीसे कहा है,—‘ब्रह्मके साथ एकाकारता-प्राप्त और उपाधिशून्य ज्ञान भी यदि श्रीभगवान्की भक्तिसे रहित हो, तो वह भी सम्यक् रूपसे मुक्तिका कारण नहीं हो सकता, और वर्णाश्रमादि धर्मके अन्तर्गत जो काम्य कर्म हैं, जिसके साधनकाल और फलकालमें क्लेश अनिवार्य हैं, वह दुःखरूप काम्यकर्म, यहाँ तक कि, निष्काम कर्म भी यदि श्रीभगवान्को अर्पित नहीं होता है, तो वह भगवान्के प्रति वहिर्मुखता-रूपी दोषसे दूषित होनेके कारण जीवकी चित्तशुद्धि नहीं कर सकता।’ अतएव वर्णाश्रमधर्मके काम्यकर्मरूप साधनके द्वारा श्रीविष्णु-भक्तिरूप ‘साध्य’की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह साधन अत्यन्त वहिरंग है। वर्णाश्रमके आचार, तपस्या और अध्ययन आदि विषयक परिश्रम केवल महान् परिश्रम, प्रतिष्ठा और प्राकृत ऐश्वर्यकी प्राप्तिमें ही पर्यवसित

* कली कलुषचित्ताना वृथायु प्रभृतीनि च ।

भवन्ति वर्णाश्रमिणा न तु मच्छ्रगार्थिनाम् ॥

—भ० स०, ६८ अनुच्छेद-धृत ‘ब्रह्मवैवर्त-पुराण’-वाक्य

[कलिकालमें कलुषितचित्त वर्णाश्रमियोका जीवनधारण आदि वृथा है, परन्तु मेरे शरणार्थियोका जीवनधारण व्यर्थ नहीं है ।]

होता है , परन्तु श्रीहरिके गुणानुवाद-श्रवणमे आदर-आदिके द्वारा श्रीभगवान्‌के श्रीचरणकमलयुगलकी अविस्मृतिरूप महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है । (भा० १२।१२।५४) वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेपर कभी श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं अर्थात् 'मोक्ष'की प्राप्ति होती है , परन्तु वे सुप्रसन्न नहीं होते अर्थात् उनका 'साक्षात्कार' प्राप्त नहीं होता, वे 'सुखी' नहीं देख पड़ते, 'विमुक्ति'—विशेष मुक्ति—भगवदानन्द—परमानन्दका वैचित्र्य प्राप्त नहीं होता ।” तब श्रीरामरायने श्रीगीताके (९।२७) एक श्लोकको पढ़कर कहा,—“क्या भोजन, क्या यज्ञ, क्या दान, क्या तप, और अन्य जो कुछ कर्म हैं, उन सबको कृष्णमें अर्पण करनेसे ही श्रीविष्णुभक्तिरूप 'साध्य' प्राप्त होता है ।”

“श्रीविष्णुपुराणोक्त वर्णाश्रमाचार-पालनरूप कर्मको कोई-कोई फल-कामनारहित कहकर प्रतिपादन करते हैं पर उसमें फलके प्रति तीक्ष्ण दृष्टि और आग्रह विद्यमान है । सन्ध्या-वदनादि नित्यकर्म, अथवा पितृपुरुषोके श्राद्ध-तर्पणादि नैमित्तिक कर्मोंमे जो अभिमान है, वह पूर्णतया प्राकृत है और वह चतुर्दश ब्रह्माण्डकी अस्मिता या देहके अभिनिवेशसे ही उत्पन्न है , अतएव स्वरूपतः 'सकाम' है । और श्रीगीतामें जो कर्मफलको कर्मसहित श्रीभगवान्‌में अर्पणका उपदेश है, वह भी साध्य भक्तिका 'अन्तरंग साधन' नहीं हो सकना , क्योंकि भक्तिका अन्तरंग साधन 'भक्ति' ही होगा । कर्मार्पणके द्वारा कर्मफलको न अपनानेसे कर्मका विष तो कुछ प्रशमित अवश्य होता है, पर वह 'साक्षाद्भक्ति' (स्वरूप-सिद्धा भक्ति) नहीं है । उसमें केवल इतना ही होता है कि, जड़का अहंकार अथवा देहकी आसक्ति लिये हुए ही भगवान्‌की ओर गरदन फेरनेकी चेष्टा होती है । अतएव यह भगवान्‌के प्रति 'गौण' उन्मुखता है । कर्मार्पण दो प्रकारका होता है— (१) फलत्याग और (२) भगवान्‌के सुखाभासकी चेष्टा । एकमात्र भक्तसंगके द्वारा ही श्रीविष्णुके सुखाभासकी चेष्टा होती है । फलत्याग या कर्म-संन्यासमें उस सुखाभासकी चेष्टामात्र भी नहीं रहती । इसी

कारण कर्मर्पण करनेवाला अर्पणके द्वारा अभक्तके सग अभक्तिके द्वारपर भी पहुँच सकता है। शुद्ध-भक्तका सग हुए बिना उनमें 'शास्त्रीय-श्रद्धा' और 'साध्य-भक्ति' प्राप्त करना सभव नहीं। इसलिये कर्मर्पणको 'आरोपसिद्धा भक्ति' मात्र कहा जा सकता है। 'लौकिक-श्रद्धा'से कर्मर्पण या आरोपसिद्धा भक्तिका आरम्भ होता है, अतएव वह 'सगुणा' है। यह कर्मर्पण अथवा आरोपसिद्धा भक्ति 'सकैतवा' अर्थात् धर्मार्थदि-कामना-मूलक होनेपर तो वह 'भागवत-धर्म'का प्रथम सोपान भी नहीं बनती। यदि वही आरोपसिद्धा भक्ति 'अकैतवा' अर्थात् धर्मार्थकामादि वाछासे शून्य होती है, तब वह 'सगुण' भागवतधर्म-पदवाच्य हो सकती है। वस्तुतः 'साध्यभक्ति' निर्गुणा है। कर्मर्पणको भक्ति और ज्ञानका द्वारस्वरूप कहा जाता है, तथापि उसमें स्वार्थपरता रहनेके कारण भक्ति और ज्ञान—दोनों मार्गोंके अनुयायी ही कर्मका खडन करते हैं। सेव्य-वस्तुकी सुखदायिनी क्रिया ही 'भक्ति' है, वही साध्य है। वह भक्ति जब 'आदौ अर्पिता' अर्थात् सेव्यके सुखके लिये ही भाविता होकर अनुष्ठित होती है तभी 'स्वरूपसिद्धा' भक्ति होती है, और यदि पहले अनुष्ठित होकर पश्चात् अर्पित होती है, तो वह कर्मर्पण अथवा स्वार्थपरतासे दूषित हो जाती है।”

श्रीमन्महाप्रभुके इस विचारको सुननेके बाद श्रीरामानन्द राय श्रीमद्भागवत और श्रीगीताका प्रमाण श्लोक पढ़कर बोले,—“वर्णाश्रमरूप स्वधर्मका त्यागकर श्रीभगवान्की शरण ग्रहण करना ही 'साध्यभक्ति'का उत्कृष्ट साधन है।” श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“स्वरूपतः (केवल फलतः नहीं) वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मके त्यागकी बात मुँहसे कह देनेसे ही वह कार्यतः नहीं हो जाता। साध्यभक्ति—‘ह्लादिनीका वृत्तिविशेष’ है। वह ह्लादिनीकी वृत्ति ह्लादिनीके दूत जो ‘महत्’ (महाभागवत) है उनकी कृपा और उनके सगरूपी वाहनपर आरोहण करके आविर्भूत होती है। महत्की कृपाके बिना किसी भी साधनचेष्टाके द्वारा भक्तिकी प्राप्ति नहीं की जा सकती। वर्णाश्रममें या उससे वहिर्भूत समाजमें

रहनेपर भी यदि श्रीहरि-कयामें कयचित् रुचि या श्रद्धा होती है, तो वही होता है 'भाग्य', वर्णाश्रममें निष्ठा या उसमें व्यभिचार, इसमें कोई भी 'भाग्य' नहीं है। साधु लोग विष्णु या विष्णुभक्तके सम्पर्कसे युक्त स्थानमें और गंगा आदि पुण्य नदीके तीरपर रहते हैं। किसी कार्यके बहाने यदि कोई विषयी पुरुष वहाँ पहुँचता है और साधुके दर्शन, पाद-स्पर्श, सम्भाषण या कुछ भेट देनेका सौभाग्य प्राप्त करता है, तो इससे उसका सत्वगुण प्रबल हो जाता है और उसमें हरिकयामें हरिरूप भक्तिकी प्रथम अवस्था आरम्भ हो जाती है। इससे बढ़कर कर्मों वर्णाश्रमीके लिये श्रेष्ठतर परमधर्म दूसरा नहीं है। अतएव, साधुकृपाके बिना साधारण जीवमें स्वरूपतः स्वधर्मत्याग अथवा शरणागतिका उदय नहीं हो सकता। शरणागति, महत्की सेवा और श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति—'स्वरूपसिद्धा वैधी भक्ति' है। यदि कोई व्यक्ति महत्-संग आदिसे उत्पन्न सस्कार-विशेषरूप अनिर्वचनीय अति-भाग्यके फलसे भक्तिमें श्रद्धावान् होता है, तभी वह इस 'वैधी साधन-भक्ति'का अधिकारी हो सकता है। श्रीगीता प्रभृति शास्त्रमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—इन चार प्रकारके अधिकारियोंकी बात कही गयी है। गजेन्द्र, शौनकादि मुनि, ध्रुव और सनकादि चतुष्टय क्रमशः आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानीके उदाहरण हैं। ये आर्तादि पुरुष शुद्ध भक्तिके अधिकारी नहीं हैं, बल्कि आर्ति, ज्ञान आदि इच्छासे मुक्त भक्तकृपा-विशिष्ट व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। आर्त आदि व्यक्तिपर जब भगवान् या भगवद्भक्तकी कृपा होती है, तब उनके उन-उन भावोंकी क्षीणता होनेपर शुद्ध-भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। भक्त और भगवान्की कृपासे ही गजेन्द्र आदिकी तत्तद् वासनाओंका त्याग हुआ था। 'ज्ञानी-महत्'के सगाभासके फलसे साक्षात् ज्ञानके लक्षणस्वरूप निर्वेद, तथा 'भक्त-महत्' के सगाभासके फलसे भक्तिका मूल श्रद्धाका तथा उसके पूर्वके माहात्म्य-ज्ञानका उदय होता है। श्रीगीताके (१८।६६) चरम श्लोकमें जो 'सर्व-गुह्यतम परम वाक्य'के

उपदेशमें सर्वधर्म-त्यागकी बात है उसे भी ऊपरकी बात ही समझनी चाहिये, क्योंकि यह त्याग स्वतः स्फूर्त नहीं ; कारण—श्रीकृष्णके सुखकी चिन्तामें आविष्ट होकर या वर्ण और आश्रमधर्म तुच्छ है इस विचारसे भी त्याग नहीं हुआ। इसमें कर्तव्य न करनेपर पाप होता है, इस भयकी चिन्ता रहती है। यही देहासक्तिका प्रमाण है। गोपियोंमें श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानके लिये आर्यधर्म-त्यागमें पापका भय या देहासक्ति लेशमात्र भी नहीं। देहासक्तिसे उत्पन्न कुछ जागतिक कर्तव्य है, उन्हें न करनेपर पाप होगा ऐसी बुद्धि मनुष्यमें रहनेके कारण ही श्रीकृष्णने कहा है,—“मैं तुमको कर्तव्य न करनेके कारण उत्पन्न सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तुम कोई शोक न करो।” श्रीचैतन्यदेवने श्रीगीताके सर्वधर्मत्याग अथवा स्वधर्मत्यागकी बातको भी शोक और आकाशामूचक साधनके रूपमें प्रतिपादन किया।

श्रीरामानन्दरायने श्रीगीताके (१८।५४) एक और श्लोकको पढ़कर कहा,—“जीव ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा होकर जब कोई शोक या आकाशा नहीं करता तथा सारे प्राणियोंमें समदर्शी होता है, तब श्रीभगवान्‌में भक्ति-लाभ करता है अर्थात् ‘ज्ञानमिश्रा भक्ति’ रूप साधनके द्वारा ‘साध्यभक्ति’ प्राप्त कर सकता है।”

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“ज्ञानमिश्रा भक्ति भी स्वरूपसिद्धा निर्गुणा ‘साध्यभक्ति’ नहीं है। ‘मिश्रा’ कहनेसे यदि आवरण होता है, तब तो वह भक्ति ही नहीं हुई, उसने भक्तिको आवृत कर डाला। यदि ‘मिश्रा’ कहनेसे ज्ञानका ‘आकार’ मात्र ही लक्षित होता हो, तो इस प्रकारका आकार रहनेपर भी भक्तिका ही प्राधान्य अर्थात् प्रभुत्व रहा, परन्तु यह भी ‘स्वरूपसिद्धा भक्ति’ नहीं हुई, ‘संगसिद्धा भक्ति’ हो गयी। संगसिद्धा भक्ति यदि ‘सकामा’ (कामना-युक्ता) हो, तो वह आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानीका अधिकारोचित व्यापार हुआ। शास्त्रीय श्रद्धा या शरणागतिसे ‘संगसिद्धा भक्ति’का आरम्भ होनेपर भी, वह स्वरूपसिद्धा अकिंचना भक्ति न होनेके कारण साध्य प्रेमभक्तिका

‘अन्तरंग-साधन’ नहीं हो सकती। शोकादि विघ्नोके रहते श्रीहरिभजनमें प्रवृत्ति नहीं होती, इसके लिये ही ज्ञान अपेक्षित होता है, परन्तु ज्ञानकी अपेक्षा रहनेपर वह फिर भक्तिमें विघ्नकारक होता है।* क्योंकि, भक्ति निरपेक्षा है, वह ज्ञानकी अपेक्षासे युक्त नहीं, बल्कि ज्ञान और वैराग्य बहुधा भक्तिके प्रतिकूल ही होते हैं, यही श्रीमद्भागवत का सिद्धान्त है।”

श्रीगौरहरिका इस प्रकारका विचार सुननेके बाद श्रीरामानन्द रायने श्रीमद्भागवतका (१०।१४।३) एक श्लोक पढ़कर ‘ज्ञानशून्या भक्ति’को ही ‘साध्यसार’ बतलाया। जो लोग ज्ञानके लिये तनिक भी प्रयास न करके साधुओंके निवासपर अवस्थित होकर उनके श्रीमुखसे स्वभावतः नित्य प्रकटित श्रीभगवान्की कथाका तन-मन-वचनसे अवलबन करके जीवन धारण करते हें, वे यदि और कुछ भी न करे, तो उनके द्वारा ही अजित भगवान् वशमे हो जाते हैं।”

श्रीरामरायके मुँहसे इस ‘ज्ञानशून्या अकिंचना स्वरूपसिद्धा भक्ति’की बात सुननेके बाद श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“हाँ, यह सही है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। यही निष्कामा ‘निर्गुणा भक्ति’ कहलाती है, तथापि यह ‘साधनभक्ति’ है, इसके आगे ‘साध्यभक्ति’की बात कहिये। साध्य-भक्ति श्रीकृष्णप्रीति, विधिभक्तिरूप साधनके द्वारा भी प्राप्त नहीं होती।” तब श्रीरामरायने स्वकृत दो श्लोकोको पढ़कर यह बतलाया कि, “श्रीकृष्णके पाद-पद्मोमे स्वाभाविकी लोभमयी ‘प्रेमभक्ति’ सब साध्योका सार है।” और भी कहा,—“जिस समय तक पेटमें तीव्र भूख-प्यास है, उसी समय तक भोजन और जलीय पदार्थ सुस्वादु लगते हैं, अग्नि-मन्द होनेपर सर्वोत्कृष्ट भोज्य-पदार्थ भी रुचिकर नहीं होता। उसी प्रकार आर्तबन्धु श्रीकृष्णकी नाना प्रकारके उपचारोंसे

* ‘अत्र शोकादिविघ्नसत्त्वे भजनाप्रवृत्तौ ज्ञानापेक्षा, तदभावे तु सा पुनर्भजनविघ्न एवेति बाह्यम्।’ (श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती ठाकुर)

परिचर्या प्रीतिपूर्वक करनेपर ही वह श्रीकृष्ण और भक्तोंके लिये सुखकर हो सकती है। कृष्ण-मेवारसमें 'आवेशमयी मति' जहाँ कही भी प्राप्त क्यों न हो, एकमात्र 'लोभ'-रूप मूल्यके द्वारा ही उसे क्रय करना चाहिये, कोटि-कोटि जन्मोंकी सुकृतिसे उत्पन्न वैधी भक्तिके द्वारा भी यह आवेशमयी 'मति' प्राप्त नहीं हो सकती।

जानेमें हो या अनजानेमें, प्रीतिके अद्वितीय पात्र जो 'श्रीकृष्ण' है, नित्यपरिकर अनुरागी भक्तगण दास्य-सख्यादिभावसे उनका (श्रीकृष्णका) जो सुख-विधान करते हैं, श्रीकृष्ण भी उसमें जिस प्रकार सुखी होते हैं तथा भक्तगण श्रीकृष्णको दास्य-सख्यादिभावसे सेवा करके जिस प्रकार उन्हें सुखी देखते हैं, उसी साध्यभक्तिकी परिपाटीको सुनकर जो उनको (अनुरागी भक्तोंकी) अनुगति प्राप्त करनेके लिये लोभयुक्त होकर विद्युद्गतिसे दौड़ पड़ते हैं, उनकी (अनुरागी भक्तोंके अनुगतोंकी) भक्ति ही 'रागानुगा साधन-भक्ति' है। और नित्यसिद्ध ब्रजपरिकरोंकी भक्ति 'साध्यभक्ति' है। वैधी भक्तिमें शास्त्र-शासनका प्रयोजन होता है, परन्तु रागानुगा भक्ति रुचि, प्रवृत्ति या 'तृष्णा'से ही उदित होती है।”

श्रीमहाप्रभु बोले,—“प्रेमभक्ति सर्वसाध्यसार है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु ममत्ववर्जित 'शान्तप्रेम'से भी श्रेष्ठ जो 'साध्यभक्ति' है, उसकी बात कहिये।” तब श्रीरामरायने ममतायुक्त 'दास्य-प्रेम'की बात कही। श्रीमन्महाप्रभुने उसकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ साध्यकी बात पूछी, तो श्रीरामरायने 'सख्य-प्रेम'की बात कही। महाप्रभु बोले,—“गौरवमय दास्यप्रेमसे विश्वासभावमय सख्यप्रेम उत्कृष्ट है, अब उससे भी श्रेष्ठ साध्यकी बात कहिये।” तब रामरायने पाल्य या अनुग्राह्य-भावमय * 'वात्सल्य-प्रेम'की बात कही। श्रीमन्महाप्रभुने उसकी अपेक्षा

* “भक्त—पालक, श्रीकृष्ण—पाल्य, भक्त—अनुग्राहक, भगवान्—अनुग्राह्य।”—इस प्रकारके भावसे पूर्ण।

भी उत्कृष्ट साध्यके विषयमें पूछा, तब श्रीरामरायने “स्वसुख-तात्पर्यसे वर्जित सर्वांग द्वारा सर्वतोभावेन नि सकोच श्रीकृष्णका सुखानुसन्धानपरक ‘कान्त-भाव’ ही प्रेमकी पराकाष्ठा है।”—यह बताया। तात्पर्य यह है कि कान्तभावकी तुलनामें साधारण प्रेममें ममताका अभाव, दास्यरसमें विश्रम्भ या विश्वासका अभाव, सख्यरसमें स्नेहाधिक्यका अभाव तथा वात्सल्यरसमें नि सकोचभावका अभाव पाया जाता है। ‘साध्यप्रेम’की परिपूर्णता तो एकमात्र ‘कान्तभाव’में ही है। ये सारे रस ही ‘अप्राकृत’ हैं। इसलिये इनमें से किसीमें भी जागतिक अपूर्णता या अभाव नहीं है, इन रसोंके भक्तोंके लिये सभी परिपूर्ण और सर्वोत्तम हैं, तथापि निरपेक्ष होकर विचार करनेसे अप्राकृत राज्यमें इस प्रकारकी चमत्कारिताका तारतम्य दिखायी देता है। कान्तप्रेममें—शान्तकी कृष्णनिष्ठा, दास्यकी कृष्णनिष्ठा और ममतामयी सेवा, सख्यकी कृष्णनिष्ठा, सेवा और असकोच, वात्सल्यकी कृष्णनिष्ठा, सेवा, असकोच और स्नेहाधिक्य आदि अधिक रूपमें हैं, इनके अतिरिक्त कान्तप्रेममें निज सर्वांग द्वारा सेवारूप गुण अधिक देखा जाता है। गोपियोका श्रीकृष्णप्रेम ही ‘साध्यकी अवधि’ है। गोपियोकी मधुररसकी सेवामें श्रीकृष्ण अपनेको ‘ऋणी’ समझते हैं। इसके बाद भी श्रीमन्महा-प्रभुने श्रीरामरायसे और भी श्रेष्ठ साध्यकी बात पूछी तब उन्होंने ‘श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम’ ही ‘साध्य-शिरोमणि’ अर्थात् परम प्रयोजनमें भी ‘चरम’ है, यह निर्देश किया।

इस जगत्में जो रस हमको जितना ही हेय अनुभव होता है, गोलोकमें वह रस उतना ही ‘उपादेय’ है, क्योंकि यह जगत् गोलोकका विकृत प्रतिबिम्ब है—बिल्कुल ही विपरीत है। जिस प्रकार जब दर्पणमें हम अपनी मूर्ति देखते हैं तब अपने दाहिने हाथको बायाँ हाथ और बायें हाथको दाहिना हाथ इस प्रकार विपरीत ही देखा करते हैं। इस अनित्य जगत्के दर्पणमें प्रतिफलित होनेसे गोलोकके रसोंकी इस प्रकार विकृत छाया दीख पड़ती है।

श्रीरामानन्दरायने क्रमशः श्रीकृष्णके स्वरूप, श्रीराधाके स्वरूप, रसतत्त्वके स्वरूप और प्रेमतत्त्वका वर्णन किया। श्रीमन्महाप्रभुके जिज्ञासाके अनुसार श्रीरामानन्दरायने विप्रलम्भ-रसके 'प्रेमविलास-विवर्तरूप'* 'अधिरूढ-महाभाव'मय निजकृत एक गीत सुनाया,—

पहिलेहि राग नयनभगे भेल ।

अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल ॥

—चै० च० महाकाव्य १३।४६, चै० म० म० ८।१६३

[पहले ही नेत्र-भगी देखकर पूर्वराग जन्मा। वह दिन-प्रति-दिन बढ़ता गया एव अनुरागकी शेष सीमा अनन्त विस्तृत हो गई, अर्थात् उसका पार नहीं मिला।]

अन्तमें श्रीरामरायने “उस श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेमसेवाकी प्राप्तिका उपाय—एकमात्र ब्रजसखियोंका आनुगत्य”, बतलाया। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर प्रेम—इनमें प्रत्येक प्रेम-सेवामें ही उस प्रेमके मूल सेवकोका अनुगत होना पड़ेगा। जैसे, किन्हींके शान्तरस स्वभावसिद्ध है, तो उनको ब्रजकी गायें, वेत्र, विषाण, वेणु, यमुना

* जो लोग महत्की कृपासे इस जगत्के चिन्तास्रोतके अतीत राज्यमें पहुँच गये हैं, तथा जिनके हृदय निरन्तर निष्कपट कृष्ण-सेवाकी लालसा से विभावित हैं, वे ही लोग श्रीराधाके प्रेममें जो परम विचित्रता हैं, उसे उपलब्ध कर सकते हैं। श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु' तथा 'श्रीउज्ज्वल-नीलमणि' प्रभृति ग्रन्थोंमें इन सब सुदुर्लभ तत्त्वोंको परममुक्त व्यक्तियोंके अनुभवके लिये व्यक्त किया है। इन सब बातोंको सब लोग अर्थात् महत्कृपासे वचित पड़ित, साहित्यिक, धार्मिक-सम्प्रदायादि कोई नहीं समझ सकेंगे, अतः इन सब शब्दोंकी व्याख्या यहाँ निष्प्रयोजन है। महत्की कृपासे भजनके उन्नततम सोपान पर अधिष्ठित हुए बिना इन सारी बातोंका विकृत तात्पर्य जीवको अपराधी कर डालता है। इसीलिये बहुतेरे मनीषी और साहित्यिक इस 'प्रेमविलास-विवर्त'की व्याख्या समझनेमें समर्थ नहीं हो सके। भगवद्भजन और साधारण साहित्य-सेवा या साधारण धर्मानुष्ठान—बिल्कुल ही पृथक् व्यापार है।

आदि शान्तरसके मूल सेवकोके अनुगत होकर श्रीकृष्णकी सेवा करनी होगी दास्य रसके रसिकोको रक्तक, पत्रक और चित्रकके अनुगत होकर, सख्यरसके रसिकोको सुदाम, श्रीदाम, स्तोककृष्णके अनुगत होकर, वात्सल्यरसके रसिकोको श्रीनन्द-यशोदाके अनुगत होकर, तथा कान्तरसके रसिकोको ब्रजगोपियोका अनुगत होकर श्रीकृष्णकी सेवा करनी होगी।

जीव अपनेको 'भगवान्' कल्पना कर बैठे, तो जिस प्रकार भयानक अपराध होता है, उसी प्रकार अपनेको भगवान्का 'मूल सेवक'—जैसे, श्रीमती, श्रीनन्द, श्रीयशोदा आदि रूपमें कल्पना कर लेनेपर उससे भी अधिक अपराध होता है। इसीको 'अहंभ्रहोपासना' कहते हैं। वास्तविक वैष्णव-धर्ममें अथवा श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षामें किसी प्रकारकी कल्पना या आरोपकी बात नहीं है। परममुक्त सुनिर्मल चेतनकीवृत्तिमें जिसका जो स्वभाव या सिद्धरस है, वही महत्की कृपा-सगके फलस्वरूप स्वयं प्रकाशित होता है।

श्रीमन्महाप्रभुने अपनी ही बात श्रीरामरायके मुखसे प्रकट करायी। उन्होंने कई प्रश्नोके वहाने ओर भी अनेको अमूल्य उपदेशोको जगत्में प्रकट किया है—नीचे उनका उल्लेख किया जाता है। ये कुछ बातें श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाके सार हैं।

प्रभु कहे,—“कोन् विद्या विद्या-मध्ये सार?”

राय कहे,—“कृष्णभक्ति बिना विद्या नाहि आर ॥”

“कीर्तिगण-मध्ये जीवेर कोन् बड कीर्ति?”

“कृष्णभक्त बलिया याँहार हय ख्याति ॥”

“दुःख-मध्ये कोन् दुःख हय गुहतर?”

“कृष्णभक्त-विरह बिना दुःख नाहि देखि पर ॥”

“मुक्तमध्ये कोन् जीव मुक्त करि' मानि?”

“कृष्णप्रेम याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि ॥”

“श्रेयोमध्ये कोन् श्रेय जीवेर ह्य सार ?”

“कृष्णभक्त-संग बिना श्रेय नाहि आर ।।”

“मुक्ति-भुक्ति वाछे येइ, काँहा दुँहार गति ?”

“स्थावरदेह, देवदेह येछे अवस्थिति ।।”

—चै० च० म० ८ म० प०

[प्रभुने कहा,—“विद्याओमे कौन विद्या सार है ?”

रायने कहा—“कृष्णभक्तिके अतिरिक्त और विद्या ही नहीं है ।”

“कीर्तियोमे जीवकी बड़ी कीर्ति कौन है ?”

“जिनकी ‘कृष्णभक्त’के नाममे ख्याति होती है ।”

“दुखोमें गुह्वर दु ख कोन है ?”

“कृष्णभक्तके विरह-दु खके अतिरिक्त और दूसरा दु ख देखनेमें नहीं आता ।”

“मुक्तोमे किस जीवको मुक्त माने ?”

“जिनके कृष्णप्रेम है वही मुक्त-शिरोमणि है ।”

“श्रेयोमें कौन श्रेय जीवनके लिये सार है ?”

“कृष्णभक्तके सगके अतिरिक्त और श्रेय नहीं है ।”

“जो मुक्ति भुक्ति चाहते हैं, उन दोनोकी कहाँ गति होती है ?”

“स्थावर देह और देवदेहकी भाँति स्थिति होती है ।”]



तिरपनवाँ परिच्छेद दाक्षिणात्यके विभिन्न तीर्थोंमें *

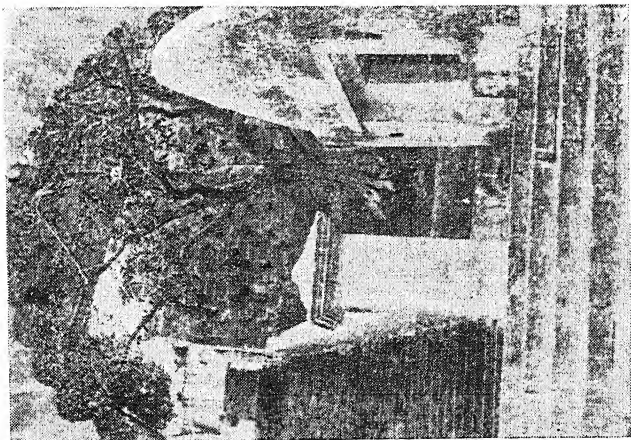
कुछ दिन प्रति रात्रि नाना प्रकारसे श्रीकृष्ण-कथा-सम्बन्धी वार्तालापके बाद श्रीगौरसुन्दरने श्रीरामानन्द रायको अपना श्याम और गौर रूप (रसरज-महाभाव-रूप) दिखलाया। श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्द रायको अपना राज-काज छोड़कर श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जानेकी आज्ञा दी और स्वयं दक्षिणकी ओर यात्रा की।

श्रीमन्महाप्रभु 'विद्यानगर' से क्रमशः 'गौतमी गंगा', 'मल्लिका-जुन', 'अहोबल-नृसिंह', 'सिद्धवट', 'स्कन्दक्षेत्र', 'त्रिमठ', 'वृद्ध-काशी', 'बौद्ध-स्थान', 'तिरुपति', 'त्रिमल्ल', 'पाना-नृसिंह', 'शिव-काची', 'विष्णु काची', 'त्रिकालहस्ती', † 'वृद्धकोल', 'शियाली-भैरवी', ‡ 'कावेरी', 'कुम्भकर्णकपाल' होते हुए 'श्रीरङ्गक्षेत्र'में पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे दाक्षिणात्यवासी कर्मी, ज्ञानी, रामोपासक, 'तत्त्व-वादी', लक्ष्मीनारायणके उपासक 'रामानुजीय' वैष्णवोंकी भी कृष्ण-भजनमें रति हो गयी। बौद्धस्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने बौद्धाचार्य पंडित के समस्त कुतर्कोंका खंडन किया। इससे बौद्धाचार्यने षड्यन्त्र करके श्रीमन्महाप्रभुको महाप्रसादके नामसे मत्स्य-मास मिला हुआ अन्न प्रदान

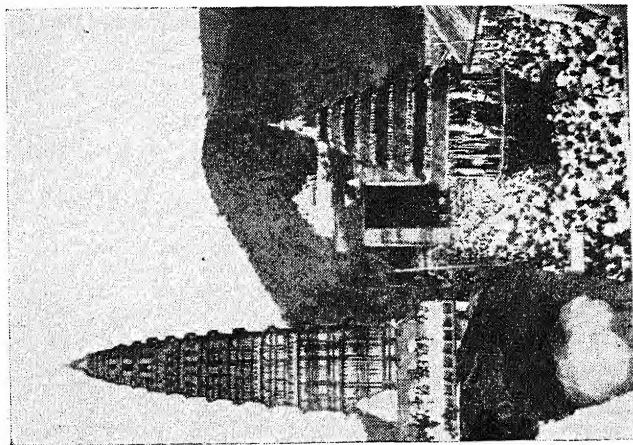
*ग्रन्थकार-रचित 'श्रीगौर-पदांकित दक्षिणापथ-तीर्थ' ग्रन्थमें विस्तृत सचित्र विवरण लिपिबद्ध है।

†दक्षिण भारतके रेलपथमें गुडूर-काटपाडी शाखा लाइनमें 'काल-हस्ती' स्टेशनसे लगभग दो मील दूरपर सुवर्णमुखरी नदीके किनारे यह शिवक्षेत्र विराजमान है। इसका वर्तमान नाम है—श्रीकालहस्ती।

‡मद्रास-भिल्लपुरम्-मायाभरम्-मदुरा लाइन पर मद्राससे १६२ मील दक्षिण 'शियाली' रेलवे स्टेशनसे लगभग एक मील दूरपर प्रसिद्ध आकाश-भैरव एव श्रीकालीका मन्दिर है। इसलिए इस स्थान पर प्रचलित भाषामें शियाली, श्रीकाली या शिरकाली तथा भैरवक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध है।



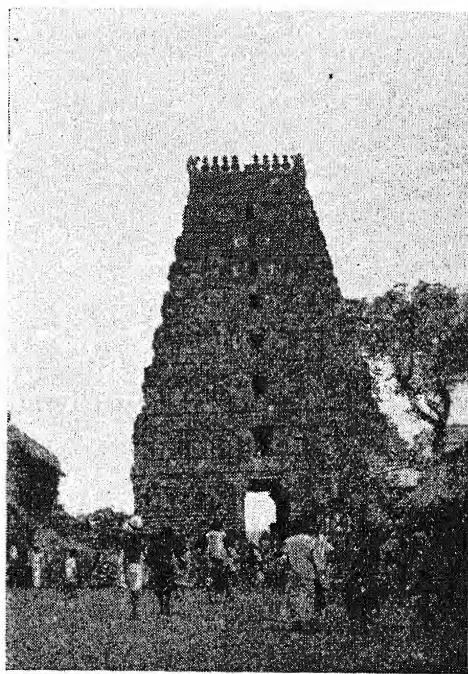
मंगलगिरिमें श्रीचैतन्यपादपीठ



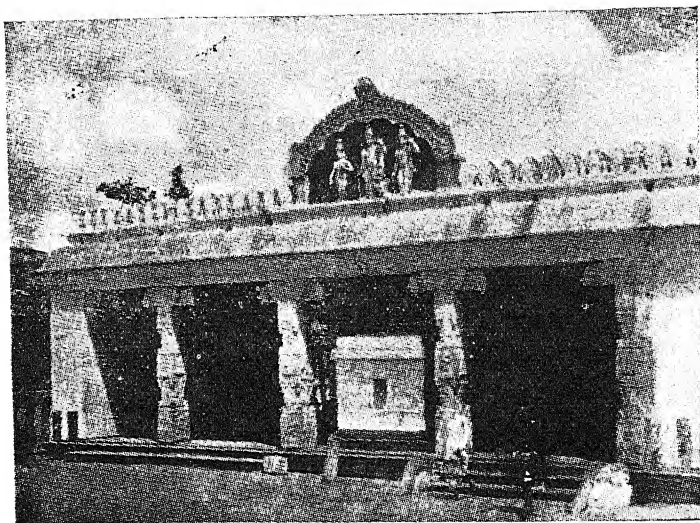
मंगलगिरिके पर्वतकी गोदमें 'श्रीपातानसिंह' मंदिर

करनेके लिये आनेपर रास्तामें अचानक एक बड़ा पक्षी आया और उस अस्पृश्य खाद्यपूर्ण थालीको ले उड़ा। वह थाल बौद्धाचार्यके ऊपर गिरा और उनका मस्तक फट गया, वे मूर्छित हो गए। बौद्ध लोग अपने गुरुकी इस दशाको देखकर महाप्रभुके शरणापन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने महाप्रभुके आदेशसे श्रीकृष्णसंकीर्तन करके गुरुके साथ वैष्णवताको प्राप्त किया। बौद्धाचार्यने श्रीमहाप्रभुको कृष्ण समझकर स्तुति की। श्रीमन् महाप्रभुने शैवोंको भी भागवतधर्ममें दीक्षित किया।

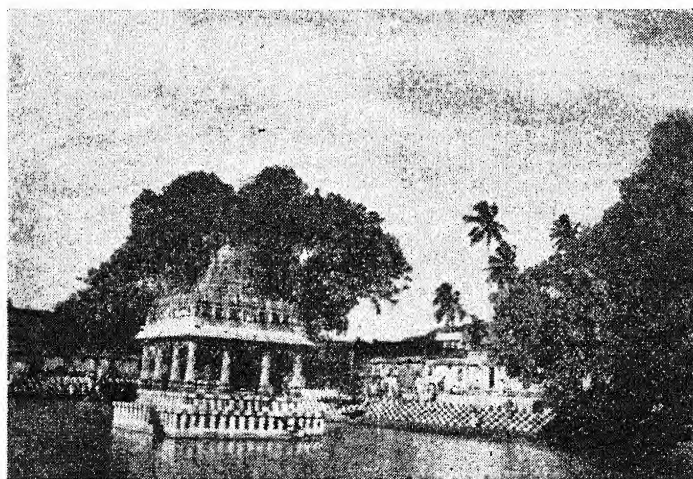
श्रीमन्महाप्रभु 'कावेरी'के किनारे 'श्रीरंगक्षेत्र'में पहुँचे और वहाँ



श्रीकालहस्ती या त्रिकालहस्तीमें शिवमंदिर



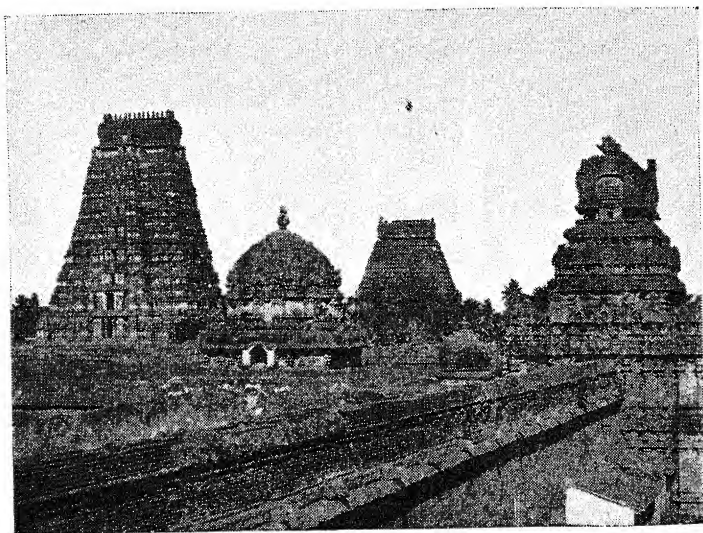
कोदण्ड रामस्वामीका श्रीमंदिर, तिरुपति (त्रिपदी)



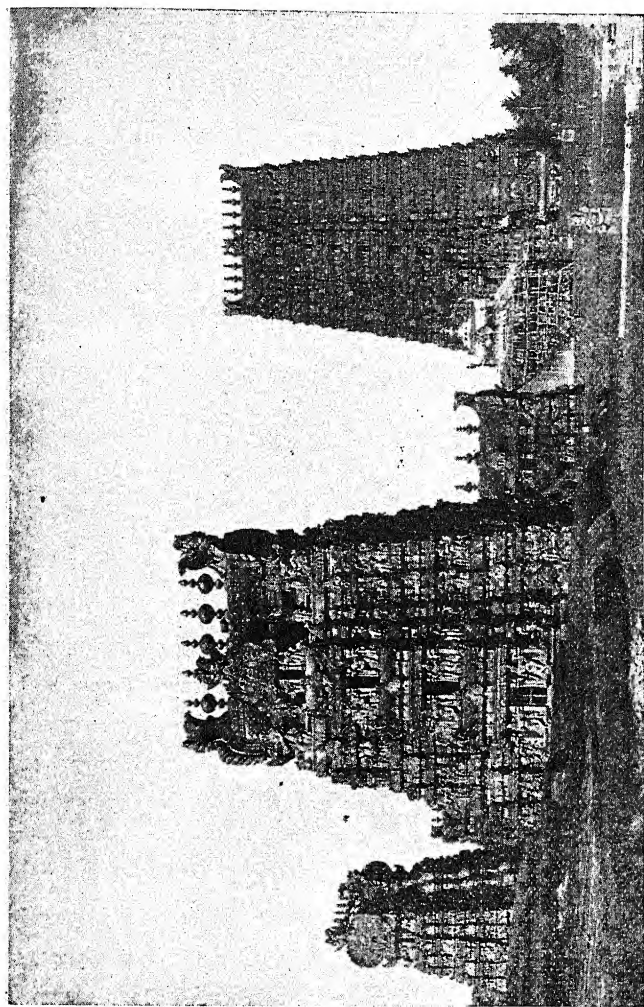
तिरुमलय पर्वतके ऊपर सुप्राचीन स्वामी (श्रीवेंकटेश्वर) तालाब

किसी एक आन्ध्रदेशीय श्रीरामानुजीय वैष्णव श्रीव्यंकटभट्टके घरमें चार मास तक रहकर श्रीलक्ष्मीनारायण-उपासक श्रीव्यंकटभट्टको सपरिवार 'श्रीकृष्णभक्त' बनाया ।

'श्रीरंगम्' से 'ऋषभ-पर्वत' पहुँचनेपर श्रीमन्महाप्रभु का श्रीपरमानन्द पुरीपादसे साक्षात्कार हुआ । वहाँसे श्रीमन्महाप्रभु 'सेतुबन्ध' का लक्ष्य करके चले । 'दक्षिण मथुरा' (मदुरा) में एक रामभक्त ब्राह्मण जगन्माता श्रीसीतादेवीको रावणके द्वारा हरण कर लिए जानेके कारण, चिंतित हो, बहुत ही दुःख पूर्वक दिन काट रहे थे । महाप्रभुने उस ब्राह्मणसे कहा,—“अप्राकृत वैकुण्ठेश्वरी श्रीसीता-देवीको रावणका स्पर्श करना तो दूर रहा, वह आँखसे उन्हें देख भी नहीं पाया था । हाँ, 'श्रीरामायण' में जो सीताहरणकी बात लिखी

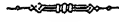


श्रीरंगक्षेत्रका श्रीमंदिर और गोपुरम्



दक्षिण मथुरा (मद्रुरा)

है, वह मायाकी सीताके हरणकी कथा मात्र है। रावणने तो श्रीसीता की छायाको 'सच्ची सीता' समझ लिया था।" श्रीमहाप्रभुने कुछ दिनोंके बाद अपने इस सिद्धान्तके प्रमाण-स्वरूप 'कूर्म-पुराण'का एक श्लोक लाकर उस रामभक्त ब्राह्मणको शान्त किया था।



चौवनवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेव और भट्टथारि

श्रीमन्महाप्रभु पाण्ड्य-देशमें 'ताम्रपर्णी' नदीके तीरपर, 'श्रीनव-तिरुपति' 'नौत्रिपदी', 'चियडतला'-तीर्थमें, श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'तिल-काची'में श्रीशिव, 'गजेन्द्रमोक्षण'में श्रीविष्णु, 'पानागडी' तीर्थमें श्री सीतापति, 'चाम्तापुर'में श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'श्रीवैकुण्ठ'में श्रीविष्णु, 'कुमारिका'में श्रीअगस्त्य, तथा 'अम्लीतला'में श्रीरामचन्द्रके दर्शन करके मालावार प्रदेशमें पहुँचे। वहाँ 'भट्टथारि' नामके एक वर्गके लोग रहते थे। ये लोग नेम्बुद्री ब्राह्मणोंके पुरोहित थे, तथा मारण, उचाटन, वशीकरण आदि तान्त्रिक क्रियाओंमें पारदर्शिताके लिये प्रसिद्ध थे। वे अनेको स्त्रियोंको वशीभूतकर अपने पास रखते थे, तथा स्त्रियोंके प्रलोभनके द्वारा दूसरे लोगोंको भुलाकर अपने दलकी वृद्धि करते थे।

श्रीमन्महाप्रभुके साथ 'कृष्णदास' नामके जो सरल ब्राह्मण प्रभुके दण्ड-कमण्डलु आदिको वहन करनेके लिये गये थे, वे इस प्रकार भट्ट-थारि स्त्रियोंके प्रलोभनमें फँसकर बुद्धिभ्रष्ट हो गये। जब महाप्रभुने भट्टथारिके घर जाकर कृष्णदास विप्रको माँगा तो वे महाप्रभुको अस्त्र-

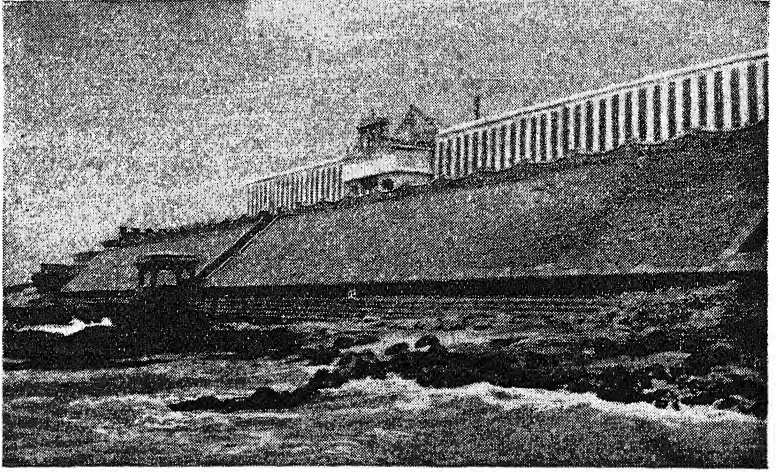
शस्त्र लेकर मारने को तैयार हो गये; परन्तु उनके चलाये हुए सारे अस्त्र लौटकर उन्हीं लोगोंके शरीरपर जा पड़े। इससे भट्टयारि लोग चारों ओर भाग गये। श्रीमहाप्रभु तब कृष्णदासको केश पकड़ कर बाहर निकाल लाये।

जीव अणु-चेतन है, अतएव उसे अणु-स्वाधीनता है। जब यह जीव उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करता है, तभी वह श्रीभगवान्‌की भक्तिके मार्गमें विचरण करता है; और जब स्वाधीनताका असद्व्यवहार करता है तभी नाना प्रकारकी अभक्तिके मार्गपर तथा असत्पथपर दौड़ लगाता है। साक्षात्‌रूपमें स्वयं भगवान्‌की सेवाका अभिनय करके



नौ त्रिपदीके अलवर तिरुनगरीमें प्रसिद्ध इमलीका वृक्ष;
इस वृक्षके कोटर में नम्मा अलवर प्रकटित हुए :

भी, उनके साथ-साथ रहकर (?) भी स्वतन्त्रताके अपव्यवहारके फल-स्वरूप जीवका किस प्रकार पतन हो सकता है, इसका दृष्टान्त श्रीमन् महाप्रभुने अपने सेवक कृष्णदासकी इस घटनाके द्वारा प्रदर्शित किया है।



कन्याकुमारी के मंदिर के पूर्वद्वार, भारतमहासागर, अरब सागर तथा बंगलागर इन तीनोंका संगम और कन्या तीर्थघाट



पचपनवाँ परिच्छेद

‘ब्रह्मसंहिताध्याय’-पुस्तक

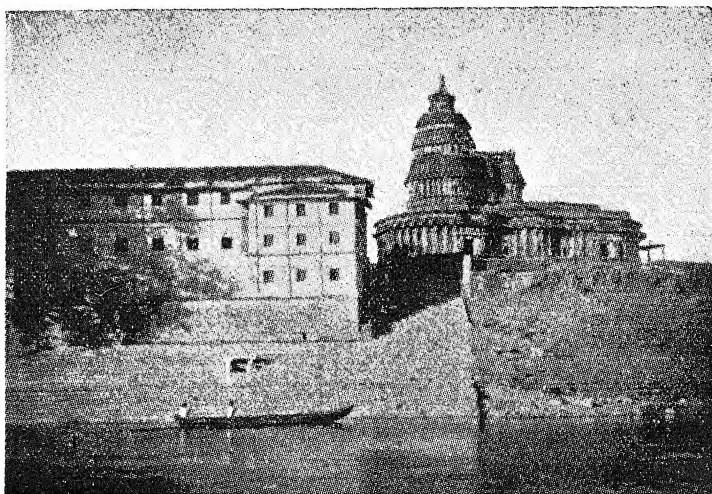
श्रीमन्महाप्रभु ने भट्टधारिके घरसे कृष्णदास ब्राह्मणका उद्धार करके उसी दिन त्रिवाकुर राज्यके अन्तर्गत पुण्यवती ‘पयस्विनी’ नदीके किनारे आकर वहाँ स्नान किया और ‘श्रीआदिकेशव’ मन्दिरमें* उपस्थित होकर श्रीकेशवजीके दर्शन किये। श्रीकेशवदेवके सामने बहुत दण्डवत् प्रणाम, स्तुति, नृत्य, गीत करके महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीगौरसुन्दरके अपूर्व प्रेमको देखकर स्थानीय सभी लोग परम चकित हो उठे। इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभुने कतिपय शुद्ध भक्तोंके साथ ‘ब्रह्मसंहिता’-ग्रन्थके पचमाध्यायका आविष्कार किया। इस ग्रन्थके प्राप्त होनेपर महाप्रभुके अगमें आठो सान्त्विक विकार प्रकट हो उठे, क्योंकि इस पुस्तकमें थोड़े ही अक्षरोंमें सारे वैष्णव-सिद्धान्त लिपिबद्ध हैं। अधिक क्या कहा जाय, यह ग्रन्थ समस्त वैष्णव-सिद्धान्तके शास्त्रोका सार-स्वरूप है।

श्रीमन्महाप्रभुने बहुत यत्न करके लिपिकारके द्वारा उस ग्रन्थकी नकल करवा ली। यह ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु और वैष्णवजगत्का परम प्रिय और प्रामाणिक ग्रन्थ है, ऐसा समझकर श्रीगौडीय-वैष्णव आचार्यवर श्रीजीवगोस्वामिपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थकी टीका और वृत्ति रचना की है। कटक रेवेन्सा कालेजके भूतपूर्व परलोकगत अध्यापकवर श्रीनिशिकान्त सान्याल, एम०ए० भक्तिसुधाकर महाशयने सर्वप्रथम इस ग्रन्थका अंग्रेजीमें अनुवाद किया और श्रीगौडीय मठके द्वारा वह प्रकाशित हुआ।

* त्रिवेन्द्रम् से कन्याकुमारी जानेके रास्तेपर करीब बीचमें तिरुवत्ति २४॥ मील तथा वहाँसे दूसरी शाखा लाइनपर तिरुवट्टर चार मील है, अर्थात् त्रिवेन्द्रम् नगरसे पूर्व-दक्षिण दिशामें लगभग २८॥ मीलकी दूरी पर अवस्थित तिरुवट्टरम् ही श्रीआदिकेशवदेवका मन्दिर है।

इस ग्रन्थमें श्रीकृष्णके सर्वकारण-कारणत्व, श्रीकृष्णके धाम, माया, सृष्टितत्व, श्रीकृष्णके विभिन्न अवतारोंके तत्व, निर्विशेष ब्रह्मतत्व, देवी, शिव और हरिधामके स्वरूप, सूर्य, शक्ति, गणेश, रुद्र और विष्णुतत्त्वका तारतम्य, प्रेमभक्ति आदि विषयोंके सिद्धान्त भली भाँति वर्णित हैं ।

उसके बाद श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीग्रनन्तपद्मनाभ'के मन्दिरमें पहुँचे और वहाँ दो दिन रहनेके बाद श्रीजनार्दनदेवके* दर्शन करने गये । पयस्विनीके तीरपर जाकर 'शंकर-नारायण' और 'शृंगेरीमठ'के तत्कालीन शंकराचार्य (श्रीरामचन्द्र भारती?) के साथ साक्षात्कार हुआ । तत्पश्चात् 'मत्स्यतीर्थ' दर्शन करके 'तुंगभद्रा'में आकर स्नान किया ।



तुंगभद्रा नदीके किनारे शृंगेरी मठ तथा विद्याशंकरका समाधि-मंदिर

* त्रिवेन्द्रम् जानेके रास्तेमें 'वर्कला' स्टेशनसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरी पर श्रीजनार्दनदेवका मंदिर है ।

छप्पनवाँ परिच्छेद 'उडुपी'में श्रीकृष्णचैतन्य

दाक्षिणात्यमें 'सह्य' पर्वतके पश्चिममें कनाडा जिला है। दक्षिण-कनाडाका प्रधान नगर है—'मगलोर'। मगलोरसे ३७ मील उत्तर 'उडुपी'* है। इस स्थानका प्राचीनसंस्कृत नाम 'रजतपीठपुरम्' है। उडुपी क्षेत्रसे सात मील पूर्व-दक्षिणकोणमें 'पाप-नाशिनी' नदीके तटपर 'विमानगिरि' है। उससे एक मील पूर्वकी ओर 'श्रीपरशुराम' के द्वारा स्थापित 'धनुस्तीर्थ' है। उसके समीपके प्रदेशमें 'पाजका-क्षेत्र' अवस्थित है। इसी पाजकाक्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्य आविर्भूत हुए थे। आजकल यह गाँव जनशून्य है। परवर्ती समयका एक पत्थरका बना घर ही यहाँ श्रीमन्मध्वाचार्यके आविर्भाव-स्थानका निर्देश करता है।

उडुपी क्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्यके द्वारा सेवित 'श्रीनर्तक-गोपाल' की श्रीमूर्ति और उनके द्वारा प्रतिष्ठित 'अष्ट मठ' शोभा पा रहे हैं। श्रीमन्मध्वाचार्यने किसी एक व्यापारीकी नौकामें रखे हुए एक बड़े गोपी-चन्दनके खडके भीतरसे इस श्रीनर्तक-गोपालकी मूर्तिका आविष्कार किया था। श्रीमन्महाप्रभुने जब उडुपीमें पदार्पण किया था तब इन श्रीनर्तक-गोपालके सामने नृत्य और कीर्तन करते हुए वे प्रेमावेशमें मग्न हो गये थे।

श्रीमन्मध्वाचार्यका अनुसरण करनेवाला सम्प्रदाय मायावादका विरोधी होनेके कारण 'तत्त्ववादी'के नामसे पुकारा जाता है। श्रीश्री-जीवगोस्वामिपादने श्रीमन्मध्वाचार्यका 'तत्त्ववाद-गुरु'के नामसे उल्लेख किया है। 'तत्त्व' कहनेसे सविशेष श्रीपुरुषोत्तमका बोध होता है।

* दक्षिण-भारतीय प्रशस्त रेल-पथके अन्तिम स्टेशन मगलोरसे समुद्रतीरके मोटर बसके रास्ते उडुपी ३७ मील है तथा पार्वत्य मोटर-बसके रास्ते मगलोरसे कारकल नामके स्थानसे उडुपी ५७ मील है, इस रास्तेपर मोटरबस बदलना नहीं पड़ता।

मायावादिगण 'केवलाद्वैतवाद' को मानते हैं और तत्त्ववादिगण 'शुद्ध-द्वैतवाद' को ।

श्रीमन्महाप्रभुके समकालीन तत्त्ववादी लोगोंने महाप्रभुको बाह्य-रूपमें 'मायावादी संन्यासी' समझकर पहले-पहल उनको असंभाष्य समझा; परन्तु, पश्चात् महाप्रभुके अद्भुत सात्विक विकारोंको देखकर



श्रीकृष्णमंदिर, उडुपी

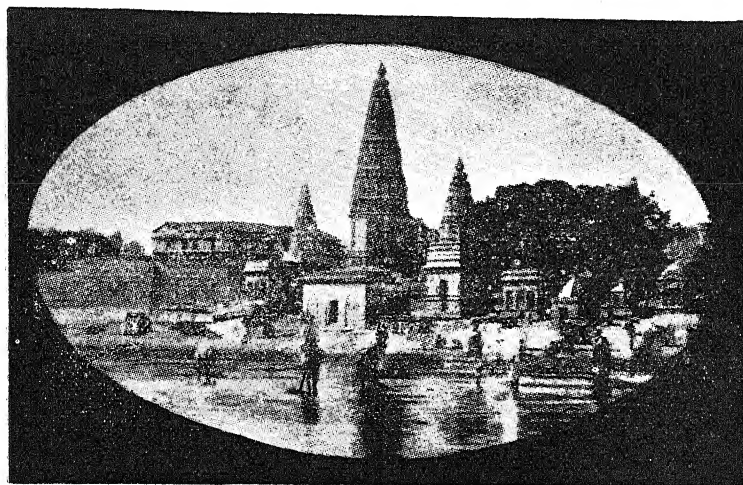


श्रीमन्मध्वाचार्य

उनको वैष्णव जानकर बहुत सत्कार किया। तत्त्ववादी लोगोके मनमें अपने 'वैष्णवपन'का अभिमान है, यह देखकर उनके अहंकारको कृपापूर्वक दूर करनेके लिये महाप्रभुने अत्यन्त दीनभावसे तत्त्ववादी आचार्यसे प्रश्न किया कि,—“साध्य और साधनमें कौन श्रेष्ठ है?” तत्त्ववादी आचार्य बोले,—“वर्णाश्रमधर्मका पालन करते हुए श्रीकृष्णके चरण-कमलोमें कर्मफल-समर्पण रूप कर्ममिश्रा भक्ति ही श्रेष्ठ साधन, तथा पंचविध मुक्ति प्राप्त करके वैकुण्ठमें जाना ही श्रेष्ठ साध्य है।” इसके उत्तरमें श्रीमद्भागवत और श्रीगीताके प्रमाणोका उल्लेख करते हुए श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—“वर्णाश्रमधर्मका परित्याग करके श्रीकृष्णके अनन्य शरणागत होकर नवधा भक्तिका अनुशीलन, विशेषतः ‘श्रवण-कीर्तन’ ही श्रेष्ठ साधन है और पंचम पुरुषार्थ ‘कृष्ण-प्रेम’ ही श्रेष्ठ साध्य है। सभी पारमार्थिक शास्त्र एक स्वरसे कर्मकी निन्दा करते हैं। कर्मके द्वारा कभी भी कृष्णमें प्रेमभक्ति प्राप्त नहीं होती। भगवद्भक्तगण पाँच प्रकारकी मुक्तिका परित्याग करते हैं और उनको नरक-तुल्य देखते हैं। कर्मी और ज्ञानी दोनों ही भक्तिविहीन हैं। परन्तु तत्त्ववादी सम्प्रदायका एक विशेष शुभ लक्षण यह है कि, वे लोग मायावादियोकी भ्रांति उपास्य वस्तुको निर्विशेष नहीं बतलाते। वे लोग, उपास्य वस्तुके सविशेषत्वको और चिद्विलासको स्वीकार करते हैं। यही उनकी आस्तिकताका लक्षण है।” श्रीमन्महाप्रभुका सिद्धान्त सुनकर तत्कालीन तत्त्ववादी गुरु स्तम्भित हो गये और अपने मतकी अपूर्णताको स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुए।

उडुपीसे श्रीमन्महाप्रभु ‘फल्लु-तीर्थ’ होकर त्रितकूपमें विशालाक्षी दर्शन, ‘पंचाप्सरा’ तीर्थमें शुभागमन, ‘गोकर्ण’में शिवदर्शन, ‘द्वैपायनी’ और ‘सूपारिक तीर्थ’में आगमन, ‘कोलापुर’में लक्ष्मी, भगवती, गणेश और पार्वतीके दर्शन करते हुए ‘भीमा’ नदीके तीर ‘पाढरपुर’ पहुँचे और वहाँ ‘श्रीविट्ठलदेव’के दर्शन किये। इस स्थानमें आकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य श्रीरगपुरीके पास अपने अग्रज

श्रीविश्वरूपके पाण्डरपुरमें अन्तर्धान होनेकी बात सुनी । वहाँ चार दिन ठहरकर ‘कृष्णवेण्वा’*नदीके तीर पहुँचे । वहाँसे श्रीमद्विल्व-मंगलके द्वारा रचित ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ ग्रन्थका संग्रह कर उसकी प्रतिलिपि करा ली; तत्पश्चात् कृपापूर्वक और भी अनेकों तीर्थोंका उद्धार करते हुए पुनः ‘विद्यानगर’में आ गये । वहाँ श्रीरामानन्द राय से साक्षात्कार कर उनसे समस्त तीर्थोंका वर्णन कर उनको ‘श्रीब्रह्म-संहिता’ और ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ दो ग्रन्थ प्रदान किये, तदनन्तर श्री-मन्महाप्रभु ‘आलालनाथ’ होते हुए पुरी लौट आये ।



भीमानदी या भीमरथीके किनारे भक्त श्रीपुण्डरीका मंदिर,



*इस नदीके तटपर ही श्रीविल्वमंगल ठाकुर रहते थे । ‘वेण्वा’के बदलेमें कोई इसको ‘वीणा’, कोई ‘वेणी’, ‘सिना’ और ‘भीमा’ कहते हैं ।

सत्तावनवाँ परिच्छेद पुरीमें लौटना और भक्तोंके संग रहना

दक्षिण-देशमें लौटकर महाप्रभु पुरीमें श्रीकाशीमिश्रके घर ठहरे । श्रीशार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुके साथ श्रीक्षेत्रके निवासी वैष्णवोंका परिचय करा दिया । सेवक श्रीकृष्णदास विप्र श्रीनवद्वीप भेज दिये गये । श्रीकृष्णदासके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीक्षेत्र लौट-आनेका समाचार सुनकर गौडीय भक्तगण पुरी जानकी तैयारी करने लगे । श्री परमानन्द पुरी नवद्वीप होकर श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य द्विज श्रीकमलाकान्त को साथ लेकर पुरीमें आये । नवद्वीपवासी 'श्रीमत् पुरुषोत्तम भट्टाचार्य'ने काशीमें 'श्रीचैतन्यानन्द भारती' नामक गुरुसे सन्यास-ग्रहणकी लीला अवश्य दिखलायी, परन्तु वे योगपट्ट* ग्रहण न करके 'स्वरूप' नामसे परिचित हुए और पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोंमें आकर उपस्थित हुए । श्रीईश्वरपुरीके शिष्य श्रीगोविन्द भी श्रीपुरी गेस्वामीके अन्तर्धान होनेपर उनके आदेशानुसार श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उनकी सेवामें लग गये ।

अपने सन्यास गुरु श्रीकेशव भारतीके शिष्य होनेके कारण 'श्री-ब्रह्मानन्द भारती'को श्रीमन्महाप्रभु गुरुकी तरह सम्मान करते थे ।† एक दिन श्रीमुकुन्द श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि, उनका दर्शन करनेके लिये श्रीब्रह्मानन्द भारती आये हैं । इसके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले,—“वे मेरे गुरु हैं, मैं ही उनके पास आ रहा हूँ । गुरुदेवके पास ही शिष्यको जाना चाहिए ।” भारतीके पास आकर महाप्रभुने देखा कि श्रीब्रह्मानन्द मृगचर्म पहने हुए हैं । भगवद्भवत या वैष्णव सन्यासी

* सन्यासीके लिये धारण करने योग्य वस्त्र विशेष । सन्यासके योगपट्टकी प्राप्ति हो जानेपर नैष्ठिक ब्रह्मचारीके 'स्वरूप' नामके बदले सन्यास नाम 'तीर्थ' होता है ।

† श्रीचैतन्य-चरितामृतमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकृत 'अमृत-प्रवाह-भाष्य' (आदि ६।१३-१४) द्रष्टव्य ।

के लिये कभी भी मृगचर्म पहनना उचित नहीं, यह जानते हुए भी गुरुस्थानीय पुरुषका शासन करना मर्यादाकी हानि करनेवाला समझकर, महाप्रभुने भारतीको सामने देखते हुए भी कहा,—“भारती गोसाईं कहाँ है ?” जब मुकुन्दने श्रीमहाप्रभुको बतलाया कि भारती गोसाईं श्रीमन्महाप्रभुके सामने ही तो उपस्थित है, तब श्रीमहाप्रभु बोले,—“तुम भूल करते हो, ये भारती गोसाईं नहीं हैं, भारती गोसाईं मृगचर्म क्यों पहनेंगे ?” तब ब्रह्मानन्द भारती श्रीमन्महाप्रभुका कौशल-पूर्ण उपदेश समझ गये एवं मन-ही-मन विचारने लगे, सचमुच ही चर्माम्बर पहनना केवल दाम्भिकताका परिचय मात्र है, इससे ससारसे उद्धार नहीं हुआ जा सकता ।

श्रीभारती गोस्वामीने उसी दिनसे मृगचर्म न पहननेकी प्रतिज्ञा की । श्रीमहाप्रभुने भी नवीन बाह्य वस्त्र मँगवाकर श्रीब्रह्मानन्दको पहननेके लिये दिया ।

श्रीभारती गोस्वामी बोले,—‘मैंने आजन्म निराकारका ध्यान किया है, परन्तु तुम्हारे दर्शनसे आज मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हो गयी । कृष्ण-प्रेम ही परम पुरुषार्थ है ।’

—

अट्टावनवाँ परिच्छेद

श्रीमन्महाप्रभु और श्रीप्रतापरुद्र

महाराज श्रीप्रतापरुद्रका श्रीमन्महाप्रभुके साथ साक्षात्कार करा देनेके लिये श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य विशेष आग्रहयुक्त हो गये और इसके लिये उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें निवेदन किया । लोकशिक्षक श्रीगौरसुन्दरने, ‘सन्यासीके लिये विषयीका दर्शन करना निषिद्ध है’—

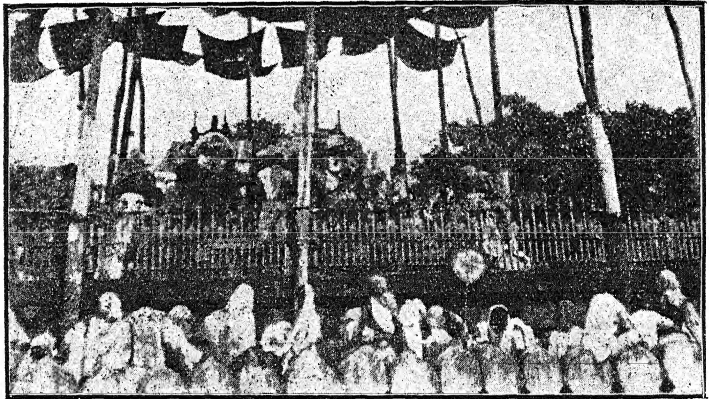
यह कहकर भट्टाचार्यके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया । श्रीमहाप्रभु बोले,—

निष्किंचनस्य भगवद्भूजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितांच
हा हन्त ! हन्त ! विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, ८।२४

[हाय ! भवसागरके उसपार जानेकी इच्छा रखनेवाले एवं भगवद्-भजनमें लगे हुए अकिंचनके लिये भोगबुद्धिसे विषयी पुरुषका और स्त्रीका दर्शन विष-भक्षणसे भी बढ़कर अमंगलकारी है ।]

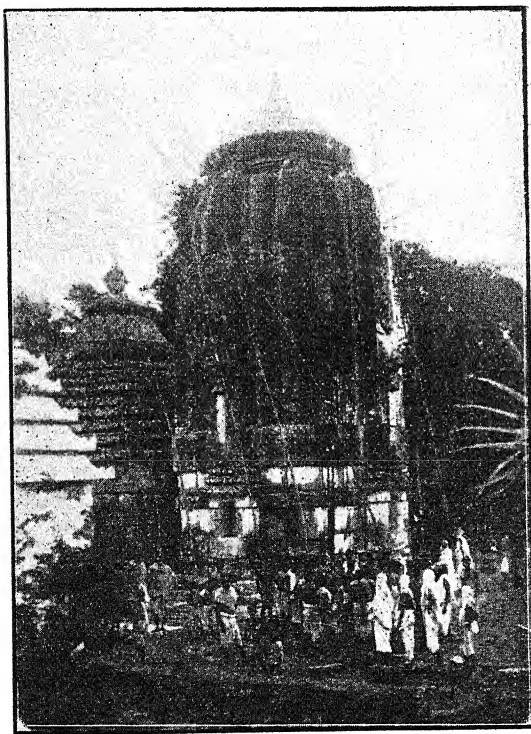
इधर श्रीरामानन्द राय राजकार्यसे अवसर लेकर पुरीमें श्रीमन्महाप्रभुके पास आ गये । श्रीरामानन्द श्रीचैतन्यदेवके चरणोंमें अनन्य-भावसे रहेंगे, यह जानकर श्रीप्रतापसुन्दर उनको कार्यसे छुट्टी देकर भी पूर्ववत् वेतन प्रदान करते रहे । जब श्रीरामानन्द रायने श्रीमहाप्रभुसे



श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्राका दृश्य

श्रीप्रतापरुद्रके वैष्णवोचित विविध गुणोंका कीर्तन किया तब राजाके प्रति महाप्रभुके चित्त-भावमें कुछ परिवर्तन हुआ ।

श्रीजगन्नाथदेवकी 'स्नान-यात्रा'के बाद उनके 'नवयौवनोत्सव'के पूर्व दिन तक एक पखवाड़े उनके दर्शन नहीं होते, इस समयको 'अनवसर-काल' कहा जाता है । इस समय श्रीजगन्नाथके दर्शन न पाकर श्रीमहा-प्रभु गोपीभावसे कृष्णविरहमें 'आलालनाथ'चले गये और वहाँसे लौट-कर गौड़देशसे आये हुए श्रीमत् अद्वैत आदि भक्तोंसे मिले ।



श्रीआलालनाथका श्रीमंदिर

श्रीप्रतापरुद्रने गौडीय-भक्तोंके वास-स्थानकी तथा उनके महा-प्रसादकी व्यवस्था की। श्रीजगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरमें चार सम्प्रदायोंके विभागक्रमसे सन्ध्याकालमें महा-सकीर्तन आरम्भ हो गया। श्रीनित्यानन्द प्रभृति भक्तोंने श्रीगौरसुन्दरको उनके दर्शन-लाभके लिये श्रीप्रतापरुद्रके प्रबल आर्त्तभावकी बात बतलायी। अन्तमें राजाकी सान्त्वनाके लिये श्रीनित्यानन्द प्रभुने राजाको श्रीमन्महाप्रभुका व्यवहार किया हुआ एक बाह्य वस्त्र प्रदान किया। पश्चात् श्रीरामानन्दके आग्रहसे श्रीमन्-महाप्रभुने श्रीप्रतापरुद्रके श्यामवर्ण किशोर-वयस्क पुत्रको वैष्णव समझकर आलिंगन किया। श्रीमन्महाप्रभुके स्पर्शसे राजकुमारको प्रेमावेश हो गया। उस पुत्रको स्पर्श करके प्रतापरुद्रको भी श्रीमन्महाप्रभुका कृपा-संग प्राप्त हुआ तथा मनमें अलौकिक प्रेमका उदय हुआ।

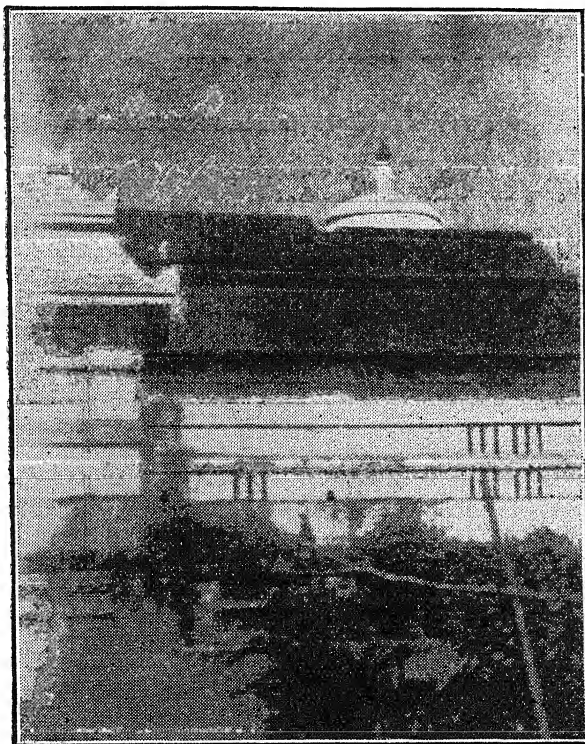


उनसठवाँ परिच्छेद श्रीगुण्डिचा-मन्दिरकी सफाई

श्रीजगन्नाथजीकी श्रीरथयात्राका समय आ गया। श्रीरथयात्राके पहले श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोंके साथ 'श्रीगुण्डिचा-मन्दिर'के परिष्कार की लीला प्रकट की† एव इस लीलाके द्वारा साधनराज्यके अनेको

† श्रीजगन्नाथदेव रथपर चढ़कर श्रीमन्दिरसे 'सुन्दराचल'-नामक स्थानमें 'गुण्डिचा' मन्दिरमें जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीक्षेत्रको— 'श्रीकुक्षेत्र' और श्रीसुन्दराचलको 'श्रीवृन्दावन' के रूपमें अनुभव किया था। रथयात्राको उत्कलवासी लोग 'गुण्डिचा-यात्रा' भी कहते हैं। इसी गुण्डिचा-मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजी आकर नवरात्र लीला या नौ दिनतक उत्सव करते हैं।

रहस्योंकी शिक्षा दी। श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“यदि कोई सौभाग्यवान् जीव श्रीकृष्णको अपने हृदय-सिंहासनपर बैठानेकी इच्छा करे तो सबसे पहले उसको अपने हृदयके मलको साफ करनाअवश्यक है। बहुत दिनोंके संचित नाना प्रकारके भोग और त्यागकी अभिलाषा-रूप कूड़े-कर्कटको झाड़-बुहारकर तथा फेंककर श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानरूपी शीतल



श्रीगुण्डिचा मंदिर

जलसे हृदयको धोकर निर्मल, शान्त, मसृण और भक्तिसे उज्ज्वल बनाने पर श्रीजगन्नाथदेव वहाँ आकर आसन ग्रहण करते हैं।”

श्रीमन्दिरकी सफाई करते समय किसी गौडीय भक्तने श्रीमन्महा-प्रभुके श्रीचरणोपर जल डालकर उसे पान कर लिया, इस पर लोक-शिक्षक श्रीमहाप्रभुने गौडीयोके मूल महाजन श्रीस्वरूप-दामोदरके द्वारा उस गौडीयाको गुण्डिचाके आँगनसे बाहर निकलवा दिया। इसके द्वारा भी श्रीगौरसुन्दरने यह शिक्षा दी कि, श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जीवके लिये पैर पखारना या सेवा ग्रहण करना एक सेवापराध है।



साठवाँ परिच्छेद

श्रीरथयात्रा तथा श्रीप्रतापरुद्रके प्रति कृपा

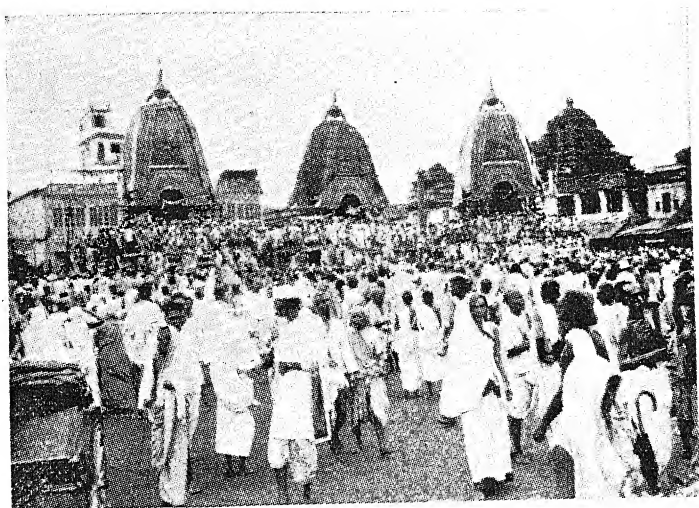
श्रीगौरसुन्दर भक्तगणके साथ श्रीजगन्नाथजीके श्रीरथारोहणके दर्शन कर रहे थे, उस समय महाराज श्रीप्रतापरुद्र एक सोनेके झाड़ू से रथके जानेके मार्गको साफ करके उसपर चन्दनका जल छिड़क रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी इस प्रकारकी अभिमानशून्य सेवा प्रवृत्तिको देखकर भीतर-ही-भीतर उनके प्रति विशेष प्रसन्न हुए।

श्रीमहाप्रभुने अलग-अलग सात कीर्तन-सम्प्रदाय बनाकर भक्तोंके साथ श्रीजगन्नाथके रथके सामने नृत्य किया तथा कीर्तनमें अलौकिक और अचिन्त्य ऐश्वर्य प्रकट किया। जब कीर्तन समाप्त करके श्रीमन्महाप्रभु ‘बलगण्डि’* उपवनमें विश्राम कर रहे थे, उस समय उनको अद्भुत प्रेमावेश हो गया। उसी समय श्रीप्रतापरुद्रने वैष्णव-वेषमें

*पुरीमें श्रद्धावालि और अर्द्धासिनीदेवीके स्थानके बीचमें जो भूमि है, उसे ‘बलगण्डि’ कहते हैं।

वहाँ अकेले उपस्थित होकर श्रीमन्महाप्रभुके पैर दबाते हुए श्रीमद्भागवतके 'गोपी-गीता'के एक श्लोकका पाठ करने लगे। राजाके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुने तत्कालोचित भागवतीय श्लोकका पाठ सुनकर प्रेमाविष्ट हो राजाका आर्लिगन किया। राजाकी वैष्णव-सेवामें निष्ठा देखकर महाप्रभुने राजाको विषयी न जानकर, वैष्णव-सेवक समझा और, उनके ऊपर कृपा की।

श्रीजगन्नाथजीके 'सुन्दराचल' विराजनेपर श्रीमन्महाप्रभुको श्री-वृन्दावन-लीलाकी स्फूर्ति हुई। नवरात्र-यात्रामें श्रीमन्महाप्रभुने 'श्री-जगन्नाथ-बल्लभोद्यान'में निवास किया। रथ-द्वितीयाके वादकी पंचमी तिथिको जो 'हेरा-पंचमी'-उत्सव होता है, उस उत्सवको देखकर श्रीमहाप्रभु, श्रीश्रीवास पण्डित और श्रीस्वरूपगोस्वामीके बीच श्रीलक्ष्मी और श्रीगोपियोंके स्वभावके सम्बन्धमें बहुत-सी रहस्यमयी बातें हुईं।



श्रीमंदिरके सम्मुख श्रीविग्रहाधिष्ठित रथत्रय

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवासके साथ रहस्यके बहाने श्रीलक्ष्मीनारायणकी उपासना, यहाँतक कि श्रीद्वारकानाथकी उपासनासे भी श्रीगोपीकान्त श्रीराधाकान्तकी उपासनाका श्रेष्ठत्व प्रदर्शन किया। 'पुनर्यात्रा' #के समय कीर्तनादि हुए, परन्तु सुन्दराचलसे लौटनेके समय श्रीमन्महाप्रभु और उनके भक्तगण श्रीजगन्नाथके रथको खींचकर नीलाचल नहीं लाये। क्योंकि गोपियाँ अपने प्राणवन श्रीकृष्णको अन्य स्थानसे श्रीवृन्दावनमें ले आती हैं, परन्तु अपने घरसे अन्यत्र नहीं ले जाती।

इकसठवाँ परिच्छेद

गौड़ीय भक्तगण

श्रीरथयात्रा समाप्त होनेके बाद श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीगौरसुन्दरकी पुष्प-तुलसीके द्वारा पूजा की। श्रीगौरसुन्दरने भी पुष्प-पात्रमे बचे हुए पुष्प और तुलसीके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी 'योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते'† मन्त्रके द्वारा पूजा की। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्यने श्रीगौरसुन्दरको निमन्त्रण देकर भोजन कराया। श्रीनन्दोत्सवके दिन श्रीमहाप्रभुने प्रिय भक्तोंके साथ गोप-वेष धारण कर आनन्दोत्सव मनाया। 'विजया-दशमी'के दिन लका-विजयोत्सवमें श्रीमहाप्रभुने अपने भक्तोंकी वानर-सेना सजाकर स्वयं श्रीहनुमानके आवेशमें अत्यन्त आनन्द प्रकट किया। इसी प्रकार अन्यान्य यात्रा-महोत्सवोंके समाप्त होनेपर श्री-महाप्रभुने श्रीरामदास, श्रीदास-गदाधर प्रभृति कुछ पार्श्व वैष्णवोंको

* 'पुनर्यात्रा'—उल्टा रथ। इस समय 'सुन्दराचल'से श्रीजगन्नाथ-देव रथपर चढ़कर पुन 'नीलाचल' लौट आते हैं।

† तुम जो हो, सो हो, मैं तुमको ही नमस्कार करता हूँ।

साय देकर श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैताचार्यको आचण्डाल सब लोगोमें निबाधि प्रेम भक्ति का वितरण करनेके लिये गोडदेशको भेजा। पश्चात् अनेको दीनता-भरी उक्तियोंके साथ श्रीश्रीवास पंडितके हाथ श्रीशची माताके लिये प्रसाद और वस्त्रादि भेजे। गौडीय भक्तोंके विविध गुणोंका बखान करते हुए श्रीमहाप्रभुने सबको विदा किया और श्रीसत्यराज खॉ और श्रीरामानन्द वसुको प्रति वर्ष रथके समय ‘पट्टडोरी’ लानेका आदेश किया।

बासठवाँ परिच्छेद

‘कुलीनग्राम’-वासियोंके परिग्रह

बगालमें आधुनिक बर्दवान जिलेके पूर्व-दक्षिण भागमें ‘कुलीन-ग्राम’* एक प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है। श्रीहरिदास ठाकुरने कुलीन-ग्राममें रहकर भजन किया था और उस ग्रामके प्रधान और प्रतिष्ठित वसुदशी लोगोके प्रति कृपा वितरण की थी। श्रीगौरसुन्दरके आविर्भावके पहलेसेही कुलीन-ग्राम निवासी श्रीसत्यराज खॉ प्रभृतिने श्रीहरिदास ठाकुरकी कृपासे उद्भासित होकर कुलीनग्राममें श्रीनाम-सकीर्तनकी बाढ बहा दी थी।

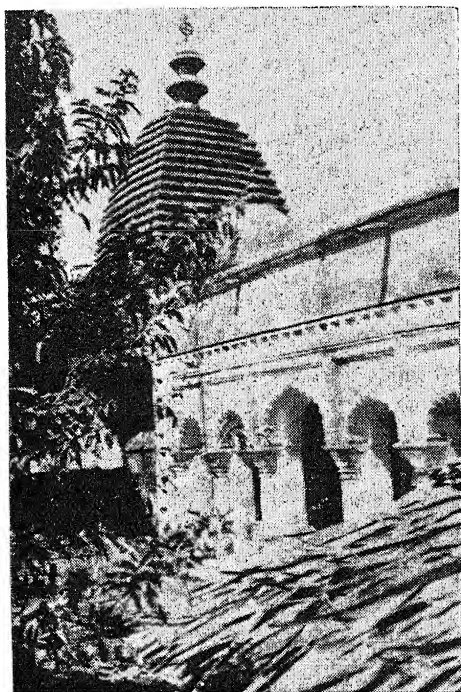
‘श्रीकृष्णविजय’ ग्रन्थके रचयिता कुलीनग्रामवासी श्रीमालाधर वसु (श्रीगुणराज खॉ) हैं, उनके द्वितीय पुत्र ‘हृदय-नन्दन’ श्रीलक्ष्मी-

*हवडा-बर्दवान कर्ड लाइनमें, हवडासे ४१ मील दूरपर जौग्राम नामका स्टेशन आता है। वहांसे पूर्वोत्तर कोणकी ओर लगभग तीन मीलपर कुलीन ग्राम है। ग्रंथकार रचित ‘कुलीनग्राम’ प्रबन्ध तथा ‘गौडमण्डल’ में सविस्तार आलोचना देखें।

नाथ वसु (श्रीसत्यराज खाँ) हुए; उनके पुत्रका नाम था श्रीरामानन्द वसु। श्रीश्रीगौरसुन्दर श्रीगुणराज खाँ और उनके वंशको, यहाँतक कि उनके गाँवके कुत्ते आदि पशुको भी अपना प्रिय समझकर उन्होंने अपने मुँहसे कहा है,—

“गुणराज खान् कैल ‘श्रीकृष्णविजय’ ।

ताहाँ एक वाक्य ताँर आछे प्रेममय ॥



श्रीसत्यराज खाँका प्रतिष्ठित श्रीमदनगोपाल देवका
श्रीमंदिर (कुलीनग्राम)

‘नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ ।’
 एइ वाक्ये बकाइनु तोंर वशेर हात ॥
 तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुक्कुर ।
 सेह मोर प्रिय, अन्यजन रहू दूर ॥”

—चै० च० म० १५।६६-१०१

[गुणराज खॉने ‘श्रीकृष्णविजय’की रचना की । उस ग्रथमें—
 ‘नन्द-नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ,’—उनका एक प्रेममय वाक्य है । इस
 वाक्यके कारण मैं उनके वशके हाथ बिक गया हूँ । तुम्हारी तो बात
 ही क्या है, तुम्हारे गाँवका कुत्ता भी मुझे प्यारा है, दूसरे लोगोकी तो
 बात ही छोड़ दो]

श्रीरथयात्राके बाद पुरीसे देशमें लौटते समय श्रीसत्यराज और श्री-
 रामानन्दने श्रीमहाप्रभुसे लगातार तीन वर्ष तक (प्रतिवर्ष) वैष्णव-
 गृहस्थके कर्तव्यके सबधमें कुछ प्रश्नोके द्वारा जानकारी प्राप्त की थी ।

प्रथम वर्ष श्रीमहाप्रभुने कहा,—

##“कृष्ण-सेवा, वैष्णव-सेवन ।

निरन्तर कर’ कृष्णनाम-संकीर्तन ॥”

—चै० च० म० १५।१०४

[कृष्णसेवा, वैष्णवसेवन और निरन्तर कृष्णनाम-संकीर्तन करो]

तब श्रीसत्यराज खॉने पूछा,—“हम वैष्णवको कैसे पहचानें ?
 वैष्णवके साधारण लक्षण क्या हैं ?” श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“जिनमें
 नामापराध नहीं है, नामाभास होता है उनको ही तुम ‘वैष्णव’ जानो ।
 नामाभासके फलस्वरूप समस्त पाप और अनर्थ नष्ट हो जाते हैं ;
 नामसे नवधा भक्ति पूर्णताको प्राप्त होकर प्रेम प्रकट हो जाता है ।”

पूर्व वर्षकी भाँति दूसरे वर्ष भी श्रीसत्यराज खॉ और श्रीरामा-
 नन्द वसुने फिर उसी प्रश्नको महाप्रभुसे पूछा । इस बार महाप्रभुने
 उन लोगोसे कहा,—

* * “वैष्णव-सेवा, नाम-सकीर्तन ।

दुइ कर', शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण ॥”

—चै० च० म० १६।७०

[वैष्णवसेवन तथा नाम-सकीर्तन दोनों करो । श्रीकृष्णके चरणोंको शीघ्र प्राप्त करोगे ।]

उन्होंने पुन जब वैष्णवके लक्षण पूछे तब महाप्रभुने इस बार पूर्वपिक्षा श्रेष्ठ वैष्णवका (वैष्णवतरका) लक्षण बतलाया,—

“कृष्णनाम निरन्तर योंहार बढने ।

सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज तोंहार चरणे ॥”

—चै० च० म० १६।७२

[जिसके मुखमें निरन्तर कृष्णका नाम रहता है, वह श्रेष्ठ वैष्णव है, उसके चरणोंका भजन करो ।]

तीसरे वर्ष पुरीमें जाकर श्रीसत्यराज खाँ प्रभृतिने श्रीमहाप्रभुसे वही एक प्रश्न पूछा । इस वर्ष श्रीमहाप्रभुने उत्तम वैष्णव (वैष्णवतम) अथवा महाभागवतका लक्षण बतलाया,—

“योंहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम ।

तोंहारे जानिओ तुमि 'वैष्णव-प्रधान' ॥”

—चै० च० म० १६।७४

[जिनके दर्शनसे मुखमें कृष्णनाम आ जाता है, उनको तुम 'वैष्णव प्रधान' समझो ।]

अर्थात् जिनके नामाभास होता है वे 'वैष्णव' हैं । जिनके मुखमें निरन्तर श्रीकृष्णनाम नृत्य करता है, वे 'वैष्णवतर' हैं और जिनके द्वारा कीर्तन किये हुए श्रीकृष्णनामको सुनकर दूसरे मनुष्यके मुखसे भी श्रीकृष्णनाम प्रकट हो जाता है, अर्थात् दूसरा भी श्रीभगवान्‌के सुखानुसन्धानमें रत हो जाता है, वे ही 'वैष्णवतम' या सर्वोत्तम वैष्णव हैं । इन तीनों प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा करना ही गृहस्थ-वैष्णवका कर्तव्य है ।

‘श्रीखंड’-वासी भक्तोंमें श्रीमुकुन्द, उनके पुत्र श्रीरघुनन्दन और मुकुन्दके कनिष्ठ भ्राता श्रीनरहरि सरकार—ये तीन प्रधान हैं। श्री-मन्महाप्रभुने श्रीमुकुन्दसे पूछा,—“रघुनन्दन तुम्हारा पुत्र है या पिता?” श्रीमुकुन्दने उत्तर दिया,—“जब श्रीरघुनन्दनके द्वारा ही मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हुई है तो श्रीरघुनन्दन ही मेरे पिता हैं और मैं उनका पुत्र हूँ।” इससे श्रीमुकुन्दने कृष्णभक्त श्रीरघुनन्दनमें पुत्र-वृद्धिका त्यागकर गृहवृद्धि करनेका आदर्श दिखलाया है। जो लोग परमार्थका आश्रय करते हैं उनका चरित्र इसी प्रकारका होता है ; देहके सम्बन्धसे वे लोक किसी व्यक्ति या विषयको नहीं देखते।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीखंडवासी वैष्णवोंकी सेवाका निर्देश करके, सार्वभौम और विद्यावाचस्पति—इन दोनों भाइयोंको दाह-ब्रह्म श्रीजगन्नाथ और जल-ब्रह्म श्रीगंगाकी सेवा करनेका आदेश देकर श्रीमुरारि गुप्तकी श्रीराम-निष्ठाका वर्णन किया।

श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त—ये दो भाई चटगाँवमें आविर्भूत हुए थे। श्रीरघुनाथदास-गोस्वामीके दीक्षागृह श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके कृपापात्र थे। वैष्णव-सेवामें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरका बहुत खर्च होना आदि देखकर श्रीमहाप्रभुने श्रीशिवानन्द सेनको उनका ‘सरखेल’* होकर खर्च सम्हालनेका आदेश दिया। श्रीमहाप्रभुसे श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने अत्यन्त कातर होकर निवेदन किया,—“प्रभो, जगत्के जीवोंके त्रिताप-दुःखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जीवोंके सारे पाप मेरे सिरपर डालकर मुझे नरकभोग करने दीजिये; और आप सब जीवोंके भव-रोगको दूर कर दीजिये।”

श्रीवासुदेवकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीमन्महाप्रभुका चित्त द्रवीभूत हो गया। श्रीमहाप्रभु बोले,— “श्रीकृष्ण भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

* सरखेल—तत्वावधायक अर्थात् देखरेख करनेवाला व्यवस्थापक

है। जब तुम्हारी यह शुभ इच्छा हुई है, तब श्रीकृष्ण अवश्य ही उसे पूर्ण करेगा। भक्तकी इच्छामात्रसे ही सारा ब्रह्माण्ड अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।”

श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरकी इस प्रार्थनामें कई सोचनेकी बातें हैं। पाश्चात्य देशमें ईसाई-भक्तोंका विश्वास है कि, महामति ‘यीशुख्रिष्ट’ ही जगत्के एकमात्र गुरु हैं, वे जीवोंके समस्त पापोंका बोझ अपने सिरपर लेनेके लिये तैयार होकर जगत्में आये थे। परन्तु, श्रीगौर-पार्षदोंमें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर, श्रीहरिदास ठाकुर प्रभृति परब्रह्म-दुखी महापुरुष लोगोंने जगत्के जीवोंको उनकी (ईसाकी) अपेक्षा अनन्त कोटि गुना अधिकतर उन्नत, उदार और सार्वजनीन प्रेमभावकी शिक्षा दी है। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके आदर्शमें एक ही साथ जडिय-स्वार्थत्यागरूप नि स्वार्थ, श्रीकृष्ण सेवा-दानरूप चिन्मय परार्थ और स्वार्थका अपूर्व सम्मेलन दीख पड़ता है। सब जीवोंके केवल पाप ही नहीं, सब प्रकारके पापोंकी अपेक्षा भी भीषणतर भवरोगके मूल कारण जो भगवद्विमुखता है, उसको भी अपने कन्धोपर लेकर श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर उनके भवरोगको मिटानेके लिये निष्कण्ट प्रार्थना करके जो अनिर्वचनीय सर्वोत्कृष्ट दयाका आदर्श प्रदर्शित किया है, वह समग्र विश्वके सर्वश्रेष्ठ कर्मवीर और ज्ञानवीरोंकी भी कल्पनासे अतीत है। प्रायश्चित्तादिके द्वारा पाप दूर होते हैं, परन्तु भगवद्विमुखताका बीज दूर नहीं होता। पाप—प्राकृत प्रतिबन्धक है, परन्तु अमराध—अप्राकृत वस्तुकी सेवामें प्रतिबन्धक होता है। स्व-स्वरूपकी उपलब्धिमें जो विघ्नस्वरूप है, वही अनर्थ है। भगवद्विमुखता ही मूल भवरोग है। अनादिकालसे ही जीव परतत्त्व (श्रीकृष्ण)के विषयमें ज्ञानहीन होकर मायाके कारागारमें ताप भोग रहा है। किसी दिन भी उसको श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ज्ञान नहीं था। महापुरुषकी कृपासे वह ज्ञानका अभाव दूर हो जाने पर फिर वह विमुखता-रोग आक्रमण नहीं करेगा। महान् उदार श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने जीवके उस भवरोग या अविद्याको सदाके

लिये दूर करके सब जीवोको श्रीकृष्णप्रेममे विभोर करनेके लिये स्वयं नरककी कामना की थी। इसलिये उनका आदर्श ही अतुलनीय और उच्चतम है ।



तिरसठवाँ परिच्छेद

‘अमोघ’-उद्धार

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी विशेष प्रार्थनासे उनके घर क्रमशः पाँच दिन भिक्षा स्वीकार की। भट्टाचार्यकी एक कन्याका नाम था—‘षष्ठी’। पुकारनेका नाम था—‘षाठी’। एक दिन ‘षाठी’ की माता अर्थात् श्रीभट्टाचार्यकी सहधर्मिणीने नाना प्रकारके उत्कृष्ट भोजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीमहाप्रभुके भोजनके समय षाठीका स्वामी ‘अमोघ’ श्रीमहाप्रभुके सामने विचित्र नैवेद्यको देखकर श्रीमहाप्रभुको भोगी सन्यासी बताकर उनकी निन्दा करने लगा। श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर श्रीभट्टाचार्य हाथमें लाठी लेकर दामादको मारनेके लिए तैयार हो गये, अमोघ भागा और भट्टाचार्य उसके पीछे दौड़े। षाठीकी माता श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर अपना सिर और छाती पीटने लगी, तथा ‘षाठी विधवा हो जाय’ कहकर बार-बार शाप देने लगी। अपनी कन्याके सासारिक सुख-भोगकी ओर देखते हुए भी उन्होंने श्रीमहाप्रभुकी निन्दा करनेवाले दामादको क्षमा नहीं किया। अन्तमें दोनोंने ही श्रीमहाप्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करके उनको अपने वासस्थानपर भेज दिया। इधर भट्टाचार्य घरके भीतर आकर अपनी सहधर्मिणीके सामने अत्यन्त खेद प्रकट

करते हुए बोले,—“श्रीमहाप्रभुके निन्दकके प्राण लेने अथवा अपने प्राण देनेपर ब्राह्मण-वधका पाप लगेगा। अतएव अबसे उस निन्दकका मुख न देखना या नाम न लेना ही श्रेय है। षाठीका पति ‘पतित’ हो गया है, अतएव षाठीको अपने पतिका परित्याग करनेके लिए कह दो। पतित स्वामीका त्याग करना ही उचित है।”

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नीकी यह आदर्श शिक्षा हम सभीके लिए अनुसरण करने योग्य है। जगत्में आत्मीयरूपसे परिचित अतिप्रिय स्नेहभाजनगण भी यदि भक्त और भगवान्से द्वेष करते हैं, तो वैसे तथाकथित आत्मीयोका भी दुःसग निर्मम होकर छोड़ दे और साधुसगमे दृढरूपसे लगा रहकर भगवान्की सेवा करे, यही कर्तव्य है।

दूसरे दिन प्रातःकाल अमोघको हैजेने आ दबाया। कृपामय श्रीगौरहरि यह सुनते ही भट्टाचार्यके घर आये तथा उनके प्रति कृपा-परवश होकर उन्होंने अमोघको तुरन्त ही रोगमुक्त करके श्रीकृष्ण-नाममें रुचि प्रदान की।



चौसठवाँ परिच्छेद

गौड़ीय-भक्तोंका पुनः नीलाचलमें आना

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा की, परन्तु श्रीरामानन्द राय और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन्महाप्रभुको नाना प्रकारसे भुलावेमें डालकर श्रीवृन्दावन जानेसे रोक लिया। श्रीभगवान् स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तोंके अधीन हैं।

तीसरे वर्ष यथा-समय श्रीअद्वैतादि गौड़ीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिए नीलाचल आये। श्रीशिवानन्द सेनने सबके मार्ग-

व्ययका प्रबन्ध किया। श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रतिवर्ष ही नीलाचल आकर श्रीमन्महाप्रभुकी एकमात्र अभिलाषा तथा उनके द्वारा दिए गए निर्देश श्रीनामप्रेम-प्रचारके समाचार सुनाते। अतः इस बार श्रीमहाप्रभुने श्रीनित्यानन्दसे कहा,—“तुम प्रतिवर्ष नीलाचल मत आना। गौड़देशमें रहकर मेरी इच्छा पूरी करना, क्योंकि मेरे अभीष्टरूप इस गुह्यतर सेवा-कार्यको करनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कोई योग्यपात्र नहीं है।”

इसका उत्तर देते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—“मैं देहमात्र हूँ, और उस देहमें तुम्हीं प्राण हो। देह और प्राण परस्पर अभिन्न हैं। देहकी अर्थात् मेरी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। तुम अपनी ही अचिन्त्य शक्तिसे समस्त कार्य सम्पन्न करते रहते हो।*

आज जो सब लोग कल्पनाके वशीभूत हो यह सोचते हैं कि श्रीनित्यानन्दके श्रीगौरसुन्दरसे अलग होकर गौड़-देशमें धर्म प्रचार करनेके कारण तथा श्रीचैतन्यदेवके भी नीलाचलमें रहने और गौड़देशके प्रचारका कोई सवाद न रखनेके कारण श्रीनित्यानन्दका प्रचारित मत श्रीचैतन्यके मतसे पथक् हो गया था, उनलोगोंकी ऐसी धारणा बिल्कुल निराधार और भ्रान्तिमूलक है, यह श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी उपर्युक्त बातोंसे ही प्रमाणित होती है।



पैसठवाँ परिच्छेद

श्रीमन्महाप्रभुका वृन्दावन जानेका संकल्प

इतने दिनो तक श्रीराय रामानन्द और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीचैतन्यदेवको श्रीवृन्दावन धाम नहीं जाने दिया। चौथे और पाँचवे वर्ष भी गौडीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन कर प्रभुके आदेशसे पुनः गौडदेश लौट गये। इस बार श्रीगौरसुन्दरने गौडदेश होते हुए श्रीवृन्दावन जानेके लिये श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दसे अनुमति चाही, परन्तु भट्टाचार्य और रायके अनुरोधसे वे वर्षाकालमें श्रीवृन्दावन न जाकर पुरीमें ही कुछ समय तक रह गए। तदनन्तर उन्होंने भक्तोके लिये श्रीजगन्नाथका प्रसादादि साथ लेकर विजया-दशमीके दिन श्रीवृन्दावनके लिए यात्रा की। श्रीमहाप्रभुके साथ श्रीरामानन्द राय 'भद्रक' तक पहुँचाने आये। श्रीमहाप्रभुके विच्छेदके डरसे तथा सगके लोभसे श्रीगदाधर पंडितने 'क्षेत्र-सन्यास'* त्यागनेका दृढ संकल्प कर लिया, श्रीमहाप्रभुने पंडित गोस्वामीको शपथ देकर 'कटक' से सार्वभौमके साथ श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र भेज दिया और भद्रकसे श्रीरामानन्दको भी बिदा कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु क्रमशः उड़ीसाकी सीमामें आ पहुँचे। इस सीमाभूमिके बादसे पिछन्दा-तकके समस्त स्थान उस समय मुसलमानोके अधिकारमें थे, डरके मारे कोई उस रास्तेसे नहीं जाता था। श्रीमहाप्रभुकी कृपासे स्थानीय मुसलमान-शासककी चित्तवृत्ति बदल गई। तत्कालीन राजनीतिक अवस्थाका विचार करके वह

* जो लोग अपना पहला घर त्यागकर किसी विशेष विष्णुतीर्थमें अर्थात् पुरुषोत्तम क्षेत्रमें, नवद्वीपधाम या मथुरामण्डलमें एकमात्र श्रीभगवान्की सेवाके उद्देश्यसे निवास करते हैं उनके आश्रमको 'क्षेत्र-सन्यास' कहते हैं। श्रीगदाधर पंडित इस प्रकारका 'क्षेत्र-सन्यास' लेकर पुरीमें श्रीटोटा-गोपीनाथकी सेवा करते थे।

मुसलमान शासक हिन्दू-पोशाक पहनकर महाप्रभुके दर्शन करने आया तथा दूरसे ही साष्टांग दण्डवत् करके अश्रु-पुलकित हो तथा हाथ जोड़कर श्रीमहाप्रभुके सामने श्रीकृष्ण नाम लेने लगा ।*

पश्चात् यही मुसलमान शासक श्रीमहाप्रभुके स्वच्छन्द गमनके लिये नौका प्रदानकर तथा अन्यान्य सुव्यवस्था करके धन्य हो गया । कहीं जलके डाकू लोग श्रीमहाप्रभुको कोई हानि न पहुँचावें, इस दृष्टिसे दस नौका-सेना साथ लेकर वह परम भाग्यवान् भक्त मुसलमान-शासक स्वयं ‘मन्त्रेश्वर’नद पार होकर ‘पिछ्छन्दा’ तक साथ आया । श्रीमहा-प्रभुने उस भक्त महाशयको पिछ्छन्दासे बिदा किया और नौकापर सवार होकर वे ‘पानिहाटी’ पहुँचे । पानिहाटीके श्रीराघव पंडितके घरसे क्रमशः ‘कुमारहट्ट’में श्रीश्रीवास पंडितके घर, उसके समीप श्रीशिवानन्दके घर, तत्पश्चात् ‘विद्यानगर’ में श्रीविद्यावान्स्पतिके स्थानसे चुपके-चुपके ‘कुलिया’ ग्राममें जाकर श्रीश्रीवास पंडितके चरणोंमें अपराधी भागवत-पाठक देवानन्द पंडित और गोपाल-चापालके अपराधको दूर किया ।

वर्तमान नवद्वीप-शहर ही ‘कुलिया’ या ‘कोलद्वीप’ है । इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णवापराधियोंके अपराध क्षमा कराये थे । अतएव यह ‘अपराध-भजनका पाट’ के नामसे भी प्रसिद्ध है ।



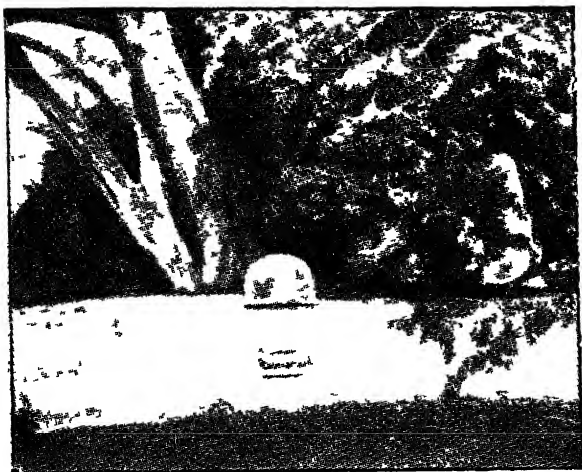
छासठवाँ परिच्छेद

‘कानाइ-नाट्यशाला’

श्रीमन्महाप्रभुने महत् (महापुरुष) के पादपद्मोमे आश्रयकी लीला प्रकट करके श्रीगयाधामसे नवद्वीपकी ओर लौटते समय पहले ‘कानाइ-नाट्यशाला’ में ही अपने आत्मप्रकाशकी लीलाका आविष्कार किया था। इसी स्थानमें विप्रलम्भप्रेम-विग्रह श्रीगौरसुन्दरकी कृष्णानुसन्धान-लीला और आत्म-प्रकाशकी प्रथम सूचना मिलती है। इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने महत्के पद-रजसे अभिषिक्त व्यक्तिके लिए ही दिव्य-किशोर-मूर्ति-श्रीकृष्णके दर्शन होना सहज और सम्भव है, अपनी लीलासे इस तत्त्वको प्रकट किया था। गयासे नवद्वीपकी ओर लौटते समय श्रीमहाप्रभुकी ‘कानाइ-नाट्यशाला’ में यह प्रथम आगमन-लीला है। यह १४२६ शक्राब्दीकी बात है।

सन्यास-ग्रहण-लीला प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल चले गये थे। श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छासे श्रीमहाप्रभु नीलाचलसे गौडमण्डलमें आये तथा विद्यानगरमें महेश्वर विशारदके पुत्र अर्थात् श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके भ्राता श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमें पाँच दिनो तक ठहरे। वहाँ जन-समारोह देखकर श्रीमहाप्रभु रातको वर्तमान नवद्वीप-शहर ‘कुलिया’ में आ गये और कुलियासे श्रीवृन्दावनके लिए चल पडे। असंख्य जनता श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये व्याकुल होकर प्रभुका अनुसरण करने लगी। चलते-चलते श्रीमहाप्रभु ‘गौड’ के समीप गगाके किनारे ‘रामकेलि’ गाँवमें आये। उस समय वहाँ श्रीरूप और श्री-सनातन—ये दो भाई क्रमसे ‘दबीर-खास’ और ‘साकर-मल्लिक’ के नामसे परिचित होकर गौडाधिपति हुसैन शाह बादशाहके राज्य-संचालनमें प्रधान सहायकके रूपमें अधिष्ठित थे।

हुसेन शाहने दबीर-खाससे श्रीमहाप्रभुका माहात्म्य सुनकर उनको ‘साक्षात् ईश्वर’ समझा। रामकेलिमें श्रीमन्महाप्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द, श्रीहरिदास, श्रीश्रीवास, श्रीगदाधर, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीमुरारि, श्रीवक्रेश्वर-प्रभृति भक्तगण थे। श्रीचैतन्यदेवने अपने भक्तोंके साथ श्रीसनातन और श्रीरूपको अपने नित्य अन्तरंग-सेवकके रूपमें स्वीकार किया। हुसेन शाह बादशाहने श्रीमहाप्रभुके प्रभावको सुनकर उनके स्वच्छन्द गमनमें किसी प्रकार बाधा न दी जाय, इसके लिये अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुको शीघ्र रामकेलिसे अन्यत्र जानेके लिये प्रार्थना की। क्योंकि, यद्यपि बादशाह श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखता है तथापि वह यवन है, उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुसे और



गौडके रामकेलिग्राममें श्रीचैतन्यदेव तथा
श्रीश्रीरूप-सनातनका मिलन-मीठ

भी कहा कि,—“प्रभो, आप इस समय वृन्दावनके मार्गमें और अग्रसर न हो, तीर्थयात्रामें इतना जन-समुदाय अच्छा नहीं,—

‘याहाँ सगे चले एइ लोक लक्ष-कोटि ।

वृन्दावन याइवार ए नहे परिपाटी ॥”

—चै० च० म० १।२२४

[जिनके साथ लाखों-करोड़ों आदमी चलते हैं, वृन्दावन जानेकी यह रीति नहीं है, अर्थात् लाखों-करोड़ों आदमियोंको साथ लेकर वृन्दावन जानेकी पद्धति नहीं है ।]

यवन राजाके राज्यशासनमें राष्ट्रीय जगत्की तत्कालीन अवस्था जैसी हो गयी थी, उसीको देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवामें तत्पर, बुद्धिमें वृहस्पति श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारका परामर्श दिया ।

इधर, जिस समय श्रीमहाप्रभुके कुलियासे श्रीवृन्दावन जानेकी बात हुई, उसी समय प्रभुके भक्त श्रीनृसिंहानन्द श्रीवृन्दावनके मार्गकी दुर्गमताको समझकर श्रीमहाप्रभुके लिये ध्यानमग्न होकर मानस-सेवा द्वारा ‘कुलिया’ (आजकल म्यूनिसिपल शहर—नवद्वीप) से श्रीवृन्दावन तक रास्ता बनाने लगे । अति कष्टकाकीर्ण और ककड़ोंसे पूर्ण मार्ग पर पैदल चलनेसे प्रभुके सुकोमल श्रीचरणकमलोंमें चोट लगेली, यह सोचकर श्रीनृसिंहानन्दने मानस-सेवा द्वारा उस रास्तेमें वृन्त-रहित कोमल-पुष्पोंकी शय्या बना दी । धूपसे प्रभुको कहीं कष्ट न पहुँचे, इसलिये श्रीनृसिंहानन्दने रास्तेके दोनों किनारे पुष्प-युक्त मौलसिरीकी श्रेणियाँ स्थापित कर दी । सुशीतल छाया और मौलसिरीकी सुगन्ध—दोनों ही प्रभुके लिये स्निग्धता प्रदान करेली । यदि मार्गकी थकावटसे महाप्रभुको प्यास लगे तो इसके लिये नृसिंहानन्दने बीच-बीचमें रास्तेके दोनों ओर ‘रत्नबँधे घाट’ तथा फूले हुए कमलदलोंसे सुशोभित और सुधामय जलसे पूर्ण दिव्य पुष्करिणी बना दी । पुष्करिणीके चारों ओर मधुर कण्ठवाले पक्षियोंकी सुललित काकली, तथा मृदु-मन्द,

सुगन्ध समीर प्रभृतिकी मनोहारिणी सुषम। प्राण-प्रभुकी सेवाके लिये सुसज्जित कर दी। इस प्रकार कुलिया नगरसे रास्ता बनाना आरम्भ करके जब 'गौड' के निकट 'कानाइ-नाट्यशाला' तक रास्ता बन गया, तब श्रीनृसिंहानन्दका ध्यान टूट गया। इससे श्रीनृसिंहानन्द भक्तोंके सामने भविष्यद्वाणी करते हुए बोले,—“इस बार श्रीमहाप्रभु केवल 'कानाइ-नाट्यशाला' तक ही जायेंगे, श्रीवृन्दावन नहीं जायेंगे। तुम लोगोको यह बात पीछे मालूम हो जायगी।” ठीक यही हुआ भी, श्रीरूप-सनातनकी सेवा-वत्सलता और श्रीनृसिंहानन्दकी भविष्यद्वाणीको सार्थक करनेके लिये श्रीमन् महाप्रभु श्रीवृन्दावनके मार्गमें 'कानाइ-नाट्यशाला' में जाकर वहाँ कानाइके नाना प्रकारके नाट्य और लीला-विलासके देखनेके पश्चात् श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा छोड़कर नीलाचलके (पुरीके) रास्तेमें 'शान्तिपुर' पहुँचे और वहाँ श्रीअद्वैताचार्यके घर सात दिन रहकर पुनः श्रीनीलाचलमें लौट आये। श्रीमन् महाप्रभुने १४३४ शकाब्दमें दूसरी बार 'कानाइ-नाट्यशाला' में शुभागमन किया।

'कलकत्ता-हवडा-काटवा-अजीमगज-बरहरवा' लाइनमें 'तालझरी' स्टेशनमें उतरकर मैदानके कच्चे रास्तेसे प्रायः दो मील पूर्व-उत्तरकी ओर अथवा पक्के रास्तेसे स्टेशनके पूर्वकी ओर-स्थित 'मगलहाट' गाँवसे प्रायः दो मील उत्तर 'कानाइ नाट्यशाला'* नामक गाँव है। यह गाँव एक छोटी पहाड़ीपर बसा है। पूर्वकी ओर विष्णुपादोद्भवा पतितपावनी जाल्म्वी प्रवाहित हो रही है। चारो ओर हरे-भरे वन सुशोभित हो रहे हैं, वनके पुष्पोपर मधुलोभी भ्रमर मधुर गुजार कर रहे हैं, नाना प्रकारके खग-मृग वनभूमिको सुखरित करते हुए निर्जनताके बीच एक स्वाभाविक एकतानके भावकी सृष्टि कर रहे हैं।

वह स्थान अकिंचन भजनानन्दी जनोके लिये जिस प्रकार भजनके अनुकूल और उद्दीपक है, उसी प्रकार प्राकृत विराट्-रूपमें मोहग्रस्त

* स्थानीय लोग इसको 'कन्हैयाका थान' कहते हैं।

लोगोंकी भाव-प्रवणताके लिये भी सहायक है। पहाड़ीके ऊपर एक मन्दिर और सेवकोंके लिये वास-गृह है। उस श्रीमन्दिरमें श्रीश्री-राधाकृष्णकी युगल मूर्ति विराजमान है। इस श्रीश्रीराधा-कृन्हाईकी नाट्यशालासे ही इस स्थानका नाम 'कानाइ-नाट्यशाला' पड़ा है। गगाके दूसरे किनारे जिस प्रकार श्रीश्रीराधारमण श्रीरामका केलिस्थान 'रामकेलि' है, उसी प्रकार गगाके इस पार भी श्रीकृष्णका केलि-स्थान 'कानाइ-नाट्यशाला' है।

अंग्रेजी सन् १९२९ ई० की १२वीं अक्टूबरको श्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामि-प्रभुपादने 'कानाइ-नाट्यशाला'में श्रीचैतन्यदेवके 'पादपीठ' की स्थापना की है।



सड़सठवाँ परिच्छेद

श्रीरघुनाथ दास

हुगली जिलेके अन्तर्गत 'त्रिश-विघा' रेलवे स्टेशनके पास सर-स्वती नदीके किनारे 'सप्तग्राम' नामक नगरके अन्तर्गत 'श्रीकृष्णपुर' ग्राममें 'हिरण्य' और 'गोवर्द्धनदास' निवास करते थे। इनकी राज-प्रदत्त उपाधि थी—'मजुमदार'। ये लोग कायस्थ-कुलोत्पन्न विशेष सम्भ्रान्त धनाढ्य व्यक्ति थे। इनकी वार्षिक खजानेकी आय उस समयकी बारह लाख मुद्रा थी। अनुमानत १४१६ शकाब्दमें श्री-रघुनाथ दास गोवर्द्धन मजुमदारके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे।

हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुर के कृपापात्र थे। जब श्रीरघुनाथ श्रीबलराम आचार्यके घर अध्ययन करते थे, तभी श्रीरघुनाथको श्रीठाकुर हरिदासका सग प्राप्त हुआ। जिस क्षण श्रीरघुनाथने श्रीगौरसुन्दरका नाम सुना, उसी क्षणसे उनके दर्शनके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीरघुनाथने कई बार पुरी भागनेकी चेष्टा की। परन्तु गोवर्द्धन दासने नाना प्रकारसे उसमें बाधाएँ उपस्थित की। एकमात्र पुत्र और विपुल ऐश्वर्यके भावी उत्तराधिकारी श्रीरघुनाथको ससार-सौकलमें बाँधनेके लिये गोवर्द्धन दासने एक परम-रूप-लावण्यवती कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया, परन्तु रघुनाथ किसी प्रकारसे भी शान्त नहीं हुए।

श्रीगौरसुन्दर दूसरी बार श्रीवृन्दावन जानेका उद्योग करके नीलाचलसे कानाइ नाट्यशाला तक आये तथा श्रीवृन्दावन जानेकी चेष्टा छोड़कर पुन शान्तिपुर श्रीअद्वैतके घर लौट गये। सन्यासके बाद श्रीचैतन्यदेव यह दूसरी बार 'शान्तिपुर' आये। यह समाचार सुनकर रघुनाथ शान्तिपुरमें जा पहुँचे। पुत्र कहीं सन्यासी न हो जाय,— इस डरसे गोवर्द्धन दास श्रीरघुनाथके साथ बहुतसे आदमियोंको भेजा।

श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घर इस बार सात दिन रहे। श्रीरघुनाथकी अवस्था देखकर श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—“रघुनाथ, तुम पागलपन मत करो, स्थिर होकर घर लौट जाओ। मनुष्य धीरे-धीरे ही इस ससारको पार कर सकता है। लोगोको दिखलानेके लिये 'मर्कट-वैराग्य'* मत करो, हरि-सेवाके लिये अनासक्तभावसे यथायोग्य विषयोको ग्रहण करो। बाहर लौकिक व्यवहार दिखलाकर भीतर परमार्थके प्रति दृढ़ निष्ठा करो। इससे शीघ्र ही कृष्णकी कृपा प्राप्त होगी।”

* मर्कट-वैराग्य—वाह्य वैराग्य। (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

श्रीगौरसुन्दरने अपने नित्यसिद्ध अन्तरंग पार्षद श्रीरघुनाथको लक्ष्य करके हमलोगोंके लिये यह अमूल्य उपदेश दिया है। जो लोग बाह्य-वैराग्यके उच्छ्वासमें तथा नवीन उन्मादमें लोगोंसे सम्मान पानेकी आशासे सामयिक 'फलगु-वैरागी' सजते हैं, वे उस वैराग्यकी रक्षा अधिक दिनोंतक नहीं कर सकते, शीघ्र ही 'पुनर्मूषिको भव' न्यायसे वैराग्य-व्युत हो जाते हैं। दूसरी ओर एक श्रेणीके लोग 'मर्कट वैराग्य'के निषेधका सुयोग पाकर सदा ही घरमें जमकर 'घर-पागल' बने रहनेको ही 'युक्त वैराग्य' समझते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इन दोनों प्रकारके विचारोंकी सर्वतोभावेन निन्दा की है। श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा यह है कि, कृत्रिम वैराग्य या तपस्यादिसे कभी भी भक्ति प्राप्त



श्रीराधाकुंडमें श्रीरघुनाथ दास
गोस्वामिपादकी समाधि

परिच्छेद] भारखंडके मार्गसे श्रीवृन्दावनकी ओर २७६

नहीं होती। हृदयमें भगवान्‌के प्रति भक्ति उदित होनेपर अन्य विषयो में वैराग्य अपने-आप आनुषंगिक रूपसे ही प्रकट हो जाता है, उस वैराग्यमें कृत्रिमता नहीं होती। भक्ति-राज्यमें कृत्रिमताके लिये स्थान ही नहीं होता।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथसे कह दिया कि, जब वे श्रीवृन्दावनसे नीलाचल लौट आवे, तब श्रीरघुनाथ किसी बहाने आकर उनसे मिलें।



अड़सठवाँ परिच्छेद

श्रीवृन्दावनकी ओर—‘झारखंड’ के मार्गसे

श्रीकृष्णचैतन्यदेव शान्तिपुरसे श्रीबलभद्र भट्टाचार्य और श्रीदामोदर पंडितको लेकर पुरी लौट आये और कुछ दिन पुरीमें रहकर एकमात्र बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर ‘झारखंड’के* वन-मार्गसे श्रीवृन्दावनकी ओर चल पड़े।

श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए निर्जन अरण्यके बीच चले जा रहे हैं। झुण्डके झुण्ड बाघ, हाथी, गेंडा, शूकर आदि बन्य और हिंस्र पशुओंके बीचमेंसे भी श्रीमहाप्रभुको भावावेशमें चलते देखकर भट्टाचार्यको बड़ा भय हुआ। परन्तु वे सब हिंस्र पशु श्रीमहाप्रभुका रास्ता छोड़कर अपने-अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चले जाने लगे। एक दिन मार्गमें एक बाघ सोया था। चलते-

* वर्तमान आटगढ, ढेंकानल, अगुल, सबलपुर्ग, लहारा, कियोझड, बामडा, बोनाई, गागपुर, छोटानागपुर, सथाल परगना, यशपुर, सर-गुजा—आदि के पहाडी और बड़े जंगली स्थानको ‘झारखण्ड’ कहा जाता था।

चलते श्रीमहाप्रभुका श्रीचरण अकस्मात् उस बाघके शरीरपर लग गया। श्रीमन्महाप्रभु भावावेशमें 'कृष्ण-कृष्ण' बोल रहे थे, वह बाघ भी उस समय श्रीमहाप्रभुका पादस्पर्श प्राप्त कर 'कृष्ण-कृष्ण' बोलकर नाचने लगा। दूसरे एक दिन महाप्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे, उस समय मतवाले हाथियोंका एक झुण्ड उसी नदीमें पानी पीनेके लिये आया। श्रीमहाप्रभुने 'कृष्ण बोलो' कहकर उन हाथियोंके ऊपर जल फेंका, जिसके शरीरपर वह जल-कण लगा, वही उस समय 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर प्रेमसे नाचने लगा। यह सब देख-सुनकर बलभद्र भट्टाचार्य चकित हो उठे। रास्तेमें चलते समय महाप्रभु कृष्ण-सकीर्तन करते और उनकी मधुर कण्ठध्वनि सुनकर कान उठाये मृगागनाएँ उनके पास दौड़ आती। श्रीमहाप्रभु उनके शरीरको सहलाते हुए श्रीमद्-भागवतका श्लोक पढ़ने लगते। बाघ और मृग परस्पर हिंसा भूलकर एक सग महाप्रभुके साथ चलते। इन सब दृश्योंसे वृन्दावन-स्मृति उद्दीप्त हो जानेके कारण श्रीमहाप्रभु श्रीमद्भागवतके श्लोकोका उच्चारण करने लगते। वे जब, 'कृष्ण कृष्ण बोलो' कहते, तब बाघ और मृग एक साथ नाचने लगते, कभी परस्पर आलिंगन करते तो कभी एक दूसरेका मुख-चुम्बन करते थे। मोर आदि पक्षिगण श्रीमहाप्रभुको देखकर कृष्णनाम बोलते-बोलते नृत्य करते। जब श्रीमहाप्रभु उच्च स्वरसे 'हरिबोल' कहते थे तो वृक्ष-लताएँ भी उस ध्वनिको सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित होती। झारखण्डके समस्त स्थावर और जगम श्रीगौरसुन्दरकी प्रेम-बाढमें आप्लावित हो गये। श्रीमहाप्रभु जिस ग्राममें-से होकर जाते थे, जहाँ ठहरते थे, उन सभी जगहोंके लोगोमें प्रेमभक्ति प्रकट हो जाती थी। एक दूसरे के मुँहसे, दूसरा तीसरेके मुँहसे—इस प्रकार कृष्णनाम सुनते-सुनते वहाँके सभी लोग वैष्णव हो गये। श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके प्रभावसे ही सब लोग वैष्णव होने लगे। श्रीमहाप्रभु जब झारखंड के मार्गसे चले जा रहे थे, उस समयकी उनकी अवस्थाका वर्णन सुनिये,—

बन देखि' भ्रम ह्य—एइ 'वृन्दावन' ।
 शैल देखि' मने ह्य,—एइ 'गोवर्धन' ॥
 याहाँ नदी देखे, ताहाँ मानये 'कालिन्दी' ।
 महाप्रेमावेशे नाचे, प्रभु पडे कान्दि' ॥

—चै० च० म० १७।५५-५६

[बन देखकर भ्रम होता—यह वृन्दावन है। पर्वत देखकर मनमें आता—यह गोवर्धन है। जहाँ नदी देखते, वहाँ समझते—यह यमुना जी है। प्रभु महान् प्रेमावेशमें नाचते और रो पड़ते।]

श्रीमहाप्रभु महाभागवतकी लीला प्रकट करके सर्वत्र श्रीकृष्ण-भोग्य उपकरणोंको देखकर व्रजभावसे उद्दीप्त होने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य झारखण्डके वनपथमें कभी-कभी जगली शाक, फल, मूल चयन करके वन्य-व्यजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराते थे, कभी-कभी दो-चार दिनोंके लिये अन्न तैयार करके साथ रख लेते थे। पहाड़ी-स्रोतोंके उष्णजलमें श्रीमहाप्रभु तीनों समय स्नान करते थे, प्रातः एव सायंकाल जगली लकड़ियोंकी आग तापकर शीत दूर करते थे।

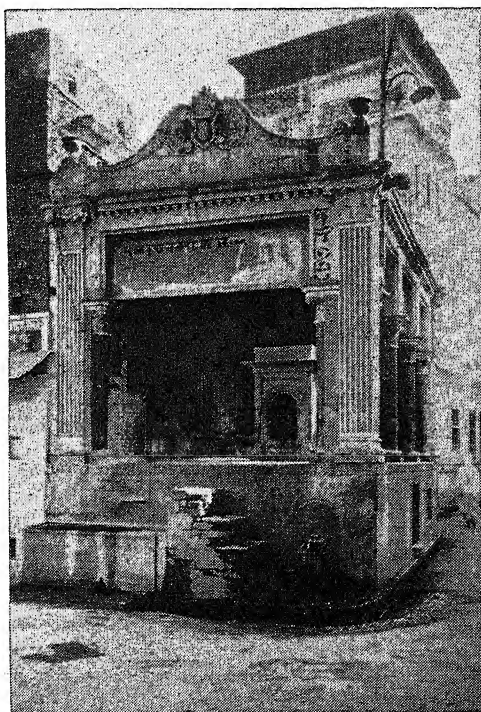


उनहत्तरवां परिच्छेद

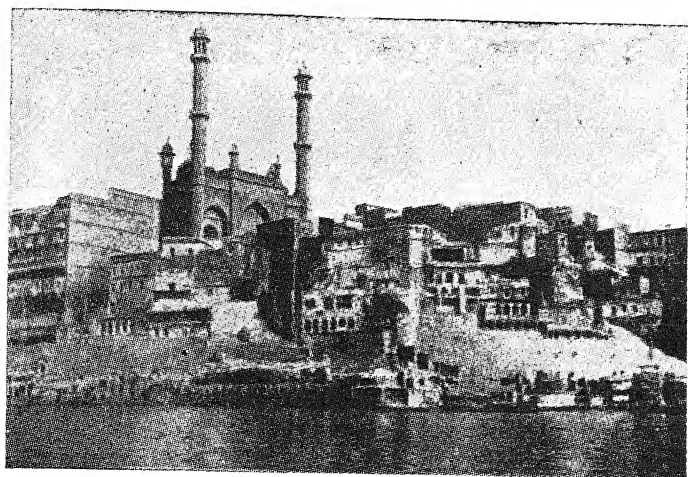
प्रथम बार 'काशी' और 'प्रयाग'में

झारखण्डके वनमार्गसे चलते-चलते श्रीचैतन्यदेव बलभद्र भट्टाचार्यके साथ 'काशी'में जा पहुँचे। वहाँ 'मणिकर्णिका' घाटपर स्नान कर, श्रीविश्वेश्वर और श्रीविन्दुमाधवके दर्शन करके उन्होंने काशीवासी वैष्णव श्रीतपन मिश्रके घर पदार्पण किया। श्रीतपन मिश्रके पुत्र श्रीरघुनाथ (जो पीछे श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके नामसे परिचित हुए)

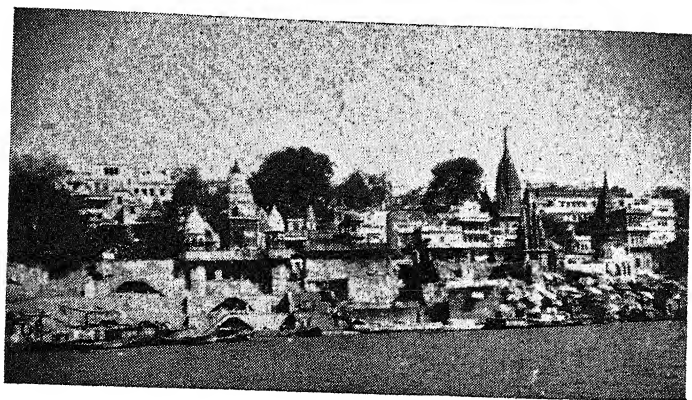
को उस समय श्रीमहाप्रभुकी चरण-सेवा तथा उच्छिष्टादि ग्रहण करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। श्रीमहाप्रभुने इस बार केवल चार दिन 'काशी' में अवस्थान किया। तपन मिश्र और एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणने श्रीमहाप्रभुके पास मायावादके हलाहलसे प्लावित काशीकी दुर्दशा तथा काशीके मायावादी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीके द्वारा श्रीमहाप्रभुके प्रति दोषारोपणके विषयमें निवेदन करके विशेष दुःख प्रकट किया। श्रीमहाप्रभुने मायावादियोंकी दुर्दशाका वर्णन कर



काशीमें श्रीचन्द्रशेखर-भवन ; वर्तमान
नाम चैतन्य-वट या यतन-वट



पंचगंगा और श्रीबिन्दु माधवकी ध्वजा



काशीमें मणिकर्णिका-घाट

उस समय मायावादियोकी उपेक्षा की। श्रीमहाप्रभु बोले,—“श्रीकृष्ण-चरणमें अपराधी मायावादियोके मुँहसे श्रीकृष्ण-नाम नहीं निकलता। इसी कारण वे, ‘ब्रह्म’, ‘आत्मा’, ‘चैतन्य’, प्रभृति शब्दोंका उच्चारण किया करते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्णका नाम और श्रीकृष्णका स्वरूप अर्थात् देह—दोनों एक ही वस्तु है।”

श्रीमहाप्रभु उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मणपर कृपा करके ‘प्रयाग’ चले गये। प्रयागमें भी केवल तीन दिन रहकर श्रीकृष्णनाम-प्रेम वितरण किया और लोकोद्धार करते हुए श्रीमथुराजीमें आ उपस्थित हुए। दाक्षिणात्यकी भाँति पश्चिम-देशमें भी श्रीमहाप्रभुने सब लोगोंको वैष्णव बनाया।

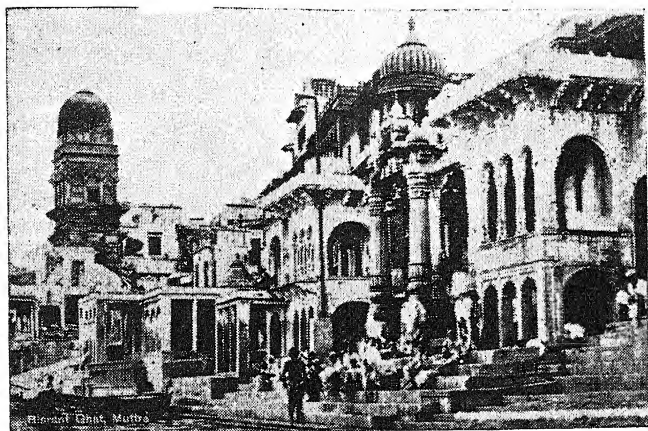


सत्तरवां परिच्छेद

श्रीमथुरा और श्रीवृन्दावनमें

श्रीमन्महाप्रभुने मथुराके निकट पहुँचकर श्रीधाम-मथुराको देखते ही साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीमथुरा में आकर ‘श्रीविश्राम-घाट’ पर स्नान करके श्रीकृष्णके जन्म-स्थानमें ‘आदिकेशव’के दर्शन किये। उस समय एक ब्राह्मण वहाँ आकर श्रीमहाप्रभुके अनुगत हो प्रेमावेशमें नृत्य, गान करने लगे। श्रीमहा-प्रभुने निर्जनमें उन ब्राह्मणका परिचय पूछकर जान लिया कि वे श्री-माधवेन्द्र पुरीके शिष्य हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीने श्रीमथुरामें आकर उक्त ब्राह्मणके घर उन्हींके हाथके पकाये अन्नको ग्रहण किया था। वह ब्राह्मण सनोडिया* ब्राह्मणकुलमें आविर्भूत हुए थे। याजन-दोषसे पतित

* सनोड-शब्दसे सुवर्ण-वर्णिकका बोध होता है। उनके याजक ब्राह्मण ही सनोडिया (वर्ण) ब्राह्मणके नामसे पुकारे जाते हैं।



श्रीमथुरामें विश्राम-घाट

होनेके कारण ही इनके घर संन्यासी लोग कभी भी भोजन नहीं करते ; परन्तु श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादने जिनको शिष्य बनाकर जिनके हाथके बनाये अन्नको स्वीकार किया, वह व्यक्ति साधारण सामाजिक जातिकुलके अन्तर्गत नहीं रहे। श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीपादके आचरणका अनुसरण करते हुए उन सनोढ़िया ब्राह्मणके घर भोजन ग्रहण किया। महापुरुष और गुरुजनोंके आदर्शका अनुसरण करना ही कर्तव्य है—इसी वैष्णव आचारकी शिक्षा श्रीमहाप्रभुने इस लीलाके द्वारा दी है। साधुपुरुषोंका व्यवहार ही सदाचार है।

जो लोग समझते हैं, —श्रीमहाप्रभु आधुनिक जातिभेद-वर्जनके प्रवर्तक थे ; अथवा जो यह समझते हैं कि वे यथार्थमें परमार्थी लोगोंके सम्बन्धमें भी जाति-विचार करते थे ; यह दोनों ही प्रकारका भ्रम श्रीमहाप्रभुके इस आदर्शके द्वारा दूर हो जाता है। श्रीमहाप्रभु जहाँ एक ओर अपारमार्थिक लोगोंकी व्यावहारिक जाति-भेद-प्रथाके उठाने या न उठानेके प्रश्नपर पूर्णतया निरपेक्ष थे, उसीप्रकार दूसरी ओर

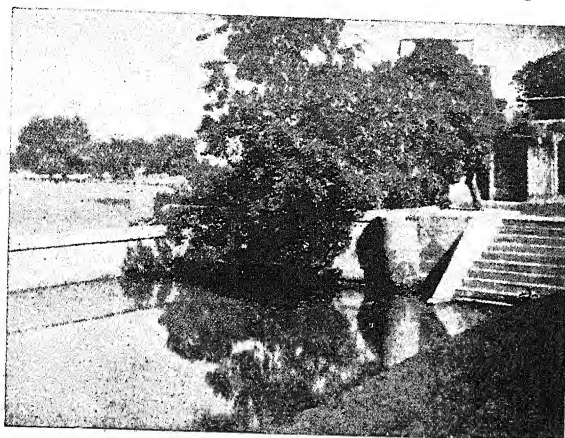
अपारमार्थिक तथाकथित ब्राह्मण सन्तानके हाथकी बनायी हुई कोई भी चीज उन्होंने कभी भी ग्रहण नहीं की। उन्होंने पारमार्थिक ब्राह्मण के हाथकी बनायी हुई वस्तु ग्रहण की है। श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी अन्यान्य घटनाओंकी आलोचना के प्रसंगमें भी इसके बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमथुराके “चौबीस घाटों”पर स्नान किया। श्रीमाधवेन्द्र पुरीके शिष्य उपर्युक्त सनोढ़िया ब्राह्मणके साथ श्रीमन्महा-प्रभुने श्रीव्रजमंडलके द्वादश बनोंमें भ्रमण कर समस्त लीला-स्थानोंके दर्शन किये। ‘आरिट्’-ग्राममें जहाँ अरिष्टासुरका वध हुआ था,

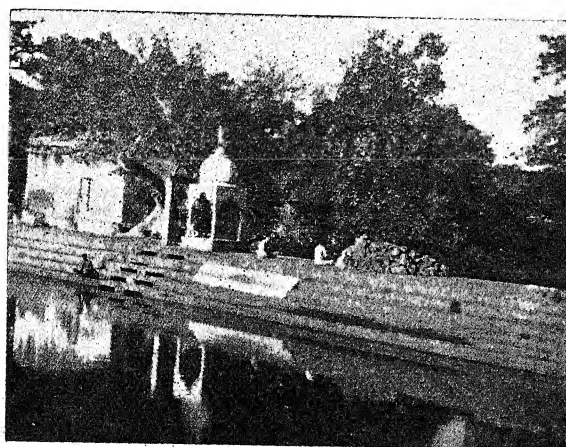


श्रीकृष्णके जन्मस्थानमें प्राचीन
ध्वंसावशेष (श्रीमथुरा)

वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभुने वहाँके लोगोंसे पूछा कि, ‘श्रीराधाकुण्ड कहाँ है।’ परन्तु कोई भी नहीं बता सका। साथवाले सनोढ़िया ब्राह्मण भी इसे नहीं जानते थे। इससे, वह तीर्थ गुप्त हो गया है, यह जानकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीगौरसुन्दरने निकटके दो धानके खेतोंमें जहाँ थोड़ा-



श्रीराधाकुंडके इस स्थानपर महाप्रभुने उपवेशन किया था ऐसा प्रसिद्ध है । इस स्थानपर श्रीचैतन्यदेवका एक पादपीठ है

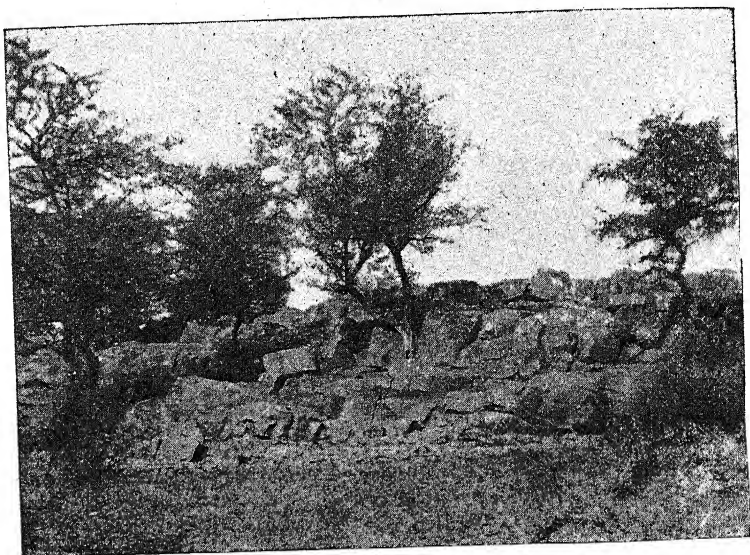


‘श्रीश्यामकुंड’ और ‘श्रीराधाकुंड’का -
मिलन-स्थान

थोड़ा पानी था, वहीं स्नान किया और यह बतला दिया कि वे धानके खेत ही 'श्रीराधाकुण्ड' और 'श्रीश्यामकुण्ड' हैं।

बहुधा हमलोग साधारण पुरातत्व-विद्याके बलपर भगवान्‌के गुप्त धाम और तीर्थोंके निरूपणकी चेष्टा करते हैं तथा उस विषयमें नाना प्रकारके तर्क उठाया करते हैं, परन्तु भगवान् श्रीगौरसुन्दरने दिखला दिया कि, गुप्त अप्राकृत तीर्थोंका आविष्कार वस्तुतः केवल श्रीभगवान् और उनके अनन्य अन्तरंग भक्त ही कर सकते हैं। यह बात हमारी साधारण विद्या-बुद्धिके लिये बोधगम्य न होनेपर भी यही परम वास्तविक सत्य है।

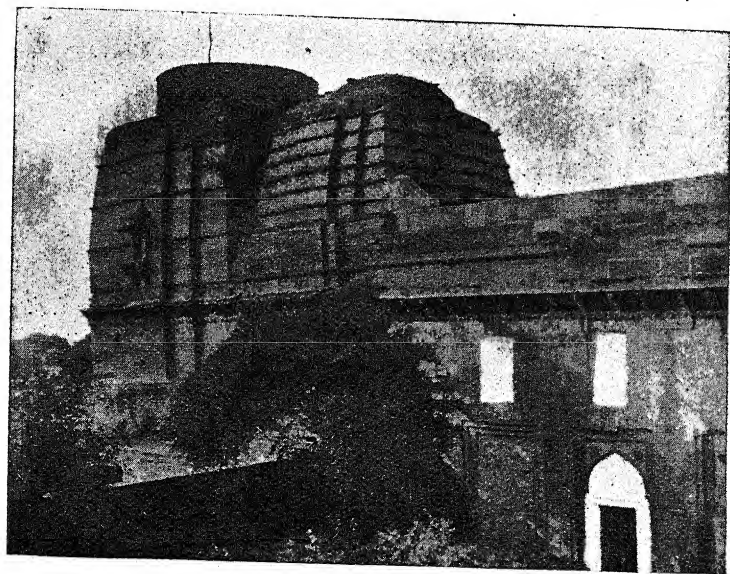
श्रीगौरसुन्दरने श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्डका आविष्कार करके 'श्रीगोवर्द्धन'में 'श्रीहरिदेव'के दर्शन किये। श्रीगोवर्द्धन भगवान्



श्रीगिरिराज श्रीगोवर्द्धन

श्रीकृष्णके अंग हैं—इस प्रकार विचार कर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीगोवर्द्धन पर जाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके द्वारा प्रतिष्ठित 'श्रीगोपाल'विग्रहके दर्शन न करनेकी बात मन-ही-मन स्थिर कर ली। श्रीगोपालदेव म्लेच्छोंके भयके वहाने श्रीगोवर्द्धन-पर्वतसे उतरकर 'गाठोलि' ग्राममें आ गये। श्रीमन्महाप्रभुने वहाँ जाकर श्रीगोपालदेवके दर्शन किये थे।

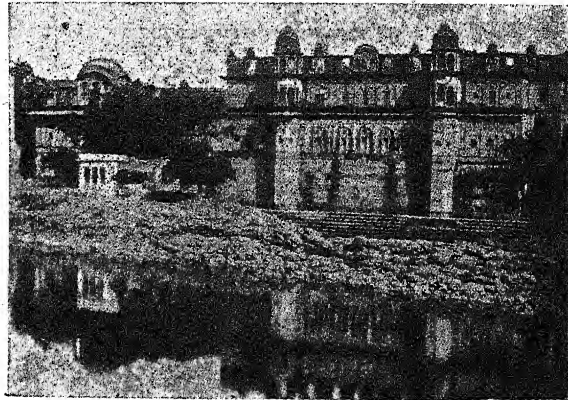
श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीनन्दीश्वर', 'पावन-सरोवर', 'श्रीशेषशायी', 'मैलातीर्थ', 'भाण्डीरवन', 'भद्रवन', 'लौहवन', 'महावन' और 'श्रीगोकुल' आदिके दर्शन करके श्रीमथुरा लौट आये। श्रीकृष्णके लीला-समयके प्रसिद्ध 'चीरघाट'पर इमलीके पेड़के तले बैठकर श्रीमहा-प्रभु दोपहरतक नाम-संख्या पूरी करते थे और सबको श्रीनाम-कीर्तनका उपदेश देते थे। अकूर-तीर्थमें श्रीकृष्णदास नामक किसी एक राजपुत



श्रीगोवर्द्धनपर श्रीहरिदेवका मंदिर

पर श्रीमहाप्रभुने कृपा की। श्रीकृष्णदास उसी समयसे संसारके प्रति उदासीन होकर श्रीमहाप्रभुका कमण्डलु ले चलनेवालेके रूपमें उनके नित्य संगी हो गये।

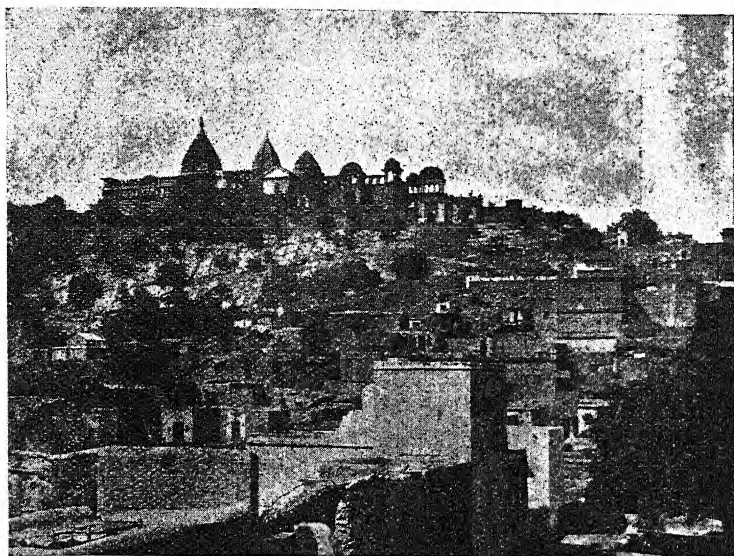
रातको एक मछुआ 'कालियहृद'में नावपर चढ़कर मछली पकड़ा करता था। उसकी नावमें दीपक जला करता था। साधारण ग्रामीण लोगोंने दूरसे उसे देखकर समझा कि कालियहृदमें कालियनागके सिरपर श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं। मूढ़ लोगोंको उस समय नावसे 'कालियनाग' का, दीपकसे उस नागके सिरकी 'मणि'का और काले रंगके मछुएसे 'श्रीकृष्ण'का भ्रम हो गया था। उन्होंने एक अफवाह फैला दी कि, श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्णका पुनः आविर्भाव हो गया है। सरस्वतीदेवीने



श्रीमानसी-गंगा

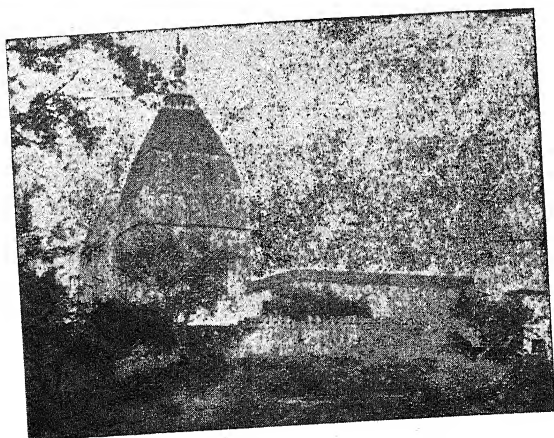
उनके मुखसे सच्ची बात ही कहलायी थी, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण श्री-गौरहरि उस समय श्रीवृन्दावनमें ही विराजमान थे। परन्तु लोग यथार्थ कृष्णको नहीं पहचान सके; उनको एक मछुएमें श्रीकृष्णका भ्रम हो रहा था। अज्ञ और मूढ़ जनता भेड़ियाधिसानकी भाँति अपनी विचारबुद्धिको बहाकर जनमतको ही सत्य मान लेती है। स्वयं

श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण-चैतन्यके साथ रहनेपर भी सरलबुद्धि बलभद्र भट्टाचार्यको यह अफवाह सुनकर उस अफवाहके 'कृष्ण' (?) को देखनेकी इच्छा हुई ; परन्तु श्रीमहाप्रभुने सरलबुद्धि भट्टाचार्यके भ्रमको दूर करके कहा,—“तुम पंडित हो । क्या तुम भी मूर्खोंकी बातमें पड़कर मूर्ख हो गये हो ?”



श्रीनन्दग्राम

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ लोगोंने—श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उसका सच्चा रहस्य बताया । उनमेंसे किसी-किसीने श्रीमहाप्रभुको कृष्ण समझकर जब वन्दना की तब श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—“ईश्वर-तत्त्व और जीव-तत्त्व कभी भी एक नहीं हैं । ईश्वर-तत्त्व मानो विशाल ज्वलन्त अग्निस्वरूप है और जीव-तत्त्व उस अग्निकी चिनगारीके छोटे कणके समान है । मूढ़तावश ईश्वर और



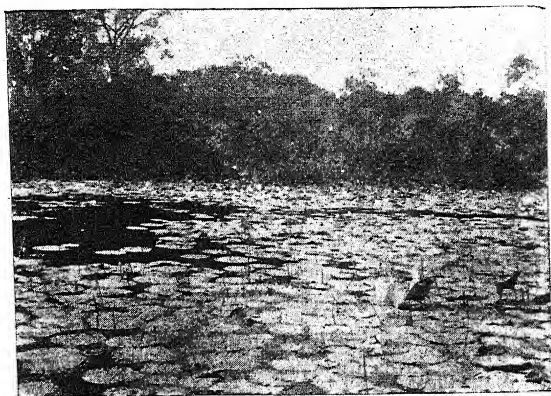
श्रीवर्षाणामें श्रीरावारानीका श्रीमंदिर



श्रीसंकेत (ब्रजमें)

जीव 'एक' कहनेसे अपराध होता है और उस अपराधके फलसे यमदण्ड भोगना पड़ता है ।*

एक प्रकारके लोग कहा करते हैं कि—“श्रीचैतन्यके अभक्तलोग, जो श्रीचैतन्यदेवको 'परमेश्वर' नहीं कहते, यह उनकी निजी कल्पना नहीं है, श्रीचैतन्यदेवकी अपनी उक्तके बलपर ही वे इस प्रकार कहने



श्रीकाम्यवन (ब्रजमंडल)

का साहस करते हैं ; परन्तु इस प्रकारके लोग थोड़े-से गंभीर और निरपेक्षरूपसे विचार करके देखेंगे तो वे समझ सकेंगे कि मायावादी-सम्प्रदाय और उनके अनुयायी साधारणलोग जो 'जीव'को 'ब्रह्म' कहा करते हैं, उसका खण्डन करना ही लोक-शिक्षक श्रीमहाप्रभुकी इस उक्तका वास्तविक उद्देश्य है ।



इकहत्तरवां परिच्छेद

‘पठान-वैष्णव’

श्रीवृन्दावनमें श्रीमन्महाप्रभुका अत्यधिक प्रेमोन्माद देखकर श्रीबल-भद्र भट्टाचार्यने श्रीमहाप्रभुको ब्रजमण्डलसे ‘प्रयाग’ ले जानेका संकल्प किया। ‘सोरोक्षेत्र’में गंगास्नान करके प्रयाग जायेंगे, ऐसा निश्चय करके राजपूत श्रीकृष्णदास, श्रीमथुराके सनोढिया ब्राह्मण, बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी दूसरे एक ब्राह्मणने श्रीमन्महाप्रभुको साथ लेकर यात्रा की। रास्तेमें गौआका विचरण देखकर और गोपमुखोसे अकस्मात् बशीध्वनि सुनकर श्रीमहाप्रभुकी ब्रजलीलाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी और वे प्रेमसे मूर्छित हो गये। इसी समय वहाँ दस घुड़-सवार पठान आ पहुँचे। उन लोगोने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकार मूर्छित देखकर सन्देह किया कि इस मूर्छित सन्यासीके साथियोने सन्यासीका अर्थादि छीन लेनेके लिये सन्यासीको धतूरा खिलाकर बेहोश कर दिया है। उनके सरदार ‘बिजली खाँ’ने इस सन्देहको जताकर श्रीमहा-प्रभुके साथियोको बाँध लिया। श्रीमहाप्रभुको वाह्य-चेतना होनेपर बिजली खाँके दलके एक मौलानाके साथ प्रभुकी कुछ बातचीत और शास्त्रालोचना हुई। श्रीमन्महाप्रभुने कुरानशरीफसे ही कृष्णभक्तिकी स्थापना की—

तोमार शास्त्रे कहे शेषे ‘एकइ ईश्वर’।

‘सर्वैश्वर्य-पूर्ण तेहो श्याम-कलेवर’ ॥

—चै० च० म० १८।१६०

[तुम्हारा शास्त्र कहता है कि अन्तमें ‘एक ही ईश्वर है’, वह सर्वैश्वर्यपूर्ण तथा श्याम कलेवर है।]

उक्त मौलाना साहब श्रीमहाप्रभुके शरणागत हो गये तब श्रीमहा-प्रभुने उनका सस्कार सम्पादन करके ‘रामदास’ नाम रक्खा। बिजली खाँ

और उनके अनुगत घुडसवार सभी श्रीमहाप्रभुके चरणोका आश्रय लेकर श्रीकृष्णभक्त और 'पठान वैष्णव'के नामसे विख्यात हुए और बिजली खाँकी 'महाभागवत'के नामसे ख्याति हुई ।*

—२४—

बहत्तरवां परिच्छेद

पुनः प्रयागमें—'श्रीरूप-शिक्षा'

सोरोक्षेत्रमें गगास्तान करके श्रीमहाप्रभु प्रयागमें त्रिवेणीपर आये और वहाँ दबीरखास (श्रीरूप) और अनुपम मल्लिक (श्रीबल्लभ) से उनकी भेंट हो गयी ।

रामकेलि-ग्राममें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके बादसे ही दबीरखास (श्रीरूप) और साकर मल्लिक (श्रीसनातन) दोनों ही विषय-त्यागके लिये नाना प्रकारके उपाय सोचने लगे । अन्तमें दबीरखास चतुराईसे हुसेनशाहका काम छोड़कर बहुतसे धन-रत्नोके साथ अपने घर 'फतेहा-बाद'में आ गये और उस धनका आधा हिस्सा ब्राह्मण-वैष्णवों को और एक चौथाई आत्मीय-स्वजनोको बाँट दिया, शेष एक-चौथाई अपनी भावी विपत्तिके टालनेके लिये रख लिया । गौडदेशमें श्रीसनातनके पास दसहजार रुपये रख दिये । श्रीरूपको पता लगा कि श्री-महाप्रभु पुरी गये हुए हैं और वहाँसे श्रीवृन्दावन जायँगे । श्रीरूपने श्रीमहाप्रभुके श्रीवृन्दावन जानेकी निश्चित तिथि जाननेके लिये शीघ्र ही एक दूत भेजा ।

इधर सनातन राजकार्यसे अवसर ग्रहण करनेके लिये शारीरिक अस्वस्थताका बहाना करके अपने घर श्रीमद्भागवतकी आलोचना

करते थे। अचानक एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और श्रीसनातनको इस अवस्थामें पाकर उनको कारागारमें बन्दी कर दिया। श्रीरूपके भेजे हुए दूतने आकर श्रीसनातनको श्रीमन्महा-प्रभुकी श्रीवृन्दावन-यात्राका समाचार दिया। श्रीरूपने तब एक पत्र श्रीसनातनको लिखकर जताया कि, वे और अनुपम श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये जा रहे हैं, अतएव आप शीघ्र-से-शीघ्र किसी-न-किसी उपायसे श्रीमहाप्रभुके पास चले आवे।

श्रीरूप और श्रीअनुपम श्रीचैतन्यदेवसे मिलनेके लिये चलते-चलते प्रयाग पहुँचे, वहाँ श्रीमन्महाप्रभु आये हैं, यह सुनकर उनको बड़ा आनन्द हुआ और एक दिन श्रीमहाप्रभु जब भिक्षार्थ एक दक्षिण-देशीय वैष्णव-ब्राह्मणके घर गये, तब दोनों भाइयोंने अकेलेमें श्रीमहा-प्रभुसे भेंट करके अत्यन्त दीनतापूर्वक श्रीमहाप्रभुसे कृपाकी याचना की। तदनन्तर श्रीरूपने इस श्लोकके द्वारा महाप्रभुको प्रणाम किया,—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विवे नमः ॥

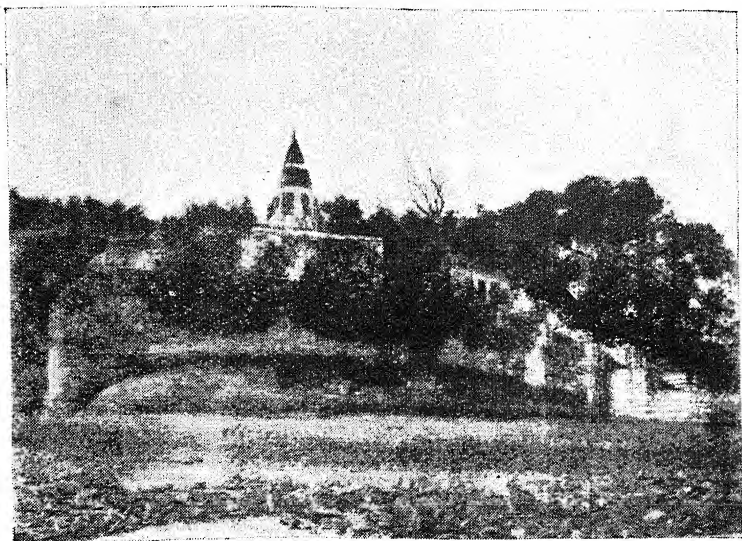
[हे दाताशिरोमणि कृष्णप्रेम-प्रदाता श्रीकृष्णचैतन्य-नामधारी गौर-कान्ति श्रीकृष्ण ! तुमको नमस्कार है ।]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपसे श्रीसनातनके विषयमें पूछा। तब श्रीरूपने कहा कि, श्रीसनातन-प्रभु कारागारमें बन्दी हैं। श्रीमहाप्रभु बोले,— “सनातन बन्धनमुक्त हो गया है। शीघ्र ही मेरे पास आयागा।”

उस दिन मध्याह्नके समय श्रीरूप और श्रीअनुपम दोनों ही श्रीमहा-प्रभुके पास रहे। त्रिवेणीके ऊपर श्रीमहाप्रभुके वासस्थानके समीप ही श्रीरूप और श्रीअनुपमने डेरा डाला। इसी समय श्रीवल्लभ भट्ट (जो आगे चलकर ‘श्रीवल्लभाचार्य’ के नामसे विख्यात हुए) ‘आडाइल’ ग्राममें* रहते थे। श्रीमहाप्रभुके प्रयाग-आगमनका समाचार सुनकर

* आडाइल-ग्राममें श्रीवल्लभाचार्यकी ‘बैठक’ या ‘गद्दी’ अब भी

वल्लभ भट्ट उनके दर्शन करने आये और दण्डवत्-प्रणाम करके बहुत-सारी हरिकथाएँ श्रवण कीं। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरमुन्दरको निमंत्रित कर यमुनाके दूसरे पार आड़ाइल ग्राममें अपने घर ले जाकर भोजन कराया तथा सपरिवार उनका चरणोदक लिया तथा उनकी पूजा की; तब श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय करा दिया। वहाँ मिथिला-निवासी श्रीमद् रघुपति उपाध्यायके साथ श्रीमहाप्रभुका बहुत-सा रसालाप हुआ।



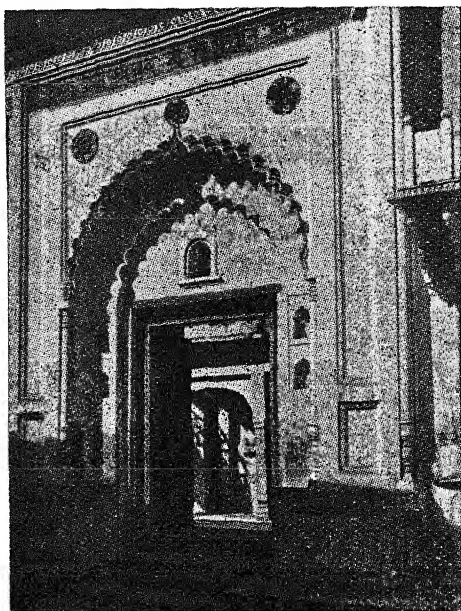
आड़ाइल ग्राममें श्रीनृसिंहदेवका श्रीमंदिर

वर्तमान है। जहाँ यह गद्दी है, उस मुहल्लेका नाम है 'देवरख'। 'देवरख'—'नैनी' स्टेशनसे ढाई मील है। जो लोग प्रयागसे इस स्थानके दर्शन करने आते हैं उनको यमुना पार होना पड़ता है।

श्रीवल्लभ भट्टने अपने पुत्रको श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें समर्पण किया तथा श्रीमहाप्रभुका प्रेमोन्माद देखकर वे उनको प्रयाग ले गये।

श्रीमहाप्रभुने प्रयागमें दस दिन रहकर 'दशाश्वमेध घाट' पर निर्जनस्थानमें श्रीरूपको शक्ति-संचारपूर्वक सूत्ररूपमें भक्तिरसके समस्त तत्वोंकी शिक्षा दी तथा इसी सूत्रका अवलम्बन करके 'श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु' नामक ग्रन्थकी रचना करनेका आदेश दिया।

'श्रीरूप-शिक्षा'का संक्षेपमें तात्पर्य यही है कि,—चौदहों ब्रह्माण्डोंमें अनन्त बद्धजीव चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। जीवोंमें स्थावर और जंगम—दो प्रधान श्रेणियाँ हैं। जंगम जीव तीन प्रकारके



श्रीप्रयागमें श्रीवेङ्गीमाधवके श्रीमंदिरका वहिर्द्वार

हैं,—जलचर, स्थलचर और नभचर। इनमें स्थलचर ही श्रेष्ठ हैं। स्थलचरोंमें मानव-जाति सर्वश्रेष्ठ है। मानव-जातिकी संख्या अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ी है। मनुष्योंमें असभ्य, सदाचारहीन और नास्तिक बहुत हैं। जिनको सदाचारी और वेदानुगामी कहा जाता है उनमें भी आधे तो केवल मुँहसे वेद मानते हैं। धार्मिक लोगोंमें अधिक संख्या कर्मियोंकी है, करोड़ों कर्मियोंमें कोई एक ज्ञानी



श्रीप्रयागमें दशरवमेध घाटपर 'श्रीरूप-शिक्षास्थली'

होता है। करोडो ज्ञानियोमे कोई एक मुक्त-पुरुष मिलता है। इस प्रकार कोटि मुक्त-पुरुषोमे एक श्रीकृष्णभक्त मिलना बहुत ही दुर्लभ है। श्रोकृष्णभक्त निष्काम होते हैं, अतएव शान्त होते हैं। कर्मी हो, ज्ञानी हो या योगी हो—ये सबके सब किसी-न-किसी प्रकारसे आत्म-सुख (धर्म, अर्थ, काम और कुछ नहीं तो मुक्ति)के लिये कुछ-न-कुछ वासना करते हैं। अतएव वे अशान्त होते हैं। इनमें कोई भी श्री-भगवान्‌के सुखका अनुसन्धान (चिन्ता, ध्यान) नहीं करते।

जीवका स्वरूप अति सूक्ष्म है, सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त जीव चित्कण है अर्थात् जीवशक्तिविशिष्ट ब्रह्मका अणु या कण है। वर्तमान स्थूल-देह (पाचभौतिक शरीर) तथा सूक्ष्मदेह (मन, बुद्धि और अहंकार), इन दो आवरणोसे बहिर्मुख जीवका नित्य स्वरूप आवृत है। इस प्रकार चौदहो ब्रह्माण्डोमें चौरासी लाख योनियोमें बार-बार भ्रमण करते-करते जीवका जब भगवान्‌की इच्छासे बन्धनसे छूटनेका समय आता है, तब कोई भी जीव अकस्मात् कोई साधुसग या साधु-सेवा करके परम सौभाग्य प्राप्त कर सकता है, तभी वह भाग्यवान् जीव सद्गुरुका अनुसन्धान तथा श्रीकृष्णकृपाके वाहन सद्गुरुके द्वारा भक्तिलताका बीज प्राप्त करता है। उस बीजको वह साधक जीव मालीकी भाँति अपने हृदय-क्षेत्रमें रोपता है तथा साधु-गुरुके मुँहसे भगवान् श्रीकृष्णकी कथाका निरन्तर श्रवण तथा उसी कथाका अनुकीर्तन-रूप जलसिचन करते हुए भक्तिलताके बीजको अकुरित कर पाता है। वह भक्तिलता क्रमशः बढ़ती हुई इसी चौदहो भुवनोकी वस्तुओमें ही आबद्ध नहीं रह सकती। ब्रह्माण्डके परे 'विरजा' नामकी एक चिन्मयी नदी है, वहाँ सत्व, रज और तमोगुणका पारस्परिक द्वन्द्व नहीं है, सभीका शान्त भाव है। विरजाके उस पार 'ब्रह्मलोक' है। निराकारका ध्यान करनेवाले तथा भगवान्‌के हाथसे मारे गये भगवद्-विद्वेषी लोग इसी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इसके भी ऊपर 'पर-व्योम' या 'वैकुण्ठ' है। वहाँ श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीसीताराम अथवा

श्रीविष्णुके अन्यान्य अवतारोके उपासक लोग श्रीभगवान्की साक्षात् सेवा करते हैं। इसके भी ऊपर है 'श्रीगोलोक वृन्दावन'। वहाँ श्रीकृष्णचरण-कल्पतरु नित्य वर्तमान हैं। श्रीभक्तिलता उसी कल्पतरु का आश्रय लेती है तब उसमें प्रेमफल लगते हैं। कल्पतरुसे प्रेमफल फल जाने पर भी भजन करनेवाला माली श्रवण-कीर्तनादिरूप जल-सिचनका कार्य बन्द नहीं करता, वह अनन्त कालतक श्रवण-कीर्तनादिरूप जल-सिचन करके श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करता रहता है।

इस प्रकार साधन करते-करते यदि अत्यन्त दुर्भाग्यवश किसीके पास श्रीमहत् (महा-भागवत)के श्रीचरणोंमें अपराध रूपी मत्त हाथी आकर खड़ा हो जाता है, तो वह मत्त हाथी उस भक्तिलताको जड़से उखाड़ फेंकता है, जिससे वह लता सूख जाती है। अतएव साधक मालीका कर्तव्य है कि वह सर्वदा विशेष सावधान रहकर यत्नपूर्वक भक्तिलताके चारो ओर आड़ लगा दे, जिससे वैष्णवापराधरूप हाथी किसी भी प्रकार भक्तिलताके पास न जा सके।

लताके साथ-साथ यदि उपशाखाएँ (जो देखनेमें लताके समान अर्थात् भक्तिके समान लगती हैं परन्तु वस्तुतः होती हैं—अवान्तर पदार्थ) उठती रहती हैं, वे उपशाखाएँ जल-सिचन अर्थात् भजन-साधनके बाह्य अभिनयके द्वारा बढ़ जाती हैं। उन उपशाखाओंके अनेको प्रकार हैं—जिनमें भोग-वाछा, मोक्ष-वाछा, शास्त्र-निषिद्ध आचरण, छल-कपट, जीवहिंसा, स्त्री, अर्थ-प्रभृति प्राप्त करनेकी तृष्णा, लोगोसे पूजा तथा सम्मान प्राप्तिकी आकांक्षा-प्रभृति प्रधान हैं। साधकको चाहिये कि पहले इन सारी उपशाखाओंको काट डाले। तभी मूल शाखा वृद्धिको प्राप्त होकर श्रीगोलोक-वृन्दावनमें श्रीकृष्णके श्रीचरणरूप कल्प-वृक्षपर आरोहण कर सकेगी।

श्रीकृष्णप्रेमके सामने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तृण-तुल्य हैं। भोग अथवा मोक्ष प्राप्तिके उद्देश्यसे विभिन्न कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले देवताओंकी पूजा छोड़कर एकमात्र लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी सुखानु-

सन्धानमयी भक्ति ही जीवके लिये परम प्रयोजन है । श्रीकृष्णके सुखकी इच्छाके अतिरिक्त किसी प्रकारकी भी अभिलाषामें लगे हुए स्वभावका त्याग करके, ब्रह्मके साथ एकीभूत होनेकी चिन्ता या ज्ञान, स्मृति-वर्णित नित्य-नैमित्तिकादि कर्म, फलु वैराग्य, योग और साख्य-ज्ञान प्रभृति जो श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानको आवृत करते हैं, उन्हें भी त्याग करके श्रीकृष्णमें अनुरागपूर्ण प्रवृत्तिके साथ जो कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टा और भावमय अनुशीलन है, वही 'उत्तमा या शुद्धा भक्ति' है । इस शुद्धा भक्तिसे 'प्रेमा' उत्पन्न होती है । यदि हृदयमें तनिक भी भोग या मोक्षकी वाछा है तो कोटि-कोटि जन्मोंके साधनसे भी कृष्णप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती ।

भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था, भावावस्था और प्रेमावस्था । प्रेम-भक्ति जब गाढसे गाढतर होने लगती है तब वह स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव पर्यन्त उन्नति करती है ।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने विभिन्न रसोंके तारतम्य तथा सेवाके गाढतर तारतम्यका वर्णन किया, श्रीरूपप्रभुको प्रयागसे श्रीवृन्दावन भेजकर श्रीमन्महाप्रभुने काशीके लिये गमन किया तथा वहाँ श्रीचन्द्र-शेखरके घरमें रहना स्थिर किया ।



तिहत्तरवां परिच्छेद श्रीकाशीमें 'श्रीसनातन-शिक्षा'

श्रीसनातन जब बादशाह हुसेनशाहके कोप-भाजन होकर कारागार में बन्द थे, उस समय उनको श्रीरूपका एक पत्र मिला। पत्र पानेके बाद श्रीसनातन कारागारके रक्षकको नाना प्रकारकी चिकनी-चुपडी बातोंसे फुसलाकर और उसे सात हजार रुपये घूस देकर कैदसे छूट गये तथा नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको पार करते हुए काशीमें श्रीचन्द्रशेखरके घरके द्वार पर जा पहुँचे। अन्तर्यामी श्रीमहाप्रभुने जान लिया कि श्रीसनातन घरके दरवाजेपर आ गये हैं, अतएव उन्हें भीतर बुलाया और उनकी दरवेशी दाढी तथा केशोंकी हजामत करवा कर तथा मलिन वेषका जिस बनावटी पोषाकमें वे भागकर आये थे उस पोषाकका त्याग कराकर उन्हें वैष्णवोचित कपडे पहनाये। श्रीसनातनने श्रीचन्द्रशेखरका दिया हुआ नया वस्त्र ग्रहण नहीं किया और श्रौतपन मिश्रकी दी हुई एक पुरानी धोती लेकर उससे दो बाहरी वस्त्र और कौपीन बना ली। श्रीमन्महाप्रभुके भक्त महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने श्रीसनातनको निमन्त्रित किया कि वे जब तक काशीमें रहें, उनके ही घर प्रतिदिन भोजन किया करे। परन्तु श्रीसनातनने एक स्थानपर भोजन करनेका विचार छोड़कर विभिन्न स्थानोंसे मधुकरी* भिक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातनके वैराग्यको देखकर आनन्दित हुए। गौडदेशसे भागकर आनेके समय रास्तेमें हाजीपुरमें श्रीसनातनके साथ उनके बहनोई श्रीकान्तकी भेंट हो गयी। शीतका

* मधुकर (अमर) जिस प्रकार विभिन्न फूलोंसे मधु संचय करके पान करता है, उसी प्रकार निष्किंचन भक्तगण एक स्थानपर किसी विषयी या दाताका राजसिक निमन्त्रण स्वीकार न कर विभिन्न घरोंसे कुछ-कुछ माँगकर भिक्षा किया करते हैं। यही 'मधुकरी' भिक्षा है।

अत्यन्त प्रकोप देखकर श्रीकान्तने विशेष अनुरोध करके श्रीसनातनको एक भोट कम्बल (भूटान देशका बनाया हुआ कम्बल) दिया। श्रीसनातनके शरीरपर वह भोट कम्बल था। श्रीमहाप्रभु उस कम्बलकी ओर बार-बार देखने लगे। श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुके अभिप्रायको समझकर मध्याह्नमें स्नानके समय गंगाके किनारे एक बगदेशीय व्यक्ति को अपना बहुमूल्य भोट कम्बल दे दिया और उसके बदलेमें उसकी एक गुदड़ी ले ली।

श्रीमहाप्रभुके काशीमें रहते समय श्रीसनातनने उनसे प्रश्न करके जीवके स्वरूप, कर्तव्य और प्रयोजनके सम्बन्धमें जो सारगर्भित उपदेश प्राप्त किया था, वही 'श्रीसनातन-शिक्षा'के नामसे विख्यात है।

'श्रीसनातन-शिक्षा'में श्रीचैतन्यदेवके प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त पाये जाते हैं। श्रीचैतन्यदेवने अद्वय-तत्त्व श्रीभगवान्‌के साथ उनकी शक्ति और शक्ति-परिणत वस्तुओंका अचिन्त्य-भेदाभेद-सम्बन्ध बतलाया है। जीवात्मा—जीवशक्ति-विशिष्ट श्रीकृष्णका नित्य दास है। जीव—सूर्यस्वरूप श्रीकृष्णके किरणका कण-स्थानीय है, और सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। किरण-कणको जिस प्रकार स्वयं सूर्य नहीं कहा जा सकता, साथ ही वह जिस प्रकार सूर्यसे सम्पूर्ण भिन्न भी नहीं है, उसी प्रकार जीव भी साक्षात् श्रीकृष्ण या परब्रह्म नहीं है, साथ ही वह श्रीकृष्ण या परब्रह्मसे सपूर्ण भिन्न भी नहीं है। जो सब जीव अनादिकालसे श्रीकृष्णको भूले हुए हैं, उनके उस भगवद्विस्मृतिरूप छिद्रको पाकर माया उनको आवृत और विक्षिप्त करके इस ससारमें सुख-दुःख देती है।

श्रीकृष्णकी अन्तरगा स्वरूपशक्ति और बहिरगा मायाशक्तिके तट (सीमास्थलमें) पर अवस्थित जीवशक्ति ही 'तटस्था शक्ति'के नामसे प्रसिद्ध है। जीव अणु-चेतन पदार्थ है, चेतनका स्वाभाविक धर्म ही है—स्वाधीनता या स्वतन्त्रता। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति चेतनमात्रमें ही रहती है, परन्तु वह चेतन पूर्ण चेतनका

‘अणु-अंश’ है, अतः उसकी ‘अणु-स्वतन्त्रता’ है अर्थात् जीवकी स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित है, परन्तु परमेश्वर पूर्ण-चेतन है, अतः उनकी स्वतन्त्रता असीम है और मानवीय चिन्तनसे अतीत है, वे स्वेच्छामय स्वराट् हैं। सायाबद्ध जीवोको कृष्ण-स्मृति-ज्ञान नहीं। उसके प्रति दया करके श्रीकृष्ण साधु-शास्त्र-गुरुरूपमें अपनेको प्रकट करते हैं। साधु-शास्त्रकी कृपासे ही श्रीकृष्णको जाननेकी इच्छा होती है। जिस प्रकार लोग ज्योतिषीसे अपने पैतृक धनका पता पाकर ठीक स्थानसे गुप्त धनको निकाल लाते हैं, उसी प्रकार साधु-शास्त्र और गुरुके द्वारा अपने स्वरूप, कर्तव्य और प्राप्य-वस्तुका पता पाकर उनके उपदेशोंके अनुसार साधन करनेपर श्रीगुरु-कृष्णकी कृपासे जीवको प्रेमधनकी प्राप्ति होती है।

श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व है, ब्रह्म श्रीकृष्णकी अग्र-ज्योति है। सूर्यको जिस प्रकार हम पृथ्वीसे केवल ज्योतिर्मय देखते हैं, परन्तु जो लोग सूर्यलोकमें वास करते हैं या सूर्यके समीप जा पाते हैं, वे सूर्यको अवयवयुक्त देखते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णके असम्यक् दर्शनसे अर्थात् बाहरी अग्रकी ज्योतिमात्रके देखनेपर ऐसी धारणा होती है कि, वे केवल ज्योतिर्मय हैं। योगीगण जो श्रीकृष्णको परमात्मा रूपमें देखते हैं, वह भी श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आशिक दर्शन है—वह श्रीकृष्णके वैभवका दर्शनमात्र है।

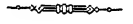
श्रीकृष्णकी स्वाभाविकी शक्ति अनन्त है, परन्तु उस शक्तिका त्रिविध परिज्ञान मुख्य रूपसे प्रसिद्ध है। प्रथम—उनकी बहिरगा या अचित्-शक्ति, दूसरी—उनकी अन्तरगा या चित्-शक्ति, एवं तीसरी—उनकी चित्-अचित्—इन दो शक्तियोंके सन्विस्थलरूप तदपर अवस्थित जीव-शक्ति। अचित् मायाशक्तिसे यह दृश्यमान जड जगत् प्रकट हुआ है, अन्तरगा शक्तिसे भगवान्‌के निज धाम और उनके सेवकगण प्रकट हुए हैं, और तदस्था शक्तिसे जीव-समूह प्रकट हुआ है। भगवान्‌के साथ जीवका जो सम्बन्ध है, उस ज्ञानका नाम ‘सम्बन्ध-ज्ञान’

हैं। श्रीभगवान्—‘सम्बन्धी’ तत्त्व है। महत्की कृपासे नित्यसिद्ध-भावको हृदयमें प्रकट करना ही ‘साधन’ है, वही ‘अभिधेय’ है। उस साधनका जो चरम उद्देश्य या फल है, वही जीवका ‘प्रयोजन’ या प्राप्य-वस्तु है। श्रीकृष्णके साथ जीवका नित्य प्रभु-सेवक-सम्बन्ध है, श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान ही जीवका सबसे प्रधान अभिधेय है, और श्रीकृष्णको सुखी देखकर स्वयं सुखानुभव करना ही साधनका फल है, यही प्रयोजन या श्रीकृष्ण-प्रेम है।

‘साधन भक्ति’ दो प्रकारकी होती है—‘वैधी भक्ति’ और ‘रागा-नुगा भक्ति’। जो लोग शास्त्रके शासन या कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा शासित होकर भगवान्की सेवा करनेके लिये साधन करते हैं, उनके इस साधनको ही ‘वैधी भक्ति’ कहते हैं। श्रीब्रज-गोपिकाएँ, श्रीनन्द-यशोदा, श्रीदाम-सुदाम, श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रक प्रभृति ब्रजके नित्यसिद्ध सेवकगण अपने स्वाभाविक अनुरागके साथ माधुर्य-विग्रह श्रीकृष्णकी जो सेवा करते हैं उसे ‘रागात्मिका साध्य-भक्ति’ कहते हैं। उस ‘रागात्मिका भक्ति’ में जिनका स्वाभाविक अनुराग या लोभ होता है, वे उन सब ब्रज-वासियोंके अनुगत होकर श्रीकृष्णकी जो सेवा करते हैं उसे ‘रागानुगा भक्ति’ कहते हैं।

अन्तःकरणमें आदौ (सर्वप्रथम) ‘श्रद्धा’का उदय होनेपर जीव ‘साधुसग’ किया करता है। साधुसगमें हरिकथा ‘श्रवण, कीर्तन’ करते करते श्रद्धालु व्यक्तिके हृदयकी नाना प्रकारकी कामना-वासना, दुर्बलता, अपराध, अपने स्वरूपकी भ्रान्ति आदि अनर्थसमूह दूर होते हैं। इस अवस्थाका नाम है ‘अनर्थ-निवृत्ति’। इसके बाद ‘निष्ठा’का उदय होता है अर्थात् भगवान्की सेवामें निरन्तर लगे रहनेकी इच्छा होती है। पश्चात् उस सेवामें स्वाभाविक ‘रुचि’ और तत्पश्चात् ‘आसक्ति’ उत्पन्न होती है, यहाँ तक ‘साधन-भक्ति’ है। इसके बाद श्रीकृष्णमें प्रीतिका अकुर या ‘भाव’ का उदय होता है। यही भाव क्रमशः परिपक्व होकर ‘प्रेम’ रूपमें प्रकट हुआ करता है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति का यही क्रम है।

श्रीसनातनकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीमन्महाप्रभुने काशीमें “आत्मा-राम” श्लोककी* इकसठ प्रकारकी व्याख्या की थी। श्रीगौरसुन्दरने श्रीसनातनको वैष्णव-स्मृति-शास्त्र ‘श्रीहरिभक्तिविलास’ की रचना करनेके लिये आदेश देकर उसके विषयोका सूत्ररूपमें निर्देश कर दिया था।



चौहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीप्रकाशानन्द-उद्धार

एक दिन श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपन मिश्रने अत्यन्त दुःखके साथ श्रीमन्महाप्रभुसे कहा कि,—“काशीके मायावादी सन्यासीगण निरन्तर आपकी निन्दा करके महान् अपराधके भागी हो रहे हैं”, इसी समय एक ब्राह्मण आया और श्रीमन्महाप्रभुको निमन्त्रित करके कहा,—“आज मैंने अपने घर काशीके सभी सन्यासियोंको निमन्त्रित किया है, यदि आप कृपा करके मेरे घर एक बार चरण-धूलि दें तो मेरा अनुष्ठान पूर्ण और सफल हो जाय। आप काशीके सन्यासियोंसे नहीं मिलते-जुलते, इसे मैं जानता हूँ। तथापि आज मुझपर एक बार कृपा कीजिये।”

ब्राह्मणके निमन्त्रणको स्वीकार कर श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मणके घर सन्यासियोंकी सभामें यथासमय उपस्थित हुए, सबको नमस्कार कर उन्होंने बाहर जाकर पैर धोये तथा उसी स्थानमें बैठकर कुछ

* आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युत्क्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्यभूतगुणो हरि ॥

—भा० १।७।१०, चै०च० म०६।१८६

[जिनके अज्ञानकी ग्रन्थि टूट चुकी है, ऐसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान्की अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान्में ऐसे ही गुण हैं।]

ऐश्वर्य प्रकाशित किया । सन्यासीलोग श्रीकृष्णचैतन्यदेवके महातेजोमय रूपको देखकर अपने-अपने आसनको छोड़कर तुरन्त खड़े हो गये । उनके गुरु श्रीप्रकाशानन्दने भी श्रीमन्महाप्रभुको वह स्थान छोड़कर उत्तम स्थानमें आनेके लिये अनुरोध किया तथा उनको विशेष सम्मानके साथ सभाके बीचमें बैठाया ।

सन्यासी श्रीप्रकाशानन्दने श्रीकृष्णचैतन्यके काशीके सन्यासियोंके साथ न मिलनेके लिये उलाहना दिया ।

सन्यासी हड़या कर नर्त्तन-गायन ।
भावुक सब सङ्गे लग्न करह कीर्त्तन ॥
वेदान्त-पठन, ध्यान—सन्यासीर धर्म ।
ताहा छाड़ि कर केने भावुकेर कर्म ॥
प्रभावे देखि ये तोमा साक्षात् नारायण ।
हीनाचार कर केने, इथे कि कारण ॥

—चै० च० आ० ७।६८-७०

[सन्यासी होकर नाचते-गाते हो, सभी भावुकोको साथ लेकर कीर्त्तन करते हो । यह कैसा ? सन्यासीका तो धर्म है वेदान्तका पाठ करना और ध्यान करना । तुम ये सब छोड़कर भावुककी तरह क्यों कार्य करते हो ? तुम्हारे प्रभावको देखकर लगता है जैसे तुम साक्षात् नारायण हो, किंतु तुम्हारा आचार हीनोकी तरह क्यों है ? इसका क्या कारण है ?]

श्रीमहाप्रभुने छलना करते हुए दीनताके साथ कहा,—“मेरे गुरुदेवने मुझे ‘मूर्ख’ और ‘वेदान्तमें अनधिकारी’ समझकर शासन किया और सर्वदा श्रीकृष्णका मन्त्र और श्रीकृष्णका नाम जपनेकी आज्ञा दी है ।”

कृष्णमन्त्र हैते ह'बे संसार-मोचन ।
कृष्णनाम हैते पा'बे कृष्णेर चरेण ॥
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म ।
सर्वमन्त्र-सार नाम—एइ शास्त्र-मर्म ॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

—च० च० आ० ७।७३-७४, ७६

[कृष्णमन्त्रसे ससारसे मुक्ति होगी । कृष्णनामसे कृष्णके चरणों की प्राप्ति होगी । कलिकालमें नामके अतिरिक्त और धर्म नहीं है । सारे मन्त्रोका सार श्रीकृष्णका नाम है । यही शास्त्रोका मर्म है । हरिका नाम, हरिका नाम, केवल हरिका नाम ही है । कलियुगमें अन्यथा गति ही नहीं, गति ही नहीं, गति ही नहीं ।]

इसके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने चतुराईसे यह बतलाया कि, जो लोग अपनेको वेदान्तके अधिकारी होनेका अभिमान करके श्रीहरिनामको सामान्य वस्तु समझते हैं, वस्तुतः वे ही वेदान्तके अनधिकारी हैं । सारे वेदमन्त्रोका सार और समस्त शास्त्रोका मर्म है—श्रीहरिनाम । इसी कारण वेदमन्त्रके आदिमें और अन्तमें प्रणव (ॐ)का व्यवहार होता दिखायी देता है । प्रत्येक 'वेदान्तसूत्र'के आदि और अन्तमें यही शब्द-ब्रह्म या प्रणव रहता है । वेदान्तके 'फलपाद'का प्रथम सूत्र—"ॐ आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" और अन्तिम सूत्र—"ॐ अनावृत्ति शब्दात्, " अनावृत्ति शब्दात्" ने शब्दब्रह्म श्रीनामकी निरन्तर आवृत्ति और उसीके द्वारा ससारमें अपनरावृत्ति (आवागमनसे मुक्ति) का उपदेश दिया है । अर्थात् श्रीकृष्णमन्त्रके द्वारा जीवका ससार-मोचन, तथा श्रीनामके द्वारा कृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है । इस श्रीकृष्णप्रेमके सम्बन्धमें श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं,—

कृष्णविषयक प्रेमा परम पुरुषार्थ ।

या'र आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ ॥

पंचम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृतसिन्धु ।

ब्रह्मादि-आनन्द या'र नहे एक विन्दु ॥

—च० च० आ० ७।८४-८५

[श्रीकृष्ण-प्रेमभक्ति ही परम पुरुषार्थ है। इसके सामने चारो पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तृणके समान हैं। पंचम पुरुषार्थ है—‘प्रेमानन्दामृत-सिन्धु’ ब्रह्मानन्द आदि इसका एक बिन्दु भी नहीं है।]

श्रीमहाप्रभु कहने लगे,—“वेदान्त-शास्त्रने ‘ब्रह्म’-शब्दसे मुख्य अर्थमें सविशेष-स्वरूप भगवान्‌का ही निर्देश किया है। जीवतत्त्व—शक्ति है, कृष्णतत्त्व—शक्तिमान् है। जीवका स्वरूप चिनगारीके समान क्षुद्राति-क्षुद्र सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, परिकर, लीला और धामको ‘प्राकृत’ अथवा सगुण (व्यवहारिक) समझनेके समान कोई भी नास्तिकता नहीं है। वेदान्तमे ‘शक्ति-परिणामवाद’ ही स्वीकृत हुआ है। चिन्तामणिके रत्न-प्रसवकी भाँति भगवान्‌की अचिन्त्यशक्ति इस जड जगत्‌को प्रसव करके भी स्वयं अविकृत रहती है। आचार्य श्रीशकरने वेदसे जिन ‘महावाक्योक्त्या’ चयन किया है, उनको ‘महावाक्य’ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें वेदका सार्वदेशिक विचार नहीं पाया जाता। वेदवृक्षका बीज प्रणव ही महावाक्य है और ईश्वरका स्वरूप है। भगवान्‌को केवल निर्विशेष कहकर उनकी स्वरूपानुबन्धिनी नित्या शक्तिको अस्वीकार करनेपर भगवान्‌के केवल आधे स्वरूपको मानना होता है और उसका परिणाम है भगवान्‌की पूर्णताको ही अस्वीकार करना।”

श्रीकृष्णचैतन्यके मुखसे वेदान्तके ठीक तात्पर्यकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर काशीके मायावादी सन्यासिगण श्रीचैतन्यदेवकी कृपासे

* वेदके मूल वाक्यको ‘महावाक्य’ कहा जाता है। कोई-कोई ‘तत्त्व-मसि’ (छा० ६।८।७), “इद सर्वं यदयमात्मा, ब्रह्मोद सर्वम्” (वृ० आ० २।५।१), “आत्मैवेद सर्वम्” (छा० ७।२।५।२), “नेह नानास्ति किञ्चन” (कठ० २।१।११, वृ० आ० ४।४।१६) इत्यादिको ‘महावाक्य’ कहते हैं। वस्तुतः “तत्त्वमसि” आदि मन्त्रसे जो उद्दिष्ट है, वह वेदका केवल एकदेशीय उपदेश है। जो वेदमें सर्वदेश-व्यापी है वही ‘महावाक्य’ है। प्रणव ही (उँकार ही) एकमात्र ब्रह्मवाचक ‘महावाक्य’ है।

मायावादके चगुलसे उद्धार हुए। काशीमें एक दिन श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ 'श्रीविन्दुमाधव'के मंदिरमें सकीर्तन कर रहे थे, उसी समय श्रीप्रकाशानन्द अपने शिष्योंके साथ वहाँ उपस्थित हुए और महाप्रभुके चरणोपर गिरकर अपने पूर्व कार्योंके लिये अपनेको धिक्कारते हुए वेदान्त-सगत भक्तितत्त्वके विषयमें जिज्ञासा की। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमद्-भागवतको ही 'वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य' बतलाया।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप और श्रीअनुपमके पास भेज दिया।



पचहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीसुबुद्धि राय

हुसेनशाहके पूर्व 'सुबुद्धि राय' नामक एक व्यक्ति 'गौड'के भूम्यधिकारी थे। उस समय हुसेन सुबुद्धि रायके अधीन एक कर्मचारी थे। कहा जाता है कि, सुबुद्धि रायकी आज्ञाके अनुसार तालाब खुदवानेके काममें हुसेनशाह निरीक्षकके पदपर नियुक्त थे। उस कार्यमें ढिलाई करनेपर सुबुद्धि रायने हुसेनको कोड़े लगवाये थे। उसकी पीठपर उन कोड़ोके निशान बहुत दिनोतक रहे। हुसेन जब गौडके बादशाह हुए तब उन्होने अपनी बेगमके अनुरोधसे सुबुद्धि रायको जाति-भ्रष्ट कर दिया। सुबुद्धि रायने जब काशीके पंडितोंसे प्रायश्चित्तकी व्यवस्था पूछी तो, उन्होंने सुबुद्धि रायको उबलता हुआ घृत पीकर शरीर त्याग करनेकी व्यवस्था दी। श्रीमहाप्रभु जब काशीमें आये, तब सुबुद्धि रायने महाप्रभुसे सारी बातें कहकर अपने कर्तव्यके विषयमें पूछा। श्रीमहाप्रभुने पंडितोंकी उस व्यवस्थामें कोई भी वास्तविक

कल्याणकी सम्भावना नहीं है, यह समझाकर उनको निरन्तर श्रीकृष्णनाम-सकीर्तनका उपदेश दिया,—

“एक ‘नामाभासे’ तोमार पाप-दोष या’बे ।

आर ‘नाम’ लइते कृष्ण-चरण पाइबे ॥

आर कृष्णनाम लँते कृष्णस्थाने स्थिति ।

महापातकेर हय एइ प्रायश्चित्ति ॥”

—चै० च० म० २५।१६२-१६३

[एक ‘नामाभास’से तुम्हारे पाप-दोष मिट जायेंगे । और नाम लेनेपर तुम श्रीकृष्णचरणोंको प्राप्त करोगे । और कृष्णनाम लेनेपर कृष्णके स्थानमें स्थिति होगी । महापापका यही प्रायश्चित्त है ।]

श्रीसुबुद्धि राय श्रीवृन्दावनमें जाकर दत्त-चित्त हो श्रीहरि-भजनमय जीवन व्यतीत करने लगे और उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीप्रभुके साथ श्रीवृन्दावनके ‘द्वादश-वनो’का भ्रमण किया ।



छिहत्तरवाँ परिच्छेद

पुनः श्रीनीलाचलमें

श्रीमन्महाप्रभु श्रीबलभद्र भट्टाचार्यके साथ ‘पुरी’ लौट आये । गौडीय भक्तवृन्दने श्रीमन्महाप्रभुके पुरी लौट आनेकी बात सुनकर पुरीकी ओर यात्रा की ।

श्रीशिवानन्द सेनके साथ एक भगवद्भक्त कुत्ता भी पुरीकी ओर जा रहा था । एक दिन श्रीशिवानन्द सेनका नौकर कुत्तेको रात्रिमें आहार देना भूल गया, तब वह कुत्ता कहीं चला गया—कोई उसका

पता न लगा सका। अन्तमें जब भक्तगण पुरीमें श्रीमहाप्रभुके समीप उपस्थित हुए तो, उन्होंने देखा कि वह कुत्ता श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोंके सामने कुछ दूरी पर बैठा है। श्रीमहाप्रभु कुत्तेको नारियलकी गिरी-प्रसाद फेंक-फेंक कर दे रहे हैं और “राम, कृष्ण, हरि बोलो” कह रहे हैं। कुत्ता श्रीमहाप्रभुके दिये हुए प्रसादको पाकर बार-बार ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहने लगा। यह देखकर सब लोग चकित हो गये। श्रीशिवानन्द सेनने भी दण्डवत्-प्रणाम करके कुत्तेसे अपने अपराधकी क्षमा-प्रार्थना की। इसके बाद उस कुत्तेको फिर किसीने नहीं देखा। कुत्ता सिद्धदेह पाकर वैकुण्ठको चला गया।

श्रीरूपगोस्वामिपाद श्रीवृन्दावन-धामसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आकर ठाकुर श्रीहरिदासके साथ रहने लगे। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे रथके सामने श्रीमहाप्रभुके नृत्यकालमें ‘काव्यप्रकाश’ का एक विरह-श्लोक* सुना था। उस श्लोकका गूढ़ तात्पर्य केवल श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपादको ही ज्ञात था। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे उस श्लोकको सुनकर उसीके अनुरूप एक श्लोककी रचना की और उसे एक तालपत्रपर लिखकर अपने बासेके छप्परमें खोसकर वे समुद्र-स्नान करने चले गये। उसी समय अचानक श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप से भेट करनेके लिये उनके बासेपर गये और छप्परमें खोसे हुए तालपत्र पर एक श्लोक लिखा देखा। श्लोक पढ़ते ही श्रीमहाप्रभु भावाविष्ट हो गये। इधर श्रीरूपपाद समुद्र-स्नान करके लौटे और श्रीमन्महा-प्रभुके श्रीपादपद्मोंमें जैसे ही प्रणत हुए, श्रीमन्महाप्रभुने स्नेहाधिक्यवश श्रीरूपको चपत लगाकर गोदमें ले लिया। और कहा,—

* य कौमारहर स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा—
स्ते चोन्मीलित-मालतीसुरभय प्रौढा कदम्बानिला ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी-तरुतले चेत समुत्कण्ठते ॥

—काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

“मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने ।

मोर मनरेर कथा तुजि जानिल केमने ?”

—चै० च० म० १।६९

[मेरे श्लोकका अभिप्राय कोई आदमी नहीं जानता, फिर तूने मेरे मनकी बात कैसे जान ली ?]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपपर बहुत तरहसे स्नेह-कृपा की तथा श्रीस्वरूप-गोस्वामीको श्रीरूपपादके रचे हुए इस श्लोकको* ले जाकर दिखलाया । श्रीस्वरूप बोले,—“आपके हृदयकी बात श्रीरूप जानते हैं, अतएव वे आपकी कृपाके पात्र हैं, अन्तरंग निजजन हैं ।” श्रीमहाप्रभुने कहा कि, “श्रीरूपके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मैंने उनमें सर्वशक्तिका संचार कर दिया है । श्रीरूप ही अप्राकृत गूढरसके विचारमे योग्य पात्र है ।” श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप गोस्वामीसे भी कह दिया कि,—“तुम भी उसको गूढ रसकी बातें कहना ।”

फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीरायरामानन्द, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीस्वरूप गोस्वामी आदि भक्तोंके साथ श्रीहरिदास ठाकुरके बासे पर जाकर श्रीरूपसे मिले, श्रीरूप-रचित “प्रिय सोऽय” और “तुण्डे ताण्डविनी”† दो श्लोकोकी प्रशंसा अत्यन्त उल्लासके साथ करने

* प्रिय सोऽय कृष्ण सहचरि । कुक्षेत्रमिलित-

स्तथाह सा राधा तदिदमुभयो सगमसुखम् ।

तथाप्यन्त-खेलन्मधुर-मुरलीपचमजुषे

मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥

—पद्यावली ३८३

[हे सहचरि, मेरे वे अतिप्रिय कृष्ण आज कुक्षेत्रमें मिले, मैं भी वही राधा हूँ और हम दोनोंके मिलनका सुख भी निश्चय वही है, तथापि वनमें क्रीडाशील इन कृष्णकी मुरलीके पचम सुरमें आनन्द-प्लावित कालिन्दीपुलिनगत वनके लिये मेरा चित्त स्पृहा करता है ।]

† तुण्डे ताण्डविनी रति वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णावुदेभ्य स्पृहाम् ।

लगे । प्रसगत श्रीरूपके 'श्रीललित-माधव' और 'श्रीविदग्ध-माधव' दोनों नाटकोके मुखबन्धादि श्लोकोको श्रवण किया । श्रीरामानन्द-रायने दोनों नाटकोके अनेक अंग-उपागोपर विचार करके बतलाया कि दोनों ही नाटक सर्वोत्कृष्ट हुए हैं ।

'श्रीभगवान् आचार्य' नामक एक सरल ब्राह्मण पुरीमें श्रीमहाप्रभुके पास रहते थे । उनके कनिष्ठ भ्राता गोपाल भट्टाचार्य काशीमें मायावादियोसे वेदान्त पढकर पुरीमें श्रीमहाप्रभुके समीप आये । श्री महाप्रभुने बाहरी शिष्टाचार दिखलाते हुए भी भीतरसे उनका आदर नहीं किया ।



सतहत्तरवाँ परिच्छेद

छोटे हरिदास

एक दिन श्रीभगवान् आचार्यने श्रीमन्महाप्रभुके कीर्तनिया (प्रभुको कीर्तन सुनानेवाले) छोटे हरिदासको श्रीशिखीमाहितीकी बहन श्रीमाधवी

चेत प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणा कृति
नो जाने जानिता कियद्भिरमृतै कृष्णेति वर्णद्वयी ॥

—वि० मा० ना० १।१५

[न जाने 'कृष्ण'—ये दो वर्ण कितने अमृतके साथ उत्पन्न हुए हैं, देखो, जब (नटीके समान) वे तुण्ड (मुख) में नृत्य करते हैं, तब बहुतसे तुण्ड(मुख) पानेके लिये रतिविस्तार (अर्थात् आसक्ति-वर्धन) करते हैं, जब कर्ण-कुहरमें प्रवेश करते हैं (अकुरित होते हैं), तब अरबों कानोंके पानेकी स्पृहा उत्पन्न होती है और जब चित्तप्रागण में (सगिनीरूपमें) उद्धित होते हैं, तब समस्त इन्द्रियोकी क्रियापर विजय प्राप्त करते हैं ।]

देवीके पास जाकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये कुछ महीन चावल माँगकर लानेके लिये कहा। श्रीमाधवी देवी वृद्धा, तपस्विनी और परम वैष्णवी थी। श्रीमहाप्रभुके भक्तोंमें केवल साढे तीन व्यक्ति श्रीराधिकाके परिकर थे, एक—श्रीस्वरूप गोस्वामी, दूसरे—श्रीरायरामानन्द, तीसरे—श्रीशिखीमाहिती और आधी उनकी बहन श्रीमाधवी देवी।

मध्याह्नमें जब श्रीमहाप्रभु श्रीभगवान् आचार्यके घर भोजनके समय आये, तो पूछा कि “ऐसे बढिया महीन चावल कहाँसे लाये गये है?” उत्तरमें जात हुआ कि छोटे हरिदास श्रीमाधवी देवीसे भिक्षा माँगकर ये चावल लाये हैं। तब श्रीमहाप्रभुने बासेमें लौटकर श्रीगोविन्द को आदेश दिया कि “अब छोटे हरिदासको यहाँ न आने देना। तुम आजसे मेरे इस आदेशका पालन करना।”

‘घरमें आनेकी मनाही’ हो गयी है, यह सुनकर श्रीहरिदासके मनमें दुःख हुआ और वे उपवास करने लगे। श्रीस्वरूप गोस्वामीपाद आदि भक्तोंने छोटे हरिदासके अपराधके विषयमें जब जानना चाहा तो महाप्रभु बोले,—

“* * वैरागी करे’ प्रकृति-सम्भाषण ।

देखिते ना पारो आमि ताहार बदन ॥

दुर्वार इन्द्रिय करे विषय ग्रहण ।

दारुप्रकृति हरे’ मुनरेपि मन ॥

—चै० च० अ० २।११७-११८

[जो वैरागी (साधु) स्त्रीसे बातचीत करता है, मैं उसका मुख नहीं देख सकता। इन्द्रियाँ बड़ी दुर्दमनीया हैं, ये विषयोंका ग्रहण कर लेती हैं। काठकी बनी हुई स्त्री भी मुनिका मन हर लेती हैं।]

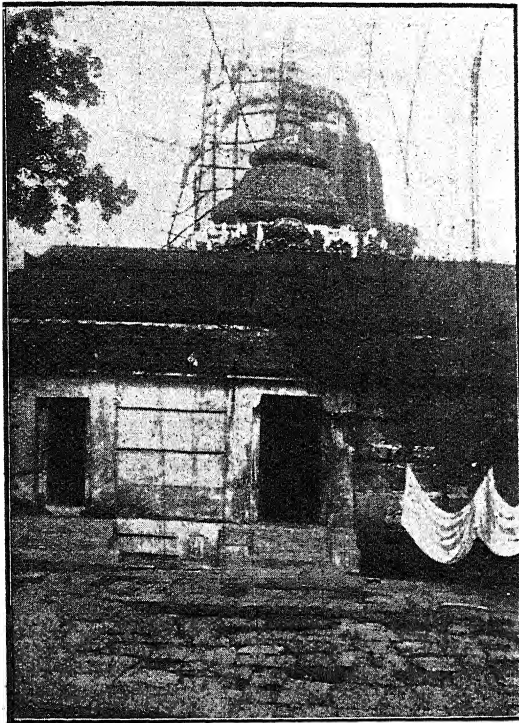
मात्रा स्वप्ना दुहित्रा वा नाविविक्तासनो वसेत् ।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

—भा० ६।१६।१७, मनुसंहिता २।२१५, चै० च० अ० २।११६

[माता, बहिन अथवा कन्याके साथ एकान्तमें एक आसन पर कभी न रहे, क्योंकि बलवती इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषके भी मनको आकर्षित कर लेती हैं ।]

दूसरे दिन श्रीपरमानन्दपुरीपादने श्रीमन्महाप्रभुको श्रीहरिदासके प्रति प्रसन्न होनेके लिये अनुरोध किया तो श्रीमहाप्रभुने असन्तुष्ट होकर



श्रीअलालनाथका श्रीमंदिर ; यहाँपर
श्रीमन्महाप्रभुका पदार्पण हुआ

‘पुरी’ छोड़कर ‘अलालनाथ’* चले जानेकी इच्छा प्रकट की। पूरा एक वर्ष बीत गया तथापि श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्न नहीं हुए—यह देखकर छोटे हरिदासने श्रीमहाप्रभुकी सेवा-प्राप्त करनेका सकल्प करके प्रयाग जाकर ‘त्रिवेणी’के पवित्र जलमें देहत्याग कर दिया। श्रीश्रीवास पंडित जब दूसरे चातुर्मास्यके समय पुरी आये और श्रीमहाप्रभुसे हरिदासके विषयमें पूछा तो, श्रीमहाप्रभुने ‘स्वकर्मफलभुक् पुमान्’ अर्थात् जीव अपने-अपने कर्मोंके फलको भोगता है,—इतना ही उत्तर दिया। श्रीश्रीवास पंडितने तब छोटे हरिदासके त्रिवेणीमें देहत्यागकी बात कही तो श्रीमहाप्रभु बोले,—

“प्रकृति दर्शन कैंले एइ प्रायश्चित्त।”

—चै० च० अ० २।१६५

[स्त्री-दर्शन करनेका यही प्रायश्चित्त है।]

निजजन श्रीहरिदासके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी दण्ड-विधानरूप माया (कपट) रहित दया और श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रीहरिदासकी सेवाबुद्धि और गाढ अनुराग कितने अधिक परिमाणमें था, यह दिखलानेके लिये उसकी सामान्य त्रुटिको भी श्रीमहाप्रभु सहन करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हुए। प्रभुके गाढ अनुरागका पात्र होनेकी इच्छा होनेपर प्रत्येक शुद्ध भजनेच्छु भक्तके लिये यही उचित है कि वह सब प्रकारकी ऐहिक इन्द्रिय-सुख-लालसाका सर्वतोभावेन परित्याग करे, अन्यथा श्रीगौरहरि सेवकके रूपमें उसको ग्रहण नहीं करते। श्रीमन्महाप्रभुने और भी शिक्षा दी कि, श्रीप्रयाग आदि विष्णु-तीर्थमें देहत्याग करनेपर

* अलवरनाथ शब्दका अपभ्रंश है—‘अलालनाथ’। विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायमें प्राचीन सिद्धपार्षद महापुरुष ‘अलवर’ शब्दसे अभिहित होते हैं। अलवरोके नाथ चतुर्भुज विष्णुमूर्ति श्रीजनार्दन यहाँ विराजमान हैं। १४३२ शकाब्दमें महाप्रभुने प्रथम बार यहाँ पदार्पण किया। १३३३ बंगला सन्में यहाँ श्रीविश्ववैष्णवराज-सभाका एक शाखा-मठ स्थापित हुआ है।

लोग अपराधादिसे मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। लोक-शिक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुने अपने भक्त श्रीहरिदासको पहले नहीं ग्रहण किया, परन्तु पीछे उनके मुखकी श्रीकृष्णकीर्तिनरूप सेवा स्वीकार करके उन्हें अपने भक्तके रूपमें ही स्वीकार कर लिया। अपने पार्षदभक्त श्रीहरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने गृह-त्यागी साधक वैरागियोंके लिये आचारकी शिक्षा दी है। प्रचारक वैष्णवाचार्योंका आसन और आचरणकारी भक्तोंका आसन कैसा होना चाहिये, इसका उपदेश इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने सर्वसाधारणको दिया है। असत् चरित्र और छिपे-छिपे व्यभिचार-परायण वैष्णववेषधारी व्यक्तियोंको देखकर जो उनको श्रीमहाप्रभुके अनुगत वैष्णव समझते हैं, उनकी भ्रान्त धारणाका सशोधन भी श्रीमहाप्रभुकी अपने पार्षद छोटे हरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा होना उचित ही है।

जहाँ पाप है, वहाँ कोई भी विष्णु-सम्बन्ध नहीं है, यदि दैवात् पाप हो जाता है तो उससे विष्णुभक्तका आदर नहीं होता। लौकिक-श्रद्धायुक्त व्यक्तिके भी मनमें पाप करते समय कोडेकी चोट जैसी लगती है,—भगवान् विष्णु इससे सुखी नहीं होते, इस विचारमें, वह फिर पाप नहीं करता, शीघ्रही पाप छोड़कर श्रद्धावान् हो जाता है। अतएव जिसके मनमें शास्त्रीय-श्रद्धाका उदय हो गया है, ऐसे भगवद्भक्तमें तो पाप रह ही नहीं सकते।

शास्त्रीय श्रद्धा*, जो शुद्धा भक्तिका कारण है—इस प्रकारकी श्रद्धासे युक्त भक्तके कोई भी पाप नहीं रह सकता। ज्ञानमिश्र साधक-भक्तका अधिकारानुसार दण्डदान और दण्डस्वीकार कल्याण-दायक होता है, ये दो महती शिक्षा अपने पार्षद भक्त छोटे हरिदासके प्रति दण्ड-लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने दी है। किन्तु मुमुक्षु-साधकके लिये जो शिक्षा

* शास्त्रने बहिर्मुख मानव-जातिके लिये जो नित्य शासनविधान किया है, उसके प्रति दृढ़ अविचलित विश्वास ही शास्त्रके अर्थाविधारणसे उत्पन्न श्रद्धा अथवा 'शास्त्रीय श्रद्धा' है।

उचित है उसे जातभाव व्यक्तिके ऊपर आरोप करनेपर अपराधभाजन होकर चिरकालके लिये भक्तिपथसे भ्रष्ट होना पड़ेगा । श्रीरूप गोस्वामिपादने कहा है कि, जातभाव व्यक्तिके यदि (बाह्य दुराचारतारूप) वैगुण्यवत् कुछ दिखलायी भी दे तो उसमें असूयान करे, क्योंकि वे उससे निर्लिप्त हैं, इसीलिये तो भावप्राप्तिमें वह सर्वतोभावसे कृतार्थ हुए हैं । पूर्णचन्द्र बाहरसे मृगचित्तसे लाञ्छित होनेपर भी कभी अन्धकारसे पराभूत नहीं होते, इसी प्रकार श्रीभगवान् हरिमें अनन्यचित्त मनुष्य भी बाहरसे अत्यन्त दुराचारशील दीख पड़ने पर भी अन्तर्विशजमान भक्तिके बलसे अन्यान्य लोगोको पराभव करके ही शोभा-विस्तार करते हैं ।*

— or —

अठहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीनीलाचलमें विविध-शिक्षा-प्रचार

[१]

‘पुरी’ में किसी सुन्दरी विधवा ब्राह्मण-युवतीका एक अति सुन्दर पुत्र था । उसको प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुके पास आते तथा श्रीमहाप्रभुको उस बालकके स्नेह करते देखकर श्रीदामोदर पंडितने † श्रीमहाप्रभुसे कहा, --“इस बालकको स्नेह करनेपर लोग आपके चरित्रमें सन्देह करेगे ।” यह बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने एक दिन श्रीदामोदरको तब-

* भ० २० सि० १।३।५६-६०

† श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीदामोदर पंडित—दो पृथक् व्यक्ति हैं । ये दोनों ही श्रीमन्महाप्रभुके भक्त हैं ।

द्वीपमें श्रीशचीमाताके देख-रेखके लिये भेज दिया । इसके द्वारा श्री-महाप्रभुने बतलाया कि, साधक जीवके लिये जो शासन (नियम) आवश्यक है, सिद्धपुरुष या भगवान्को उसी शासन (नियम) के अधीन करना केवल अपना भ्रम ही नहीं, बल्कि ऐसा करना उनके चरणोंमें अपराध करना है ।

अधिकारी वैष्णव न बुद्धि' व्यवहार ।

ये-जन निन्दये, ता'र नाहिक निस्तार ॥

अधम जनेर ये आचार, येन धर्म ।

अधिकारी वैष्णवेश्रो करे सेइ कर्म ॥

कृष्ण-कृपाय से इहा जानिवारे पारे ।

ए-सब संकटे केह मरे, केह तरे ॥

—चै० भा० अ० ६।३८७-३८६

[अधिकारी वैष्णवके व्यवहारको न समझकर जो मनुष्य उनकी निन्दा करता है, उसका निस्तार नहीं है । अधम मनुष्यका जैसा आचार, धर्म है, लोक-चक्षुसे देखनेपर ऐसा लगता है अधिकारी वैष्णव भी वही कर्म कर रहा है । किन्तु दोनोंका पार्थक्य कृष्णकृपाके द्वारा ही जाना जा सकता है । इन सब संकटोंसे कोई मरता है, कोई तरता है ।]

[२]

श्रीसनातन गोस्वामिपाद श्रीमथुरामण्डलसे 'झारखंड' के वन-मार्गसे 'पुरी' आये । कृष्ण-विरहकी अतिशयताके कारण रथचक्रके नीचे गिरकर उन्होंने शरीर-परित्याग करनेका सकल्प किया है, यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले,—“देहत्यागसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती, भजनसे ही वे मिलते हैं । श्रीकृष्ण-प्राप्तिका एक मात्र उपाय है—अहैतुकी भक्ति ।”

श्रीमहाप्रभुने साधकजीवके लिये यह शिक्षा दी, तथापि प्रेमी भक्त श्रीसनातनके देहत्यागके तात्पर्यका उल्लेख करते हुए कहा,—

गाढ़ानुरागेर वियोग ना याय सहन ।

ताते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण ॥

—चै० च० अ० ४।६२

[प्रगाढ प्रेममें वियोग सहा नहीं जाता । इसलिये प्रेमी अपना मरण चाहता है ।]

श्रीमन्महाप्रभुने जीवके लिये इस प्रसंगमें और भी अनेको उपदेश दिये हैं,—

नीच-जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य ।

सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य ॥

येइ भजे, सेइ बड़, अभक्त—हीन, छार ।

कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि-विचार ॥

दीनेरे अधिक दया करे भगवान् ।

कुलीन, पंडित, धनीर बड़ अभिमान ॥

—चै० च० अ० ४।६६-६८

[नीच जाति श्रीकृष्ण-भजनके लिये अयोग्य नहीं है । और अच्छे कुलमें जन्म या ब्राह्मण होना ही भजनकी योग्यता नहीं है । जो भजता है वही बड़ा है । अभक्त हीन नगण्य है । कृष्ण-भजनमें जाति-कुलादिका विचार नहीं है । भगवान् दीनपर अधिक दया करते हैं । कुलीन, पंडित और धनीको तो बड़ा अभिमान होता है ।]

श्रीगौरसुन्दरने बतलाया कि श्रीसनातनके द्वारा भक्ति-शास्त्रका प्रचार और श्रीवृन्दावनके गुप्त तीर्थोंका उद्धार आदि अनेको लोक-हितकर कार्य कराने हैं । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको उस वर्ष श्रीक्षेत्रमें (श्रीजगन्नाथ-धाममें) रहकर दूसरे वर्ष श्रीवृन्दावन जानेका आदेश दिया ।

[३]

श्रीहृदनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने श्रीगौरसुन्दरसे श्रीकृष्णकथा सुननेकी इच्छा प्रकट की । श्रीगौरसुन्दरने उनको श्रीरामानन्द रायके

पास भेज दिया। श्रीरामानन्दके घर जानेपर श्रीप्रद्युम्न मिश्रको पता लगा कि, श्रीरामानन्द प्रभु युवती देवदासियोको निर्जन उद्यानमें स्वरचित 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक'के गीत और नृत्यकी शिक्षा दे रहे हैं। श्रीरामानन्द राय थे—श्रीब्रजलीलामे श्रीमतीके निज-जन। श्रीगौर-लीलामे उन्होने परम-मुक्त विजितेन्द्रिय-शिरोमणिका आदर्श प्रदर्शित किया है। वे साधारण साधक जीव नहीं थे। परन्तु श्रीप्रद्युम्न मिश्र इस बातको नहीं समझ सके और श्रीरामानन्दके इस प्रकारके व्यवहारकी बात सुनकर घर लौट आये। श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्दके परम महत्वको समझाकर श्रीप्रद्युम्न मिश्रके भ्रमको दूर किया। इसके बाद मिश्रने फिर श्रीरामानन्दके पास आकर अनेक तत्वोपदेश ग्रहण किये।

[४]

श्रीमहाप्रभु जिस किसी प्राकृत कवि या साहित्यिककी कविता या गीत-नाटकादि नहीं सुन सकते थे। जिस कवित्व और साहित्यमें तत्व-विरोध या रस-विपर्यय होता, वह श्रीमहाप्रभुके लिये बहुत ही अप्रीतिकर और असह्य हो जाता था। जो लोग यथार्थ भक्त हैं, वे ही इस बातके मर्मको भलीभाँति समझ सकते हैं। वे भी जिस किसी कविके तत्वविरोध और रसाभास-दुष्ट काव्य, गान और साहित्य कभी नहीं सुन सकते। यह उनके लिये असहनीय हो जाता है। पर यह बात साधारण लोगोकी समझमें नहीं आती।

पहले श्रीस्वरूप-दामोदरके परीक्षा कर चुकनेपर श्रीमहाप्रभु उसे श्रवण करते थे। बगदेशीय एक कविने श्रीमहाप्रभुकी लीलाके सम्बन्धमें एक नाटक रचकर श्रीमहाप्रभुको सुनाना चाहा, तब पहले श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभुने उसे श्रवण किया। सभाके सभी लोगोने उस नाटककी प्रशंसा की; परन्तु श्रीस्वरूप-दामोदर-प्रभुने उसमें मायावाद दोष दिखलाते हुए कहा,—“श्रीकृष्णलीला और श्रीगौरलीलाका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जिन्होने श्रीगौरांगपादपद्मको जीवनका एकमात्र

सबल बना लिया है। उसके वर्णन करनेकी योग्यता ग्राम्य कवि और साधारण साहित्यिकमें नहीं होती।”

आधुनिक कालमें बहुतोकी यह धारणा है कि, लौकिक साहित्य और काव्य-रचनामें पारदर्शी व्यक्ति मात्रमें ही श्रीकृष्णलीला और श्रीगौर-लीलाके वर्णन करनेकी योग्यता हो जाती है। परन्तु श्रीमहाप्रभुके द्वितीय स्वरूप श्रीस्वरूप-दामोदरने हम लोगोको बतलाया है कि, महत् (महाभागवत)का अनुगमन तथा अनन्य-भावसे श्रीचैतन्यके श्रीचरणोका आश्रय लिये बिना तथा सर्वदा प्रीति एव आवेशके साथ श्रीचैतन्य-भक्तोकी सगति किये बिना श्रीचैतन्य या श्रीकृष्णके सम्बन्धमें साहित्य और ग्रन्थादिकी रचना करनेकी चेष्टा करना केवल धृष्टता ही नहीं, बल्कि उसमें ‘शिव’की रचना करने जाकर ‘बदर’की रचना हो जाती है।*

श्रीस्वरूपदामोदरके इस उपदेशसे वह कवि अपने भ्रमको समझकर भगवद्भक्तोके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर तथा श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर पुरीमें रहने लगा।

[५]

श्रीगौरसुन्दरकी श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलता क्रमश तीव्रसे तीव्रतर-रूपमें प्रकट होने लगी। इस अवस्थामें श्रीरामानन्दकी श्रीकृष्णकथा और श्रीस्वरूपका कीर्तन ही श्रीमन्महाप्रभुके जीवनका एकमात्र अवलम्बन हो गया।

इधर श्रीमहाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार चलनेवाले श्रीरघुनाथदास घर लौटकर बाहरसे विषयी लोगोकी भाँति व्यवहार करने लगे, परन्तु मन-ही-मन कृष्णसेवाकी तीव्र आकांक्षासे व्याकुल हो उठे। ‘सप्तग्राम’के किसी मुसलमान जमींदारने नवाबके वजीरकी सहायतासे हिरण्य और गोवर्द्धनदासको तरह-तरहके कष्ट पहुँचानेकी इच्छा की,

* चै० च० अ० ५।११-१५८

इससे वे लोग भाग निकले। श्रीरघुनाथकी बुद्धिमानीसे उनका वह उत्पात शान्त हो गया। श्रीरघुनाथ नीलाचलमें श्रीमहाप्रभुके पास चले जानेके लिये बार-बार चेष्टा करने लगे। उन्होंने ‘पानिहाटी’ जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुका साक्षात्कार किया और प्रभुकी आज्ञासे वहाँ एक ‘दही-चिउड़ा-महोत्सव’ किया। उस महोत्सवके दूसरे दिन श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीरघुनाथपर कृपा करके श्रीचैतन्यचरण-प्राप्तिके लिये आशीर्वाद दिया।

श्रीरघुनाथदास एक दिन रातको किसी कामके बहाने श्रीयदुनन्दन आचार्यके घर पहुँचे और उनके साथ कुछ दूर चलकर अकेले गुप्त मार्गसे बारह दिनमें पुरी पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणत हो गये। श्रीमहाप्रभुने उनको ‘स्वरूपका रघु’ नाम देकर श्रीस्वरूप-गोस्वामीके हाथोंमें सौंप दिया। श्रीरघुनाथने पाँच दिनोत्तक श्रीमहा-प्रभुका अवशेष-प्रसाद प्राप्त किया। उसके बाद श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर उन्होंने अयाचक-वृत्तिका* अवलम्बन किया।

श्रीमन्महाप्रभु रघुनाथके इस वैराग्यकी बात सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बोले,—

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सकीर्तन ।

शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण ॥

जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय ।

शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय ॥

—चै० च० अ० ६।२२६-२२७

[वैरागीका उचित कार्य सदा नाम-सकीर्तन करना है। साग-पत्ता-फल-मूलसे वह पेट भर ले। जो जिह्वार लालसासे इधर-उधर दौड़ता है, वह शिश्नोदर-परायण मनुष्य कृष्णको नहीं पाता।]

* अपने माँगनेके बदले दूसरा कोई इच्छा हो तो कुछ दे, इस आशासे बैठे रहकर भिक्षा करनेको ‘अयाचक-वृत्ति’ कहते हैं।

श्रीमहाप्रभुका यह उपदेश प्रत्येक हरिभजनकारी (हरिभजनीक) के लिये विशेष रूपसे पालनीय है। श्रीरघुनाथने श्रीमन्महाप्रभुसे कुछ उपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की, तो श्रीमहाप्रभुने 'रागानुग'* भक्तके लिये पालनीय आचारोका संक्षेपमें निर्देश कर दिया,—

ग्राम्यकथा ना श्रुनिबे, ग्राम्यवार्ता ना कहिबे ।

भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे ॥

अमानी, मानद हवा कृष्णनाम सदा ल'बे ।

व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे ॥

—चै० च० अ० ६।२३६-२३७

[जागतिक सुखभोगकी बात नहीं सुनना, जागतिक सुखभोगकी बात नहीं कहना, अच्छा न खाना और अच्छा न पहनना। स्वयं मान पानेकी इच्छा न रखकर दूसरोको मान देना, सदा कृष्णनाम लेना और व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी मानस-सेवा करना।]

श्रीगोवर्द्धन दासने अपने पुत्र रघुनाथका समाचार पाकर पुरीमें श्रीरघुनाथके पास आदमी और रुपये-पैसे भेजे, परन्तु श्रीरघुनाथने उनमें से उतना ही अर्थ ग्रहण किया, जितनेसे प्रतिमास श्रीमहाप्रभुको दो बार निमन्त्रण करके प्रीति-पूर्वक भोजन करानेका खर्च चल सके। परन्तु विषयीका द्रव्य ग्रहण करनेपर श्रीमहाप्रभु प्रसन्न नहीं होते और निमन्त्रणकारीको केवल सम्मान लाभ मात्र फल मिलता है—ऐसा विचारकर अन्तमें गोवर्द्धनके अर्थके द्वारा श्रीमहाप्रभुकी निमन्त्रण-सेवाको भी छोड़ दिया।

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन ।

मलिन मन हैले नहे कृष्णेर स्मरण ॥

—चै० च० अ० ६।२७८

* 'रागानुग'—जो लोग श्रीकृष्णके नित्य सिद्ध सेवक श्रीव्रजगोपी, श्रीश्रीनन्द-यशोदा, श्रीसुदाम-श्रीदाम या श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रककी

[विषयीका अन्न खानेसे मन मलिन होता है और मनके मलिन होनेपर श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता ।]

कुछ दिनों बाद श्रीरघुनाथने सिंहद्वारपर अयाचक-वृत्ति भी परित्याग कर मधुकरी भिक्षा लेना प्रारम्भ किया। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा,—

“सिंहद्वारे भिक्षावृत्ति—वेश्यार आचार ।”

—चै० च० अ० ६।२८४

[सिंहद्वारपर भिक्षा माँगना तो वेश्याके आचरणके समान है ।]

जिस प्रकार वेश्याको पर-पुरुषकी आशामें द्वारपर बाट देखनी पड़ती है, भिक्षा-प्राप्तिके लोभसे सिंहद्वारपर खड़े रहना भी उसी प्रकारकी बात है ।

श्रीरघुनाथ मधुकरी भिक्षा करते हैं, यह सुनकर तथा श्रीराधा-कृष्णकी रागमयी सेवामें उनकी रुचि देखकर श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको अपनी श्रीगुजामाला और श्रीगोवर्द्धन-शिला प्रदान की। इसके बाद श्रीरघुनाथ रास्तेमें फँके हुए और बासी श्रीमहाप्रसादको जलमें धोकर उसीको ही ग्रहण करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीस्वरूप-दामादरने इससे अधिक सन्तुष्ट होकर एक दिन श्रीरघुनाथमें उस महाप्रसादको बलपूर्वक छीनकर उसका आस्वादन किया ।



श्रीकृष्णसेवाकी पद्धतिसे लुब्ध होकर उनके अनुगामी बनकर उन्हींके अनुसार श्रीकृष्णसेवा करनेमें अनुराग करते हैं ।

उन्नासीवाँ परिच्छेद पुरीमें श्रीवल्लभ भट्ट

श्रीवल्लभ भट्ट एक बार रथयात्राके पहले पुरीमें आकर श्रीगौर-सुन्दरके चरणोंमें प्रणत हुए। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरसुन्दरसे कहा,—“कलिकालका धर्म है—श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन, कृष्णशक्ति स्वरूपशक्ति श्रीराधा और उनके परिकरोंके अतिरिक्त कोई भी इसका प्रचार नहीं कर सकता। आप कृष्णशक्तिको धारण करते हैं; इसीसे आज आपकी कृपासे जगत्में श्रीकृष्ण-नाम प्रकाशित हो रहा है।” श्रीमन्महा-प्रभुने दीनताके साथ अपनी अयोग्यता प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत प्रभृति भक्तोंकी महिमाका बखान करते हुए श्रीवल्लभ भट्टके सामने अपनेको छिपाया।

फिर दूसरे एक दिन श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभुके पास आये और बोले कि उन्होंने श्रीमद्भागवतकी एक टीका लिखी है और उसमें श्रीकृष्ण नामके अर्थकी बहुत प्रकारसे व्याख्या की है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभ भट्टके ‘हृदयकी-यशोलिप्सा समझ गये और बोले,—“मे श्रीकृष्णनामके बहुत अर्थोंको नहीं मानता। श्रीकृष्ण—श्रीश्यामसुन्दर श्रीयशोदानन्दन हैं—केवल इतना ही जानता हूँ।” श्रीमद् अद्वैताचार्यने भी श्रीवल्लभ भट्टके नाना प्रकारके तत्त्वविरुद्ध सिद्धान्तोंका खण्डन किया। एक दिन श्रीवल्लभ भट्टने श्रीमद् अद्वैताचार्यसे पूछा,—“जीव—प्रकृति है, और कृष्ण—पति है। अतएव पतिव्रता-स्वरूप जीव किस प्रकार दूसरेके सामने पतिस्वरूप श्रीकृष्णके नामका उच्च-स्वरसे कीर्तन कर सकता है?” श्रीअद्वैताचार्यने श्रीवल्लभ भट्टको साक्षात् ‘धर्मविग्रह’ श्रीमहाप्रभुसे यह प्रश्न पूछनेके लिये कहा। भट्टके प्रश्नके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले,—“स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ही पतिव्रताका धर्म है, पतिने जब निरन्तर अपना नाम उच्चारण करनेके लिये कह

दिया है, तब पतिव्रता अपने स्वामीके आदेशका उल्लंघन नहीं कर सकती ।”

फिर एक दिन वैष्णव-सभामे श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि उन्होंने श्रीमद्भागवतकी श्रीश्रीधरस्वामीकी टीकाका खण्डन करके एक नयी व्याख्या लिखी है। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने व्यग्रे रूपमें श्रीवल्लभ भट्टके इस प्रकारके कार्यका प्रतिवाद करते हुए कहा,—

** ‘स्वामी’ ना माने ये जन ।

वेश्यार-भितरे ता’रे करिये गणन ॥

—चै० च० अ० ७।१११

[जो मनुष्य ‘स्वामी’को नहीं मानता, उसकी गिनती वेश्यामें करनी चाहिए ।]

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवल्लभ भट्टको बहुत तरहसे समझाते हुए कहा,—
“जगद्गुरु श्रीश्रीधरस्वामिपादके प्रसादसे ही हमलोग श्रीमद्भागवतका तात्पर्य समझ पाते हैं। वे भक्तिके एकमात्र रक्षक हैं। गुरुके ऊपर गुरुगिरी करने जाना भीषण अपराध है। श्रीश्रीधरस्वामीका अनुसरण करते हुए श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करो, अभिमान छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करो, अपराध छोड़कर श्रीकृष्ण-सकीर्तन करो, तभी श्रीकृष्णके चरणोकी प्राप्ति कर सकोगे।” कुछ दिनों बाद श्रीमहाप्रभुकी अनुमति लेकर श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगदाधर पंडित-गोस्वामीसे ‘किशोर-गोपाल-मन्त्र’की दीक्षा प्राप्त की।

श्रीवल्लभ भट्टके समान पंडित, बुद्धिमान् और सर्व विषयोमें सुयोग्य व्यक्तिको भी श्रीश्रीधरस्वामीके ‘मायावादी’ होनेका भ्रम हो गया था। वस्तुतः श्रीस्वामिपाद मायावादी नहीं हैं—वे ‘भक्त्येकरक्षक जगद्गुरु’, परम वैष्णव हैं।



अस्सीवाँ परिच्छेद रामचन्द्र पुरी

रामचन्द्र पुरी-नामक एक सन्यासी अपनेको श्रीमाधवेन्द्र पुरीका शिष्य बतलाकर परिचय देते थे, वस्तुतः उनका शुद्धभक्ति-सम्बन्धी कोई विचार नहीं था। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद अन्तर्धानके समय श्रीकृष्ण विरहमें श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन करते हुए प्रेमसे रो रहे थे। यह देखकर रामचन्द्र पुरीने श्रीमाधवेन्द्र पुरीसे कहा,—“आप ब्रह्मविद् होकर क्यों शोक-मोह-ग्रस्तकी भाँति इस प्रकार रो रहे हैं?” श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद इससे विशेष असन्तुष्ट हुए और उन्होंने रामचन्द्रका त्याग कर दिया।

रामचन्द्र पुरीने श्रीनीलाचल आकर भगवान् श्रीगौरसुन्दरकी निन्दा प्रारम्भ कर दी। “श्रीमहाप्रभु अच्छा-अच्छा भोजन करते हैं, खीर, मिठाई खाते हैं, अतएव वे सन्यास-विधिका पालन नहीं करते”—इस प्रकारकी निन्दा करने लगे। एक दिन प्रातःकाल रामचन्द्र पुरीने श्रीमन्महाप्रभुके वासस्थानमें आकर देखा कि, बहुत-सी चीटियाँ श्रेणीबद्ध होकर वहाँ विचरण कर रही हैं। यह देखकर मणिमय मन्दिरमें पिपीलिकाके छिद्रदर्शनके समान स्वाभाविक छिद्रान्वेषी रामचन्द्र पुरी श्रीमहाप्रभुसे कहने लगे,—“रातको निश्चय ही इस स्थानमें ईखका बना गुड था, इसी कारण यहाँ इतनी चीटियाँ चल रही हैं। अहो! विरक्त सन्यासियोंमें भी इस प्रकारकी इन्द्रिय-लालसा है।” इतना कहकर ही रामचन्द्र पुरी वहाँसे चले गये। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने उस दिनसे अपने दैनिक आहारका परिमाण खूब कम कर दिया।

रामचन्द्र पुरी बड़े ही कुटिल स्वभावके आदमी थे। लोगोको स्वयं ही आग्रह करके अधिक भोजन कराते थे और फिर स्वयं ही उसको ‘अत्याहारी’ (पेटू) कहकर निन्दा करते थे। महाभागवत गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादकी उपेक्षाके फलस्वरूप रामचन्द्र पुरीकी भगव-चरणोंमें अपराध करनेकी दुर्बुद्धि उत्पन्न हो गयी।

गुरु उपेक्षा कैंले ऐछे फल ह्य ।

क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराध ठेक्य ॥

—चै० च० अ० ८।१७

[गुरु यदि उपेक्षा करे तो फल यह होता है कि धीरे-धीरे उपेक्षित-शिष्य ईश्वरके निकट भी अपराध करने लगता है ।]

रामचन्द्र पुरी और अमोघके समान वित्तवृत्ति हममें से अनेकोकी ही है । हम भी बहुधा भगवान् और महाभागवत वैष्णवको भी क्षुद्र साधक-जीवके समान काम-क्रोध-लोभाधीन समझकर उनके आहार-विहारादिकी निन्दा करते हैं । श्रीगौरसुन्दरने इस लीलाके द्वारा हमारी इस दुर्बुद्धिको शासित किया है ।



इक्कासीवाँ परिच्छेद

श्रीगोपीनाथ पट्टनायक

श्रीभवानन्द रायके * पुत्र और रामानन्द रायके भ्राता श्रीगोपीनाथ पट्टनायक उस समय उड़ीसाके राजा श्रीप्रतापसुन्दरके अधीन मेदिनीपुरके (मालजाठ्या दण्डपाटके) भू-सम्पत्ति-रक्षक और राज्यकर वसूल करनेके कामपर नियुक्त थे । श्रीगोपीनाथने राजकोषका कुछ धन नष्ट कर दिया तथा कुछ दूसरे कारणोंसे भी युवराजके अप्रीतिभाजन हो गये, इससे युवराजने गोपीनाथको प्राणदण्डका आदेश दे दिया । श्रीमहाप्रभुके प्रति गजपति श्रीप्रतापसुन्दर विशेष श्रद्धाभक्ति करते थे और रामानन्द राय भी महाप्रभुके विशेष आदरके पात्र थे,—यह

* श्रीभवानन्द रायके पाँच पुत्र थे—(१) श्रीरामानन्द राय, (२) श्रीगोपीनाथ पट्टनायक, (३) श्रीकलानिधि, (४) श्रीसुधानिधि और (५) श्रीवाणीनाथ ।

जानकर कुछ लोग श्रीगोपीनाथके प्राणरक्षार्थ राजासे अनुरोध करनेके लिये श्रीमहाप्रभुके पास आये। इसपर श्रीमहाप्रभुने इस प्रकारकी विषयी बातोंसे अपना कोई प्रयोजन न बतलाकर श्रीगोपीनाथका तिरस्कार किया। पश्चात् कुछ और लोगोंने भी आकर गोपीनाथके सपरिवार कैद कर लिये जानेकी बात श्रीमहाप्रभुसे कही, तब महाप्रभु बहुत क्रोधित हुए और बोले,—“तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मैं राजाके पास जाकर गोपीनाथके वशके लिये आँचल पसारकर अर्थ भिक्षा माँगूँ ?”

कुछ ही क्षणोंके बाद यह समाचार आया कि, गोपीनाथको प्राण-दण्डके लिये खगके ऊपर गिराया जा रहा है। महाप्रभुको यह बतलाने पर भी वे बोले—“मैं भिखारी आदमी हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम लोग यह बात श्रीजगन्नाथजीसे कहो।”

इधर श्रीहरिचन्दन महापात्रने महाराज श्रीप्रतापसुन्दरके पास जाकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-भिक्षा माँगी। श्रीप्रतापसुन्दरने कहा कि, इस विषयमें उन्होंने कुछ भी नहीं सुना है। जिससे श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा हो, उसके लिये शीघ्र व्यवस्था करनी चाहिये। अतएव श्रीहरि-चन्दनने युवराजसे कहकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा करनेकी व्यवस्था कर दी।

तदनन्तर श्रीमहाप्रभुने इस राज-दण्ड सम्बन्धी समाचार लानेवालेसे श्रीगोपीनाथके उस समयकी अवस्थाके विषयमें पूछनेपर उसने कहा कि, जब युवराजके आदमी श्रीगोपीनाथको बाँधकर राजद्वार ले जा रहे थे, उस समय श्रीगोपीनाथ हाथोंकी अगुलियोंकी गाँठोंपर निर्भय होकर उच्चस्वरसे ‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण’ महामन्त्रका कीर्तन करते जा रहे थे। यह बात सुनकर श्रीमहाप्रभु मन-ही-मन सन्तुष्ट हुए।

श्रीकाशी मिश्र जब श्रीमहाप्रभुके पास पहुँचे तो महाप्रभुने कहा कि,—“मैं श्रीआलालनाथ चला जाऊँगा। मैं अब पुरीमें रहकर विषयी लोगोंकी भली-बुरी बातें सुनना नहीं चाहता।”

यह सुनकर श्रीकाशी मिश्रने श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोको पकड़कर कातर भावसे निवेदन किया कि, श्रीरामानन्दके छोटे भाई श्रीगोपीनाथने कभी श्रीमहाप्रभुसे अपनी प्राण-रक्षाके लिये श्रीप्रतापसुन्दरको अनुरोध करनेकी कोई बात नहीं कही। श्रीमहाप्रभुके द्वारा अपनी किसी प्रकार की सेवा करा लेना श्रीगोपीनाथका उद्देश्य नहीं है, परन्तु उनके हितैषियोंने श्रीगोपीनाथको श्रीमहाप्रभुका शरणागत भक्त जानकर और उनके प्राणापहरणकी चेष्टा होते देखकर श्रीगोपीनाथकी प्राणरक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुको सूचित किया था। श्रीगोपीनाथने श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे शुद्ध-भक्तोके स्वभावके विषयमें श्रवण किया है,—

सेइ 'शुद्ध भक्त, ये तोमा भजे तोमा लागि' ।

आपनार सुख-दु.खे नहे भोग-भागी ॥

तोमार अनुकम्पा चाहे, भजे अनुक्षण ।

अचिरात् मिले तौ'रे तोमार चरण ॥

—चै० च० अ० ६।७५-७६

[वही शुद्ध भक्त है, जो तुम्हारे लिये ही तुम्हें भजता है। अपने सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करता। जो तुम्हारी कृपा चाहता हुआ प्रतिक्षण तुम्हें भजता है, उसे अविलम्ब तुम्हारे चरणोकी प्राप्ति होती है।]

श्रीकाशी मिश्रने श्रीमन्महाप्रभुसे निवेदन किया कि कोई भी उन्हें कभी भी किसी विषयीकी बातें नहीं सुनायगा। वे कृपा करके पुरीमें ही रहें।

इधर जब श्रीकाशी मिश्रकी श्रीप्रतापसुन्दरसे भेंट हुई, तब उन्होंने श्रीप्रतापसुन्दरसे श्रीमन्महाप्रभुके पुरी छोड़कर 'आलालनाथ' जानेके सकल्पकी बात सुनायी। यह सुनकर श्रीप्रतापसुन्दरने बहुत ही व्यथित होकर मिश्रसे अनुरोध करके कहा कि श्रीमहाप्रभु जिससे किसी प्रकार पुरीका त्याग न करे, इसके लिये सर्वतोभावेन प्रयत्न करना होगा। श्रीमहाप्रभुके बिना इस राज्य-ऐश्वर्य किसीका भी मूल्य नहीं है।

महाराज श्रीप्रतापरुद्रने काशी मिश्रसे अनुरोध किया कि वे श्रीमन्महा-
प्रभुको श्रीभवानन्द रायकी गोष्ठीके प्रति उनकी (राजाकी) स्वाभाविक
प्रीतिकी बात भी जना दें। इधर युवराजने श्रीगोपीनाथको बुलाकर उनको
समस्त अभियोगसे मुक्त कर दिया और उनके प्रति यथेष्ट अनुग्रह
दिखलाया। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी दीनता और उदारताकी
बात सुनकर विशेष आनन्दित हुए। श्रीभवानन्द राय अपने पाँचो
पुत्रके साथ श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोंमें प्रणत होकर बोले,—“जागतिक
महान् विपत्तियोसे त्राण पाना ही श्रीगौरसुन्दरकी कृपाका मुख्य फल
नहीं है, उनकी निश्छल कृपाका फल तो है उनके पादपद्मोंमें प्रीति
उत्पन्न होना। श्रीरामानन्द राय और श्रीवाणीनाथ श्रीमहाप्रभुकी ऐसी
शुद्ध-कृपा प्राप्त करके धन्यातिधन्य हुए हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी इस
प्रकारकी कृपा मुझे कब प्राप्त होगी ?”

किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ ‘मुख्य फल’ ।

‘फलाभास’ एइ, या’ते’ विषय’ चचल ॥

रामराये, वाणीनाथे कैला ‘निविषय’ ।

सेइ कृपा आमाते नाहि, या’ते ऐछे हय ॥

शुद्ध कृपा कर’, गोसाजि, घुचाह ‘विषय’ ।

निविघ्न हइनु, मोते ‘विषय’ ना हय ॥

—चै० च० अ० ६।१३७-१३६

[परन्तु तुम्हारे स्मरणका यह ‘मुख्य फल’ नहीं है, यह फलाभास
है क्योंकि जगत्का विषय चचल है। रामानन्द राय और वाणीनाथको
तुमने ‘विषय मुक्त’ कर दिया। वह कृपा मुझपर नहीं हुई, जिसमें
ऐसा हो, स्वामिन् ! शुद्ध कृपा करो’ ‘विषय’का नाश करो। विषयोसे
मेरा मन हट गया है। मेरे द्वारा विषय-कार्य नहीं होगा।]



बयासीवाँ परिच्छेद 'श्रीराघवकी झालि'

गौडीय भक्तोंने रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिये पुनः पुरीकी यात्रा की। 'पानिहाटी'के श्रीराघव पंडित अपनी बहन श्रीदमयन्तीके बनाये नाना प्रकारके प्रभु-प्रिय व्यंजन पिटारी और टोकरीमें भरकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये पुरी ले आये। यही 'राघवकी झालि' के नामसे प्रसिद्ध है।

वैष्णव-गृहिणी और महिलाएँ दूर-दूरसे इस प्रकार श्रीमहाप्रभुकी सेवा किया करती। वे प्रतिवर्ष रथयात्राके पहले पुरी आकर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी सुनकर जाती थी तथा सालभर घर रहकर निरन्तर श्रीमहाप्रभुकी सुखानुसन्धान-स्मृतिसे विभावित रहकर श्रीमहाप्रभुके लिये प्रिय भोज्य-सामग्रियोंको सग्रह तथा प्रस्तुत करती रहती। अतएव घर रहनेपर भी उनका घर गोलोककी स्मृतिसे उद्भासित रहता। उनका ससार तो श्रीकृष्णका ही ससार है। देह-सम्बन्धी पति, पुत्र अथवा परिजन परिवारके लिये सुख-स्वाच्छन्द्य-विधान, आहारकी व्यवस्था, उनके विलासके उपकरणोंका सग्रह, बहिर्मुख सामाजिकता और लौकिकताका पालन करके जो मायाका ससार करते हैं उनके ससारसे वैष्णव-गृहस्थ और वैष्णव-सहधर्मियोंके ससार किस प्रकार पूर्णतः पृथक् होते हैं, यह हमें गौडीय भक्तोंके आदर्शमें देखनेको मिलता है। वैष्णव-गृहस्थगण श्रीमहाप्रभुकी सेवाके लिये घरमें वास करते थे और चातककी भाँति उत्कण्ठित रहते थे कि कब नीलाचल जाकर साक्षात् रूपमें श्रीगौरसुन्दरको सुख देंगे और उनके उपदेशामृतको पान कर सकेंगे।

श्रीदमयन्ती देवी श्रीमहाप्रभुकी सेवामें किस प्रकार वात्सल्य-रसमें डूबकर विचित्रतापूर्ण झालि (टोकरी) सजाती थी, इसका विस्तृत विवरण 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थकी अन्त्य-लीलाके दशम परिच्छेदमें

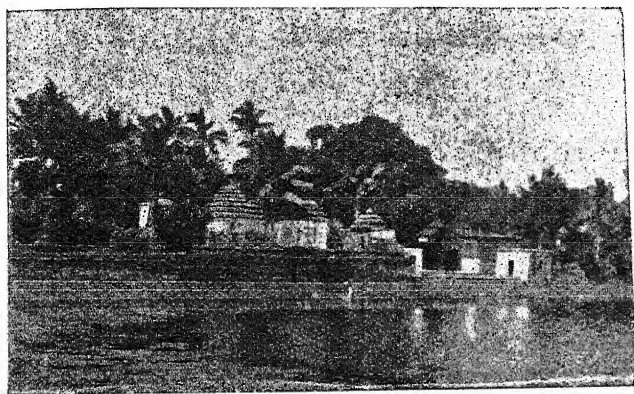
प्राप्त होता है। आम्रकाशन्दी (काशन्दी अर्थात् सरसो, हल्दी और नमक इत्यादिसे बनाया गया अचार विशेष। इसी काशन्दीमें कच्चे आमकी फालियाँ डालकर आम्रकाशन्दी बनाई जाती है।), अदरक-काशन्दी (काशन्दीमें अदरक डालकर अदरक-काशन्दी बनाई जाती है।), नीबू-अदरक, अमिया (खिच्चा आम), कच्चे आमकी सूखी हुई फालियाँ, अमोट, आमका अचार, सूखे हुए पाटके नए पत्तीकी बुकनी (यह आँव नाशक होती है), धनिया तथा सौफके तडुल द्वारा चीनीमें पाक किए हुए लड्डू, सूखा अदरक, मिश्री मिश्रित बेर, सूखे बेर, सूखे बेरका चूर्ण, इस प्रकार अनेको पदार्थ, सैकड़ों प्रकारके अचार, नारियल खण्ड, गगाजलकी नाई सफेद लड्डू, बहुत दिनो तक रहनेवाली मिश्रीकी मिठा-इयाँ, खोआ, पनीरकी बनाई हुई मिठाई, विविध प्रकारके अमृत कर्पूर बासमती धानका आतप चिउडा, घीमें भुना हुआ खील और मुरमुरे बासमती चावलोको भुनकर यानी मुरमुरे बनाकर उसे बूक करके चीनी द्वारा बनाया गया लड्डू, आदि सैकड़ों प्रकारके भोज्य द्रव्य श्रीराघवके निर्देशानुसार श्रीदमयन्ती देवी अत्यन्त स्नेह-भक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया करती थी। गगाकी मिट्टीकी पर्यंटी (गगाकी मिट्टीको कपड़ेमें छानकर उसमें सुगन्धित द्रव्यादि मिलाकर पापडके रूपमें) तथा दूसरे मिट्टीके हल्के पात्रमें चन्दनादि भरकर श्रीराघवने बहुत यत्नके साथ झालि सजायी और झालिका मुँह बन्द करके उसके ऊपर मोहर लगा दी। इस झालिके 'मुनसिब' अर्थात् परिदर्शक और परिचालक बने पानिहाटी-ग्रामनिवासी श्रीराघव पंडितके अनुगामी श्रीगौरसेवागतप्राण—'श्रीमकरध्वज कर'। वे सावधानीसे झालिके रक्षक बनकर गौडीय वैष्णवोंके साथ अत्यन्त आर्तभावसे नीलाचलकी ओर चल पड़ते।



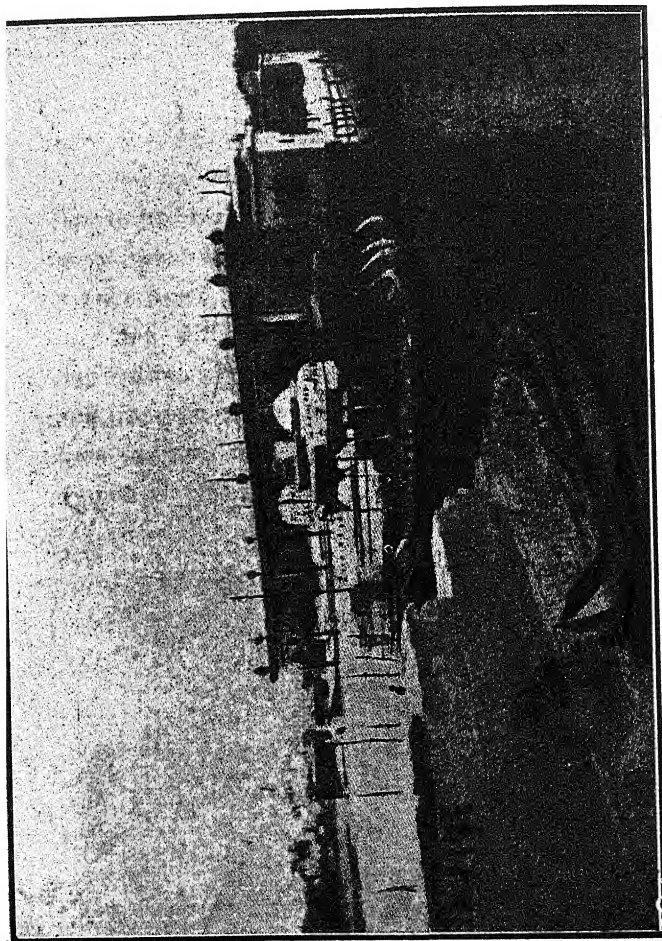
तिरासीवाँ परिच्छेद

‘श्रीनरेन्द्र-सरोवरमें श्रीचन्दन-यात्रा’

पूर्व कालमें ‘श्रीइन्द्रद्युम्न’ नामक एक महासद्गुणसम्पन्न वैष्णव राजा थे । ‘मालव’ देशके अन्तर्गत ‘अवन्तीपुरी’ उनकी राजधानी थी । वे श्रीजगन्नाथजीके परम भक्त और सेवक थे । महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नको श्रीजगन्नाथदेवने वैशाख मासके शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयाको सुगन्ध-चन्दनके द्वारा अपने श्रीअंग-लेपन करनेका आदेश दिया । सियार-कुत्तोंके भोज्य इस देहपर जगत्के लोग अपने भोगके लिये नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों और प्रसाधन-सामग्रियोंका व्यवहार करते हैं । इससे इस नश्वर देहपर आसक्ति और इस देहको आराम पहुँचानेकी चेष्टा बढ़ती है ; अतएव भगवद्भक्तोंने इन सारे द्रव्योंको भगवान्की सेवामें लगाकर अनायास ही देहासक्तिको उच्छेद करने और श्रीभगवान्के श्रीचरणोंमें प्रीति प्राप्त करनेकी व्यवस्था की है ।



श्रीइन्द्रद्युम्न-सरोवर, पुरी ; इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ जलकेलि किया करते थे ।



श्रीनरेन्द्र-सरोवर या चन्दन-तालाब ; चन्दन-यात्रीके समय इस सरोवरमें श्रीमदतमोहनजीका नौका-विलास हुआ करता है । सरोवरमें श्रीमत्महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ जलकैल की थी ।

महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नके प्रति श्रीजगन्नाथदेवकी इस आज्ञाका अनुसरण कर आज भी 'अक्षय-तृतीया' से आरम्भ करके ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला अष्टमी तक प्रति दिन श्रीजगन्नाथ देवके विजय-विग्रह-स्वरूप श्रीमदनमोहनको श्रीमन्दिरसे पालकीपर चढाकर 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीर लाया जाता है। श्रीमदनमोहनदेव अपने मन्त्री श्रीलोकनाथ महादेव आदिको साथ लेकर सरोवरमें नौका-विलास करते हैं। श्रीमदनमोहनदेवकी 'श्रीचन्दन-यात्रा' अनुष्ठित होनेके कारण श्रीनरेन्द्र-सरोवरको 'चन्दनपुकुर' (चन्दन-तालाब) के नामसे भी पुकारते हैं।

गौडीय भक्तगण 'चन्दन-यात्रा'के दिन ही श्रीनीलाचलमें आ पहुँचे। श्रीगौरसुन्दरने पहले ही श्रीअद्वैत, श्रीनित्यानन्द आदि गौडीय भक्तोंके नीलाचलकी ओर आनेका समाचार सुनकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये 'कटक' तक श्रीमहाप्रसाद भोज दिया था और स्वयं 'अठारहनाला' तक आगे जाकर उन गौडीय भक्तोंकी अभ्यर्थना की। श्रीअद्वैत आदि गौडीय-गोष्ठी और श्रीगौरसुन्दर प्रमुख नीलाचल-गोष्ठीके परस्पर मिलनसे महान् आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। नृत्यगीत और सकीर्तन के साथ गौडीय वैष्णवगण श्रीमहाप्रभुको आगे करके 'नरेन्द्र-सरोवर'के तीरपर जा उपस्थित हुए।

उस समय श्रीनरेन्द्रसरोवरमें श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हो रहा था। उसी समय श्रीमहाप्रभु भी सरोवरमें भक्तोंके साथ जलकेलि करने लगे। चारों ओर नाना प्रकारकी बाद्यध्वनि और सकीर्तनका महाकोलाहल होने लगा।

गौडदेशीय और उत्कलवासी भक्तगण एक साथ सकीर्तन करने लग गये। जलक्रीडाके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंको साथ लेकर श्रीजगन्नाथके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करने गये। गौडीय भक्तगण श्रीमन्महाप्रभुके पास रहकर निरन्तर उनका कथामृत पान करने लगे।



चौरासीवाँ परिच्छेद संकीर्तन-रास-नृत्य

श्रीमन्महाप्रभुको संकीर्तनका 'पिता' या 'प्रवर्तक' कहा जाता है। बहुतसे लोग मिलकर जो श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हैं, उसे ही 'संकीर्तन' कहते हैं। बहुत लोगोमें श्रीभगवान्की महिमाके प्रचारका और श्री-भगवद्भजनका इस प्रकारका सहज मार्ग दूसरा कोई भी आविष्कृत नहीं हुआ। इस संकीर्तनमें 'बेडा संकीर्तन' (गोलाकार रूपमें घूम-घूमकर कीर्तन) ने वैष्णव-सम्प्रदायमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। इसको 'संकीर्तन-रास-नृत्य'के नामसे पुकारा जा सकता है। श्रीमन्दिर या किसी स्थानको घेरकर किये जानेवाले नृत्य-संकीर्तनको ही 'बेडा संकीर्तन' कहते हैं।

श्रीगौरहरिने नीलाचलमे सात-संकीर्तन दलोकी रचना करके एक दिन 'बेडा-संकीर्तन'-नृत्य आरम्भ किया। एक-एक दलमें एक-एक आदमी नर्तक निर्धारित किया गया। श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, पण्डित श्रीवक्त्रेश्वर, श्रीअच्युतानन्द, पण्डित श्रीश्रीवास, कुलीन ग्रामके श्रीसत्यराज खा और श्रीखण्डके श्रीनरहरि सरकार ठाकुर—इन सात पुरुषोंने सात विभिन्न दलोमे नृत्य किया। श्रीमहाप्रभु इन सातो दलोके बीच घूमने लगे। परन्तु कैसा आश्चर्य है कि, प्रत्येक दलने ही समझा कि श्रीमहाप्रभु केवल उन्हीकी गोष्ठीमें उपस्थित है। सारे उत्कलवासी इस प्रकारके अद्भुत संकीर्तन-रास-नृत्यको देखकर विस्मित हो उठे। स्वयं महाराज श्रीप्रतापरुद्र सपरिजन इस संकीर्तन-नृत्यके दर्शन करने लगे। संकीर्तन करते-करते प्रभुके आठो सात्विक विकार प्रकट होते रहे। क्षण-क्षणमें श्रीमहाप्रभुका प्रेमानन्द-सागर बढ़ने लगा। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमहाप्रभुको क्रमशः वाह्य दशामें लानेके लिये मन्द स्वरसे कीर्तन आरम्भ किया। श्रीमहाप्रभुको धीरे-धीरे बाह्य-

दशा प्राप्त हुई और वे भक्तोंके साथ समुद्रमें स्नान करने गये। उसके बाद भक्तोंको साथ लेकर उन्होंने सम्मानपूर्वक महाप्रसाद ग्रहण किया।



पचासीवाँ परिच्छेद

सेवा ही नियम है

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद-सेवनके बाद 'गम्भीरा'के * द्वारपर जाकर सो रहे। सेवक श्रीगोविन्दका एक दैनिक नियम यह था कि जब श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद पाकर विश्राम करते थे, श्रीगोविन्द उसी समय प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करते थे और जब श्रीमहाप्रभुको नीद आ जाती तब गोविन्द श्रीमहाप्रभुका अवशेष† ग्रहण करने चले जाते। उस दिन श्रीमहाप्रभु अत्यन्त थके होनेके कारण गम्भीराका पूरा द्वार रोक कर सो गए। अतएव श्रीगोविन्द भीतर प्रवेश करके प्रभुकी चरणसेवा नहीं कर सके इसलिये उन्होंने प्रभुसे किंचित करवट बदल करके जानेके लिये रास्ता देनेकी प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभु बोले,—“मैं सरक नहीं सकूंगा। तुम्हारी जो इच्छा हो करो।” तब अन्तमें श्रीगोविन्दने अपनी चादरके द्वारा श्रीमहाप्रभुका श्रीअंग ढक करके महा-प्रभुको उल्लघन करके ही भीतर प्रवेश किया और प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करने लगे। निद्रा-भग होनेपर श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको घरके भीतर देखकर उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और इतने समयतक बिना भोजन किये वहाँ बैठे रहनेका कारण पूछा। श्रीगोविन्दने कहा,—“आप

* चौबारे या बरामदेके बाद दालान होता है, उसके भीतरकी छोटी कोठरीको 'गम्भीरा' कहते हैं।

† श्रीमहाप्रभुके भोजनके बाद बचा हुआ प्रसाद।

द्वारपर शयन किये हुए हैं, मैं कैसे बाहर जाता ?” श्रीमहाप्रभु बोले,—
 “तुम जैसे भीतर आये थे वैसे ही बाहर क्यों नहीं चले गये ?”
 श्रीगोविन्द निरुत्तर होकर मन-ही-मन सोचने लगे —

* * * आमार सेवा से नियम ।

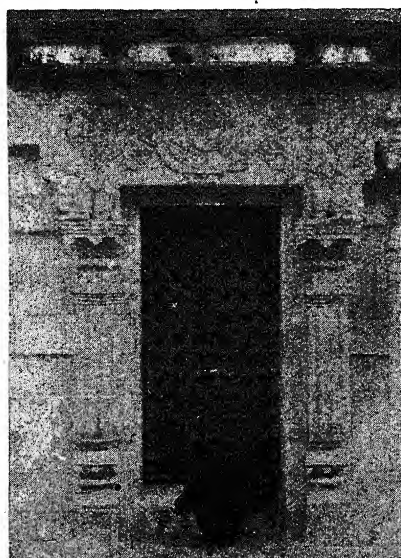
अपराध हउक, किंवा नरके गमन ॥

सेवा लागि' कोटि 'अपराध' नाहि गणि ।

स्व-निमित्त 'अपराधाभासे' भय मानि ॥

—चै० च० अ० १०।६५-६६

“सेवा ही मेरा मूल लक्ष्य है, सेवा करते हुए यदि मुझे नरक जाना पड़े तो उसमें भी कोई आपत्ति नहीं। परन्तु अपने निजी सुखके हेतु



पुरीमें श्रीकाशी मिश्रके घरके नामसे परिचित

‘गंभीरा’ गृहका द्वार

भोजन करनेके लिये मैं अपराधके आभासमात्रसे भी भय करता हूँ । श्रीमहाप्रभुकी सेवाके प्रयोजनसे ही मैंने श्रीमहाप्रभुको लाँघकर भीतर प्रवेश किया था, अब अपने प्रयोजनके लिये मैं फिर वैसा किसी प्रकार भी नहीं कर सकता ।”

पाठको, श्रीगोविन्दकी इस सेवाके आदर्शमें शुद्धभक्तिका रहस्य-विज्ञान परिस्फुटित हुआ है । भगवद्भक्त कभी भी अपने सुख, शान्ति और तृप्तिके लिये सेवाका बहाना नहीं करते । जिसमें किसी प्रकार भी आत्मेन्द्रिय-सुख कामना, भुक्ति-मुक्ति कामना छिपी रहती है, उसका बाहरी रूप सेवाके समान दिखायी देनेपर भी, वह सेवा नहीं है, वह सेवाके नाम पर ‘भोग’ है, अथवा भक्तिके नामपर ‘भुक्ति’ है ।



छियासीवाँ परिच्छेद

श्रीचैतन्यदासका निमन्त्रण

श्रीशिवानन्द सेन अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथ लेकर एक दिन श्रीमहा-प्रभुके दर्शन करने गये । श्रीकृष्णचैतन्यने जब श्रीशिवानन्दके पुत्रका नाम पूछा तो शिवानन्दने बतलाया—बालकका नाम ‘श्रीचैतन्यदास’ है । श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपना दास्य-सूचक नाम सुनकर अपनेको छिपानेके बहाने श्रीशिवानन्दसे कहा,—“तुमने यह क्या नाम रक्खा है ? यह तो कुछ भी समझमें नहीं आता ।”

श्रीशिवानन्दने कहा,—“श्रीकृष्णने मेरे चित्तमें जैसी स्फूर्ति करायी, मैंने वही नाम रक्खा है ।” इसके बाद श्रीशिवानन्दने श्रीमन्महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया और श्रीजगन्नाथजीका बहुमूल्य प्रसाद

मँगवाकर भक्तगणके साथ श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीशिवा-
नन्दके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण श्रीमन्महाप्रभुने प्रसादका सम्मान तो
अवश्य किया, परन्तु इस प्रकारके अत्यन्त गरिष्ठ पदार्थोंके भोजनसे
श्रीमहाप्रभुका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ।

श्रीमन्महाप्रभुका अभिप्राय समझकर एक दिन फिर श्रीचैतन्यदासने
श्रीमहाप्रभुकी अग्निमान्द्य दूर करनेवाला दही, निम्बू, अदरक प्रभृति
द्रव्योंके द्वारा सेवा की। इन पदार्थोंको देखकर श्रीमहाप्रभु विशेष
आनन्दित हुए और बोले,—“यह बालक मेरे अभिप्रायको जानता है। मैं
इसके निमन्त्रणसे सन्तुष्ट हुआ हूँ।” यह कहकर श्रीमहाप्रभुने दही-चावल
भोजन किया, और श्रीचैतन्यदासको अपना उच्छिष्ट प्रदान किया।
आगे चलकर ‘श्रीचैतन्यदास’ एक अप्राकृत ‘कवि’के रूपमें प्रसिद्ध हुए।



सतासीवाँ परिच्छेद

ठाकुर श्रीहरिदासका तिरोधान

श्रीनामाचार्य श्रीठाकुर हरिदास श्रीगौरसुन्दरके वासस्थानके समीप
एक निर्जन पुष्पोद्यानमें* रहते हुए निरन्तर सख्या रखकर हरिनाम लिया
करते थे। एक दिन श्रीगोविन्द श्रीहरिदास ठाकुरके निकट श्रीमहा-
प्रसाद लेकर गये, देखते क्या है कि ठाकुर सोये हुए हैं और बहुत धीरे-
धीरे सख्या नाम सकीर्तन कर रहे हैं। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रसादका
एक कणमात्र लेकर उसका सम्मान किया। फिर एक दिन श्रीमन्महा-
प्रभुने स्वयं आकर श्रीहरिदाससे कुशल पूछी। श्रीहरिदास बोले,—

* यह स्थान ‘सिद्धवकुल’के नामसे प्रसिद्ध हो गया है।

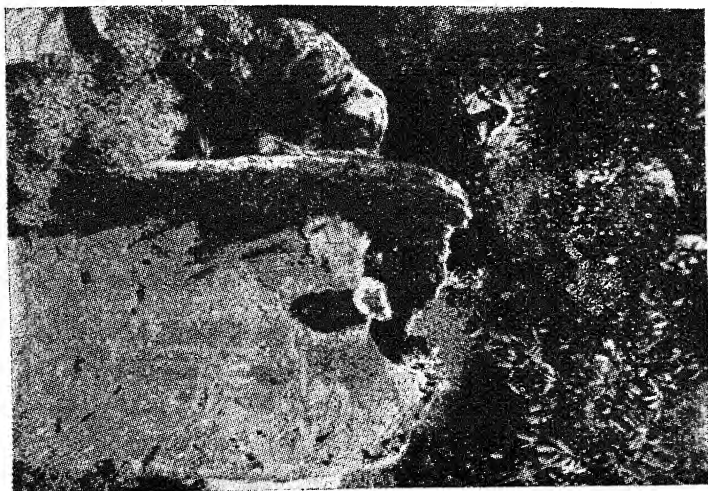
“शरीर सुस्थ हय मोर, असुस्थ बुद्धि - मन ।”

—चै० च० अ० ११।२२

[मेरा शरीर स्वस्थ है पर बुद्धि और मन अस्वस्थ हैं ।]

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“हरिदास तुम्हें क्या बीमारी है ?” हरिदास ने उत्तर दिया —“मेरा संख्या-नाम-कीर्तन पूरा नहीं हो रहा है, यही मेरी बीमारी है ।” श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—“तुम्हारी सिद्ध देह है, अतएव इस प्रकारके साधनाभिनयमें आग्रहकी क्या आवश्यकता है ?”

श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुके सामने अत्यन्त दीनता प्रकट की और उनसे एक विशेष प्रार्थना करके कहा कि उनके हृदयकी एकमात्र अभिलाषा यही है कि वे श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोंको हृदयमें धारण करके तथा उनके चन्द्रवदनको दोनों नयनोंसे देखते हुए मुखसे श्रीकृष्ण-

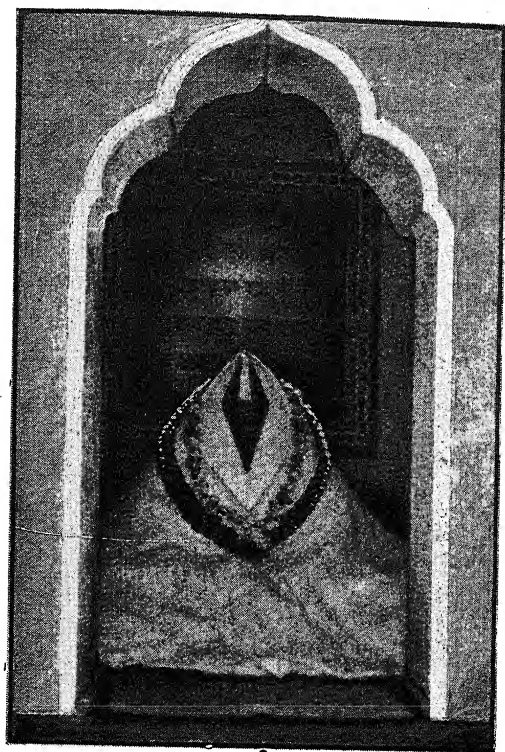


श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-स्थली 'सिद्ध-वकुल' (पुरी)

चैतन्य' नामोच्चारण करते-करते इहलीला सवरण करें। क्योंकि वे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके बाद इस पृथ्वीपर नहीं रह सकेंगे।

श्रीमन्महाप्रभु उस दिन चले गये और दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करनेके बाद भक्तोंको साथ लेकर पुनः श्रीहरिदासके यहाँ पहुँचे। श्रीहरिदासकी कुटीके सामने महासकीर्तन प्रारम्भ हुआ—सभी श्रीहरिदासको घेरकर श्रीनाम-सकीर्तन करने लगे। श्रीमहाप्रभु तब सब वैष्णवोंके सामने श्रीहरिदासका गुण वर्णन करने लगे। समवेत वैष्णवोंने श्रीहरिदासके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुको सामने बैठाया और वे प्रभुके श्रीमुखचन्द्रके दर्शन करने लगे। श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोंको लेकर श्रीहरिदासने अपने हृदयपर स्थापन किया, सब भक्तोंकी चरणधूलि लेकर अपने सिरपर धारण की और वे बारम्बार मुखसे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु' नाम उच्चारण करने लगे। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामोच्चारणके साथ-साथ भीष्मकी इच्छा-मृत्युके समान ठाकुर श्रीहरिदासका भी 'महाप्रयाण' हो गया। सभी 'हरि', 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए महासकीर्तन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु प्रेमानन्दसे अत्यन्त विह्वल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुरको सुशोभित पलंगपर चढ़ाकर भक्तोंके साथ नृत्य करते-करते समुद्रके किनारे ले गये। श्रीहरिदासके चिदानन्दशरीरको समुद्रजलमें स्नान कराकर श्रीमहाप्रभु बोले,—“आजसे समुद्र महातीर्थ हो गया।” महाप्रभुके भक्तोंने श्रीहरिदासका चरणधौत-जल पान किया, श्रीहरिदासके अगपर प्रसादी चन्दन लेपन किया और वस्त्रादिके द्वारा ढककर उस शरीरको बालुकाके गर्तमें शयन करा दिया। महाप्रभुने स्वयं 'हरि बोलो' 'हरि बोलो' कहते हुए अपने हाथों श्रीहरिदास ठाकुरको समाधिस्थ किया और उनपर बालू देकर समाधिपीठ बनवा दिया। निरन्तर भक्तोंका सकीर्तन और नृत्य होने लगा। श्रीमन्महाप्रभुने 'ठाकुर श्रीहरिदासकी समाधिपीठ'की प्रदक्षिणा की और वे श्रीहरि-कीर्तन करते-करते सिंहद्वारपर आये। “हरिदास ठाकुरके महोत्सवके लिये



श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधि (पुरी)

मुझको महाप्रसाद भिक्षा दो” — यह कहकर श्रीमहाप्रभुने पसारियोके (प्रसाद-विक्रेताओके) सामने स्वयं आँचल पसारकर श्रीमहाप्रसादकी भिक्षा ली ।

प्रचुर महाप्रसाद सगृहीत हो गया , ठाकुर हरिदासके विरहोत्सवमें स्वयं श्रीमहाप्रभुने अपने हाथसे सबको प्रचुर परिमाणमें प्रसाद परोसा । पश्चात् पुरी, भारती आदि सन्यासियोंके साथ स्वयं प्रसादका सम्मान किया । भक्तगण कण्ठ तक भरकर प्रसाद-भोजनकर हरिकीर्तन करने लगे । श्रीमहाप्रभु ठाकुर श्रीहरिदासके विरहमें पुन-पुन विलाप करते हुए कहने लगे,—

कृपा करि’ कृष्ण मोरे दियाछिला संग ।

स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,—कैला संग-भंग ॥

—चै० च० अ० ११।१४

[कृपा करके श्रीकृष्णने मुझे हरिदासका संग दिया था । कृष्णकी इच्छा स्वतन्त्र है । उसने उस सगको तोड़ दिया ।]



अठासीवाँ परिच्छेद श्रीपुरीदास और परमेश्वर मोदक

प्रति वर्षके समान इस वर्ष भी गौडीय भक्तगण पुरीघाम पधारे । श्रीशिवानन्द सेनके तीन पुत्र भी उनके साथ आये । श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीशिवानन्दने अपने कनिष्ठ पुत्रका नाम ‘श्रीपरमानन्द-पुरीदास’ रक्खा था । जब श्रीशिवानन्दने बालक परमानन्दको श्रीमहा-प्रभुके समीप उपस्थित किया, तब श्रीमन्महाप्रभुने बालकके मुखमें अपने

पैरका अंगूठा दे दिया। बालक उस अंगूठेको चूसने लगा। वे परमानन्द-दास ही 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक' और 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका' के प्रसिद्ध रचयिता 'श्रीकविकर्णपूरगोस्वामी' हैं। उनके रचे हुए श्रीआनन्द-वृन्दावनचम्पू और 'अलंकारकौस्तुभ' आदि ग्रंथ भी गौडीय-वैष्णव-साहित्य-भाण्डारके महामणि-स्वरूप हैं।

श्रीधाम-नवद्वीपमें बाल्यलीलाके समय श्रीगौरसुन्दर श्रीमायापुरके 'परमेश्वर मोदक' नामक एक मोदक (हलवाई) के घर दुग्ध-खण्डादि मिष्ठान्नके लिये प्राय ही जाया करते थे। उसी भाग्यवान् मोदकने अपनी पत्नीके साथ पुरी आकर श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोके दर्शन किये। मोदकने श्रीमहाप्रभुकी बाल्यलीलाका स्मरण करके श्रीमहाप्रभुसे कहा,—“मेरे साथ मुकुन्दकी माता भी (मेरी पत्नी भी) आयी है।” सन्यासीके आदर्शका प्रदर्शन करनेवाले लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभु मुकुन्दकी माताका नाम सुनकर कुछ सकुचित हुए। परन्तु सरल ग्राम्यस्वभाव मोदकको कुछ नहीं कहा, बल्कि वे भीतर ही भीतर सुखी हुए।



नवासीवाँ परिच्छेद

पंडित श्रीजगदानन्द

पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीशिवानन्द सेनक घरसे एक घड़ा सुगन्धित चन्दनादि तेल बहुत यत्नसे लाकर श्रीमहाप्रभुके व्यवहारके लिये श्रीगोविन्दके हाथमें प्रदान किया। लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभुने सन्यासीके आचरणकी शिक्षा देनेके लिये श्रीगोविन्दसे कहा,—“प्रथम तो सन्यासीको किसी भी तेलका अधिकार नहीं है और उसमें भी फिर यह सुगन्धित तेल! यह तेल श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें ले जाकर दे आओ, उससे उनका दीपक जलेगा—तुमलोगोका परिश्रम सफल हो जायगा।”

दस दिनके बाद पुन श्रीगोविन्दने श्रीमहाप्रभुसे श्रीजगदानन्दका अनुरोध कह सुनाया, तब श्रीमहाप्रभु क्रोध प्रकट करते हुए बोले,— “जब जगदानन्दने तेल दिया है तब मालिश करनेवाला एक आदमी भी होना चाहिए । इसी सुखके लिये तो मैंने सन्यास लिया है । इसमें मेरा सर्वनाश है और तुम लोगोका परिहास है । रास्ता चलते समय जब लोगोको तेलकी सुगन्धि मिलेगी तो मुझको लोग ‘दारी-सन्यासी’ ही समझेंगे ।”

पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीगोविन्दके मुखसे श्रीमहाप्रभुकी इन सारी बातोको सुनकर प्यारभरे गुस्सेमें आकर श्रीमहाप्रभुके सामने ही तेलके बर्तनको फोड़ दिया और अपने घरका द्वार बन्द करके वे अनशन करके सो रहे । भक्त-प्रेमवश श्रीमहाप्रभु भक्तका मान-भग करनेके लिये तीसरे दिन श्रीजगदानन्दके घर गये और उन्होंने स्वयं उपयाचक बनकर पंडितके द्वारा भोजन बनवाकर भिक्षा ग्रहण की और पंडितको भी प्रसाद सेवन कराया ।

इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने यह बतलाया कि सर्वोत्कृष्ट उपकरणके द्वारा एकमात्र परमेश्वरकी ही स्वारसिकी-सेवा* करनी चाहिये । साधक अपने इन्द्रिय-सुखका त्यागकर आदर्श जीवन बिताते हुए हरिसेवा करे । वे कभी भी भोगका अथवा महाभागवतकी चेष्टाका अनुकरण न करे ।

कृष्ण-विरहानलमे श्रीमहाप्रभुकी देह सदा तप्त रहती थी, अतएव वे केलेके वृक्षके ऊपरी वस्तुपर शयन करते थे । श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारके वैराग्यका आचरण करते हुए देखकर भक्तोके हृदयमें अत्यन्त व्यथा होती थी । पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीमहाप्रभुके लिये गेरुए रगकी

* स्वारसिकी-सेवा—स्व=निज, रसके अनुकूल सेवा, अर्थात् अपनी रुचि जिस-जिस वस्तुके उपभोगकी होती है, उस-उस वस्तुको भोग न करके भगवान्‌के भोगमें लगाना ।

खोली देकर गद्दा-तकिया तैयार कराया। परन्तु महाप्रभुने उसे स्वीकार नहीं किया। अन्तमें श्रीस्वरूप-गोस्वामीप्रभुने सूखे केलेके पत्तोको नखसे चीर-चीर करके उसे चादरमें भरकर गद्दा-तकिया तैयार करा दिया। बहुत चेष्टा करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुने उसे व्यवहार करना स्वीकार किया। इस लीलाके द्वारा भी श्रीमहाप्रभुने साधक-सन्यासियोंको श्रीकृष्णप्रीतिके लिये भोग-त्यागके आदर्शकी शिक्षा दी है।



नब्बेवाँ परिच्छेद देवदासीका 'श्रीगीतगोविन्द'-गान

एक दिन श्रीमहाप्रभुको दूरसे श्रीजयदेवके 'गीतगोविन्द'का एक पद-गान सुनाई दिया। स्त्री है या पुरुष—कठ-स्वर किसका है, इस ओर ध्यान न देकर महाप्रभु प्रेमावेशमें अपने-आपको भूल गये और अर्द्धबाह्यदशाको प्राप्त हो कण्टकमय वनके मार्गसे गायिका देवदासीकी ओर दौड़ पड़े। सेवक श्रीगोविन्दने श्रीमन्महाप्रभुको रोककर बताया कि वह किसी स्त्रीका सगीत है। 'स्त्री' नाम सुनते ही श्रीमहाप्रभुको बाह्यदशा प्राप्त हो गयी और वे बोले,—

* * गोविन्द, आज राखिला जीवन ।

स्त्री-परश हँले आमार हृदय मरण ॥

ए-ऋण शोधिते आमि नारिमु तोमार ।

—चै० च० अ० १३।८५-८६

[गोविन्द, आज तुमने मेरा जीवन बचाया। स्त्री-स्पर्श होनेपर मेरी मृत्यु हो जाती। मैं तुम्हारा यह ऋण नहीं चुका सकूँगा।]

श्रीमहाप्रभुने इम लीलाके द्वारा श्रीकृष्ण-कीर्तन-श्रवणके बहाने रमणीके मधुर कण्ठ और रूपका उपभोग करनेकी प्रच्छन्न पिपासा—जो भविष्यमें सहजिया-सम्प्रदायमें सक्रामक रोगके समान फैल जायगी—उसका सर्वतोभावेन निषेध किया। श्रीकृष्ण-गान-श्रवणका बहाना करके मुमुक्षु, सन्यासी या साधक-जीवके लिये स्त्रियोंका गान सुनना उचित नहीं है। साधक-जीवको इस विषयमें निरन्तर सावधान रहना चाहिये।



इकानबेवाँ परिच्छेद

श्रीरघुनाथ भट्ट

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीकाशीसे श्रीपुरुषोत्तमधाम आते समय अपने साथ 'रामदास विश्वास' नामक एक रामानन्दी-सम्प्रदायके पंडितको लेते आये थे। रामदासके हृदयमें मुक्तिकी पिपासा और पांडित्यका अहंकार था, अतएव श्रीमन्महाप्रभुने रामदासकी बाहरी दीनता और वैष्णव-सेवाका अभिनय देखकर भी उनके प्रति उदासीनता प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथको विवाह करनेसे मना कर दिया और परम वैष्णव पिता श्रीतपन मिश्र तथा परमाभक्तिमती माताकी सेवाके लिये पुनः काशी भेज दिया। श्रीरघुनाथदास गोस्वामि-प्रभुके वृद्ध माता-पिताने पुत्रके परमार्थमें बाधा प्रदान की थी, इसीलिये श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथको उनके सगसे छुड़ाकर दूसरी जगह बुलाया था, परन्तु श्रीरघुनाथ भट्टके वृद्ध माता-पिता भगवान्‌के एकान्त सेवक-सेविका थे। इसी कारण श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको, वृद्ध माता-पिताका अन्तर्धान होनेके बाद नीलाचल चले आनेका आदेश देकर,

उन लोगोकी सेवाके लिये घर भेजा । श्रीरघुनाथ भट्ट माता-पिताकी कृष्ण-प्राप्तिके बाद श्रीमहाप्रभुके पास नीलाचल चले आये । श्रीमहा-प्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको अपने पास आठ मास रखनेके बाद श्रीवृन्दा-वनमें श्रीरूप-सनातनके पास भेज दिया और निरन्तर श्रीमद्भागवत पाठ और श्रीकृष्णनाम लेनेका आदेश दिया ।

श्रीमन्महाप्रभुकी इस लीलामें एक महती शिक्षा है । जो व्यक्ति ससारमें प्रविष्ट नहीं हुए हैं और जिनके हृदयमें निष्कपट हरि-भजन करनेकी प्रवृत्ति है, उनको बहिर्मुख ससारी बननेकी प्रेरणा देना उनके प्रति हिंसा करना ही होता है । फिर श्रीमहाप्रभुने वैष्णव माता-पिताकी सेवाके सुयोगके बहाने नये ढंगसे ससार बनाने या भोगमय ससारमें प्रवेश करनेकी जो प्रच्छन्न भोगवृत्ति मनुष्यके हृदयमें होती है, उसका भी श्रीरघुनाथ भट्टको विवाह न करनेकी आज्ञा देकर निवारण कर दिया है ।



बानबेवाँ परिच्छेद

उत्कलवासिनी भक्तमहिला

श्रीमहाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण होनेपर भी जगत्के जीवोको कृष्ण-भक्तके आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका श्रीराधारानीके भाव और कान्तिको लेकर अवतीर्ण हुए थे । श्रीकविराज गोस्वामिपाद कहते हैं—

कृष्णवांछा-पूर्तिरूप करे' आराधने ।

अतएव 'राधिका' नाम पुराणे बाखाने ॥

—चै० च० आ० ४।८७

[कृष्णकी बाछापूतिरूप आराधन करती है, इसलिये पुराणोंमें उनका 'राधिका' नाम बतलाया गया है ।]

स्वेच्छामय लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अभिलाषा सर्वेन्द्रियसे और सर्वतोभावसे निरन्तर पूर्ण करनेके लिये ही जिन्होंने श्रीविग्रह धारण किया है, वे ही हैं—'श्रीराधिका' । श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका होनेके कारण ही उनका नाम 'श्रीराधा' है । जो सर्वश्रेष्ठ सेवक है, वे कभी भी सेव्यतत्त्वके द्वारा अपना भोग-साधन प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं करते । वे निरन्तर समस्त इन्द्रियोंके द्वारा सर्वतोभावसे किस प्रकार श्रीकृष्णको सन्तोष प्राप्त हो, इसीके अनुसन्धानके आवेशमें ही आविष्ट और उन्मत्त रहते हैं । इस आवेशकी और उन्मत्तताकी पराकाष्ठाको ही भक्तिशास्त्रकी परिभाषामें 'दिव्योन्माद' कहा गया है ।

श्रीमन्महाप्रभु अपनेको श्रीराधारानीकी एक दासी समझते थे । इनमें भी उनकी एक शिक्षा है । पीछे अपनेमें 'राधा' होनेका अभिमान करनेपर लोग 'मैं राधा हूँ'—ऐसी कल्पना करके 'अहग्रहोपासना' को प्रश्रय दे देंगे, इसी कारण श्रीमहाप्रभु अपने लिये श्रीराधारानीकी दासी होनेका अभिमान करते थे ।

एक दिन श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्नमें देखा कि मुरलीवदन श्रीश्याम-सुन्दर श्रीराधारानीके साथ गोपागनाओकी मण्डलीमें नृत्य कर रहे हैं । इधर श्रीमहाप्रभुके उठनेमें देर होती देखकर गोविन्दने श्रीमहाप्रभुको जगानेकी चेष्टा की । श्रीमहाप्रभु जगकर अत्यन्त ही कृष्ण-विरह-विधुर हो उठे । अभ्यासवश नित्यकृत्य सम्पादन करके वे श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिए श्रीमन्दिर चले गये ।

श्रीजगन्नाथदेवके नाट्य-मन्दिरमें एक 'गरुडस्तम्भ' है । वह गर्भमन्दिरसे बहुत दूर अवस्थित है । श्रीमहाप्रभु उस गरुडस्तम्भके

* 'अहग्रहोपासना'—दो प्रकारकी है—(१) जीवका अपनेको 'विषय-विग्रह' समझनेका अभिमान और (२) अपनेको 'मूल-आश्रय-विग्रह' माननेका अभिमान । दूसरी 'अहग्रहोपासना' अधिकतर अपराधमयी है ।

पीछेसे ही श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करते थे। इसके द्वारा श्रीमहाप्रभु यह शिक्षा देते थे कि, गरुड श्रीनारायणक नित्य पार्षद भक्त हैं, उनके पीछे रहकर ही अर्थात् श्रीभगवान्‌के शुद्ध भक्तका अनुगामी होकर ही श्रीभगवान्‌के दर्शनके लिये जब मनुष्य आर्त्त हो जाता है, तब श्रीभगवान् कृपा करके दर्शन देते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु गरुडस्तम्भसे भावावेशमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर रहे थे, उनके सामनेसे भी लाखो-लाखो लोग श्रीजगन्नाथदेवजीके दर्शन कर रहे थे, उसी समय एक उत्कलवासिनी नारी उस भारी भीड़में श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन न पाकर श्रीमहाप्रभुके कन्धेपर पैर रखकर गरुडस्तम्भपर चढ़कर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर रही थी। यह देखकर गोविन्दने अतिशय व्यग्र होकर उन स्त्रीको नीचे उतार दिया। श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको मना करते हुए कहा,—“वे श्रीजगन्नाथ जीकी सेवा कर रही हैं, अतएव उनकी सेवामें बाधा डालना उचित नहीं है। वे इच्छानुसार श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करे।” उन स्त्रीको जब यह पता लगा कि उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके कन्धेपर पैर रक्खा था तो वह शीघ्र ही नीचे उतरकर श्रीमहाप्रभुको प्रणाम करके पुनः-पुनः क्षमा-प्रार्थना करने लगी। श्रीमहाप्रभु उन स्त्रीके आर्त्तभावको देखकर कहने लगे,—“अहो! श्रीजगन्नाथकी सेवाके लिये मुझे तो इस प्रकारके आर्त्तभावकी प्राप्ति नहीं हुई। इनके देह-मन-प्राण सभी जगन्नाथजीके पादपद्मोंमें आविष्ट हैं, इसी कारण इनको इतना भी बाह्यज्ञान नहीं है कि इन्होंने दूसरेके कन्धेपर पैर रक्खा है। ये महिला अत्यन्त भाग्यवती हैं, मैं इनकी कृपाके लिये प्रार्थना करता हूँ। इनकी कृपासे संभव है किसी दिन मुझमें भी इसी प्रकारकी आर्त्ति उदय हो जाय।”

श्रीमन्महाप्रभुने इस लीलाके द्वारा शिक्षा दी कि ऐकान्तिक कृष्णसेवाके उपकरणको इन्द्रियजन्य ज्ञानसे स्त्री-पुरुषादिको बाह्य रूपमें देखना उचित नहीं। जब तक हमको प्रकृतिजात स्त्री और पुरुषका अभिमान रहता है, तब तक श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन नहीं होते, उनकी

सेवाके लिये यथार्थ आर्तभावका भी उदय नहीं होता । जिनका चित्त सर्वदा श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानमें आविष्ट रहता है, वे सर्वत्र सर्वदा कृष्णसेवाके उपकरणोंको ही देखते हैं ।

तिरानबेवाँ परिच्छेद दिव्योन्माद

श्रीगौरसुन्दरका विप्रलम्भ (श्रीकृष्ण-विरह) क्रमशः बढ़ने लगा । रातमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दके समीप विलाप करते-करते न जाने कितने प्रकारसे श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानके लिये अपनी व्याकुलता प्रकट करते थे । एक दिन रात्रिके समय श्रीमन्महाप्रभु अपने शयन-कक्षके तीनों द्वार बन्द करके शयन कर रहे थे । गभीर रात्रिमें प्रभुकी कोई भी आवाज न पाकर श्रीगोविन्द और श्रीस्वरूपको सन्देह हुआ । किसी प्रकार द्वार खोला तो उन्हें दिखायी दिया कि घरके सारे द्वार बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु घरमें नहीं हैं । श्रीस्वरूपादि भक्तोंने अनुसन्धान करते-करते श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके सिंहद्वारके उत्तर अचेतन अवस्थामें देखा । भक्तगण जब कृष्णनाम उच्चारण करने लगे तो श्रीमहाप्रभुको चेत हुआ । भक्तवृन्द प्रभुको घर ले गये ।

एक दिन श्रीमहाप्रभु समुद्रकी ओर जा रहे थे, अकस्मात् 'चटक-पर्वत' * देखकर श्रीमहाप्रभुने उसको गोवर्द्धन समझा । श्रीमहाप्रभु

* श्रीगदाधर पंडित गोस्वामीप्रभुके श्रीटोटा-गोपीनाथके श्रीमन्दिरके सामने जो बालूके पर्वतके समान ऊँचा स्तूप है, वह 'चटक-पर्वत'के नामसे प्रसिद्ध है । इसी स्थानमें श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामिपादने 'श्रीपुरुषोत्तम मठ'की स्थापना की है ।

गोवर्द्धनके सम्बन्धका श्रीमद्भागवतका एक श्लोक पढ़ते-पढ़ते वायुवेगसे पर्वतकी ओर दौड़ पड़े। उनके शरीरमें अद्भुत सात्विक विकार समूह प्रकट हो आये, वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे श्रीराधाकी दासीके अभिमानमें अपनी भावदशाओंका वर्णन करने लगे।

इसी प्रकार श्रीमहाप्रभु रात-दिन कृष्ण-विरहमें प्रेमावेशमें आविष्ट रहते थे। उनकी कभी अन्तर्दशा, कभी अर्धवाह्यदशा और कभी बाह्य-स्फूर्ति हो जाती थी। केवल स्वभाव और अभ्यासवश वे स्नान, दर्शन, भोजनादि करते थे। वे महाभावमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दका गला पकड़कर श्रीकृष्णके लिये विलाप करते थे। अपनेको 'गोपीकी दासी' अभिमान करके और पुष्पोद्यानोको श्रीवृन्दावन रूपमें देखकर उनमें प्रवेश करते, तथा तरु-लता-गुल्म और मृगोंके समूहसे श्रीकृष्णका पता पूछते।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण-विरहमें विह्वल होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते समय श्रीजगन्नाथजीको श्रीश्यामसुन्दर मुरली-मनोहर-रूपमें देखते थे और कभी महाभावके आवेशमें मन्दिरके द्वार-रक्षकका हाथ पकड़कर कहते,—“मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्णको दिखला दो।”

एक दिन पण्डोने श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथका बाल्य-भोग महाप्रसाद ग्रहण करानेकी चेष्टा की। श्रीमहाप्रभुने उसमेसे जरा-सा स्वीकार किया, तत्काल ही उनका सर्वांग पुलकित हो उठा और नयनोंसे अश्रुधारा बह चली। इस प्रकार प्रसादमें श्रीकृष्णके अधरामृतका संचार हुआ है, इसी स्मृतिसे श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें श्रीकृष्णके अधरोका बहुत तरहसे गुणगान करने लगे। श्रीकृष्णके अधरामृत-पानके लिये श्रीराधा और श्रीगोपिकाओंकी जो सुतीव्र उत्कण्ठा है वह श्रीमहाप्रभुमें प्रकट हो उठी।



चौरानबेवाँ परिच्छेद

श्रीकालिदास और श्रीझड़ूठाकुर

श्रीकालिदास-नामक श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादके एक दूर-सम्पर्कमें चाचा थे। वैष्णवोका उच्छिष्ट भोजन करके वैष्णवोकी कृपा प्राप्त करना ही उनका आजीवन साधन और साध्य था। श्रीमहाप्रभुके दर्शनके लिये गौडदेशसे जितने वैष्णव पुरीमें आते थे, श्रीकालिदास उन सभीका उच्छिष्ट भोजन करते। वैष्णव देखते ही वे उनके पास उत्तम-उत्तम भोजनकी सामग्री 'भेट' ले जाते थे और उनके भोजनके बाद बचा हुआ माँग लेते थे। "वैष्णवमें किसी प्रकारकी जाति-बुद्धि नहीं रखनी चाहिये।"—इसका उज्ज्वल आदर्श श्रीकालिदास ने अपने जीवनमें आचरणके द्वारा दिखला दिया।

श्रीमन्महाप्रभुके भवत श्रीझड़ूठाकुर भुईमाली-कुलमें आविर्भूत हुए थे। श्रीकालिदास एक दिन कुछ मीठे आम 'भेट' लेकर झड़ूठाकुरके पास गए और झड़ूठाकुर तथा उनकी सहधर्मिणीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीझड़ूठाकुरने श्रीकालिदासकी अभ्यर्थना करके किसी ब्राह्मणके घरमें उनके आतिथ्यकी व्यवस्था करनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीकालिदासने समझा कि श्रीझड़ूठाकुर दैन्य दिखाकर उनको ठगनेकी चेष्टा कर रहे हैं। श्रीकालिदासने श्रीझड़ूठाकुरकी चरणधूलिके लिये प्रार्थना की और उनका चरण अपने सिरपर धारण करनेकी इच्छा प्रकट की।

श्रीकालिदास जब झड़ूठाकुरके घरसे जाने लगे, तब झड़ूठाकुर कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए। झड़ूठाकुर जब घरकी ओर लौट गये तब कालिदासने मार्गमें जहाँ झड़ूठाकुरके पदचिह्न पड़े थे, वहाँकी धूल लेकर अपने सर्वांगमें लगा लिया तथा झड़ूठाकुर इसको देख न सके, इस प्रकारसे वे एक जगह छिप गए।

इधर झड़ूठाकुर मन-ही-मन भगवान्‌को आम निवेदन करके प्रसाद ग्रहण करने लगे । तत्पश्चात् उनकी सहधर्मिणीने झड़ूठाकुरके भुक्तावशेषको ग्रहण करके आमके छिलके और चूसी हुई गुठलियोंको बाहर घूरेपर फेंक दिया ।

श्रीकालिदास अब तक छिपे हुए थे , उन्होंने उस उच्छिष्टके गड्ढे में से आमके छिलके और गुठलियोंको इकट्ठा कर लिया और उन्हें चूसते-चूसते वे प्रेममें विह्वल हो गए ।

श्रीमहाप्रभु जब मन्दिरमें श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये जाते थे, तब सिंहद्वारके समीपकी सीढ़ीके नीचे एक गड्ढेमें पैर धोकर मन्दिरमें प्रवेश करते थे । उन्होंने श्रीगोविन्दको विशेष रूपसे कह दिया था कि जिसमें कोई उनके उस पैर धोये हुए जलको किसी प्रकार भी ग्रहण न करने पाये । दो एक अन्तरंग भक्तोंके सिवा कोई भी उस जलको ग्रहण नहीं कर सकता था । एक दिन श्रीमहाप्रभु पैर धो रहे थे, इसी समय श्रीकालिदासने तीन अजलि चरणोदक पान कर लिया । वे श्रीगोविन्दसे श्रीमहाप्रभुका उच्छिष्ट माँगकर उसका भोजन करते ।

श्रीकृष्णके उच्छिष्टका नाम 'महाप्रसाद' है , और कोई भी महा-भागवत जब महाप्रसादका आस्वादन करके जो शेष छोड़ देते हैं, तब उसे 'महामहाप्रसाद' कहते हैं । महाभागवतकी चरणधूलि, महाभागवतका चरणोदक और महाभागवतका भुक्तावशेष—ये तीन ही साधनके बल हैं । इन तीन वस्तुओंकी सेवासे श्रीकृष्णके चरणोमें प्रेमकी प्राप्ति होती है—इस सिद्धान्तमें दृढनिष्ठ श्रीकालिदासने इन तीन अलौकिक वस्तुओंकी सेवाकी ही साध्य और साधन रूपमें निश्चय किया था ।



पंचानवेवाँ परिच्छेद श्रीपुरीदासकी कवित्व-स्फूर्ति

एक वर्ष श्रीशिवानन्द सेन अपनी पत्नी और शिशु-पुत्र श्रीपुरीदास को साथ लेकर नीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुके चरणोमे उपस्थित हुए। श्रीशिवानन्दने जब पुरीदासको श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोमे प्रणत कराया, तब श्रीमहाप्रभु पुन-पुन बालकको 'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो', बोलकर श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण करनेके लिये प्रेरणा देने लगे। परन्तु बालकने किसी प्रकार भी कृष्ण-नाम उच्चारण नहीं किया। वह पूर्णरूपसे मौन लिये रहा। श्रीशिवानन्दने भी बालकसे कृष्ण-नाम बुलवानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु पिताकी भी सारी चेष्टा व्यर्थ हुई। तब श्रीमहाप्रभु अत्यन्त विस्मित होकर बोले,—“मैंने स्थावरतकसे कृष्ण-नाम बुलवा दिया, परन्तु जगत्मे एकमात्र इस बालकसे ही श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण नहीं करा सका।” यह सुनकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभु बोले,—“मुझे अनुमान हो रहा है कि आपने श्रीपुरीदास को जो श्रीकृष्णनाम-मन्त्र उपदेश किया है उसे वह दूसरे लोगोंके सामने प्रकट करना नहीं चाहता। इसी कारण वह मन्त्रका उच्चारण न करके मन-ही-मन उसका जप करता है।”

फिर एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीदासको कुछ पढ़नेके लिये कहा तो बालकने इस श्लोककी रचना करके उसे पढ़ दिया,—

श्रवसोः कुबलयमक्ष्णो रंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।

वृंदावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥

—श्रीकविकर्णपूरकृत 'आर्याशतक'का प्रथम श्लोक

[जो श्रवण-युगलके लिये नीलकमल, नेत्रोके लिये अजय, वक्ष स्थलके लिये इन्द्रनीलमणिमय हार—श्रीवृन्दावनकी रमणियोंके लिये अखिल भूषणरूप है ऐसे श्रीहरिका जय जयकार हो रहा है।]

सात वर्षका शिशु जिसने अव्ययन नहीं किया—वह किस प्रकार ऐसे श्लोककी रचना कर सकता है, इसके कारणका निर्णय न कर पानेसे सभी लोग विस्मित हो उठे और सबने विचार किया कि एकमात्र श्रीमहाप्रभुकी कृपासे ही यह संभव हुआ है। यही पुरीदास आगे चलकर श्रीकविकर्णपुर गोस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका रचा हुआ 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक'—श्रीगौर-लीलाका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ये १४४८ शकाब्दमें प्रकट हुए और १४९८ शकाब्द पर्यन्त इन्होंने ग्रन्थ-रचना की।



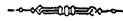
छानवेवाँ परिच्छेद अप्राकृत भावावेशमें कूर्माकृति

श्रीमन्महाप्रभु दिनरात श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त होकर नाना प्रकारसे उन्मादकी चेष्टा और प्रलाप करने लगे। श्रीकृष्णके सन्तोष-साधनके लिये जब हृदयमें व्याकुलताकी पराकाष्ठा उदित हो जाती है, तब इसी प्रकारके अप्राकृत भावोका उदय होता है।

इस समय श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरायरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुके साथ-साथ निरन्तर रहते थे। वे लोग प्रभुके भावोपयोगी नाना प्रकार के संगीत प्रभुके प्रिय ग्रन्थोंसे लेकर पढ़ते और कीर्तन करते थे। बीच-बीचमें श्रीमहाप्रभु भी किसी-किसी श्लोकको पढ़कर विलाप करते-करते श्लोकके तात्पर्यकी व्याख्या करते थे। एक दिन इसी प्रकार प्रायः आधी रात बीत गयी। श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुको शयन कराके अपने-अपने वासस्थानको चले गये; गम्भीराके द्वारपर श्रीगोविन्द सो रहे। अर्धरात्रिके बाद श्रीमहाप्रभु

उच्चस्वरसे सकीर्तन करने लगे। तीनों द्वारोंके किवाड बन्द थे, परन्तु कैसा आश्चर्य है कि द्वारके बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु भावावेशमें तीनों दीवालोकों लॉचकर बाहर निकल गये। सिंहद्वारके दक्षिणमें जहाँ 'तैलगी' * गाये रहती हैं, वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभु मूर्छित हो पड़े रहे। इधर श्रीगोविन्दने गम्भीरामें श्रीमहाप्रभुकी कोई आवाज न पाकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिपादको बुलवाया। श्रीस्वरूप-दामोदर दीपक जलाकर भक्तोंके साथ प्रभुको खोजने लगे। अनेकों स्थानोंपर खोजते-खोजते जब सिंहद्वारपर पहुँचे तो देखा कि, गायोंके बीचमें श्रीमहाप्रभु कूर्माकृतिमें पड़े हुए हैं। श्रीमहाप्रभुके मुँहमें फेन, श्रीअगमें पुलक, नयनोंमें अश्रुधारा, बाहर जडत्व और भीतर आनन्द है। चारों ओर गायें प्रभुके श्रीअगोंको सूँघ रही हैं, दूर हटानेपर भी वे प्रभुके अग-स्पर्शका त्याग नहीं कर रही हैं।

भक्तगण श्रीमहाप्रभुको घर ले आये, और कानमें बहुत देर तक उच्चस्वरसे नाम-सकीर्तन करनेके बाद श्रीमहाप्रभुको अर्द्ध-बाह्यदशा प्राप्त हुई। तब प्रभुके हाथ-पैर बाहर आये। श्रीमहाप्रभु स्वरूपके समीप फिर विरहका विलाप करने लगे।



* द्रविडके पूर्वोत्तर अवस्थित देशको 'तैलग देश' कहते हैं। उस देशकी गायको 'तैलगी गाय' कहते हैं। -

सत्तानबेवाँ परिच्छेद

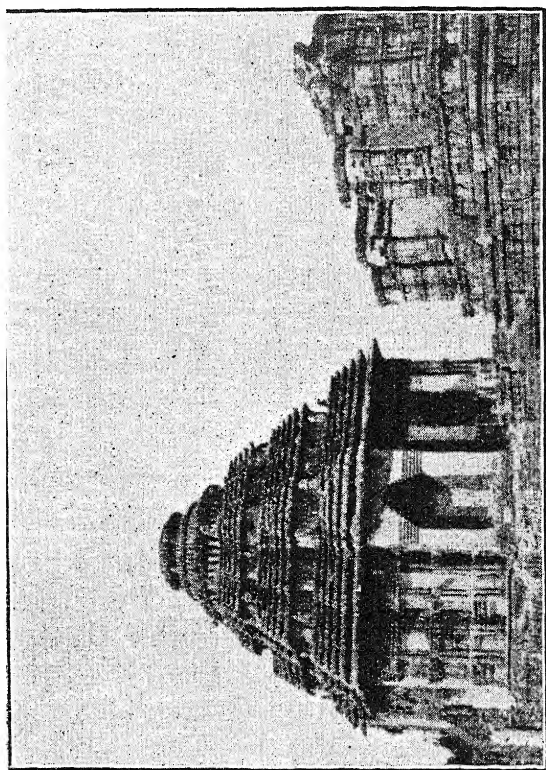
समुद्र-वक्षमें

शरत्कालकी किसी ज्योत्स्नामयी रजनीमें श्रीमहाप्रभु अपने भक्तोंके साथ कृष्ण-विरहमें विभावित होकर श्रीमद्भागवतके श्लोक श्रवण-कीर्तन करते हुए विभिन्न उद्यानोंमें भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते-करते 'आई-टोटा' नामक स्थानमें श्रीमहाप्रभुको अकस्मात् समुद्र दिखलायी दिया। नील सिन्धुकी उल्लसती हुई तरंगोपर चन्द्रज्योत्स्नाके पङ्क्तियोंसे वह झिलमिला रहा था। यह देखकर महाप्रभुको यमुनाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी। श्रीमहाप्रभु यमुना समझकर अत्यन्त वेगसे समुद्रकी ओर दौड़े और किसीके लक्ष्यमें न आकर समुद्रमें कूद पड़े। समुद्रमें गिरते ही श्रीमहाप्रभु मूर्छित हो गये। समुद्रकी तरंगें कभी श्रीमहाप्रभुको डुबा देती, कभी बहाती, कभी तरंगोंके साथ-साथ नचाती और कभी बहाकर तीरकी ओर लाने लगी। इस प्रकार मूर्च्छाविवशतामें तरंगोंके द्वारा परिचालित होकर श्रीमहाप्रभु 'कोणार्क' की* ओर चले। श्रीमहाप्रभु गोपीकी दासीका अभिमान करके यमुनामें कृष्णकी जल-केलि-उत्सव देखनेके भावमें मग्न थे।

इधर श्रीस्वरूपदामोदर प्रभृति भक्तगण श्रीमहाप्रभुको न देख पाकर मन-ही-मन नाना प्रकारके वितर्क करने लगे। उन्होंने अनेकों स्थानोंमें अन्वेषण किया, परन्तु कहीं भी श्रीमहाप्रभुका पता न लगा। इसी प्रकार अन्वेषण करते-करते जब रातका प्रायः अवसान हो गया तो सभीने निश्चय किया कि श्रीमहाप्रभु अन्तर्हित हो गये हैं। प्रभुके

* पुरीसे १६ मील दूर उत्तरकी ओर समुद्रतटपर काले पत्थरोंका सूर्य मन्दिर अवस्थित है। इस स्थानको इसीलिये 'कोणार्क' या 'अर्कतीर्थ' कहते हैं। 'अर्क'-शब्दका अर्थ है—सूर्य। बोलचालकी भाषामें इस स्थानको 'कणारक' भी कहते हैं।

विच्छेदसे किसीके भी शरीरमें प्राण नहीं-से रह गये। बन्धु-हृदयका यह स्वभाव ही होता है कि वह अनिष्टकी आशंका करता है। तथापि कोई भी श्रीमहाप्रभुके पुनः दर्शनकी आशाका परित्याग नहीं कर सके



कोणार्क या कणारकमें भक्त सूर्य-मन्दिर

और फिर खोज करने लगे। इसी समय श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने देखा कि एक मछुआ अपने कन्धेपर मछली पकड़नेका जाल रक्खे अद्भुत भावावेशमें 'हरि हरि' बोलता हुआ आ रहा है। मछुएके

ऐसे भावावेशको देखकर श्रीस्वरूपगोस्वामीने उसके इस प्रकारके भावावेशका कारण पूछा। मछुएने कहा कि, उसके जालमें एक मृत मनुष्य आया है। उसने एक बड़ी मछली समझकर उस मृत व्यक्तिको यत्नपूर्वक निकाला था। जालसे उसको बाहर करनेके समय जब उसका शरीर-स्पर्श हुआ है, तब उसके हृदयमें एक भूत प्रवेश कर गया है और भयसे उसके शरीरमें पुलक, कम्प, अश्रु और गद्गद् वाणीका प्रकाश हो गया है। उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके शरीरमें मानों सारे भूत-व्यापार प्रविष्ट हो जाते हैं। यह भूत मृत मनुष्यका रूप धारण करके कभी 'गों-गो' शब्द करता है और कभी अचेतन होकर पड़ा रहता है।

मछुएने और भी कहा,—“यदि मैं मर गया तो मेरे स्त्री-पुत्र कैसे जियेंगे? इसी डरसे मैं भूत छुड़वानेके लिये ओझाके पास जा रहा हूँ। मैं प्रतिदिन रातको अकेले निर्जनमें मछली पकड़ता घूमा करता हूँ। श्रीनृसिंह भगवान्‌के नामस्मरणसे भूत-प्रेत मेरा कुछ भी नहीं कर पाते। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'नृसिंह'का नाम लेते ही यह भूत मानो और भी दूनी शक्तिमें गर्दन दबा बैठता है। तुम लोग वहाँ मत जाना, वहाँ जाओगे तो तुमको भी भूत पकड़ लेगा।”

मछुएके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने यथार्थ विषयको समझ लिया और मछुएको आश्वासन देकर कहा,—“मैं एक बड़ा ओझा हूँ, तीन चपतमें ही तुम्हारा भूत छुड़ा देता हूँ। तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम जिनको भूत समझते हो, वे साक्षात् भगवान् हैं। प्रेमाविष्ट होकर वे समुद्रके जलमें कूद गये थे, तुमने अपने जालमें उनको निकाला है। उनके स्पर्शमात्रसे तुममें श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय हो गया है। तुमने उनको कहाँ निकालकर रक्खा है, मुझे तुरन्त दिखाओ।”

मछुएने भक्तगणको ले जाकर श्रीमहाप्रभुके दर्शन कराये। श्रीस्वरूप आदि भक्तोंने श्रीमन्महाप्रभुको समुद्र-बालुकामें मूर्छितावस्थामें शिथिल

शरीर देखकर, गीले कौपीनको हटाया और सूखा वस्त्र पहनाया तथा सब मिलकर उच्चस्वरसे सकीर्तन करने और श्रीमहाप्रभुके कानमें कृष्ण-नाम बोलने लगे ।-

कुछ क्षणोंके बाद श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे आये और भावावेशमें बोलने लगे,—“मैं श्रीधमुनाके दर्शन करके श्रीवृन्दावन गया था । मैंने देखा—वहाँ श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीगोपीगणके साथ महा-जलक्रीडा कर रहे हैं । मैं तीरपर खड़ा सखियोंके साथ श्रीकृष्णकी उस विचित्र लीलाको देख रहा था ।”

जब श्रीमन्महाप्रभु वाह्यदशामे आ गये, तब उन्होंने श्रीस्वरूप गोस्वामिपादसे पूछा,—“तुम मुझे लेकर इस स्थानपर क्यों खड़े हो ?” श्रीस्वरूपदामोदरने प्रभुसे आद्योपान्त सारी घटना सुनायी । श्रीमहाप्रभुने भी अपनी अवस्थाका अन्तरंग भक्तोंके प्रति वर्णन किया ।



अट्टानबेवाँ परिच्छेद

लीला-संगोपनका संकेत

भगवान् श्रीगौरसुन्दर प्रतिवर्ष वात्सल्यरस-मूर्ति श्रीशचीमाताको आश्विन देनेके लिये श्रीजगदानन्द पंडितको श्रीमायापुर भेजा करते थे । उनके साथ श्रीपरमानन्द पुरीपादके अनुरोधसे श्रीमन्महाप्रभु श्रीशचीदेवीके लिये श्रीनवद्वीप वस्त्र और महाप्रसाद भेजते थे । वे पार्षद भक्तगणके लिये भी महाप्रसाद भेजते थे ।

एक बार श्रीजगदानन्द पंडित जब नवद्वीप और शान्तिपुर होते हुए पुरी में आये, तब श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीजगदानन्दके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुके पास पहेलीके बहाने इस प्रकार की कुछ बातें कहला भेजी,—

बाउलके कहिह,—लोक हइल बाउल* ।

बाउलके कहिह,—हाटे ना बिकाय चाउल ॥

बाउलके कहिह,—काये नाहिक आउल† ।

बाउलके कहिह,—इहा कहियाछे बाउल ॥

—चै० च० अ० १६।२०-२१

अर्थात् प्रेमोन्मत्त (श्रीकृष्ण-विरहिणी गोपीके भावमें विभावित श्रीमहाप्रभु) से कहना कि लोग प्रेममें उन्मत्त हो गये हैं। प्रेमकी हाटमें प्रेमरूपी चावलके विक्रयके लिये स्थान अब नहीं है। अर्थात् दूसरे बहुतेरे लोग इस गोपी-प्रेमके तात्पर्यको उपलब्ध नहीं कर सकेंगे। उनसे कहना कि, आउल अर्थात् प्रेमातुर (अद्वैताचार्य) अब सासारिक कार्यमें नहीं है। प्रेम-पागलको कहना कि, प्रेम-पागल या प्रेमोन्मत्त श्रीअद्वैतने इस प्रकार कहा है। अर्थात् श्रीमहाप्रभुके आविर्भावका जो तात्पर्य था, वह पूरा हो गया है, अब प्रभुकी जो इच्छा हो, वही करे।

इस पहेलीको सुनकर श्रीमहाप्रभु कुछ हँसे, 'आचार्यकी जो आज्ञा'— कहकर चुप हो गये। जब श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने इस पहेलीका अर्थ पूछा तो श्रीमहाप्रभुने संकेत मात्र करके कहा,—

* * आचार्य हय पूजक प्रबल ।

आगम-शास्त्रेर विधि-विधाने कुशल ॥

उपासना लागि' देवेर करेन आवाहन ।

पूजा लागि' कत काल करेन निरोधन ॥

पूजा-निर्वाहण हैले पाछे करेन विसर्जन ।

—चै० च० अ० १६।२५-२

* 'बाउल'—बातुल (पागल) शब्दका अपभ्रंश है ।

† 'आउल'—'आकुल' या 'आतुर' शब्दका अपभ्रंश है ।

[आचार्य प्रबल पूजक, है, वे आगमशास्त्रके विधि-विधानमें कुशल हैं। उपासनाके लिये देवताका आवाहन करते हैं, पूजाके लिये उनको कुछ समयतक रखते हैं, जब पूजा समाप्त हो जाती है तब उनका विसर्जन कर देते हैं।]

श्रीमन्महाप्रभुने इशारेसे जताया कि, श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने ही श्री-मायापुरके गगातीर पर गगाजल और तुलसीके द्वारा पूजा करके श्री-महाप्रभुको गोलोकसे आवाहन कर भूलोकमें अवतीर्ण किया था। पूजाका निर्वाह करके जिस प्रकार पुजारी देवताका विसर्जन करता है, जान पड़ता है कि श्रीअद्वैताचार्य अब उसी प्रकारकी इच्छा प्रकट कर रहे हैं।

आचार्यकी इस प्रहेलिकाको पढ़नेके बादसे श्रीमन्महाप्रभुकी कृष्ण-विरह-दशा और भी बढ़ने लगी। विरहोन्मादमें श्रीमहाप्रभु रातमें गम्भीराकी दीवालसे मुँह रगड़ा करते थे। श्रीस्वरूप तथा श्रीरामराय समयोचित गानके द्वारा श्रीमहाप्रभुको सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते थे, परन्तु प्रभुका कृष्ण-विरह-सिन्धु नाना प्रकारसे उद्वेलित हो उठता था।

एक दिन वैशाखके महीनेमें पूर्णिमा-तिथिकी रातमें श्रीमहाप्रभुने 'श्रीजगन्नाथवल्लभ'* उद्यानमें महाभावावेशमें दस प्रकारकी चित्र-जल्पोक्ति† प्रकट की। दैन्य-उद्वेग और उत्कण्ठामें श्रीमहाप्रभु कभी-कभी श्रीस्वरूप-रामानन्दके साथ अपने स्वरचित 'शिक्षाष्टकके'‡ श्लोकोका आस्वादन करते-करते रात बिताते थे। अथवा कभी 'श्रीगीतगोविन्द' 'श्रीकृष्णकर्णामृत', 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक' (श्रीरामानन्द राय कृत), अथवा कभी श्रीचण्डीदास-विद्यापतिकी पदावली, और कभी श्रीमद्-

* गुण्डिचावाडी और मन्दिरके प्राय बीचो-बीच "जगन्नाथ वल्लभ" नामक एक उद्यान है।

† ग्रन्थके परिशिष्टमें श्रीचैतन्यदेवरचित 'शिक्षाष्टक' देखना चाहिये।

‡ तरह-तरहके भावत्रैचित्र्ययुक्तचमत्कारजनक वाक्य-विशेष। चित्रजल्प दस प्रकारके हैं,—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प, सुजल्प। श्रीरूपगोस्वामि-पादकृत श्रीउज्ज्वलनीलमणि-ग्रन्थमें विस्तृत विवरण देख सकते हैं।

भागवतके श्लोकोका आस्वादन करते-करते श्रीमहाप्रभुका कृष्ण-विरह रूपी महाभाव-सागर नवनवायमानरूपसे उच्छलित हो उठता था ।

ये समस्त अप्राकृत महाभावके लक्षण एकमात्र श्रीकृष्णकी सर्व-श्रेष्ठा सेविका और प्रियतमा श्रीराधारानीमे ही पूर्णतया प्रकट होते हैं । जो लोग जगत्के अभिनिवेश अथवा शुष्क वैराग्यके सामान्य सबलको लेकर व्यवसाय करते हैं, वे इन ऊँचे भावोंकी धारणा ही नहीं कर सकेंगे । इतना ही नहीं, जिनका चित्त वैकुण्ठके ऐश्वर्यमे आकृष्ट है, वे भी श्रीराधाके प्रेमोन्मादकी बात किसी तरह भी नहीं समझ सकते । श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम सेवा-राज्यकी चरम सीमा है । उसी सेवाकी पराकाष्ठाको—प्रेमकी पराकाष्ठाको इस प्रपञ्चमे मूर्तिमान् किया है श्रीचैतन्यदेवने ।

पूर्णतमभावमे सर्वांगद्वारा सब समय श्रीकृष्णके सुखका अनुसन्धान (आवेशके साथ ध्यान) करते हुए भी 'कुछ भी सेवा नहीं कर पा रहा हूँ, किस प्रकारसे कृष्णकी इन्द्रियतृप्ति करूँगा ?' इसके लिये जो निरन्तर प्रबलोत्कण्ठा होती है, उसीको 'विप्रलम्भ' या 'कृष्ण-विरह' कहते हैं । श्रीमन्महाप्रभुने इसी अति उच्चतम भजनके विषयको जगत्मे वितरित किया है । इसका वितरण पहले किसी समय किसी स्थानमे नहीं हुआ है ।

इस प्रकार श्रीमहाप्रभुने प्रथम चौबीस वर्ष गृहस्थलीलाका अभिनय, द्वितीय चौबीस वर्षमे पहले छ वर्ष सन्यासी-शिरोमणि आचार्यकी लीलामे समस्त भारतमे शुद्ध-भक्तिका प्रचार, शेष अठारह वर्षोंमे छ वर्ष भक्तोंके सग वास और पुरीमे आचार्य-लीलाका अभिनय तथा सबके अन्तके बारह वर्ष अन्तरंग भक्तोंके साथ निरन्तर रसास्वादन-लीला प्रकट करके कुल अड़तालीस वर्ष प्रकट-लीला की थी । इसके बाद भक्तगणको अधिकतर विरहमे और श्रीकृष्णभजनमे उत्तम करनेके लिये अपनी प्रकट-लीलाको सगोपन किया था । इसी कारण श्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद विरह-व्यथित होकर गाया है,—

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालीकलनया

मुहुर्वृन्दारण्य-स्मरणजनित-प्रेमविवशः ।

क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचलरसनो भक्तिरसिकः

स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥

—‘स्तवमाला’, श्रीचैतन्यदेवका प्रथमाष्टक

[समुद्र-तीरके उपवन समूहको देखकर बारबार वृन्दावन-स्मृतिमें जो प्रेमविवश हो जाते थे अथवा कभी निरन्तर श्रीकृष्णनाम कीर्तनमें जिनकी रसना चंचल हो उठती थी, वही भक्ति-रस-रसिक श्रीचैतन्यदेव क्या पुन हमारे नेत्रोंके गोचरीभूत होंगे?]



निन्यानबेवाँ परिच्छेद

अप्रकट-लीला

बहुतेरे श्रीचैतन्यदेवकी अप्रकट-लीलाको साधारण मनुष्यके देह-त्यागकी सीमामे लाकर देखना चाहते हैं। साधारण योगियोंके शरीर भी अलक्षितभावसे अदृश्य हो जाते हैं, इसके अनेको प्रत्यक्ष प्रमाण पाये जाते हैं। भक्तवर श्रीध्रुवके सशरीर नित्यधाममें जानेकी बात* श्रीमद्भागवतमें देखी जाती है। और श्रीचैतन्यदेव जो योगेश्वरोंके परमेश्वर हैं, भक्तियोगियोंके नित्य ध्यानकी वस्तु हैं, उनका सच्चिदानन्द-शरीर किस प्रकार अन्तर्हित हुआ था, यह तनिक सेवोन्मुख-प्रकृतिस्थ होकर विचार करनेसे ही उनकी कृपासे समझमें आ सकता है। श्रीमहाप्रभुने प्रकट-लीलाके समय भी अनेको बार अनेको स्थानोंसे अन्तर्धान-लीला प्रदर्शन की थी, यह अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌के लिये कुछ भी

* श्रीमद्भागवत ४।१२।३० श्लोक देखिये ।

असभव बात नहीं है। जिन्होंने सप्त-सकीर्तन-सम्प्रदायोके प्रत्येक सम्प्रदायमे एक ही समय नृत्य-कीर्तन-लीला प्रकट की थी, जिन्होंने श्रीश्रीवास पंडितके मृत पुत्रके मुखसे तत्त्वकी बात कहलायी थी, जिन्होंने विसूचिका-रोगसे मृतप्राय अमोघको स्पर्शमात्रसे रोगमुक्त और स्वस्थ करके उसी क्षण उसके द्वारा श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए नृत्य कराया था, जो प्रबल तरंगोंके द्वारा उछलते हुए समुद्रमे महाभावकी मूर्च्छामे सारी रात्रि रहे थे, जिन कृपालु भगवान्ने गलित-कुष्ठ रोगी वासुदेवको आलिंगन करके तुरन्त सुपुरुष और कृष्णप्रेमी बना दिया था, उन अचिन्त्य अतर्क्य अनन्त ऐश्वर्य प्रकटकारी श्रीभगवान्के लिये सशरीर अन्तर्हित होना अथवा एक ही समयमे बहुतसे स्थानोंमे प्रकट रहना कुछ भी अस्वाभाविक और असभव बात नहीं है। श्रीरामचन्द्रादि भगवदवतारोंके भी सशरीर और सपार्षद वैकुण्ठ-विजयकी कथा भारतवर्षमे शास्त्र-प्रसिद्ध व्यापार है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके सशरीर अन्तर्धान-लीलामे प्रवेशकी कथा श्रीमद्भागवतमे मिलती है।

लोकाभिरामां स्वतनु धारणाध्यान-मङ्गलम् ।

योगधारणयाग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥

—भा० ११।३।६

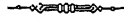
अर्थात् श्रीकृष्ण ध्यान-धारणाके विषयस्वरूप लोकाभिराम श्री-विग्रहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध किये बिना ही अपने धाममे प्रविष्ट हुए ।

स्वेच्छामृत्यु योगीगण अपनी देहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध करके लोकान्तरमे प्रवेश करते हैं । परन्तु श्रीभगवान्का अन्तर्धान उस प्रकारका नहीं है, श्रीभगवान् अपने नित्य सच्चिदानन्द-शरीरको बिना दग्ध किये हुए उसी शरीरसे वैकुण्ठमे प्रवेश करते हैं । इसका कारण यही है कि, उनके श्रीअगमे समस्त लोक अवस्थित रहते हैं, अतएव सारे जगत्के आश्रयस्वरूप उनके शरीरके दग्ध होनेपर जगत्के दग्ध होनेका प्रसंग उपस्थित हो जाता है ।

अजातो जातवद् विष्णुरमृतो मृतवत्तथा ।
मायया दर्शयेन्नित्यं अज्ञानां मोहनाय च ॥

—ब्रह्मपुराण

[भगवान् विष्णु अज्ञानी व्यक्तियोको मोहित करनेके लिये अजन्मा होते हुए भी मायाबलसे जन्म लेनेवाले जीवके समान और अमृत होते हुए भी मृत जीवकी भाँति अपनेको दिखलाते हैं ।]



सौवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके रचित ग्रन्थ

श्रीचैतन्यदेवने श्रीसनातन और श्रीरूपके द्वारा भक्तिशास्त्रकी रचना करवायी । जो जो भक्ति-ग्रन्थ लिखवाने थे, उनके सूत्रोको काशीमे अवस्थानके समय उन्होने श्रीसनातनको बतला दिया था । श्रीसनातनके द्वारा रचित 'श्रीवृहद्भागवतामृत', 'श्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी', 'श्रीकृष्णलीलास्तव', 'श्रीहरिभक्तिविलास' महाप्रभुके ही सिद्धान्तो से पूर्ण ग्रन्थराज है । श्रीरूपके द्वारा रचित 'श्रीसक्षेप-भागवतामृत', 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु', 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ भी वैसे ही हैं । श्रीमहाप्रभुने प्रयागमे इन ग्रन्थोके सूत्र श्रीरूपको बतलाये थे । श्रीरूपके 'श्रीललितमाधव', 'श्रीविदग्धमाधव' प्रभृति नाटकोको और श्रीसनातनकी कतिपय रचनाओको श्रीमहाप्रभुने स्वयं देखकर उनका पूर्णतया अनु-मोदन किया था । श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपाद, श्रीरघुनाथ दासगोस्वामि-पाद और आगे चलकर श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने जिन ग्रन्थोकी रचना

की थी, वे भी श्रीमहाप्रभुके बतलाये हुए सूत्रो और सिद्धान्तोका अवलम्बन करके ही रचे गये थे ।

‘कुमारहट्ट’ अथवा ‘हालीशहर’के निवासी श्रीशिवानन्द सेन प्रतिवर्ष बहुतसे गौडीय भक्तोको साथ लेकर श्रीनीलाचलमे श्रीचैतन्यदेवके श्रीचरणोमे पहुँचते थे । श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदास और कनिष्ठ पुत्र श्रीपरमानन्ददास (कविकर्णपूर) ने श्रीचैतन्यदेवके दर्शन और कृपा प्राप्त की थी, एव अपने नेत्रोसे श्रीगौरसुन्दरकी विभिन्न लीलाओको देखा था । कोई-कोई कहते हैं कि, ‘श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य’ श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र कविकर्णपूरके रचित बताये जानेपर भी* वस्तुतः श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदासने ही उक्त ग्रन्थकी रचना की थी । इसमे भी श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत चरित-कथा प्राप्त होती है । श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र—जो श्रीपरमानन्ददास या श्रीपुरीदास अथवा ‘श्रीकविकर्णपूर’के नामसे प्रसिद्ध हैं, उनके ही मुहमे श्रीचैतन्यदेवने अपना पदागुष्ठ प्रदान किया था । इन्होंने ही ‘श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक’ और ‘श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका’मे श्रीचैतन्यदेव और उनके पार्षदोके चरित्रका वर्णन किया है । श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद श्रीगौरसुन्दरके प्रिय पार्षद थे, उनके श्रीमुखसे श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयने श्रीचैतन्यदेवके जिन सब उपदेशोको श्रवण किया था, उन्हें ही सर्वसाधारणके लिये बगलामे ‘प्रार्थना’ और ‘प्रेमभक्तिचन्द्रिका’ नामक ग्रन्थमे लिपिबद्ध किया है ।

श्रीमुरारिगुप्त श्रीमन्महाप्रभुके नवद्वीप-लीलाके सगी थे और श्रीस्वरूप दामोदरने ‘पुरी’मे निरन्तर श्रीमहाप्रभुके साथ रहकर उनकी अन्त्यलीलाको अपनी आँखोसे देखा था । उन दोनोने ही श्रीमन्महाप्रभुकी लीला, चरित्र, शिक्षा, भजनादर्श, तत्व और सिद्धान्तको जो लिपिबद्ध कर रक्खा था, वही क्रमशः ‘श्रीमुरारिगुप्तके करचा† और

* श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य २०।४६

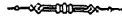
† करचा—सूत्राकारमे लिखित घटनाएँ ।

‘श्रीस्वरूपदामोदरके करचा’ के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीस्वरूपदामोदरके करचाका अवलम्बन करके श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपादने श्रीचैतन्य-देवके लीलात्मक कतिपय स्तव, तथा प्रभुके सिद्धान्तोसे पूर्ण ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीदासगोस्वामिपादके श्रीमुखसे सुनकर ही श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवके चरितकी अर्थात् ‘श्रीचैतन्य-चरितामृत’ ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीमन्महाप्रभुके अभिन्न आत्मा श्रीमन्नित्यानन्दके साक्षात् शिष्य तथा श्रीश्रीवास पंडितके दौहित्र (भतीजीके पुत्र) थे—श्रीवृन्दावनदास ठाकुर। उन्होंने श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीश्रीवास पंडित और श्रीगौरभक्तगणक श्रीमुखसे श्रीमन्महाप्रभुकी लीलाकथा श्रवण कर “श्रीचैतन्यभागवत” नामक ग्रन्थ लिखा है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाका अवलम्बन कर श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमे श्रीमन्महाप्रभुकी लीला और शिक्षा गुम्फित (विशेषरूपसे वर्णित) की है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाको मूल रूपमें ग्रहण करके श्रीनरहरि सरकार ठाकुरक शिष्य श्रीलोचनदास ठाकुरने भी ‘श्रीचैतन्यमंगल’ नामक पाचाली ग्रन्थकी रचना की है।

श्रीचैतन्यदेवने स्वयं ‘शिक्षाष्टक’ नामसे प्रसिद्ध आठ सस्कृत श्लोकोकी रचना की है, उसमे उनकी शिक्षाका सार निहित है। इसके अतिरिक्त श्रीमहाप्रभुके रचे हुए और भी कई बिखरे श्लोक पाये जाते हैं। उनका श्रीरूपगोस्वामिपादने ‘श्रीपद्यावली’मे सकलन किया है। श्रीमहाप्रभुने दाक्षिणात्यकी पयस्विनी नदीके तीरस्थ ‘आदि-केशव’ मन्दिरसे ‘श्रीब्रह्मसहिता’ और ‘कृष्णवेण्वा’के तीरसे ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ नामक दो ग्रन्थोको लाकर उनसे क्रमशः अपने प्रचार्य तत्त्व-सिद्धान्त और रस-सिद्धान्तोके विचारोको जगत्मे प्रकट किया था।

श्रीगौरसुन्दरके प्रकट-कालीन पार्षदोमे और भी बहुतोने गौडीय (बग) भाषामे तथा सस्कृत भाषामे बहुतसी पदावली और सिद्धान्त ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीशिवानन्द सेन, श्रीवासु घोष, श्रीमाधव घोष, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरामानन्द राय, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर, श्रीमुरारि

गुप्त, श्रीरामानन्द बसु, श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुर, श्रीजगदानन्द पंडित, श्रीवशीवदन, श्रीमाधवी-देवी आदि श्रीगौर-पार्षदोने पदावलीकी रचना करके श्रीगौरहरिकी विभिन्न लीलाओको गुम्फित किया है। श्रीरघुनाथ भागवताचार्यने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका पद्यानुवाद किया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थका नाम है—“श्रीकृष्णप्रेम-तरंगिणी”। श्रीरूप-सनातनके मित्र श्रीराघवपंडित गोस्वामीने जो दाक्षिणात्यविप्र थे और गोवर्द्धन-पुछरीके निकट गुफामें* श्रीयुगल-भजनमें रत थे ‘श्रीभक्ति-रत्नप्रकाश’की रचना की, तथा श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद और श्रीश्रीनाथ पंडितने ‘श्रीमद्भागवतकी टीका’, श्रीनरहरि सरकार ठाकुरने ‘श्रीकृष्णभजनामृत’, उत्कलनिवासी श्रीकानाई खूंटियाने ‘महाभाव-प्रकाश’, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादने ‘श्रीचैतन्यचन्द्रामृत’ और ‘श्रीवृन्दावन-शतक’ इत्यादि ग्रन्थोंकी रचना की।



एकसौ एकवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके प्रचार और सिद्धान्त

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने ‘श्रीचैतन्य-शिक्षामृत’ ग्रंथमें लिखा है,—
“श्रीमन्महाप्रभुने जिन चौबीस वर्ष गृहस्थ-लीलाका अभिनय किया था, उस समय श्रीश्रीवासके आँगनमें, गंगाके तीरपर, चतुष्पाठी (पाठशाला) में, रास्ते-रास्तेपर तथा गाँवके द्वार-द्वारपर आपामर सर्वसाधारणके निकट हरिनाम-माहात्म्य और हरिकीर्तनकी कर्तव्यताका प्रचार किया था ; पश्चात् संन्यास ग्रहण करके श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य प्रभूतिको, विद्यानगरमें श्रीराय रामानन्दको, दक्षिण देशमें

* अभी तक यह गुफा ‘राघवपंडितकी गुफा’के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीवेंकट भट्ट आदिको, प्रयागमें श्रीरूपगोस्वामीको तथा चातुर्यसे श्रीरघुपति उपाध्याय और श्रीवल्लभभट्ट महोदयको , वाराणसीमें श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती आदिको जो उपदेश दिये थे, उनसे ही श्रीमहाप्रभुकी शिक्षा यथार्थरूपसे प्राप्त की जा सकती है ।

जगज्जीवके प्रति अपार दया प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभुने समस्त भारतमें विशुद्ध वैष्णव-धर्मका प्रचार किया था । किसी देशमें स्वयं जाकर प्रचार कार्य किया तो किसी-किसी देशमें प्रचारक भेजकर यह कार्य सम्पन्न किया । प्रचारकोमें असीम शक्ति संचार करके उन्हें देश-देशमें भेजा था । श्रीमहाप्रभुके प्रचारकगण प्रेमसूत्रसे कार्य करते थे । वे लोग किसी वेतन या पुरस्कारकी आशा नहीं करते थे ।”

श्रीचैतन्यदेवने श्रीभागवत-धर्मका प्रचार किया है । भागवत-धर्मके सिद्धान्तानुसार परतत्त्व—अद्वयज्ञान या अद्वितीय-तत्त्व है । उसकी त्रिविध प्रतीति होती है—(क) ‘ब्रह्म’, (ख) ‘परमात्मा’ और (ग) ‘भगवान्’ । परतत्त्व ‘सनातन’ अर्थात् नित्य, ‘पूर्ण’ अर्थात् अखण्ड और ‘परमानन्द’ अर्थात् सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है । परतत्त्वका आनन्द दो प्रकारका है—(१) उनके स्वरूपका आनन्द और (२) स्वरूपशक्त्यानन्द । स्वरूप-शक्तिके आनन्दमें अधिक विलास और विचित्रता है । जहाँ वैशिष्ट्य या धर्म प्रकाशित नहीं होता वही ‘ब्रह्म’ है । जहाँ गुण, धर्म या शक्तिसे वस्तुका परिचय नहीं मिलता, तथापि वह चेतन और सत्तामय है, ऐसा दुर्निर्णय तत्त्व ही ‘ब्रह्म’ है । उसके बाद ही है ईश्वर, पुरुष, अन्तर्यामी या परमात्मा । यही ‘परमात्मा’ सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता है । उनकी सत्तासे सबकी सत्ता है, उनकी असत्तामें अर्थात् महाप्रलयकी निष्क्रियावस्थामें सबकी असत्ता है । वे माया और जीवको प्रकट करके नियमन करते हैं । प्रत्येक जीवके हृदयरूपी पुरमें वे अन्तर्यामी नियामकरूपमें अवस्थान करते हैं । और ‘श्रीभगवान्’ एकमात्र स्वरूपशक्तिके साथ विलास करते हैं । ब्रह्म,

परमात्मा, श्रीनारायण या श्रीकृष्ण—एक ही तत्व है। इनमें केवल शक्तिके प्रकाश और आविर्भावका तारतम्य है। परतत्त्वका पूर्णतम आविर्भाव ही—श्रीकृष्ण है। परतत्त्वकी सारी विशिष्टताओंमें श्रेष्ठ विशिष्टता यही है कि—वे प्रेम करते हैं, और प्रेम स्वीकार करते हैं। वह सर्वापेक्षा घनिष्ठ और प्रियतम है। उनको प्रेम क्यों किया जाता है, इसका कोई कारण नहीं है। क्योंकि प्रेम करना और प्रेम स्वीकार करना उनके स्वरूपका ही नित्यसिद्ध स्वभाव है।

श्रीभगवत्तत्त्व एक और अद्वितीय होनेपर भी शक्तिके प्रकाश-भेदसे विभिन्न नित्य नाम, नित्य रूप, नित्य गुण, नित्य लीला और नित्य परिकरमें प्रकाशित होता है। श्रीमत्स्य, श्रीहर्म, श्रीवराह—आदि भगवत्तत्त्वमें आशिक शक्तिका आशिक प्रकाश है। इनकी अपेक्षा श्रीनृसिंह और श्रीरामचन्द्रमें अधिक शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्णमें परिपूर्ण शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्ण-स्वरूपमें श्रीद्वारकेश 'पूर्ण', श्रीमथुरेश 'पूर्णतर' और श्रीगोकुलेश 'पूर्णतम' है। श्रीगोकुलेश श्रीव्रज-नन्दन ही—युगलविहारी श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य भगवद्-विग्रहके भक्त अपने उपास्यको इतना प्रेम नहीं करते, अथवा अन्य भगवद्-विग्रह भी अपने भक्तको इतना प्रेम नहीं करते। स्वयं भगवान्का भक्तवात्सल्य तथा तदीय भक्तकी भक्ति दोनों अद्वितीय एवं अतुलनीय हैं।

अशी भगवत्तत्त्वकी जैसी सामर्थ्य, जैसा स्वरूप, जैसी स्थिति है, स्वाशकी भी वैसी ही है। स्वाश और अशीमें जरा-सा भी भेद नहीं है, इनमें केवल शक्तिप्रकाशका तारतम्य और लीलाकी विचित्रता प्रकाशित है।

जीव भगवान्का 'विभिन्नाश' है—विशेषरूपसे भिन्न अश अर्थात् जीव-शक्ति-विशिष्ट श्रीभगवान्का अश है, परन्तु कृष्णके शुद्ध अश या लीलावतारादि स्वाशके समान शक्तिमान् अश या विष्णुतत्त्व नहीं है। शक्तिमान्की स्वरूपसिद्धा शक्तिका ही विविध विक्रम है—(१) 'चित्-

शक्ति' या स्वरूप शक्ति । ये शक्तिमान्के साथ रहती है ; शक्ति-मान्को सुख देती है—आनन्द देती है । जो भगवान्को आनन्द देती है वे ही भक्तको भी सुखी करती है । (२) 'अचित्-शक्ति' या विरूप-शक्ति, इसीको 'माया' कहते हैं । यह जीवको शक्तिमान्से ढककर रखती है, शक्तिमान्को देखने नहीं देती, प्रतारणा करती है । (३) इन दोनों शक्तियोंके मध्यवर्ती स्थानमें अवस्थित रहनेवाली तटस्था 'जीवशक्ति' है, यह अणुचेतन, अनन्त और नित्य है । जीव—परमात्माका वैभव, और स्वरूपशक्ति—श्रीभगवान्का वैभव है ।

मत्स्य, कूर्म, वराह प्रभृति स्वाश भगवत्-तत्त्वगण—परमेश्वर है । ये भगवदश कथित होनेपर भी विभिन्नाश जीवके समान नहीं हैं । जिस प्रकार तेजके अशी सूर्य, और तेजके अश खद्योत—दोनों ही अखण्ड तेज के अश हैं, तथापि सूर्य और जुगनू एक नहीं हैं । महाप्रभावशाली ऋषि, मनु, देवता, मनुपुत्र, प्रजापति—ये श्रीहरिकी विभूति हैं । महत्तम जीवमें श्रीभगवान्की अल्पशक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'विभूति' और अधिक शक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'आवेशावतार' कहलाता है । देवता-गण—तेजोमय शरीर-विशिष्ट सत्त्वगुणयुक्त, स्वच्छन्दगति, मनुष्यके पूज्य, भक्तोको अभिलषित वर देनेवाले स्वर्गलोकके वासी हैं ।

देवताओंमें देवराज इन्द्र श्रेष्ठ है । स्वर्गलोकमें वामनरूपी श्रीउपेन्द्र (इन्द्रके कनिष्ठ भ्राता) पत्नी 'कीर्ति'के साथ सर्वदा इन्द्रकी विपद्से रक्षा करते हैं और उनकी पूजा ग्रहण करते हैं । इन इन्द्रसे ब्रह्मा श्रेष्ठ है । ब्रह्मलोकमें सहस्रशीर्षा यज्ञाधि-ठाता महापुरुष भगवान् श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ आर्विभूत होकर ब्रह्माके दिये हुए यज्ञभागको ग्रहण करते हैं । श्रीब्रह्मासे श्रीमहादेव श्रेष्ठ है । यह कैलास-पर्वतपर ईशानकोणके पालकके रूपमें परिवारवर्गसे घिरे हुए श्रीउमादेवीके साथ श्रीसकर्षण-विष्णुकी सेवा करते हैं । श्रीमहादेवसे श्रीप्रह्लाद श्रेष्ठ है । ये भगवद्भक्तोंके आदर्श हैं, ये सुतलमें ध्यानयोगके द्वारा श्रीश्रीनृसिंह देवकी सेवा करते हैं । श्रीप्रह्लादसे श्रीहनुमान श्रेष्ठ है । ये किंपुरुष-

वर्षमे श्रीरामचन्द्रका नित्य दासत्व करते हैं। श्रीहनुमानसे पाण्डवगण श्रेष्ठ है। ये बन्धु और स्वजनोके साथ श्रीकृष्णके प्रेमपात्र और कृपा-पात्र हैं। पाण्डवोंके लिये श्रीकृष्णने अपनी प्रतिज्ञा भग की थी, उनके सारथीका कार्य, मन्त्रित्व, दौत्य, अनुगमन, स्तव और नति की थी। पाण्डवोंकी अपेक्षा भी कुछ यादव (नित्य पार्षदगण) श्रेष्ठ हैं। श्री-द्वारकापुरीमे नित्यपार्षद यादवगण साधारण मनुष्यके समान देह-गोह-कर्ममे व्यस्त रहते हुए भी श्रीकृष्णके प्रेमवश अपने-अपने स्त्री-पुत्रादिको भी भूल जाते हैं। समस्त यादवोंकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रेष्ठ है, द्वारकामे श्रीकृष्णकी निजमूर्तिकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रीकृष्णके अधिक प्रिय है। ब्रह्मादि श्रीकृष्णके पुत्रगण, सकर्षणादि भ्रातृगण, शिवादि सुहृद्गण, रमादि भार्यागण अथवा श्रीकृष्णकी निजमूर्ति भी श्रीकृष्णको श्रीउद्धवके समान प्रिय नहीं है*। श्रीउद्धवसे भी श्रीब्रजदेवियों श्रेष्ठ हैं। दुस्त्यज्य स्वजन और विधिमार्गका परित्याग करनेवाली श्रीकृष्ण-गतप्राणा श्रीब्रजसुन्दरियोंके श्रीपादपद्मोंकी सेवा करनेवाले श्रीवृन्दा-वनके गुल्म, लता और औषधियोंमे जन्म लेनेकी प्रार्थना करके श्रीउद्धवजीने श्रीब्रजदेवियोंकी महिमा प्रकट की है†। उन ब्रजदेवियोंमे फिर समस्त इन्द्रियो द्वारा, सर्वतोभावेन, सर्वदा, सर्वश्रेष्ठ आराधना करने-वाली श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठा है।

उपासकोमे उनके समान श्रेष्ठ और श्रीभगवान्के लिये प्रेष्ठ (प्रियतम) और कोई नहीं है। श्रीभगवान्के प्रति प्रीतिकी गाढताके तारतम्यसे ही भक्तोंके इस प्रकारके तारतम्य स्वतः ही प्रकाशित हुए हैं।

अनादिकालसे परतत्वकी उपासना भूलकर जीवने दूसरी ओर मुँह फेर रखा है। जिससे इस विमुखताके छिद्रको पाकर माया, जीवके बन्धनका कारण तथा जीवके समस्त दुःखोंका जो मूल

* भा० ११।१४।१५, † भा० १०।४७।६१।

योगमार्गका प्रयोजन क्रममुक्ति अर्थात् परमात्मामे सायुज्यादिकी प्राप्ति है। यह ईश्वर-सायुज्य ब्रह्म-सायुज्यकी अपेक्षा भी घृणित है, क्योंकि इसमें साधनकी प्राथमिक अवस्थामे भगवद्-विग्रहका स्वीकार तथा उनके आनुगत्य अर्थात् भक्तिका भाण होता है।

विमुख जीवके उन्मुख होनेका एकमात्र निदान है—साधुसंग। शास्त्र-भूति साधु अथवा महत् (महाभागवत) ही ह्लादिनीशक्तिके दूत हैं। सर्वश्रेष्ठ साधु या महत् ही हैं श्रीगुरुदेव। उन्होंने परब्रह्ममें प्रचुर निष्ठा प्राप्त की है। नैष्ठिकी भक्तिके कारण वे श्रीभगवान्में परमाविष्टताको प्राप्त हैं।

अज्ञातरुचि व्यक्तिके लिये विचारप्रधान मार्ग और जातरुचि व्यक्ति के लिये रुचिप्रधान मार्ग है। विचारप्रधान मार्ग मनीषा या मस्तिष्क का मार्ग है। अपनी अयोग्यताकी तीव्र अनुभूतिसे रुचि उत्पन्न होती है। प्रीतिका आधार हृदय ही इस रुचिका आविर्भाव-स्थान है।

समस्त अभिधेय या साधनोमें भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ अभिधेय है, क्योंकि, अन्यान्य साधनोके जो फल हैं, उन सभीको भक्ति निरपेक्ष-भावसे अनायास ही प्रदान कर सकती है। परन्तु भक्तिका जो फल है, उसका आभास भी अन्यान्य साधनोके द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। यदि भगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त भक्ति अनुष्ठित होती है, तो वह शीघ्र ही साध्यभक्ति अर्थात् प्रीतिमें पर्यवसित हो जाती है। श्रीभगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त, निरवच्छिन्न अमृतधारावत् स्मृतिसे संयुक्त जो नवधा भक्तिके अंग हैं, वे ही—केवला, अकिंचना या स्वरूप-सिद्धा भक्ति हैं। वर्णाश्रम धर्मके पालन-द्वारा जो विष्णुका तोषण होता है, वह भक्तिका आभास मात्र है। उसके द्वारा चित्तशुद्धि होती है, आत्माकी प्रसन्नता और मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु श्रीभगवान्की प्रीति प्राप्त नहीं होती। निरन्तर आवेशमयी अकिंचना भक्तिके द्वारा ही प्रीति अर्थात् श्रीकृष्णके माधुर्यका अनुभव और लीला-रसका आस्वादन होता है। वर्णाश्रम-धर्मका परित्याग कर शास्त्र

विधिके अनुसार भजन ही—‘वैधी साधन भक्ति’ है, इसे अनन्या भक्ति भी कहा जाता है। और अभिरुचिके साथ अभिमानयुक्त होकर भजन करना ही ‘रागानुगा भक्ति’ है, इसका दूसरा नाम—‘अनन्या भाव-भक्ति’ है। ‘भावभक्ति’ और ‘प्रेमभक्ति’ उत्तरोत्तर गाढावस्था है। ‘प्रेमभक्ति’ सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपने स्वरचित शिक्षाष्टकमे* निम्नलिखित उपदेश प्रदान किये हैं—

१। श्रीकृष्ण-सकीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ भजन है। श्रीकृष्ण-सकीर्तनसे चित्त-दर्पण सम्पूर्णरूपसे मार्जित होता है, भीषण ससार-दावानल अनायास ही सर्वतोभावसे निर्वासित हो जाता है तथा सर्वश्रेष्ठ आत्ममगल पूर्ण विकसित होता है। श्रीकृष्ण-कीर्तन—परविद्या या भक्तिका जीवन-स्वरूप है, श्रीकृष्ण-कीर्तन—प्रेमानन्दको सम्यक् रूपसे बढ़ानेवाला है, श्रीकृष्णकीर्तन—पद-पदपर परिपूर्ण अमृतका आस्वादन कराता रहता है, और श्रीकृष्ण-कीर्तनके प्रभावसे ही जीवगण सुशीतल श्रीकृष्णपाद-पद्म-सेवाके समुद्रमे अवगाहन कर सकते हैं।

२। नाम और नामीमे कोई भेद नहीं है। नामी भगवान्ने अपने नाममे सर्वशक्ति अर्पण करके उसे जगत्मे अवतीर्ण कराया है, नाम-कीर्तनमे कालाकाल, स्थानास्थान या पात्रापात्रका विचार नहीं है। परन्तु दुर्दैव अर्थात् अपराध रहनेपर नाममे रुचि नहीं होती। वे अपराध दस प्रकारके† हैं। उनमे महत्की निन्दा ही प्रथम अपराध है।

* परिशिष्टमे ‘शिक्षाष्टक’ देखिये।

† दस अपराध—(१) साधुनिन्दा, (२) अन्यदेवमे स्वतन्त्र ईश्वर-बुद्धि, तथा कृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलामे श्रीकृष्णस्वरूपसे पृथक् बुद्धि, (३) नामतत्त्वविद् गुरुके प्रति अवज्ञा, (४) नाम-महिमावाचक शास्त्रकी निन्दा, (५) शास्त्रमे नामका जो माहात्म्य और फल लिखा है उसको अर्थवाद मानना, (६) श्रीहरिनामको मनकी कल्पना समझना; (७) नामके बलपर पापबुद्धि, (८) श्रद्धाहीन व्यक्तिको नामोपदेश

३। तृणसे भी सुनीच, वृक्षसे भी सहिष्णु, स्वयं अमानी और दूसरेको मान देनेवाला होकर निरन्तर हरिनाम कीर्तन करते रहना ।

‘तृणादपि सुनीच’—वाक्यका अर्थ यह है कि जीव इस जड़-जगत्के अन्तर्गत कोई वस्तु नहीं है, वस्तुतः जीव—अप्राकृत अणुचैतन्य और श्रीहरि-गुरु-वैष्णवके पादपद्मकी नित्य रेणु है, अर्थात् उनका नित्य सेवकानुसेवक है ।

४। श्रीहरिकीर्तन करनेवाले श्रीहरिनामसे धन, जन, सुन्दरी कामिनी, जागतिक कवित्व या विद्या अर्थात् कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाकी याचना न करे। अधिक क्या, पुनर्जन्मसे भी निष्कृति या मुक्ति, त्रिताप-ज्वाला की शान्ति भी न चाहे। प्रति जन्म श्रीकृष्ण-पादपद्ममें अहैतुकी भक्ति अर्थात् श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानके अतिरिक्त अन्य कामना करनेपर कभी भी श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी ।

५। जीव अपने स्वरूपको श्रीकृष्णके पादपद्मकी धूलिके कणके समान समझकर सर्वदा उत्कण्ठाके साथ श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करे ।

६। नाम-ग्रहण लेते-लेते सिद्धिके बाह्य लक्षणरूप आठ सात्विक भाव-विकार स्वतः ही शरीरमें प्रकट होंगे ।

७। सिद्धिके अन्तर्लक्षणके श्रीकृष्णके सन्तोषकी चिन्ताके बिना निमेष भर भी युगके समान जान पड़ेगा । भीतरकी अकृत्रिम सेवा-व्याकुलताके कारण अश्रु वर्षाकालकी जलधाराके समान प्रवाहित होंगे, श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलतामें समस्त जगत् शून्य जान पड़ेगा अर्थात् जगत्के भोगकी पिपासाके बदले सारी वस्तुओंके द्वारा केवल श्रीकृष्णके सन्तोष-विधानके लिये आवेशमयी व्याकुलता होगी ।

८। श्रीकृष्ण अपनी-निरकुश इच्छावश यदि कृपापूर्वक दर्शन देते हैं तो बड़ी अच्छी बात है, और यदि दर्शन न देकर मर्माहत करते हैं

करना, (६) अन्य शुभ कर्मोंके साथ हरिनामकी बराबरी करना, (१०) ‘मैं और मेरे’ की आसक्तिसे नामके माहात्म्यको जानकर भी उसमें प्रीति न करना और नाम ग्रहणके सम्बन्धमें असावधानी होना ।

हो भी उस स्वतन्त्र परम पुरुषकी अव्यभिचारिणी सेवाकी प्राप्तिकी आशामे ही पड़े रहना होगा। एकमात्र श्रीकृष्ण ही यथा-सर्वस्व, नित्यप्रभु है।

श्रीचैतन्यदेवने दस सिद्धान्त जगत्मे प्रकट किये हैं। ये ही उनकी शिक्षाके मूल सूत्र हैं—

(१) 'शब्द' या वेद-वाक्य ही प्रधान प्रमाण है। श्रीमद्भागवत उस वेदकल्पतरुका परिपक्व फल है तथा ब्रह्मसूत्रोका अकृत्रिम भाष्य है। वेद-बीज प्रणव ही महावाक्य है।

(२) श्रीकृष्ण ही अद्वितीय परम तत्व है।

(३) वे सर्वशक्तिमान् हैं—स्वरूप-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्तिके आश्रय हैं।

(४) वह समस्त रसामृतके समुद्र हैं।

(५) सारे जीव जीव-शक्तिसे युक्त परमात्माके अणु-चिदश (विभिन्नाश) नित्य, अनेक और अनन्त हैं। नित्य-बद्ध या अनादि-बहिर्मुख तथा नित्यमुक्त या अनादि-उन्मुख भेदसे जीव दो प्रकारके हैं।

(६) बहिर्मुखता-छिद्र-दोषके कारण जीव माया-शक्तिके द्वारा ग्रसित और आवृत-ज्ञान हैं।

(७) परतत्त्वके प्रति ज्ञानाभावरूपी विमुखता अनादि होनेपर भी वह विनाशी हैं।

(८) श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति, तटस्था-शक्ति और माया-शक्ति तथा तत्तत्शक्ति-परिणत तत्वसमूह श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके कारण श्रीकृष्णसे एक साथ ही भेद और अभेद-युक्त हैं (अचिन्त्य-भेदाभेद)।

(९) वैमुख्य-विरोधिनी साक्षात्-भगवत्साम्मुख्य-श्रेष्ठा भक्ति ही प्रधान अभिधेय या साधन है।

(१०) परतत्त्वका अनुभव, विमुक्ति या विज्ञानरूप श्रीकृष्ण-प्रेम ही (श्रीकृष्ण-साक्षात्कार ही) जीवका सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन या साध्य है।



एकसौ-दोवाँ परिच्छेद वेदान्तभाष्य और सम्प्रदाय

१. श्रीकृष्णचैतन्यदेवने कहा है,—“श्रीव्याससूत्रोका अर्थ परम गभीर है ; श्रीव्यास—भगवान् है। उनके सूत्रोका अर्थ जीवके लिये अगोचर है ; अतएव उन्होंने स्वयं ही अपने सूत्रोकी व्याख्या की है। सूत्रकर्त्ता यदि स्वयं अपने सूत्रोकी व्याख्या करे, तो उनके सूत्रोके यथार्थ अर्थके विषयमे लोगोको ज्ञान होता है। प्रणवका अर्थ गायत्रीमे प्रकाशित है। चतुश्लोकी श्रीभागवतने उसी अर्थको विस्तार किया है। सृष्टिके आदिमे श्रीनारायणने श्रीब्रह्माको जिन चार श्लोकोका उपदेश किया, श्रीब्रह्माने उसे श्रीनारदसे कहा, और श्रीनारदजीने फिर उसे श्रीव्यासजीको बतलाया। श्रीव्यासजीने उसे सुनकर और विचार करके देखा कि उन्होंने जो सूत्ररचना की है, चतुश्लोकी उन्ही सब सूत्रोका सक्षिप्त भाष्यरूप है। तब चतुश्लोकीको विस्तृत करके उन्होंने सूत्रोके भाष्य-स्वरूप श्रीमद्भागवतकी रचना करनेका सकल्प किया तथा चारो वेदो और उपनिषदोका सार समुद्धृत किया। सूत्रोकी खनिस्वरूप श्रुतिमन्त्रसमूह ही श्लोकाकारमे श्रीमद्भागवतमे निबद्ध हो गये। अतएव श्रीमद्भागवत ही ‘श्रीव्याससूत्रोका अकृत्रिम भाष्य है। श्रीमद्भागवतके श्लोक और उपनिषद्ने एक ही सिद्धान्त स्थापित किया है।”

श्रीगरुडपुराणमे भी कहा है,—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः ।

गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ-परिवृंहितः ॥

[यह श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोका विस्तृत अर्थ है। महाभारतके सिद्धान्तका निर्णय है, गायत्री मन्त्रका भाष्य रूप है तथा वेदार्थका विस्तार करनेवाला है।]

इस श्लोककी व्याख्याके प्रसंगमें श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने तत्त्वसदभर्म* लिखा है कि,—श्रीभागवत ही ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्यरूप है, अतएव इस स्वतः सिद्ध भाष्यभूत श्रीमद्भागवतके सामने अन्यान्य अर्वाचीन या आधुनिक भाष्यसमूह केवल अपनी-अपनी कपोल-कल्पना मात्र है ; किन्तु श्रीमद्भागवतका अनुगत भाष्य मात्र ही आदरणीय है ।

इसी कारण श्रीचैतन्यदेवके पार्श्वदोमे किसीने पृथक् 'वेदान्तसूत्रों'का भाष्य लिखनेका प्रयास नहीं किया । श्रीचैतन्यदेवने श्रीकाशीधाममें श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके सामने और श्रीनीलाचलमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके सामने वेदान्तके अकृत्रिम भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तका अवलम्बन करके ही ब्रह्मसूत्रके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'को प्रकटित किया है । उसी सिद्धान्तका अवलम्बनकर श्रीसनातन गोस्वामि-पादने 'श्रीबृहद्भागवतामृत'में, श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीसंक्षेप-भागवतामृत' में तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने 'क्रमसन्दर्भ', 'षट्सन्दर्भ'में तथा विशेषरूपसे 'सर्वसवादिनी'में अचिन्त्यभेदाभेदवादको स्थापित किया है ।

“अपरे तु 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्र० सू० २।१।११) भेदेऽप्यभेदेऽपि निर्मर्याददोषसन्तति-दर्शनेन भिन्नतया चिन्तयितुमशक्यत्वादभेद साधयन्त-स्तद्वदभिन्नतयाऽपि चिन्तयितुमशक्यत्वाद् भेदमपि साधयन्तोऽचिन्त्यभेदा-भेदवादं स्वीकुर्वन्ति ।”

—परमात्म-सन्दर्भिया 'सर्वसवादिनी' (बगीय-साहित्यपरिषद् सं० १४६ पृष्ठ)

एक सम्प्रदायके वेदान्ती कहते हैं कि, श्रुतिके प्रमाणके अनुसार तर्कके द्वारा परम सत्यका निर्णय नहीं हो सकता, इसलिये भेदमें भी और अभेदमें भी निखिल दोषोंको देखकर जीव और ब्रह्मको पूर्णतः भिन्न समझना असंभव है, अतएव जैसे 'भेद'-साधन करना दुष्कर है,

* 'ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिमभाष्यभूत इत्यर्थः । * * तस्मात्तद्भाष्यभूते वतः सिद्धे तस्मिन् सत्यर्वाचीनमन्यदन्येषां स्वस्वकपोलकल्पितं, तदनुगतमेवादरणीयमिति गम्यते ।” —त० सं० ११ अनु०

वैसे ही अभिन्न भावका विचार करनेपर 'अभेद' साधन करना भी दुष्कर है। इस प्रकार 'भेदाभेद' दोनोंको सिद्ध करते समय ये अप्राकृत तत्त्वके भेदाभेद साधनमें समझकी असमर्थता देखकर अचिन्त्यभेदाभेद-वादको ही स्वीकार करते हैं। परमतत्त्व 'अचिन्त्य-शक्ति' है, इस कारण गौडीयमतमें 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ही सिद्धान्त माना गया है।

कहा जाता है कि, 'जयपुर'में 'गल्ता'की गद्दीमें रामानन्दी सम्प्रदायके लोगोंने जयपुरके श्रीश्रीगोविन्दजीकी तत्कालीन सेवा करनेवाले गौडीय लोगोसे प्रश्न किया कि चार स्वीकृत सम्प्रदायो अर्थात् 'श्रीरामानुज', 'श्रीविष्णुस्वामी', 'श्रीनिम्बार्क' और 'श्रीमध्व'में—इस सम्प्रदाय-चतुष्टयमें आप लोग 'किस संप्रदायके अनुगत हैं' ? श्रीबलदेव विद्या-भूषणने विचारके द्वारा प्रतिपक्षियोंको पराजित किया। प्रतिपक्षियोंने साम्प्रदायिक वेदान्तभाष्य देखना चाहा, तब उन्होंने श्रीगोविन्दजीके स्वप्नादेशसे 'श्रीगोविन्द-भाष्य' नामक वेदान्त-भाष्यका निर्माण किया। श्रीबलदेव गौडीयमतमें प्रवेश करनेके पहले तत्त्ववादी पंडित* थे। उन्होंने तात्कालिक प्रयोजनानुसार तथा अपने पूर्वसिद्धान्तके साथ कुछ समन्वय करनेके लिये गौडीय लोगोको माध्व-मतके अन्तर्गत प्रदर्शित किया है। वस्तुतः गौडीय लोगोके शास्त्र, मन्त्र, ऋषि, उपास्य, साधन, धाम और प्रयोजनके विचारसे उनका सम्प्रदाय सभी सम्प्रदायोके आकर या अशी है। गौडीय लोगोका शास्त्र है—श्रीमद्भागवत ; वह सब वेदान्तका सार, समस्त शास्त्रोका मूल है। अन्य समस्त शास्त्र श्रीमद्भागवतके अंश, या स्थलविशेषमें सोपान अथवा विकृत प्रतिफलनस्वरूप हैं। अथवा उसके साथ अभिन्न होते हुए भी अल्प-

* श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर-सम्पादित 'सज्जनतोषनी' पत्रिका १३०४ बगान्द, नवम खण्ड, दशम सख्या, पचम पृष्ठ देखिये। उन्होंने लिखा है,—“वे (श्रीबलदेव) तत्त्ववादी मठमें विराजमान थे। पहले शाकरभाष्यादि पढ़कर फिर श्रीमाध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया। वे तत्त्ववादियोंके शिष्य होकर माध्वसम्प्रदायमें सम्मिलित हो गये।”

शक्तिकी आकर-वस्तुको प्रकाशित करते हैं। गौडीय लोगोके 'श्रीगोपाल मन्त्र'मे सारे मन्त्र निहित हैं। उपास्य-विग्रह श्रीकृष्णमे ब्रह्मा-परमात्मा आदिका आविर्भाव है। ऋषि श्रीगान्धर्वा(श्रीराधा)मे सारे उपासक वर्तमान हैं, साधन भक्तिमे समस्त साधन तथा प्रयोजन श्रीकृष्णप्रेममे समस्त प्रयोजन अन्तर्भूत है।

जहाँ प्राकृत भेद होता है वही मतवाद उपस्थित होता है। जीव—मायावश होने योग्य है और परतत्त्व मायाघीश है। अतएव जीव और परतत्त्वमे भेद है। पुन, परतत्त्व—शक्तिमान् है और जीव—शक्तिमान्की ही शक्ति है। अग्निसे जैसे दाहिकाशक्ति अभिन्न है, वैसे ही शक्तिमान् परमेश्वरसे जीव-शक्तिकी अभिन्नता है। ये अभिन्न होनेपर भी इनमे परिमाणगत भेद है। परमेश्वर और जीव दोनों ही सच्चिदानन्द है। परन्तु परमेश्वर पूर्ण सत्, पूर्ण चित् और पूर्ण आनन्द है। जीवकी सत्ता, चेतनता और आनन्दमयता सभी परतत्त्वके अधीन और अणुपरिमाण है। यह 'अचिन्त्यभेदाभेद' सिद्धान्त कोई वाद नहीं है, बल्कि यही सम्पूर्ण निर्दोष सिद्धान्त है।

भक्तिको ज्ञानसे पृथक् करनेकी चेष्टाके कारण ही निर्विशेष ज्ञानको 'मतवाद' कहा जाता है। केवलाद्वैतवादी लोग मुक्तिको प्रेमभक्तिसे पृथक् करनेकी चेष्टा करते हैं, इसी कारण मुक्तिको 'कैतव' कहकर तिरस्कार किया जाता है। आनुकूल्यमयी गाढ़तृष्णाका नाम 'भक्ति' है। उसके द्वारा परतत्त्वकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण जब ब्रह्मा-परमात्मा के आश्रय हैं, तब श्रीकृष्ण-भक्ति भी ज्ञान और कर्मयोगका आश्रय है। यथार्थ योगित्व और ब्राह्मणत्व भक्तमें ही है। पूर्णतम अशीवस्तुमे ही सारे अश है। श्रीकृष्ण है—पूर्णतम अशी परात्पर-तत्त्व। श्रीचैतन्यदेव-स्वयं कृष्ण—पूर्णतम तत्त्व है। अतएव उनके उपासक गौडीयगण—पूर्ण सम्प्रदाय है। उनके अन्तर्गत अन्य सब आशिक सम्प्रदाय है। श्रीकृष्ण या श्रीकृष्णचैतन्य यदि अन्यतम अवतारविशेष है तो गौडीय लोग भी एक सम्प्रदाय-विशेष है; और यदि श्रीकृष्ण आशिक अवतार-

विशेष न होकर अशी है, तो गौडीय लोगोको भी 'पूर्ण-सम्प्रदाय' कहना पड़ेगा। अद्वयज्ञान पूर्ण-वस्तुको अद्वयज्ञानमय अश कहनेपर तत्त्वविचारमें दोष न होनेपर भी रसविचारमें दोष होता है। अतएव गौडीय लोगोको 'माध्व' कहना ठीक नहीं। माध्वमतसे 'श्रीमहाभारत' सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है, श्रीकृष्ण परशुरामके समान ही पूज्य है। इस मतमें साधन है—विष्णुकी आज्ञाका पालन करते हुए विष्णुमें कर्मोंको अर्पण करना ; प्रयोजन है—वायु या ब्रह्माके द्वारा मुक्तिकी प्राप्ति। वायु या ब्रह्मा अभिन्न है, उनके ऊपर लक्ष्मी है, वे विष्णुके अधीन है, उनके ऊपर पुरुषोत्तम है। माध्वमतमें लक्ष्मीके वशीभूत पुरुषोत्तमका विचार नहीं है। 'रसिकशेखर श्रीकृष्ण—परम कारुणिक' है, यह बात भी वे नहीं कहते। श्रीचैतन्यदेव और श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तसे देवतागण अधम अर्थात् सबसे निम्न कोटिके उपासक हैं और गोपीगण चरम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ उपासक है। परन्तु माध्वसिद्धान्त इसके विपरीत है। श्रीमाध्वप्रणीत 'भागवततात्पर्य'में गोपियोंके चरम माहात्म्यको सूचित करनेवाले "आसामहो"* श्लोकका तात्पर्य नहीं है। अतएव षड्-गोस्वामिगणमें कोई भी श्रीमन्मध्वाचार्यको अपने सम्प्रदायके गुरु रूपमें स्वीकार नहीं करते।

श्रीसनातन गोस्वामिपादने 'श्रीवृहद्वैष्णवतोषणी'में और श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने 'श्रीसक्षेप-वैष्णवतोषणी'में, 'षट्-सन्दर्भ'में और 'श्रीसर्वसवादिनी'में, तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने (दशम स्कन्धकी) 'सारार्थदर्शिनी'में श्रीमाध्वमतका खण्डन किया है।

अपने सहस्रो सम्प्रदायोंके अधिदेवता श्रीकृष्णचैतन्यदेवने जिनको आत्मसात् किया है, वे ही 'गौडीय' हैं। श्रीश्रीराधामदनमोहन, श्रीगोविन्द और श्रीगोपीनाथका उपासक गौडीय-सम्प्रदाय किसी भी

* भा० १०।४७।६१।

† इस विषयकी विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' नामक ग्रन्थमें—जो कि बगलामें है, देख सकते हैं।

अश-शक्ति-प्रवर्तित सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं है। श्रीश्रीरूपगोस्वामिपाद ने 'श्रीविदग्धमाधव-नाटक'के प्रारम्भमें गौडीयगणको 'रसिक-सम्प्रदाय'के नामसे अभिहित किया है। गौडीय लोगोके मूलमहाजन—श्रीश्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपाद हैं, उनके अभिन्न-हृदय श्रीश्रीरूप-सनातन गोस्वामिपाद तथा उनके अनुगत चार गोस्वामी हैं।



एकसौ-तीनवाँ परिच्छेद

'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'

अचिन्त्यानन्त-शक्तिशाली ('अतर्क्यसहस्रशक्ति.' भा० ३।३३।३) परतत्त्वके शक्तिसमूह तथा शक्ति-परिणत वस्तुसमूहके साथ परतत्त्वका जो 'अचिन्त्य' (अपौरुषेय-शब्द-गम्य, परन्तु पुरुषकी अर्थात् जीवकी क्षुद्र चिन्तन-शक्ति या युक्ति-तर्क-गम्य नहीं), युगपत् भेद और अभेदयुक्त सम्बन्ध है, वही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' है। भेद और अभेदकी सह-स्थिति है तथा दोनों ही समान रूपसे सत्य और नित्य हैं—यह मानवयुक्ति या धारणामें 'अबोध्य' या 'अचिन्त्य' प्रतीयमान होनेपर भी 'शास्त्रोपदिष्ट' होनेके कारण अवश्य स्वीकार्य है। अप्राकृत विषयोमें शास्त्र ही एकमात्र अभ्रान्त प्रमाण है। उपनिषदमें, ब्रह्मसूत्रमें उसके अकृत्रिम भाष्यरूप श्रीमद्भागवतमें, श्रीगीता और श्रीविष्णुपुराणादि शब्द-प्रमाणमें यह 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'-रूप 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' *

* "सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्र-सिद्धान्तः ।" ('न्याय-दर्शन' १।१।२८)—अर्थात् जो सर्वशास्त्रोंसे अविरुद्ध तथा शास्त्रमें कथित है वही 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है। (तन्त्र शब्दका अर्थ है—शास्त्र ।)

ग्रथित है। वही श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित तथा गौडीय-गोस्वामियों द्वारा प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त है। श्रीचैतन्यदेवने श्रीनीलाचलमे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे शाकर-भाष्यकी श्रवण-लीलाके समय, श्रीकाशी-धाममे केवलाद्वैतवादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके मतवादके खडनके समय तथा श्रीसनातन गोस्वामि-प्रभुपादको लक्ष्य करके लोक-शिक्षा प्रदान करते समय इस 'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'को ही प्रकट किया था। श्रीसनातनपादने 'श्रीवृहद्भागवतामृत'मे तथा 'श्रीवैष्णवतोषणी'मे उनके शिष्य श्रीरूपपादने 'श्रीसंक्षेप-भागवतामृत'मे, और श्रीसनातन-रूपपादके शिष्यवर्य श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने विस्तृत भावसे 'षट्सन्दर्भ'मे तथा 'श्री सर्वसवादिनी'मे इसी अचिन्त्य-भेदाभेदवादको प्रकटित किया है। श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद 'श्रीभगवत्सन्दर्भ'मे * श्रीमद्भागवतका श्लोक (४।१७।३३) उद्धृत करते हुए कहते हैं,—'उस समुन्नद्ध- (गर्वित) विरुद्ध शक्तिशाली, निग्रह-अनुग्रहके विधाता—परम-पुरुषको मैं प्रणाम करता हूँ।' परमेश्वरके विरुद्ध शक्तिसमूहके अचिन्त्यत्वका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि,—'आप जीवसमूहके ईश्वर हैं, आपकी शक्तियाँ तर्कातीत हैं अर्थात् अचिन्त्य और अनन्त हैं।' परतत्त्वका एक साथ ही शक्तिमत्त्व और शक्तिका अचिन्त्यत्व ब्रह्मसूत्रके 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' (२।१।२७) तथा 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' (२।१।२८) सूत्रोमे बतलाया गया है।

किसी प्रमाणसिद्ध कार्यकी अन्य किसी भी प्रकारसे उपपत्ति (समाधान, सिद्धि) नहीं होती। अतएव अगत्या जो ज्ञान होता है, उस प्रकारके ज्ञानके विषयको ही 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहा जाता है ;

* "तस्मै समुन्नद्धविरुद्धशक्तये, नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ।'
(भा० ४।१७।३३), तासामचिन्त्यत्वमाह—'आत्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्र-
शक्ति' (भा० ३।३।३) * * * उक्तचाचिन्त्यत्वम्—'श्रुतेस्तु
शब्दमूलत्वात्' इत्यादौ, 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' इत्यादौ (ब्र० सू०
२।१।२७-२८) । —भग० सं०, १४-१५ अनु०

प्रत्येक भाववस्तुमें जो शक्ति है, वही अचिन्त्यज्ञान-गोचर होती है ; क्योंकि शक्तिमात्रका इस प्रकारका स्वभाव लोकसिद्ध है। अतएव ब्रह्ममें जो शक्तियाँ हैं, वे सभी अचिन्त्यज्ञान-गोचर हैं।

समस्त भाव-वस्तुओंकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञान-गोचर हैं, 'जल', 'अग्नि' आदि भाव वस्तुएँ हैं, परन्तु जलमें अग्निको बुझानेकी शक्ति क्यों है ? अग्निमें जला डालनेकी शक्ति क्यों है ? इसे आधुनिक विज्ञान भी नहीं बतला सकता। एक भाग 'अभ्रजलान' और दो भाग 'उद्जलान' मिलनेसे जल बनता है, विज्ञान यह कह सकता है किन्तु क्यों बनता है ? विज्ञान उसको नहीं बतला सकता। जो ज्ञान किसी युक्ति-तर्कके द्वारा प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, तथापि प्रत्यक्ष सत्यके रूपमें जिसको स्वीकार किये बिना भी नहीं रहा जा सकता, वही 'अचिन्त्यज्ञान' या 'अर्थापत्ति-ज्ञान' है। 'देवदत्त' दिनमें भोजन नहीं करता, तथापि उसका शरीर खूब स्वस्थ, सबल और स्थूल है। अतएव कल्पना कर लेनी पड़ती है कि वह निश्चय ही रातमें भोजन करता है। यहाँ देवदत्तका जो दिनमें 'अभोजन' और 'स्थूलत्व' है वह प्रत्यक्ष लौकिक प्रमाणके द्वारा सिद्ध है, इसे 'दृष्टार्थापत्ति' कहते हैं, और जो प्रकृतिसे अतीत प्रमाण या स्वतः प्रमाण 'वेद'के द्वारा सिद्ध होता है, उसे 'श्रुतार्थापत्ति' कहते हैं। 'देवदत्त' नामक कोई व्यक्ति जीवित है, यह जिसे निश्चय है, वह यदि किसी आप्त (विश्वस्त) पुरुषसे सुनले कि 'देवदत्त' घरमें नहीं है,—तो वह देवदत्तकी वहि सत्ताकी (बाहर रहनेकी) कल्पना कर लेगा, क्योंकि जीवित व्यक्तिकी अपने घरमें असत्ता (अस्तित्व-हीनता—न रहना), उसकी वहि सत्ता (बाहर रहने)के बिना सिद्ध (उपपन्न) नहीं होती। श्रुतिके प्रमाणसे यह सिद्ध हो गया है कि, 'ब्रह्म और जीवमें, शक्तिमान् और शक्तिमें अभेद है'। फिर, श्रुतिका उपदेश (आप्तोपदेश) सुनकर ही ज्ञात हुआ है कि 'ब्रह्म और जीवमें भेद है, शक्तिमान् और शक्तिमें भेद है।' अतएव अव्यभिचारी प्रमाण की आपातविरुद्ध दो उक्तियोंका, यानी 'देवदत्त है और नहीं है', तथा

शक्तिमान् और शक्तिमें युगपत् भेद और अभेद है—इन दो सत्योकी सगति कैसे हो सकेगी, उसे अव्यभिचारी प्रमाणमूलक श्रुतिके अर्थकी (तात्पर्यकी) आपत्ति (कल्पना)के द्वारा निर्धारण करना पड़ेगा। यह कल्पना शब्दमूलक, शब्द-प्रमाणके समान ही 'वास्तव सत्य' है। और शब्द-प्रमाण (ब्रह्मसूत्र २।१।२७, शाकरभाष्य सहित, श्रीमहाभारत, श्रीविष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत इत्यादि) जहाँ स्पष्ट भाषामें श्रुतिके इस प्रकारके समकालीन भेद और अभेदको (शक्ति और शक्तिमान्में) 'श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर' अथवा 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहकर व्यक्त करते हैं, वहाँ फिर जीवकी क्षुद्र चिन्ता अथवा किसी ऋषि या महा-मानवकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवकाश ही नहीं रह गया है। महामनीषी आचार्य श्रीशकर 'अभेदपरक' श्रुतिको 'पारमार्थिक सत्य' और भेद परक श्रुतिको 'व्यावहारिक या मिथ्या' कहकर अपनी कपोल-कल्पना व्यक्त करते हैं, वे मायाको अनिर्वचनीया कहते हैं। श्रुतिमें स्वाभाविकी नित्यसिद्धा पराशक्ति और उसका बहुत्व, चेतनका बहुत्व, जीवका नित्यत्व और बहुत्व आदि सिद्धान्त स्पष्ट भाषामें व्यक्त होने पर भी इन सारी श्रुतियोंको उन्होने 'व्यावहारिक' बताकर कल्पना की है। 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण 'शब्दमूलक' होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवसर नहीं है। 'दृष्टार्थापत्ति'-प्रमाण में कभी-कभी व्यभिचार संभव हो सकता है, परन्तु 'श्रुतार्थापत्ति'में ऐसा कभी संभव नहीं है, क्योंकि वह पूर्णतः शब्दमूलक या 'शब्दप्रमाण' की ही परिष्कृति, विवृति और सगति है। इसी कारण गौडीय-वैष्णव दार्शनिकोंने 'अतीन्द्रिय वस्तु'के सम्बन्धमें 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाणके बलसे ही सिद्धान्त स्थापित किया है। यही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'की सुदृढ़ सुदार्शनिक भित्ति है। इसी कारण 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' वेदान्तका 'सर्वतन्त्रसिद्धान्त' है। श्रुतिमें स्पष्ट भाषामें परब्रह्मकी शक्ति मायाका तत्त्वरूपण होनेपर भी आचार्य श्रीशकरने मायाको 'अनिर्वचनीया' कहा है। गौडीय-वैष्णव-दार्शनिकोंका 'अचिन्त्य' शब्द, और शकरका

‘अनिवर्चनीय’ शब्द एक नहीं है । मायाको स्पष्ट भाषामें ‘ब्रह्मशक्ति’ मान लेनेपर ‘अद्वैतसिद्धि’ नहीं होती, फिर, मायाको न माननेपर भी कार्य नहीं चलता, इसी कारण अनिवर्चनीय’ शब्दका जो प्रयोग है वह ‘अचिन्त्य’ शब्दके साथ समानजातीय नहीं है । ‘अचिन्त्य’-शब्दका अर्थ ‘श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्’ (२।१।२७) इस ब्रह्मसूत्रके द्वारा समर्थित है । इसको आचार्य शंकरने भी इस सूत्रके अपने भाष्यमें स्वीकार किया है, ‘अचिन्त्य’ शब्दका अर्थ है ‘शब्दमूलक, श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर’, इस बातको श्रुति, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गीता, विष्णुपुराण, आचार्य शंकर, श्रीधरस्वामिपाद एव सर्वोपरि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवने एक स्वरसे कीर्तन किया है । श्रीगौडीय-वैष्णव-सिद्धान्तमें श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने इस प्रकार ‘श्रुतार्थापत्ति’की ही अवतारणा की है ।

परतत्त्वकी ‘स्वरूपशक्ति’, तटस्था ‘जीवशक्ति’ और वहिरंगा ‘मायाशक्ति’ तथा क्रमशः इन सारी शक्तियोंकी परिणति ‘भगवत्परिकर’, ‘भगवद्भाम’, अनन्त ‘मुक्त’ और ‘बद्ध’ जीव और अनन्त ‘ब्रह्माण्ड’—इन सारी शक्तियों तथा शक्तिपरिणत वस्तुओंके साथ परतत्त्वका जो ‘सम्बन्ध’ है, उसे लेकर ही दार्शनिक मतवादोंकी उत्पत्ति हुई है । कोई कहते हैं,—“शक्ति और शक्तिमान्में आत्यन्तिक भेद है ।” इस मत-वादने श्रीमन्मध्वाचार्यके ‘केवल भेदवाद’की प्रतिष्ठा की । और कोई कहते हैं, ‘भेदाश’ ‘व्यावहारिक’ या ‘प्रातीतिक’ मात्र है, परमार्थतः ब्रह्मकी कोई शक्ति ही नहीं है । ब्रह्मकी शक्ति मान लेनेपर ब्रह्मातिरिक्त दूसरा तत्त्व तथा शक्ति क्रियासे उत्पन्न ‘भेद’को स्वीकार करना पड़ता है, फिर ब्रह्म ‘अद्वितीय’ नहीं रहता । प्रत्यक्षदृष्ट भेदसमूह ‘व्यावहारिक’ मात्र है । परमार्थतः इनका भेद स्वीकार नहीं किया जाता । यही श्रीशंकराचार्यका ‘केवलाद्वैतवाद’ है । पुनः कोई शक्ति और शक्तिमान्के ‘भेद’को स्वीकार कर ‘शक्ति’को स्वरूपके ही अन्तर्गत प्रतिपादन करते हैं । इससे श्रीरामानुजाचार्यका ‘विशिष्टा-द्वैतवाद’ प्रकाशित है । ‘भेद’ और ‘अभेद’ दोनों समान रूपसे सत्य

हे, नित्य है, स्वाभाविक और अविरोध है, इस प्रकार ख्यापन करते हुए श्रीनिम्बार्काचार्य स्वाभाविक 'भेदाभेदवाद' की स्थापना करते हैं। और कोई-कोई तर्कके द्वारा 'भेद'-वाद या 'अभेद'-वादकी स्थापना करके, अथवा शक्ति और शक्तिमान्में 'भेद' और 'अभेद' दोनों ही स्वाभाविक हैं, ऐसी भी कल्पना न करके 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण या शब्द-मूलक-प्रमाणके बलसे शक्ति और शक्तिमान्का 'अचिन्त्यभेदाभेद' स्थापित करते हुए श्रुतिमन्त्रों और वेदान्तसूत्रोंका समन्वय करते हैं। यही गौडीय-वैष्णवोंका 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' है। गौडीय-वैष्णव-दाशंनिकोंने कस्तूरी और उसकी गन्ध, अग्नि और दाहिकाशक्ति आदि दृष्टान्तोंके द्वारा शक्तिमान् और शक्तिके सम्बन्धको समझाया है। कस्तूरीकी गन्धरूपी शक्तिको और अग्निकी दाहिका-शक्तिको कस्तूरी या अग्निसे पृथक् या विच्छिन्न अर्थात् भिन्न नहीं किया जा सकता। इस दृष्टान्तसे ज्ञात होता है कि—शक्ति शक्तिमान्से 'अभिन्न' है। फिर बहुधा कस्तूरी और अग्नि लोगोकी दृष्टिसे वहिर्भूत होनेपर भी गन्ध और उत्ताप प्रकट करती है। 'मृगनाभि'के बाहर भी जब गन्धका अनुभव होता है, अदृश्य अग्निसे भी कभी-कभी जब उत्तापका अनुभव होता है, तब प्रत्यक्ष वस्तुके साथ वस्तुशक्ति पूर्णतः 'अभिन्न' है, यह भी नहीं कहा जा सकता। और कस्तूरी और उसकी गन्धमें, अथवा अग्नि और उसकी दाहिका-शक्तिमें पूर्णतः 'भेद' है, ऐसी कल्पना करने पर भी दोनोंको दो वस्तुओंके रूपमें स्थापन करना पड़ता है। जलके 'अम्लजान्' और 'उदजान्'के समान कस्तूरी और गन्धको दो पृथक् उपादान माननेपर गन्धके बाहर चले जानेपर कस्तूरीका वजन कम हो जाता। अतएव शक्ति और शक्तिमान्में 'केवलभेदवाद' स्थापन करते समय भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। निर्दोषभावसे 'केवलभेदवाद' स्थापन करना जैसे दुष्कर है, 'केवल अभेदवाद' स्थापन करना भी उसी प्रकार दुष्कर है। इसी कारण कोई-कोई वेदान्ती 'केवलभेद' या 'केवलाभेद' साधन में मानवचिन्तनकी असमर्थता पाकर शब्दप्रमाणमूलक 'अचिन्त्य-भेदा-

भेदवाद'को स्वीकार करते हैं। स्वरूपसे अभिन्नरूपमे चिन्तन नहीं किया जाता, इसी कारण शक्तिकी भेदप्रतीति होती है, साथ ही भिन्नरूपसे चिन्तन नहीं किया जाता, इससे अभेदप्रतीति होती है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्मे 'भेद' और 'अभेद' है, तथा यह 'भेदाभेद' 'अचिन्त्य' है अर्थात् 'प्रकृतिके अतीत या तर्कके लिये अगम्य व्यापार है',—यह 'सिद्धात' स्वीकार करना पड़ता है। 'भेद' और 'अभेद' एक ही साथ किस प्रकार सत्य है, 'हो' और 'ना', उष्ण और शीतल एक साथ ही कैसे सभव है, यह किसी युक्ति या तर्कके द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु प्रकृतिके अतीत राज्यमें एक ही साथ विरुद्ध व्यापारोका अपूर्व समन्वय होता है, इस बातको श्रुति, स्मृति, पुराण, पञ्चरात्र एक स्वरसे प्रतिपादन करते हैं। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का युगपद्विरुद्ध सम्बन्ध श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर—शब्द प्रमाणगम्य है, यह किसी जीव की युक्ति-तर्कके द्वारा निर्णीत नहीं किया जाता। यही है 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' का संक्षिप्त मर्म।



एक सौ-चारवाँ परिच्छेद

'गौडीय-दर्शन' की मौलिकता और सार्वभौमिकता

श्रीकृष्णचैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'गौडीय-दर्शन' अथवा श्रीभागवत-दर्शनमें 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्त्व स्वीकृत हुआ है। तत्त्व एकके अतिरिक्त दूसरा नहीं। इस अद्वय परतत्त्वमें स्वाभाविकी त्रिविधा शक्ति है—(१) स्वरूपशक्ति या चिच्छक्ति, (२) तटस्था शक्ति या जीवशक्ति, और (३) बहिरंगा शक्ति या मायाशक्ति। श्रीकृष्ण चैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' अद्वय-तत्त्वके स्वरूपानु-

बन्धि-शक्तिवैचित्र्यके ऊपर ही प्रतिष्ठित है। यह पूर्णतया मौलिक और सार्वभौम 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है, अर्थात् किसी पूर्ववर्ती आचार्य का अनुकरण करनेवाला मतवाद नहीं है, बल्कि यह वेदान्तके सार्व-देशिक सिद्धान्त तथा विभिन्न भाष्यकार आचार्योंके सिद्धान्तोकी सपूर्णता तथा उनमें सुसमन्वयका विधान करनेवाला है।

'अन्नित्यभेदाभेद-सिद्धान्त'मे स्वाभाविक भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क आचार्यकी भाँति 'स्वतन्त्र' और 'अस्वतन्त्र' दो तत्व नहीं माने गये हैं। श्रीनिम्बार्कके मतसे ईश्वर—स्वतन्त्र तत्व, जीव और प्रकृति अस्वतन्त्र तत्व है, परन्तु अस्वतन्त्र तत्वकी सत्ता स्वतन्त्र तत्वके ऊपर निर्भर करती है। श्रीनिम्बार्कके मतसे श्रीपुरुषोत्तमकी सत्ता जीव और प्रकृतिकी सत्तासे अतिरिक्त है। श्रीमध्वाचार्य भी जीव और ब्रह्मको दो पृथक् तत्व कहते हैं। श्रीजीवगोस्वामिपादने कहा है कि, —“जीव और प्रकृतिको पृथक् तत्व कहने पर 'अद्वयताकी हानि होती है। परन्तु उनको शक्तिरूपमें विचारने पर अद्वयतत्वकी सम्यक् स्फूर्ति और प्रतिष्ठा होती है। शक्ति और शक्तिमान्की अविच्छेद्यताके ऊपर ही 'अन्नित्य-भेदाभेदवाद' प्रतिष्ठित है। शक्तिमान्से शक्तिको पृथक् नहीं कर सकते, इसी कारण शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही एक अद्वितीय वस्तु या तत्व है। वस्तु—'विशेष्य' है, और वस्तुशक्ति—'विशेषण' है। 'विशेषण' युक्त विशेष्य ही वस्तु है।" प्रश्न हो सकता है कि, 'विशेष्य' और 'विशेषण' मिलकर ही यदि वस्तु होती है और विशेषणको विशेष्यसे, तथा शक्तिको शक्तिमान्से यदि पृथक् ही नहीं कर सकते, तो पृथक् भावसे शक्तिको स्वीकार करनेकी आवश्यकता ही क्या है ?" श्रीकृष्ण-चैतन्यके अनुचर श्रीजीवगोस्वामिपाद कहते हैं कि,—“यह वेदान्तियोका मत नहीं है, क्योंकि, वस्तुके रहते हुए भी मन्त्र-महौषधि आदिके प्रभावसे शक्तिको केवल स्तम्भित होते देखा जाता है। हाथ न जलने पर भी आग दिखलायी देती है। अतएव अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिको पृथक् नामसे अभिहित करना ही युक्तिसंगत है, यद्यपि वैसी दशामें भी

वस्तु और तत्व दो नहीं है। स्वाभाविकी शक्तिकी विचित्रताके द्वारा शक्तिमान्के अद्वयत्वका व्याघात नहीं होता। इसलिये स्वरूपसे अभिन्नरूपमें शक्तिका चिन्तन नहीं किया जा सकता, इस कारण उसका 'भेद' और भिन्नरूपसे चिन्तन नहीं किया जा सकता, इस कारण 'अभेद' है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का 'भेदाभेद' स्वीकृत है, तथा वह 'अचिन्त्य' अर्थात् तर्कयुक्तिके लिये अगम्य होते हुए भी शास्त्रगम्य है। 'अचिन्त्यभेदाभेद' दर्शनमें ब्रह्मके किसी प्रकारका भी भेद स्वीकार्य नहीं है। 'विशिष्टाद्वैतवादी' श्रीरामानुज चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मको अद्वय-तत्व कहते हैं। उनके मतसे ईश्वरके साथ जीव और प्रकृतिका भेद नहीं है, बल्कि तत्व विशेषण-विशिष्ट है, चित् (जीव) और अचित् (जडवर्ग) ब्रह्मके विशेषण है, अर्थात् श्रीरामानुजके मतमें केवल जीव और जगत् ब्रह्मके विशेषण है, परन्तु गौडीय-दर्शनमें ब्रह्मकी समस्त शक्ति ही ब्रह्मका विशेषण है। श्रीरामानुजाचार्य शक्ति और शक्तिमान्में भेद स्वीकार करते हैं, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने शक्ति और शक्तिमान्का 'केवल-भेद' स्वीकार नहीं किया। श्रीरामानुजाचार्यके मतसे चित् और अचित् ब्रह्मके 'स्वगत-भेद' है, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद ब्रह्मका किसी प्रकारका 'भेद' स्वीकार नहीं करते। अतएव क्या विशिष्टाद्वैतवादी श्रीरामानुज, क्या केवल-भेदवादी श्रीमध्व, क्या स्वाभाविक-भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क—सभी वैष्णवाचार्य के मतसे गौडीय-दर्शनके ब्रह्मका अद्वयत्व स्थापन और उस प्रसंगमें शक्ति-विचारका असाधारण वैशिष्ट्य और मौलिकतत्व है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवके चरणानुचर श्रीश्रीजीवपाद श्रीमध्वके समान जीव और ईश्वरको दो 'नित्य सिद्ध पृथक् तत्व' नहीं कहते। अतएव श्रीमध्वने जिस प्रकार ईश्वरसे जीवका तत्त्वतः 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार किया है, श्रीश्रीजीवपाद उस प्रकार 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार नहीं करते। ब्रह्मकी स्वाभाविकी स्वरूप-शक्ति और माया-शक्तिके समान जीवशक्ति भी शक्तिरूपमें ही परमात्माका अंश है, जैसे अग्नि और स्फूर्ति। अग्नित्वमें दोनोंका हो अभेद है,

परन्तु परिमाणादिमें दोनोंका भेद हैं । तथापि शक्ति और शक्तिमान्में अभेद है ।

श्रीमध्वाचार्यने अपने 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय'में (११।७।५१) जो ब्रह्मतर्कके वाक्य उद्धृत किये हैं, उसके द्वारा अचिन्त्य-भेदाभेदवादका सकेत मिलने पर भी श्रीमध्वाचार्यको 'अचिन्त्य भेदाभेदवादी' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्वके समान अभेदके नित्यत्वको स्वीकार नहीं करते । भास्कराचार्य अभेदके नित्यत्व और भेदके सामयिक सत्यत्वको स्वीकार करते हैं । पश्चात्तरमें श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्व और अभेदके एकाशमे सत्यत्व को स्वीकार करते हैं । और श्रीनिम्बार्क भेद और अभेद दोनोंके ही समसत्यत्व, समनित्यत्व अर्थात् सर्वकालमे सर्वावस्थामें समभावसे भेदाभेदके नित्यत्वको स्वीकार करते हैं । गौडीय-वैष्णव-दर्शनमें परब्रह्मको स्वरूपाख्य-जीवाख्य-मायाख्य शक्तिका आश्रय एक 'अद्वितीय तत्व'के नामसे स्थापन करनेके कारण वहां एकाधिक तत्वका कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता । इसलिये एकाधिक तत्वके साथ अत्यन्त भेद (जो श्रीमध्वाचार्यका सिद्धान्त है) अथवा किसी व्यावहारिक या प्रातिभासिक एकाधिक तत्वके साथ पारमार्थिक अत्यन्त अभेद या व्यावहारिक भेदाभेद (जो श्रीशंकराचार्यका सिद्धान्त है), अथवा कारणरूपी या कार्यरूपी ब्रह्मके द्विरूप या एकाधिक तत्वके साथ सामयिक भेद या नित्य अभेद (जो श्रीभास्कराचार्यका सिद्धान्त है) अथवा स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र तत्वके साथ समभावसे स्वाभाविक भेद और स्वाभाविक अभेद (जो श्रीनिम्बार्काचार्यका सिद्धान्त है) अथवा कारण और कार्यरूप शुद्ध ब्रह्ममें जो अभेद (जो श्रीबल्लभाचार्यका मत है)—इनमें किसीका भी अनुकरण अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तमें नहीं है । भास्कराचार्यको वास्तवमें 'भेदवादी' नहीं कह सकते । उनको 'अभेदवादी' कहना ही सगत है । इसी प्रकार श्रीमध्वाचार्यको ब्रह्मतर्कमें उद्धृत वाक्यके प्रमाणसे 'भेदाभेदवादी' नहीं कह सकते । उनको 'केवल-भेदवादी'

कहना ही ठीक होगा । श्रीनिम्बार्काचार्य के भेदाभेदवादमें भेदवाद और अभेदवाद दोनों ही स्वाभाविक होने पर जीवगत दोष ब्रह्मके लिए स्वाभाविक हो जाते हैं, और ब्रह्मके सृष्टिकर्तृत्वादिगुणसमूह जीवके लिये स्वाभाविक हो जाते हैं । श्रीवल्लभाचार्यने केवलाद्वैत-मतवादोक्त कार्य (जीव-जगत्) के मिथ्यात्वके आश्रयसे कार्यकारण (जीव-जगत् और ब्रह्म) के अभेदवादका खण्डन करते हुए कार्य-कारणरूप शुद्ध (माया-संस्पर्शहीन) ब्रह्मके अभेदत्व या अद्वयत्वको स्थापित कर 'शुद्धाद्वैतवाद' को प्रकटित किया है । उनके मतसे जीव—अनेक होनेके इच्छक सच्चिदानन्द ब्रह्मके तिरोभूत आनन्दाश चिदश है । ब्रह्म ही जगत्-कार्यरूपमें अविकृत परिणामको प्राप्त है । गौडीय-दर्शनके शक्ति-सिद्धान्तकी सूक्ष्मता और शक्ति-परिणामवादकी स्वीकृति इस मतवादमें न होनेके कारण इसमें असम्पूर्णता दीख पड़ती है । जीवशक्ति-युक्त अद्वयज्ञान-तत्त्वका शक्त्यश जीव, शक्तिमान् स्वाशतत्वसे जीवशक्तिका वैशिष्ट्य दिखलाता है । बहिरंगा मायाशक्ति और उससे परिणत जगत्, अन्तरंगा स्वरूपशक्ति और उससे परिणत भगवद्धामादि, तथा स्वरूप-शक्तिकी सन्धिनी, सवित् और ह्लादिनी-वृत्तिके प्रभावका विश्लेषण—गौडीय-दर्शनमें शक्ति-तत्त्वका अपूर्व वैज्ञानिक सुसूक्ष्म विचार है । साथ ही उस समस्त शक्ति-वैचित्र्य अद्वयज्ञान-तत्त्वकी अद्वयतामें बाधा न देकर उसका परिपोषक भी है । श्रीश्रीधरस्वामिपादद्वारा कथित वस्तुका अश जीव, वस्तुकी शक्ति माया, वस्तुका कार्य जगत्—सभी वस्तु ही हैं । इस 'अद्वयवस्तुवाद' या 'अद्वयतत्त्ववाद'में भी निरशवस्तुका अश, अविकृत वस्तुका कार्य-(विकार या परिणाम) आदि बातें-वस्तुतत्त्व-विज्ञानमें असम्पूर्णता लाती हैं, परन्तु स्वरूपानुबन्धिनी अर्थात् स्वाभाविकी शक्ति-वैचित्र्यी वस्तु या तत्त्वकी अखण्डता या अद्वय-तत्त्वको परिस्फुट करके शक्तिके कार्यसमूहको सुसम्पन्न करती है । अद्वयतत्त्वकी शक्ति स्वीकार करने पर (श्रुतिप्रमाणके अनुसार) पर-तत्त्वके अद्वयत्वकी किसी प्रकार हानि नहीं होती तथा जीव और ब्रह्ममें

नित्य भेद और अभेदका स्वाभाविकत्व स्वीकार करनेमें जो सब दोष-प्रसंग उपस्थित होते हैं, अथवा अत्यन्त भेद स्वीकार करनेमें श्रुति, वेदान्त, और उसके अकृत्रिम भाष्यरूपी श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तके साथ जो विरोध उपस्थित होता है, अथवा जीवको ‘शक्ति’ न कहकर केवल ‘चिदश’ या ‘वस्त्वश’ कहनेसे जो निरश अद्वयतत्त्वकी अश-कल्पना करनी पड़ती है, उसे भी मानना नहीं पड़ता और समस्त शब्द-प्रमाण की सुसंगति और मर्यादाकी रक्षा होती है। गौडीय दार्शनिकोंके ‘अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त’में एक साथ ही श्रुति, वेदान्त और सूत्रोंके यथार्थ भाष्यके सिद्धान्तोंका समन्वय तथा समस्त आचार्योंके श्रौत-सिद्धान्तोंकी सम्पूर्णता सिद्ध होती है। केवलाद्वैत-मतके प्रवर्तक श्रीमत् शंकराचार्यके मतवादमें भी जो कुछ श्रुति-सम्मत है, उसका श्रीसनातनगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाका अनुसरणकर ‘श्री-वृहद्भागवतामृत’में तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने ‘सन्दर्भ’ में आदर किया है, भक्त्येकरक्षक (केवल भक्तिकी मर्यादाकी ही रक्षा करनेवाले) श्रीश्रीधरस्वामिपादके तथा श्रीविष्णुस्वामिपादके शुद्धाद्वैतपरक सिद्धान्तकी, तथा विशिष्टाद्वैतवादाचार्य श्रीरामानुजके और तत्त्ववादगुरु श्री-मध्वके सिद्धान्तकी संगति, समन्वय और सम्पूर्णता अचिन्त्यभेदाभेदके सिद्धान्तमें दिखलायी गयी है। अतएव, ‘अचिन्त्यभेदाभेदवाद’ही सर्व-शास्त्र-समन्वयकारी मौलिक सार्वभौम सर्वतन्त्र-सिद्धान्त-सम्राट् है।

एकसौ-पाँचवाँ परिच्छेद परमपुरुषार्थ या प्रयोजन-तत्त्व

श्रीचैतन्यदेव कहते हैं,—“अपनी इन्द्रियोकी प्रीतिकी इच्छाका नाम ही ‘काम’ है और श्रीकृष्णकी इन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही—अप्राकृत ‘प्रेम’ है।” जीवकी आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष की कामनाके रूपमें चार पुरुषार्थ (पुरुष = जीव + अर्थ = प्रयोजन या काम्य) हैं। स्वर्गादि सुखकी कामनाको ‘धर्म-कामना’ कहते हैं। अर्थलाभके उद्देश्यसे भगवान्की आराधनाकी छलना, अथवा जिस किसी कामना की सिद्धिके उद्देश्यसे कामना पूर्ण करनेवाले देवताकी पूजा अथवा ससार की यन्त्रणासे शान्ति-लाभकी इच्छा आदि समस्त ही ‘काम’ हैं। साधारणतः लोग ससारमें धर्म या पुण्य-कामनाकी सिद्धिके लिये सूर्यदेवताकी पूजा और अर्थ-कामनाकी पूर्तिके लिये सिद्धिदाता देवता गणेशकी पूजा तथा पुत्र, राज्य, अभ्युदय आदिकी कामना करके शक्तिकी पूजा, और मोक्ष-कामना करके रुद्रकी पूजा किया करते हैं। फिर कोई कोई विष्णुको कर्माधीन और कर्मफल-दाता समझकर विष्णुकी पूजा करते हैं, कोई उनको दंडमुड-विधाता परम ऐश्वर्यशाली समझकर पूजा करते हैं, इसमें भी उपास्य वस्तुमें प्रेमका अभाव लक्षित होता है।

श्रुतिने परम तत्त्वको “रसो वै स”, “अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु” प्रभृति मन्त्रोंमें निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि परतत्त्व नपुंसक ब्रह्म मात्र नहीं है। अथवा वे पुरुष-भोग्या प्रकृति या शक्तितत्त्व नहीं हैं, वे माया और जीवशक्तिके ईश्वर परमात्म-मात्र नहीं हैं, वे परिपूर्ण-सर्वशक्ति-विशिष्ट, स्वरूप-शक्तिके साथ लीलामय, रसमय, मधुमय, लीलापुरुषोत्तम हैं। वे परिपूर्णतम स्वरूपमें चिद्-विलासी, सच्चिदानन्द-तनु, अप्राकृत कामदेव, स्वराट् और अद्वितीय भोक्ता हैं।

वे प्रेम करते हैं, प्रेम चाहते हैं तथा प्रेमके वशीभूत होते हैं। वे सर्वपेक्षा घनिष्ठतम और प्रियतम हैं। ऐसा नहीं कि, वे केवल ही सुदूरवर्ती हैं, अथवा ऐसा भी नहीं कि, जब उपासक निकट आये हुए होते हैं तब वे भी खूब बड़े आदमियोंकी तरह ऐश्वर्यसे पूर्ण होकर भय और सभ्रमके पात्रकी भाँति रहते हैं। सूर्यको आलोकसे पृथक् नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह उसके स्वरूपका ही धर्म है, इसी प्रकार रसमय परतत्वकी प्रेम-वृत्तिको उनसे पृथक् नहीं किया जा सकता। क्यों उनको प्रेम किया जाता है, इसका कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह प्रियत्व-धर्म उनका स्वरूपानुबन्धी गुण है। वे केवल प्रीति ही स्वीकार करते हैं, सो नहीं है, वे प्रीतिके वशीभूत हो जाते हैं। यही उनका अद्वितीय वैशिष्ट्य है। इस जड़ इन्द्रियके द्वारा उनको (कृष्णको) प्रेम नहीं किया जाता। अथवा इस जड़ इन्द्रियको भी वे प्रेम नहीं करते। यह प्रेम बद्ध या तटस्थ दशामें अवस्थित अणुचित् जीवके लिये संभव नहीं, तथापि उनको ही आनन्ददायिनी स्वरूपशक्ति ह्लादिनीकी कृपाशक्ति जिस इन्द्रियमें अवतरित हुई है, उसी इन्द्रियके द्वारा परतत्व वस्तुका साक्षात्कार प्राप्त होता है। जिस शक्तिके द्वारा परतत्वसे प्रेम किया जाता है तथा उनके द्वारा आकृष्ट हुआ जाता है, जो शक्ति परतत्व और जीव दोनोंको सुखी करती है, उस शक्तिका प्रधान और प्रथम धर्म है 'करुणा'। जीवकी कोई भी क्षमता नहीं है कि वह परतत्वको पकड़ या छू सके। तथापि उस ह्लादिनी-शक्तिका प्रकाश साधु या महत्के आकारमें अवतीर्ण होकर जीवको परतत्वके साथ योगयुक्त करते हैं। ह्लादिनी-शक्तिकी कृपासे ह्लादिनीके साथ तादात्म्यको प्राप्त इन्द्रिय परतत्वको सुखी कर सकती है।

ह्लादिनी-शक्तिकी जो सेवा है,—परतत्व श्रीभगवान्को 'सुखी' देखना, वह तब उस इन्द्रियमें उतर आती है। सभी स्थानोंमें, सभी कालोंमें, सभी पात्रोंमें और सभी अवस्थाओंमें वे ही प्रेमकी वस्तु हैं।

कर्म-ज्ञान-योगादि साधन 'उपाय'-मात्र है, 'उपेय' नहीं है, अर्थात् वही जीवका चरम प्रयोजन नहीं है। परन्तु 'प्रेमभक्ति' उपाय और उपेय है, अर्थात् वही 'प्रयोजन' है। प्रेमभक्तिके द्वारा जो प्राप्त होगा, वह भी 'भक्ति' ही है, उसीका दूसरा नाम परतत्त्वमें 'प्रीति' है। कर्म-ज्ञान-योगादिका मार्ग सार्वजनिक नहीं अर्थात् उनमें सबका अधिकार नहीं। विकलेन्द्रिय या अर्थहीन व्यक्ति यज्ञादि-कर्म नहीं कर सकते। भूख, नीच, पापी, भोगी और रोगी व्यक्ति ज्ञान-योग आदि का अनुष्ठान नहीं कर सकते, परन्तु भक्तिका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं।

भक्तिके आभासमें ही अर्थात् तुच्छ फलरूपमें ही कर्म-ज्ञानादिके चरम प्राप्य सभी प्रयोजन अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। **भक्ति स्वतः ही सुखरूपा है, अतएव अहंतुकी है;** कर्म-ज्ञानादि फलरूपमें सुखकी आकांक्षा करते हैं, इसलिये उनके अनुष्ठानमें 'हेतु' रहता है। जहाँ स्वयं 'सुख' ही साधन और साध्य है, वहाँ फिर आत्मसुखानुसन्धानचेष्टा-रूपी हेतु नहीं रह सकता। **भक्ति करनेके समान वैसा सुख किसी भी वस्तुमें नहीं है और भक्ति न करनेके समान वैसा दुःख भी किसी वस्तुमें नहीं है।** इसलिए भक्ति 'अप्रतिहता' है, अर्थात् उसमें किसी प्रकार भी कोई बाधा नहीं प्राप्त होती, बल्कि बाधा प्राप्त होनेपर इसका बेग और भी अनेकगुना बढ़ जाता है।

भक्ति—परमधर्म है, क्योंकि, यह 'परतत्त्व'के एकमात्र सन्तोषके लिये की जाती है। निवृत्तिमात्र-लक्षणसे युक्त धर्ममें भी विमुखता रहती है, अर्थात् परतत्त्वके सन्तोषकी चिन्ता नहीं रहती, अपने स्वार्थकी चिन्ता ही अधिक परिमाणमें रहती है।

भक्तिका अनुष्ठान सर्वत्र ही होता है। सर्वशास्त्र, सर्वकर्ता, सर्वदेश, सर्वकरण, सर्वद्रव्य, सर्वकार्य और सर्वकालमें भक्तिका अनुष्ठान होता है। सर्वदा भक्तिका अनुशीलन होता है, सृष्टिमें, चतुर्विध प्रलयमें, चारो युगोंमें, सर्वावस्थामें—(मातृगर्भ, बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था मृत्यु, स्वर्ग और नरकमें) भक्तिका अधिष्ठान है।

भक्ति—सर्वकामप्रदा, अशुभहारिणी, सर्वविघ्नविनाशिनी, सर्वताप-क्लेश-नाशिनी, अप्रारब्धहारिणी, पापवासनाहारिणी, अविद्याविनाशिनी, सर्वतोषणी, सर्वगुणदायिनी, सर्वसुखप्रदायिनी, अभक्तिविघातिनी, स्वतः ही निर्गुणा, निर्गुणताविधायिनी, स्वप्रकाश-स्वरूपा, परमसुख-स्वरूपा, रतिप्रदा, प्रेमैक-सर्वस्वा, भगवद्वशकारिणी और प्रयोजन-पराकाष्ठा-प्रदायिनी है।

केवल दुःखनिवृत्ति पुरुषार्थ नहीं है, परमानन्दकी प्राप्ति ही यथार्थमें असली पुरुषार्थ या मुक्ति है। 'मुक्ति'-शब्दसे यहाँ वास्तवमें परमानन्दकी प्राप्ति ही लक्षित होती है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—तीनों आविर्भाव ही आनन्दस्वरूप हैं, इनकी प्राप्ति मुक्ति है। यह भक्ति या आनन्दप्राप्ति सभी पूर्ण है, क्योंकि परतत्त्वके सारे आविर्भाव ही पूर्ण हैं। ब्रह्ममें निजी शक्ति-या धर्मका प्रकाश न होनेके कारण ब्रह्म निर्विशेष है। परमात्मामें शक्तिका या धर्मका आशिक प्रकाश है। परमात्मासे भी भगवान्में प्रियत्वधर्म-गुण सर्वतोभावेन अधिक होनेके कारण श्रीभगवान् गुणविचारसे सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है। श्रीभगवान्के सविशेषत्वमें चमत्कारिता या आनन्दवैचित्र्य है। श्रीभगवान् सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी निरपेक्ष नहीं है, वे उपासककी प्रीति चाहते हैं और स्वयं भी प्रीति करते हैं। श्रीभगवान्को सुखी करना ही मूल प्रयोजन है, यह सही है, परन्तु इसमें भी विशेषता यह है कि भगवान् जिस प्रकारसे सुखी होना चाहते हैं, उस प्रकारसे उनको सुखी करनेकी चेष्टा करना ही 'प्रीति' है। जिस किसी भी प्रकारसे उनको पाने—उनकी सेवा करने—प्रेम करनेपर वे सुखी होते हैं, (उनकी इच्छाके विरुद्ध या अपनी सुख-कामनाको लेकर करनेसे नहीं), उसी प्रकार उनको पानेकी इच्छा ही प्रीतिको बढाती है, इसे 'स्वार्थशून्य-प्रेम' कहते हैं। इसमें अपनी इन्द्रियोकी तृप्तिकी कामना विलुप्त हो जाती है। सुख—माया-शक्तिके सत्त्वगुणकी वृत्ति है, और भगवत्प्रीति—स्वरूपशक्तिकी वृत्ति है। प्रीति नित्यसिद्ध भगवत्परिकरगणमें स्वतः सिद्ध-

रूपमे नित्य वर्तमान है। उनकी कृपा-परम्परासे योग्य निर्मल जीवात्मामें प्रीतिका आविर्भाव होता है। यह प्रीति ही सर्वोत्तम परमानन्दकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय और उपेय है।

प्रेमके सम्बन्धमें पृथ्वीमें विकृत धारणाका प्रचार हो रहा है। इसीलिए श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने गाया है,—

“कि आर बलिब तोरे मन !

मुखे बल’ ‘प्रेम’, ‘प्रेम’, वस्तुतः त्यजिया हेम,

शून्यप्रस्थि अंचले बन्धन ॥

अभ्यासिया अश्रुपात, लम्फझम्प अकस्मात्,

मूर्च्छाप्राय थाकह पड़िया ।

ए लोक बंचिते रंग, प्रचारिया असत्-संग,

कामिनी-काञ्चन लभ’ गिया ॥

प्रेमेर साधन—‘भक्ति’, ता’ते नैल अनुरक्ति,

शुद्धप्रेम केमने मिलिबे ?

दश-अपराध त्यजि’, निरन्तर नाम भजि’

कृपा ह’ले सुप्रेम पाइबे ॥

ना मानिले सुभजन, साधुसङ्गे संकीर्तन,

ना करिले निर्जने स्मरण ।

ना उठिया वृक्षोपरि, टानाटानि फल धरि’,

दुष्टफल करिले अर्जन ॥

अकैतव कृष्णप्रेम, येन सुविमल हेम,

एइ फल नृलोके दुर्लभ ।

कैतवे वंचना-मात्र, ह्मओ आगे योग्य पात्र,

तबे प्रेम हइबे सुलभ ॥

कामे प्रेमे देख भाइ, लक्षणते भेद नाइ,

तबु ‘काम’ ‘प्रेम’ नाहि ह्य ।

तुमि त’ बरिले काम, मिथ्या ताहे ‘प्रेम’ नाम,

आरोपिले, किसे शुभ हय ?

* * *

श्रद्धा हैते साधुसंगे, भजनेर क्रिया-रंगे,

निष्ठा-रुचि-आसक्ति-उदय ।

आसक्ति हइते भाव, ताहे प्रेम-प्रादुर्भाव,

एइ क्रमे प्रेम उपजय ॥”

—‘कल्याण-कल्पतरु’

[रे मन, तुमसे मैं क्या कहूँ ? मुखसे तुम ‘प्रेम-प्रेम’ करते हो, और वस्तुतः काचनको छोड़कर पल्लेमें खाली गाँठ बाँधते हो। आँसू बहानेका अभ्यास करके अकस्मात् कूद-फाँद मचाकर मूर्छित होनेका स्वाँग रचकर पड़ रहते हो। इस प्रकार लोगोको ठगकर असत्सङ्गका प्रचार कर कामिनी-काचनको प्राप्त करते हो। अरे ! प्रेमका साधन ‘भक्ति’ है, उसमें यदि अनुराग नहीं हुआ तो शुद्ध प्रेम कैसे मिलेगा ? दस प्रकारके अपराधोका त्याग करके, निरन्तर भगवान्‌के नामका भजन करो, उनकी कृपासे सुप्रेमकी प्राप्ति होगी। साधुसङ्गमें सकीर्तन रूप जो सुभजन है, उसे तुमने स्वीकार नहीं किया और निर्जनमें भगवान्‌का स्मरण भी नहीं किया। वृक्षके ऊपर चढ़े बिना नीचेसे फल पकड़नेके लिये डालोको खीचा-ताना, जिससे अच्छा फल तो प्राप्त नहीं हुआ, खराब फल ही हाथ लगे। अरे ! कपटरहित-कृष्णप्रेम मानो निर्मल सोना है, यह फल नर-लोकमें दुर्लभ है। कपटमें तो वञ्चनामात्र है, पहले योग्य पात्र बनो, तभी वह प्रेम सुलभ होगा। देखो भाई, काम और प्रेममें देखनेमें भेद नहीं है, फिर भी ‘काम’ ‘प्रेम’ नहीं होता। तुमने ‘काम’को वरण किया है, उसपर मिथ्या ‘प्रेम’ नाम आरोपित करना कैसे शुभ होगा ? श्रद्धासे साधुसङ्ग, साधुसङ्गसे भजन-क्रिया, भजन-क्रियासे निष्ठा, निष्ठासे रुचि, रुचिसे आसक्ति, आसक्तिसे भाव तथा भावसे प्रेमका आविर्भाव होता है। प्रेमके उत्पन्न होनेका यही क्रम है।]

“विश्वप्रेम अथवा मनुष्यका मनुष्यके प्रति प्रेम केवल ‘आत्म-प्रेम’का विकार मात्र है। एक आत्माका अन्य आत्माके साथ जो प्रेम है, वही एकमात्र आत्मप्रेमका आदर्श है। प्रीतिके स्वरूपको न समझकर जिन्होंने ‘मनोविज्ञान’ और ‘प्रीतिविज्ञान’ आदि लिखा है, वे चाहे जितनी ही युक्तियाँ क्यों न उपस्थित करें, उन्होंने भस्ममें धीकी आहुति देनेके समान व्यर्थ ही श्रम किया है। उन्होंने दम्भमें मत्त होकर केवल अपनी प्रतिष्ठाका संग्रहमात्र किया है—उनसे जगत्का कोई उपकार तो दूर रहे, उन्होंने अधिकतर असंगलकी ही सृष्टि की है। एक विस्फूर्लिंग अर्थात् छोटी-सी चिनगारी जिस प्रकार दाह्य-विषय प्राप्त करके क्रमशः महान् अग्निका रूप धारणकर जगत्को जलानेमें समर्थ होती है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके प्रकृत विषय जो श्रीकृष्णचंद्र है, उनको प्राप्तकर प्रेमकी महान् बाढ़ उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है।”

“परमेश्वरके विशुद्ध-गुणोका कीर्तन और उनके प्रेममें सबके साथ भ्रातृत्वकी स्थापना ही ‘विशुद्ध-धर्म’ है। क्रमशः संस्थापित विभिन्न-धर्मोंके हेय-अंशोंके दूर होनेपर सम्प्रदाय-विशेषके भजन-भेद और पारस्परिक विवाद नहीं रह सकते। तब सारे वर्ण, सभी जाति, सभी देशोंके मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर भ्रातृत्वके साथ परमाराध्य परमेश्वरका नाम-कीर्तन सहज ही कर सकेंगे। तब कोई किसीको चाण्डाल कहकर घृणा नहीं करेंगे, तथा अपने जात्याभिमानमें मग्न होकर अन्य जीवोंके साथ अपने साधारण भ्रातृत्वको भूल नहीं सकेंगे; तब श्रीहरिदास प्रेम-रसका घड़ा लेकर श्रीश्रीवासके मुखमें ढालते रहेंगे, तथा श्रीश्रीवास श्रीहरिदासकी चरण-रेणुको सर्वांगमें मलकर ‘हा चैतन्य! हा नित्यानन्द!’ कहकर सहज ही नृत्य करेंगे।”

एकसौ-छठाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म

परम-विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षासे अनुप्राणित होनेके बाद उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा है,—

“वैराग्य-विद्या-निजभक्ति-योग, शिक्षार्थमेकः पुरुष पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥”

[जो एक करुणासागर सनातनपुरुष वैराग्य (विप्रलम्भ), विद्या (परविद्या-भक्ति) और निजभक्तियोग (उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी प्रेमभक्ति)की शिक्षा प्रदान करनेके लिए ‘श्रीकृष्णचैतन्यविग्रह’के रूपमें अवतीर्ण हुए, मैं उनके शरणापन्न होता हूँ ।]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी ‘आदि’, ‘मध्य’ और ‘अन्त्य’—इस त्रिविध प्रकटलीलाका प्रत्येक आचरण साधक और सिद्ध की—बद्ध-मुमुक्षु और मुक्तकुलकी आदर्श-शिक्षाकी प्रदर्शनी स्वरूप है । श्रीचैतन्यचरितमे एक ओर जिस प्रकार शक्त्यावेशावतारसे लेकर सर्वावतारी स्वयं भगवत्तत्त्वकी लीला-पराकाष्ठा तक प्रकटित हुई है, दूसरी ओर उसी प्रकार जीवके गौण साम्मुख्य या साम्मुख्यके द्वार (कर्मापण) से लेकर साक्षात् साम्मुख्य-पराकाष्ठाके (प्रेमभक्तिके) तथा नित्यमुक्तोके लिए साध्य-शिरोमणिके (प्रेमविलासविवर्तके) भावसम्पत् पर्यन्त मूर्त होकर प्रकट हुए हैं ।

जन्मयात्रा-कालमें चन्द्रग्रहणके बहाने श्रीनवद्वीपके आबाल-वृद्ध-वनिताके जित्वा-मरु-प्रागणमें श्रीहरिनामकी अवतारणा, तथा आनुषंगिक रूपसे अलक्ष्यगतिसे समकालीन पृथ्वीकी वहिर्मुख अवस्थाकी अभूतपूर्व युगान्तर-साधन-लीला श्रीकृष्णचैतन्य-रचित ‘श्रीशिक्षाष्टक’की “पर विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम्” वाणीकी विजय-वैजयन्ती है । शैशवम

श्रीहरिनाम सुनकर रोना बन्द करनेकी लीलामें उनका श्रीकृष्णसकीर्तन-जनकत्व, तथा अन्नप्राशन-सस्कारके समय अपनी रुचि-परीक्षामें 'श्रीमद्भागवत'के आलिंगनकी लीलामें 'विद्या भागवतावधि'—यह शिक्षासार प्रकटित हुआ है। पुनः सर्प-धारणलीला आदिके द्वारा शेष-शयन-लीलादि भगवत्-लीला भी प्रकटित हुई है। बाल्यकालमें चोरी और दुरन्त लीला, तैथिक ब्राह्मणके नैवेद्यकी भक्षणलीला, एकादशीके दिन श्रीजगदीश हिरण्यपण्डितके विष्णु-नैवेद्यकी भक्षणलीला, वर्जित वर्तनके ऊपर बैठकर दत्तात्रेयका आवेश, तथा अन्य समय कपिलके भावमें श्रीशचीमाताको उपदेशदान-लीला, विष्णुके पलगपर आरोहण-लीला, महाप्रकाश-लीला, काजीदमन-लीला, षड्भुजप्रदर्शन-लीला आदिमें उनकी भगवत्ता परिस्फुटित हुई है। और दूसरी ओर ज्येष्ठभ्राता श्रीविश्वरूप, श्रीअद्वैत, श्रीश्रीवास आदि वैष्णवोंके प्रति मर्यादा-दान-लीला, गंगाके घाटपर वैष्णववृन्दकी विविध परिचर्यालीला, यथाविधि श्रीविष्णुपूजा, श्रीतुलसी-सेवा, विष्णुनैवेद्य-ग्रहण, श्रीशचीमाताको श्रीएकादशीके दिन अन्नग्रहण-निषेध, स्वयं ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण और छात्रोंको ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणादि सदाचार-शिक्षादान, अन्तर्यामी दृष्टिसे दीन-दरिद्रोंकी सत्कार-लीला, सपरिवार अतिथि-सेवा, वैष्णव-सेवा, सहर्धमिणी श्रीलक्ष्मीदेवीके द्वारा श्रीविष्णु-वैष्णवकी सेवाका आदर्श प्रकट करना, परस्त्रीके साथ सभाषणादिमें सब प्रकारसे सतर्कता अवलम्बन करना, पूर्ववर्गमें विजयपूर्वक अध्यापन करना, अपनी शुक्लवृत्तिसे अर्थसंग्रह-लीला, श्रितपनमिश्र आदिको साध्य-साधन-तत्त्वका उपदेश, दिग्विजयी-जय-लीलाके द्वारा प्राकृत विद्या और प्रतिभाका व्यर्थत्व और अमानी होकर मान देनेकी शिक्षाका दान, श्रीलक्ष्मीदेवीकी वैकुण्ठ-विजयवार्ता सुनकर शरणागत गृहस्थकी निज-कर्मानुरूप फल-स्वीकृति तथा भगवदनुकम्पा समझकर काय-मन-वचनसे भगवत्सेवामें नियोगकी शिक्षा देनेकी लीला, दूसरी बारकी विवाह-लीलामें बुद्धिमन्त खा और श्रीसनातन मिश्रके वैष्णवगृहस्थोचित

परिच्छेद] श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म ४११

आचारके आदर्शका प्रकट करना , 'गयाधाम' गमनके समय विप्रपादोदक-पानलीला तथा श्रीविष्णुपादपद्ममें पितृश्राद्धलीला , और श्रीईश्वर-पुरीपादके अर्थात् महत्के पादाश्रयलीलामे विष्णुतोषणके उद्देश्यमें कर्मर्पणकारी वैष्णव-गृहस्थका आदर्श, तथा महत्की कृपासे आरोपसिद्धा भक्तिसे लेकर स्वरूपसिद्धा भक्तिके उदयरूप भागवत-शिक्षाश्रोको प्रकटकर श्रीगौरहरिने नरलीलाका समन्वय किया है ।

दिग्विजयीके प्रति श्रीमन्महाप्रभुका उपदेश है—

‘सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय ।

‘कृष्णपादपद्मे यदि चित्त-वित्त रय’ ॥’

—चै० भा० आ० १३।१७८

[निश्चयपूर्वक विद्या सुफल तभी समझो जब कि श्रीकृष्णके पादपद्ममें चित्त-वित्त लग जाय ।] छात्रोके प्रति उनकी शिक्षा है —

“यावत् आछये प्राण, देहे आछे शक्ति ।

तावत् करह कृष्णपादपद्मे भक्ति ॥

कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण प्राण-धन ।

चरणे धरिया बलि,—‘कृष्णे देह मन’ ॥”

—चै० भा० म० १।३४२, ३४३

[जबतक देहमें प्राण और शक्ति है, तबतक कृष्णपादपद्ममें भक्ति करो । कृष्ण ही माता है, कृष्ण ही पिता है, कृष्ण ही प्राणधन है । मैं तुम्हारे पैर पकड़कर कहता हूँ, तुम कृष्णमे अपना मन लगाओ ।]

“ये पडिला, सेइ भाल, आर कार्य नाइ ।

सबे मेलि ‘कृष्ण’ बलिवाड एक ठाँइ ॥”

—चै० भा० म० १।३६३

[जो पढ लिया सो पढ लिया, अब अधिक पढनेका प्रयोजन नही है । सब एक साथ एक जगह ‘कृष्ण कृष्ण’ बोलें ।]

व्याकरणके प्रत्यक वर्ण, धातु, सूत्र सभी श्रीकृष्णनाम-परक है— यह चरमशिक्षा श्रीगौरहरिने अपनी अध्यापकवर्य-लीलाके उपसहारके समय जगत्के जीवोको प्रदान की है। यही सर्व-अध्यापकोके शिरोमणि जगद्गुरुकी छात्रोपम समस्त जीवजगत्के प्रति उनकी शिक्षाका सार है। श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने जगद्गुरुकी इसी शिक्षाका अवलम्बन करके ही श्रीहरिनामपरक श्रीहरिनामामृत-व्याकरणकी रचना की है।

श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदासके प्रति श्रीमहाप्रभुका श्रीनवद्वीपमें घर-घर जाकर “बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्णशिक्षा” (चै० भा० म० १३।६), अर्थात्—“कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो, कृष्णकी शिक्षा लो” की भीख मागने तथा प्रतिदिन सायकाल उसके फलाफलका अर्थात् वहिर्मुख जीवोकी कृष्णाभिमुखी-गतिका हिसाब-किताब करनेका आदेश सर्वशिक्षाके गुरु श्रीगौरसुन्दरकी अत्यन्त उदार एवं महादानपूर्ण जीवशिक्षाका एक अभूतपूर्व आदर्श है। इसी कृपाके महाप्लावनके महान् आवर्तमे पडकर महापापी जगाइ-मधाइ भी ‘महाभागवत’ हो गये। श्रीगौरहरिने क्षमा और कृपाके द्वारा अपने निन्दकोसे बदला लेनेकी आदर्श-शिक्षा दी है। मायावादी सन्यासी, अमोघ, अभिशाप-प्रदानकारी ब्राह्मणादिके प्रति उनके व्यवहारमें यह शिक्षा प्रकटित हुई है। उन्होंने वहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता और सहिष्णुता अपनानेकी शिक्षा दी है। परन्तु जब श्रीहरितोषणकारीके प्रति द्रोह उपस्थित हुआ है, तब ‘चक्र, चक्र’ पुकार कर ‘श्रीसुदर्शन’-चक्रकी आह्वान-लीला, काजीदमन-लीला, भागवती देवानन्द दड-लीला, श्रीशचीमाताके अपराधकी (?) मुक्ति-लीला, ‘कहाँ रे रावणा’ कहकर क्रोध प्रकट-लीला (चै० च० म० १५।३४), ‘खड-जाठिया बेटा’ श्रीमुकुन्द दत्तके चिद्-जड-समन्वयवादमें असहिष्णुता-प्रकाश (चै० भा० म० १०।१८५) आदि कृष्णको तुष्टि प्रदान करनेवाली शुद्धभक्तिकी शिक्षाके प्रचारमें कभी वे पीछे नहीं हटे। श्रीगौरहरिने श्रीपुंडरीक विद्यानिधि, श्रीरायरामानन्द और श्रीखंडके राजवैद्य श्रीमुकुन्द दासके आदर्शके (चै० च० म० १५।११६-१२७) द्वारा

यह शिक्षा दी है कि विषयीवत् रहते हुए अन्तर्निष्ठा और बाहर लोक-व्यवहारके साथ हरिभजन ही बहिर्मुख जगत्में भजनचातुर्य है। सपरिकर श्रीश्रीवासपण्डितके द्वारा उन्होंने वैष्णव-गृहस्थकी आदर्श-शिक्षा प्रकट की है। फिर हरिभजनकी प्रतिकूलता मिटानेके लिये साधकोके सामने नित्यसिद्ध निजजन श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरघुनाथकी साधनलीलाकी शिक्षाका उद्घाटन किया है। उन्होंने अपनी दीनतामयी सन्यासलीलासे उन्मुख व्यक्तिके सामने श्रीकृष्णानुसन्धानकी शिक्षाका प्रचार किया है, तथा बहिर्मुख लोगोके सामने ऐश्वर्य दिखलाकर उनको मगल-मार्गकी ओर आकृष्ट किया है। सन्यासलीलाके पूर्व सबके लिये उनकी यही शिक्षा थी कि—

“यदि आमा’ प्रति स्नेह थाके सबाकार ।

तबे कृष्ण व्यतिरिक्त ना गाइबे आर ॥”

—चै० भा० म० २८।२७

[यदि मेरे प्रति सबका स्नेह हो तो कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी न गाना ।]

श्रीगौरहरि ही बगदेशमें पारमार्थिक रगमचके तथा नगर-सकीर्तन और हरि-सकीर्तनके आदि प्रवर्तक हैं। उनके श्रीचरणारविन्द-मकरन्दके लोलुप सेवकगण पारमार्थिक मौलिक गौडीय-साहित्य और वैष्णव-पदावली-कीर्तनके आदि सुत्रधार हैं। व्याकरण (‘श्रीहरिनामामृत’), काव्य, नाटक, अलंकार, छन्द, दर्शन, स्मृति, इतिहास, परमार्थनीति, पारमार्थिक विज्ञान (‘श्रीहरिभक्तिविलास’ देखिये)—सभी विषयों में वे आदर्श मौलिक शिक्षक हैं। श्रीगौरहरिने तौर्यंत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत और वाद्यको व्यसनात्मक जडविलाससे सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्णके तोषणात्मक चिद्द्विलासमें परिणत करनेकी आदर्श-शिक्षाका प्रचार किया है। दूसरी ओर बगदेशी विप्र कविके दृष्टान्तके द्वारा (चै० च० अ० ५।९१-१५८) सिद्धान्त-विरुद्ध, रसाभास-दोषयुक्त और जड

प्रतिष्ठावर्द्धक ग्राम्य कवित्व और श्रीकृष्णके तोषणात्मक अप्राकृत कवित्वकी पृथक्ताकी शिक्षा प्रदान की है ।

श्रीकविराज गोस्वामिपादने श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १३ । २२-२३, २७-३६, ३९) में लिखा है,—

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवाकाले ।
हरिनाम लश्रोयाइला प्रभु नाना-छले ॥
बाल्य-भावछले प्रभु करेन ऋन्दन ।
‘कृष्ण’, ‘हरि’ नाम शुनि’ रहये रोदन ॥
विवाह करिले हैल नवीन यौवन ।
सर्वत्र लश्रोयाइल प्रभु नाम-सकीर्तन ॥
पौगण्ड-वयसे पढ़ेन, पढ़ान शिष्यगणे ।
सर्वत्र करेन कृष्ण-नामेर व्याख्यान ॥
सूत्र-वृत्ति-टीकाय कृष्णनामेर तात्पर्य ।
शिष्येर प्रतीत हय,—सबार आश्चर्य ॥
या’रे देखे ता’रे कहे—कह कृष्णनाम ।
कृष्णनामे भासाइला नवद्वीप ग्राम ॥
किशोर-वयसे आरम्भिला सकीर्तन ।
रात्रिदिने प्रेमे नृत्य, सगे भक्तगण ॥
नगरे नगरे भ्रमे कीर्तन करिया ।
भासाइला त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया ॥
चम्बिश बत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे ।
लश्रोयाइला सर्वलोके कृष्णप्रेम-नामे ॥
चम्बिश बत्सर छिला करिया संन्यास ।
भक्तगण लजा कैला नीलाचले वास ॥
ता’र मध्ये नीलाचले छय बत्सर ।
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर ॥
सेतुबन्ध, आर गौड़व्यापि वृन्दावन ।

प्रेम-नाम प्रचारिया करिला भ्रमण ॥

द्वादश-वत्सर-शेष रहिला नीलाचले ।

प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-छले ॥

[जन्म, बाल्य, पौगंड, किशोर और युवाकालमें महाप्रभुने अनेको बहाने हरिनाम कराया । शिशुभावके बहाने प्रभु रुदन करते हैं और 'कृष्ण हरि' नाम सुनकर रोना बन्द कर देते हैं । विवाह करनेपर नवीन यौवन हुआ तब प्रभुने सर्वत्र नाम-सकीर्तन कराया । पौगण्डावस्था में पढते हैं और शिष्योको पढाते हैं और सर्वत्र कृष्णनामकी व्याख्या करते हैं । सूत्र-वृत्ति-टीकामें सर्वत्र कृष्ण-नामके तात्पर्यको प्रकट करते हैं । सब शिष्योको आश्चर्य प्रतीत होता है । जिसको देखते हैं, उसीको 'कृष्णनाम' लेनेके लिये कहते हैं । कृष्णनामसे नवद्वीप ग्रामको बहा दिया । किशोरावस्थामें सकीर्तनका प्रारंभ किया और रात-दिन भक्तगणके साथ प्रेममें नृत्य किया । नगर-नगर सकीर्तन करते हुए घूमते रहे । प्रेमभक्तिसे त्रिभुवनको प्रवाहित कर दिया । इस प्रकार चौबीस वर्ष तक नवद्वीप ग्राममें सबको कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण-नाम ग्रहण कराया । और चौबीस वर्ष सन्यास लेकर भक्तोके साथ नीलाचलमें वास किया । उसमें छ वर्षतक नीलाचलमें नृत्य, गीत प्रेमभक्तिका निरंतर दान करते रहे । सेतुबन्ध और गौडदेश तथा वृन्दावन तक प्रेम-नामका प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहे । अंतिम बारह वर्ष नीलाचलमें रहकर आस्वादनके बहाने प्रेमावस्थाकी शिक्षा दी ।]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने, श्रीकृष्ण-तोषणमें लगे हुए बड़े परिवार और परिजनके पोषण करनेवाले* श्रीश्रीवास पंडितके निरन्तर सपरिकर श्रीकृष्णतोषणके आदर्शके द्वारा यह शिक्षा दी कि, श्रीकृष्ण-संसारके गृहस्थको किसी वस्तुका अभाव नहीं रह सकता ।

श्रीचैतन्य-भागवतमें श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है,—

“प्रभु बले,—

‘कि बलिलि पडित श्रीवास !
 तोर कि अन्नर हइबे उपास !
 यदि कदाचित् वा लक्ष्मीओ भिक्षा करे’ ।
 तथापिह दारिद्र्य नहिब तोर घरे ॥
 आपने ये गीता-शास्त्रे बलियाछों मुजि ।
 ताहो कि श्रीवास, एवे पासरिलि तुजि ॥
 ये-ये जन चिन्ते मोरे अनन्य हइया ।
 ता’रे भिक्षा देइ मुजि माथाय बहिया ॥
 येइ मोरे चिन्ते, नाहि याय कारो द्वारे ।
 आपने आसिया सर्वसिद्धि मिले ता’रे ॥
 धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—आपने आइसे ।
 तथापिह ना चाय, ना लय मोर दासे ॥
 मोर सुदर्शन-चक्रे राखे मोर दास ।
 महाप्रलयओ या’र नाहिक बिनाश ॥
 ये मोहार दासेरेओ करये स्मरण ।
 ताहारेओ करो मुजि पोषण पालन ॥
 सेवकेर दास से मोहार प्रिय बड़ ।
 अनायासे सेइ से मोहारे पाय दड़ ॥
 कोन् चिन्ता मोर सेवकेर भक्ष्य करि’ ।
 मुजि या’र पोष्टा आछों सबार उपरि ॥”

—चै० भा० अ० ५।५३-६३

अर्थात् प्रभु कहते हैं—‘हे पडित श्रीवास ! तुम क्या बोलते हो ? तुमको क्या कभी अन्नका उपवास हो सकता है ? लक्ष्मी भीख माँग सकती है, पर तुम्हारे घरमें दारिद्र्य नहीं आ सकता । मैंने जो गीताशास्त्रमें कहा है, क्या तुम श्रीवास ! उसको भूल गये ? जो-जो

जन अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करते हैं, उनके लिये मैं सिरपर वहन करके भिक्षा पहुँचाता हूँ। जो मेरा चिन्तन करते हैं, किसीके द्वारपर नहीं जाते हैं, सारी सिद्धियाँ अपने-आप आकर उनको मिल जाती हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अपने-आप आते हैं। तथापि मेरा सेवक न उनको चाहता है, न लेता है। मेरा सुदर्शन चक्र मेरे सेवककी रक्षा करता है, महाप्रलयमें भी उसका विनाश नहीं होता। जो मेरे दासका भी स्मरण करता है, मैं उसका भी पालन-पोषण करता हूँ। मेरे सेवकका दास मुझे बड़ा प्रिय है, वह अनायास ही मुझे निश्चय प्राप्त करता है। मेरे सेवकको आहारकी कौन-सी चिन्ता है, जबकि सर्वोपरि मैं उसका पोषण करनेवाला हूँ।”

श्रीकृष्णचैतन्यका चरित और शिक्षा ‘श्रीमद्भागवत’ एवं ‘भागवतधर्म’ का मूर्तिमान् रूप है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने समस्त शास्त्रोक्त, समस्त कर्तव्य, समस्त क्रियामें, सभी कारणमें, सारे स्थान-काल-पात्रमें, सारे भुवनमें, समस्त कार्य और कारणमें, सारे साधन और फलमें भक्तिके अधिष्ठान और शिक्षाका प्रचार किया है। भक्ति सार्वत्रिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक और सार्वभौम धर्म है—यह शिक्षा श्रीचैतन्यदेवके चरित्रमें देदीप्यमान है। मातृगर्भमें अवस्थानके समय श्रीशिवानन्द सेनके पुत्र ‘श्रीपुरीदास’को श्रीगौरहरिकी कृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० १२।४५-५०) तथा बाल्यमें उस सप्तवर्षीय शिशुमें अद्भुत श्रीकृष्णतोषणात्मिका भक्ति और कवित्वका विकास (चै० च० अ० १६।७३-७५), श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीअच्युतानन्द, श्रीरघुनन्दन आदि की बाल्यकालमें श्रीगौरसेवा, श्रीश्रीवासकी भतीजी चार वर्षकी बालिका श्रीनारायणीका श्रीगौरकृपासे कृष्णनामसे क्रन्दन और प्रेम-विकार (चै० भा० म० २। ३२४), यौवनमें श्रीरघुनाथ दास आदिका इन्द्रके समान ऐश्वर्य, अप्सराके समान भार्या और सुखमय गृहका त्याग करके श्रीगौरसेवामें आत्माहुति प्रदान करना, प्रौढ़वस्था में श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरामराय और श्रीसुबुद्धिरायकी विषय-वैभव-त्यागलीला तथा श्रीगौरहरिका भृत्यत्व प्राप्त

करना , बाढ्दक्यमें श्रीभवानन्द राय, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य, श्रीकाशीमिश्र आदिका श्रीगौरकृपा प्राप्त करना , **निर्याणकालमें** श्रीहरिदास ठाकुरका 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नाम लेकर प्राण-उत्क्रमण, और **मुमूर्षु अवस्थामें** विसूचिका-रोगग्रस्त 'अमोघ'की श्रीकृष्णचैतन्यका उपदेश शिक्षा और कृपा प्राप्तकर देह-रोग और भव-रोगसे निष्कृति , **गलित कुण्ठी** वासुदेवकी श्रीगौरकृपा और शिक्षासे कुष्ठरोग नाश होकर रूप-पुष्ट तथा भक्तितुष्ट हो आचार्यत्वकी प्राप्ति (चै० च० म० ७। १४८) , **मृत्युके बाद** श्रीश्रीवासके मृत-शिशु-पुत्रकी श्रीगौरोपदेश-श्रवणके फल-स्वरूप दिव्यज्ञानकी प्राप्ति और सपरिवार श्रीश्रीवासका शोकशमन , **कारागृहमें** श्रीसनातन और श्रीहरिदासकी श्रीनाम-भजन-लीला , श्रीभवानन्द-पुत्रका प्राणघाती **राजदडभोगके समय** सख्यायुक्त श्रीनामग्रहण और श्रीगौरकृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० ६।५६) , पय पानकारी **सदाचारी ब्रह्मचारीका** तथा दूसरी ओर जगाइ-मधाइके समान अति **दुराचारी महापातकीका**, 'ललितपुर'के दारिसन्यासीका और दुराचारी दानीका (चै० भा० अ० २।१८१) , मद्यपी यवन राजाका (चै० च० म० १६।१७८-१९९) शुद्धभक्ति प्राप्त करना , श्रीश्रीधरके समान केलेके खभे, पत्ते, और मूली बेचनेवाले **दरिद्र व्यक्तिका** अथवा श्रीशुक्लाम्बर 'ब्रह्मचारीकी नाई' भिक्षुकका, घाट-केवटका (चै० च० म० १६।२०२) , दूसरी ओर गजपति श्रीप्रतापरुद्रके समान **चक्रवर्ती महाराजका** प्रेमधन प्राप्त करना , श्रीश्रीवास पंडितके घरकी दासी 'दुखी'का सेवानिष्ठाके फलसे 'सुखी' नाम प्राप्त करना , श्रीश्रीवासके घरकी **दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली** पर्यन्तको (चै० भा० म० ८।२१) भक्तिकी प्राप्ति, श्रीशिवानन्द सेनके कुत्तेका श्रीचैतन्यप्रदत्त ब्रह्मादिदुर्लभ भगवत्प्रसाद-सेवन, नाम-श्रवण-कीर्तन और सिद्धदेहसे वैकुण्ठ-प्राप्ति (चै० च० अ० १।३२) , तथा 'कुलीनग्राम'के भक्तोके सम्पर्कमें रहनेवाले कुत्तो आदिकी तथा उस स्थानपर **शूकर-चरानेवाले डोम** तककी श्रीकृष्णगानमें रति (चै० च० अ० १०।८३) , झारखंडके बाघ, भालू,

जगली हाथी आदि हिसक पशुओंका श्रीचैतन्यके श्रीमुखसे हरिनाम श्रवणकर हिंसा भूलकर मृगादि पशुओंके साथ प्रभुका अनुगमन करना (चै० च० म० १७।३७), कृष्णकीर्तन-नृत्य और परस्पर आलिंगन करना (चै० च० म० १७।४२), मयूरादि पक्षियोंका भी कृष्णनाम सुनकर नाचना, वृक्ष-लतादि समस्त स्थावर जगमकी प्रेम-स्फूर्ति; श्रीश्रीवासका वस्त्र सीनेवाले यवन दर्जीको वैष्णवता-प्राप्ति और कृष्णप्रेम-विकार (चै० च० आ० १७।२३२), हुसेनशाहके समान प्रबल-प्रतापी विधर्मी बादशाहका, चाँदकाजीके समान पराक्रमी सूबेदारका, बिजली खाके समान पठान शाहजादेका (चै० च० म० १८।२०७-२१२), रामदासके (श्रीचैतन्यका दिया हुआ नाम) समान पठान पीरका, सशिष्य बौद्धाचार्यका (चै० च० म० १।४७-६२) और समस्त मत-वादीयोकी श्रीचैतन्यदेवके प्रति भगवत्बुद्धि, यहाँ तक कि, किसी-किसीको भागवत-धर्ममें प्रवेश और महाभागवतत्वकी प्राप्ति हुई थी। श्रीअभिराम ठाकुर और श्रीकाशीश्वरके समान बलवान्, राजपूत श्रीकृष्णदासके समान असीम साहसी योद्धाने कृष्णकी तुष्टिके लिये बल और वीर्य लगाकर श्रुति-प्रतिपाद्य (मुण्डक ३।२।४) प्रकृत बलका परिचय दिया था। फिर श्रीगौरगोपालके अलंकार चुरानेवाले चोर (चै० भा० आ० ४।१३२), श्रीनित्यानन्दके अलंकार लूटनेवाले डकैतोंका सरदार और डकैतोंका दल भी प्रेमधनका अधिकारी बना (चै० भा० अ० ५।५२६) था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समान श्रेष्ठ वेदान्ती और स्मार्त-पंडित, श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके समान केवलाद्वैती सन्यासी गुरु, श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्यके समान संगीताचार्य, श्रीवल्लभ भट्टके समान कनकाभिषिक्त दिग्विजयी आचार्य, केशव-काश्मीरी या केशव भट्टके समान दिग्विजयी पंडित, श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीरायरामानन्द-श्रीसुबुद्धिरायके समान राजमन्त्रीगण तथा श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद, श्रीरामराय, श्रीमुरारिगुप्त, श्रीस्वरूप-दामोदर, श्रीश्रीसनातन-रूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीसत्यराज खा, श्रीनरहरि सरकार-

ठाकुर, श्रीमाधव, श्रीवासुदेव, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरघुनाथ भागवताचार्य, श्रीकविकर्णपूर आदि सैकड़ों कविकुल-शिरोमणियोंने अमर-मुखर भाषामे श्रीचैतन्यदेवकी कृपा और शिक्षा-वैशिष्ट्यका प्रचार किया है। श्रीसर्व-भौम भट्टाचार्य, श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्य, श्रीपुंडरीक विद्यानिधि, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीगदाधर पंडित प्रभृतिके समान श्रेष्ठ कुलोन ब्राह्मणगण श्रीमहाप्रभुकी शिक्षासे अनुप्राणित होकर 'तृणादपि सुनीच' धर्मके मूर्तिमन्त प्रतीक बन गये थे, दूसरी ओर भूँइमालो-कुलमें (नीच कुलमे) उत्पन्न श्रीझड़ू ठाकुर, यवन-कुलमे उत्पन्न श्रीहरिदास ठाकुर, करण-कुलमे आविर्भूत श्रीरामानन्द राय, वणिक्-कुलमे उत्पन्न श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर, 'बगबाटी श्रीचैतन्यदास' (चै० च० आ० १२।८५) श्रीगौर-निताइकी कृपा प्राप्त करके नित्यसिद्ध पार्षदोमे गिने गये थे। श्रीनवद्वीपके जुलाहे, ग्वाले, शखवणिक, गन्धी, माली, तम्बोली, ज्योतिषी, (चै० भा० आ० १२।१०८-१७७), मोदक, भिक्षु, कगाल, चोर, डाकू, अतिथि (चै० भा० आ० ४।५) आदि सभी श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त कर धन्य हो गये थे।

यवनकुलमें अवतीर्ण श्रीहरिदास ठाकुर और म्लेच्छ राजदरबारके भूतपूर्व मन्त्री श्रीश्रीरूप-सनातन दोनों प्रभुओं के द्वारा श्रीगौरसुन्दरने नाम-महिमाका विस्तार, श्रीमथुराप्रदेशमें भक्ति-सदाचारका प्रवर्तन, लुप्त तीर्थोंका उद्धार, भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना, तथा शूद्र विषयी गृहस्थकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीराम रायके यहाँ स्वयं श्रीकृष्णलीला-प्रेमरस-तत्त्वका श्रवण करने और श्रीप्रद्युम्न मिश्र आदि ब्राह्मण-कुलजात वैष्णवको श्रवण करानेकी लीला प्रदर्शन करायी है। श्रीगौरहरि श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके द्वारा जीवदुःख-कातरता और उदारता, श्रीराघव पंडितके द्वारा भगवत्सेवामे निष्ठा और प्रीति, श्रीहरिदास ठाकुरके द्वारा सहिष्णुता और श्रीनाम-भजनमे अनन्य-निष्ठा ; श्रीश्रीरूप-सनातनादिके द्वारा दैन्य और अकिञ्चनता, श्रीश्रीवास पंडित, श्रीश्रीधर-आदिके द्वारा वहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता, श्रीप्रतापसूद्र, श्रीशिवानन्द सेन,

श्रीबुद्धिमन्त खा, श्रीकानाइ खूंटिया, श्रीजगन्नाथ माहाति आदिके द्वारा । विष्णु-वैष्णवसेवामे धन लगानेकी आदर्श-शिक्षा, छोटे हरिदासकी दडलीलाके द्वारा मुमुक्षु साधक-वैरागीकी (चै० च० अ० ७।११७-११८ ; चै० च० ना० ८।२३) आचार-शिक्षा ; श्रीदामोदर पंडित आदिके द्वारा निरपेक्षता, श्रीरामानन्द राय, श्रीपुडरीक विद्यानिधि, श्रीनित्या-नन्द प्रभु, श्रीरघुनाथ पुरी आदिके द्वारा परमहंस गुरु-वैष्णवके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आचारकी शिक्षा दी है। उन्होंने श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीरामदास विश्वास आदि मुमुक्षुकी लीला करनेवाले व्यक्तियोंके द्वारा मुमुक्षुके लिये भी शुद्धभागवत-धर्मके आश्रयकी प्रयोजनीयता, तथा नित्यमुक्त भगवत्पार्षद श्रीपरमानन्द पुरी-आदि गुरुजनोके द्वारा भी भागवत-धर्मका सौन्दर्य प्रकट किया है। श्रीसुबुद्धि रायके चरितके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने कर्मजड-स्मार्त-मतवादके खडित-प्राकृत विचार और शुद्ध-भक्ति-सिद्धान्त की चमत्कारिता तथा सार्वभौमत्वको प्रमाणित किया है। श्रीवलभद्र भट्टाचार्य, कृष्णदास विप्र-आदिके द्वारा भी श्रीगौरहरिने व्यतिरेक भावसे जीवकी स्वतन्त्रताके कुफलकी शिक्षा दी है। रामचन्द्र पुरी, रामचन्द्र खा, अमोघ आदिके द्वारा श्रीहरिगुरु-वैष्णवमे मर्त्यबुद्धिके परिणामकी शिक्षा दी है। महाप्रभुकी छोटे हरिदासकी माधवी माताके यहाँ निजसेवार्थ चावल-भिक्षाके लिये दडदान-लीला ; दूसरी ओर श्रीमहाप्रभुको सुन्दरी युवती विधवाके पुत्रके प्रति आदर करते देखकर दामोदर पंडितके श्रीमहाप्रभुको सतर्क करनेपर श्रीमहाप्रभुका दामोदर पंडितको समझाना एव नवद्वीप स्थानान्तरित करना, श्रीरामानन्द रायके प्रति श्रीप्रद्युम्न मिश्रकी, तथा श्रीपुडरीक विद्यानिधिके प्रति श्रीगदाधर पंडितकी सन्देह-लीलाके द्वारा साधक और सिद्धकी अणुचैतन्य और विभुचैतन्यकी शिक्षाके आदर्श-वैशिष्ट्यको प्रकट किया है।

श्रीअ द्वैताचार्यकी गृहिणी श्रीसीतादेवी, श्रीनित्यानन्दकी जननी श्रीपद्मावती, श्रीशचीमाता, श्रीराधादेवीकी पत्नी श्रीमालिनी, श्रीराघव की बहिन श्रीदमयन्ती, श्रीस [REDACTED] की गृहिणी, आचार्यरत्न श्रीचन्द्र-

शेखरकी पत्नी, आचार्या श्रीजाह्नवा-वसुधा माता, श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीविष्णुप्रिया माता, श्रीशिवानन्द सेनकी पत्नी, श्रीनन्दिनी-जगली, श्रीशिखि माहातीकी बहिन विदुषी श्रीमाधवी माता-आदि अनेक वैष्णवी शक्तियोने, दूसरी ओर श्रीपरमेश्वर मोदककी पत्नी 'मुकुन्दाकी माता' (चै० च० अ० १२।५६), 'आदिवस्या' उडिया स्त्री (चै० च० अ० १४।२६) श्रीवासकी दासी 'दु खी' या 'सुखी', यहातक कि रामचन्द्र खा की प्रेरिता वेश्या (जो बादमे ठाकुर हरिदासकी कृपा प्राप्त की हुई परम वैष्णवी महन्ती बनी), देवदासी-आदि शक्तियोने श्रीगौर तथा श्रीगौरजनकी कृपाकी आदर्श-शिक्षाकी विशिष्टता और विचित्रताका प्रचार किया है। श्रीश्रीवासकी सास (चै० भा० म० १६।१७) के दृष्टान्तमे श्रीगौरहरिकी निरपेक्षता तथा श्रीकृष्ण-सतुष्टिकी सापेक्षताकी आदर्श-शिक्षा प्रचारित हुई है।

ये दैत्य-यवने मोरे कभु नाहि माने ।
 ए-युगे ताहारा कान्दिबेक मोर नामे ॥
 यतेक अस्पृष्ट दुष्ट यवन चण्डाल ।
 स्त्री-शूद्र-आदि यत अधम राखाल ॥
 हेन भक्ति-योग दिमु ए-युगे सबारे ।
 सुर मुनि सिद्ध ये निमित्त काम्य करे ॥

—चै० भा० अ० ४।१२१-१२३

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।
 येइ यॉहा पाय, तॉहा करे' प्रेम दान ॥
 लुटिया, खाइया, दिया, भांडार उजाडे ।
 आश्चर्य भांडार प्रेम शतगुण बाडे ॥
 उछलिल प्रेमवन्या चौदिके बेड़ाय ।
 स्त्री-वृद्ध-बालक-युवा सकलइ डुबाय ॥

परिच्छेद] श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौमधर्मे ४२३

सज्जन-दुर्जन, पगु जड़ अन्धगण ।

प्रेमबन्याय डुबाइल जगतेर जन ॥

—चै० च० आ० ७।२३-२६

या'रे देख, ता'रे कह 'कृष्ण'-उपदेश ।

आमार आज्ञाय गुरु हज्जा तार' एइ देश ॥

—चै० च० म० ७।१२८

[जो दैत्य तथा यवन मुझे कभी नहीं मानते (दैत्यो और यवनोने भगवान्को किसी युगमे नहीं माना पर) इस युगमे (भगवान् श्रीचैतन्यदेव कहते हैं, वे मुझे मानेगे) मेरा नाम लेकर वे रुदन करेगे। जितने अधम, अस्पृश्य, दुष्ट, यवन, चाण्डाल, अहीर, स्त्री, शूद्र आदि हैं उन सबको इस युगमे मैं ऐसा भक्ति-योग दूंगा, जिस भक्ति-योगकी कामना देवता, मुनि तथा सिद्धजन करते हैं।" (चै० भा० अ० ४।१२१-१२३)। "प्रेम-धन वितरण करते समय पात्रापात्रका विचार नहीं किया और न स्थानास्थानका ही। जिसे जहाँ देखा श्रीमहाप्रभुने पचतत्व (भक्तरूपमे श्रीगौरांग महाप्रभु, भक्तस्वरूपमे श्रीनित्यानन्द, भक्तावतार रूपमे श्रीअद्वैताचार्य, भक्त-शक्ति रूपमे श्रीगदाधर पंडित तथा भक्तरूपमे श्रीश्रीवास आदि) के रूपमे वही उसे प्रेम-दान किया। प्रेम का भंडार ऐसा परिपूर्ण और आश्चर्यजनक है कि जितना भी लूटा, खाया, दिया और लुटाया जाय उतना ही सौ गुना और भी वह बढ जाता है। प्रेम-बन्या चारो ओर उद्वेलित हो उठी, श्रीमहाप्रभु पचतत्वरूपमे चारो ओर विचरण कर आवाल, वृद्ध, बनिता सभीको प्रेम-बन्यामे आप्लावित करने लगे।" (चै० च० म० ७।२३-२६)। "जिसको देखो उसीको मेरी आज्ञासे गुरु बनकर कृष्णका उपदेश करो और इस देशको तार दो।" (चै० च० म० १।१२८)।]—इत्यादि उक्तियाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु-प्रचारित प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताका अभूतपूर्व एव अश्रुतपूर्व साक्षीके रूपमे हैं।

प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताके अतिरिक्त पंचतत्त्वात्मक रूपमें श्रीगौरहरि द्वारा प्रचारित यह प्रेम-धर्म कितना सार्वत्रिक रहा इसका परिचय निम्नांकित उक्तियोंसे स्पष्ट उपलब्ध किया जा सकता है।

एइ पंचतत्त्वरूपे श्रीकृष्णचैतन्य ।
 कृष्ण-नाम-प्रेम दिया विद्व कैला धन्य ॥
 मथुराते पाठाइला रूप-सनातन ।
 दुइ सेनापति कैला भक्ति प्रचारण ॥
 नित्यानन्द गोसात्रे पाठाइला गौडदेशे ।
 तेंहो भक्ति प्रचारिला अशेष-विशेषे ॥
 आपने दक्षिणदेशे करिला गमन ।
 ग्रामे-ग्रामे कैला कृष्णनाम प्रचारण ॥
 सेतुबन्ध पर्यन्त कैला भक्तिर प्रचार ।
 कृष्णप्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥

—चै० अ० ७।१६३-६७

पृथिवी पर्यन्त यत आछे देश-ग्राम ।
 सर्वत्र सचार हइबेक मोर नाम ॥

—चै० भा० अ० ४।१२६

अर्थात् “इस प्रकार पंचतत्त्व रूपमें प्रकट होकर श्रीकृष्णचैतन्यने कृष्ण-नाम-प्रेम प्रदान कर विश्वको धन्य-धन्य कर दिया। श्रीरूप-सनातनको मथुरा भेजा और उन दोनों सेनापतियोंने भक्तिका वहा प्रचार किया। श्रीनित्यानन्द गोस्वामीको गौड देशमें भेजा, वहाँ उन्होंने भक्तिका विशद-रूपमें प्रचार किया। स्वयं दक्षिणदेशमें जाकर महा-प्रभुने गाँव-गाँवमें कृष्णनामका प्रचार किया। सेतुबन्ध तक भक्तिका प्रचार करके कृष्णप्रेम प्रदानकर सबका उद्धार कर दिया।” स्वयं श्रीमहाप्रभुने अपने मुँहसे चैतन्यभागवतमें कहा है कि, “ससार भरमें जितने देश तथा गाँव हैं, सर्वत्र मेरे नामका प्रसार होगा।”

श्रीचैतन्यदेवने प्रत्येक कार्यमे स्वयं तथा अपने अनुचरोके द्वारा भक्तिके नित्य अधिष्ठानकी शिक्षा दी है। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके दूर-सम्पर्कके चाचा महाभागवत श्रीकालिदासके द्वारा कृष्णनामके सकेतके साथ समस्त व्यावहारिक कार्योंका निर्वाह, यहातक कि कौतुकमे चौपड़ खेलनेमे (चै०च०अ० १६।५-७) श्रीभागवतधर्मके अधिष्ठानका प्रचार किया,—

कि शयने, कि भोजने, किबा जागरणे ।

अर्हानिश्च चिन्त' कृष्ण, बलह वदने ॥”

—चै० भा० म० २८।२८

[क्या सोते, क्या जागते, क्या भोजन करते—दिन रात कृष्णचिन्तन करते हुए मुखसे कृष्ण-नाम लेते रहो।]—यह उक्ति श्रीगौरहरिद्वारा प्रचारित श्रीभागवतधर्मकी सार्वजनिकता सार्वत्रिकताके अतिरिक्त सार्वकालिकताका भी भलीभाँति प्रचार करती है।



एकसौ-सातवाँ परिच्छेद कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्य

कोटि-कोटि महाभागवतोने वहि साक्षात्कार तथा अन्त साक्षात्कारके द्वारा जिनकी भगवत्ताको सुनिश्चित किया है, भगवत्ता ही जिनका निज-स्वरूप है, जिन स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीचरण-कमलका आश्रय लेकर, अन्यत्र-दुर्लभ सहस्त्र-सहस्र प्रेम-पीयूषमयी भागीरथीकी धारा जिनके निजावतार प्रकटनमे प्रचारित हुई है, जो अपने सहस्त्र-सहस्त्र सम्प्र-दायोके अधिदेवता है, उन्ही 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नामक श्रीभगवान्‌को ही श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस कलियुगमे वैष्णवोका 'सदोपास्य' कहकर

निर्णीत किया है, तथा एक पद्यमे उनका स्तव-गान किया है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे कलियुगके उपास्य-प्रसंगमे इस पद्यकी अवतारणा दीख पडती है।

कान्तिमे जो 'अकृष्ण' अर्थात् गौरवर्ण है, सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् लोग सकीर्तनबहुल यज्ञके द्वारा कलियुगमे उन श्रीगौरसुन्दरकी ही उपासना करते हैं। इस उपास्य-विग्रहके गौरत्वके सबधमे श्रीमद्भागवतमे ही प्रमाण मिलता है। † श्रीगर्गाचार्यजी महाशय श्रीनन्दमहाराजसे कहते हैं,—“तुम्हारे पुत्र युग-युगमे अवतीर्ण होते हैं, शुक्ल, रक्त और पीत—इन तीन वर्णोंका शरीर गत तीन युगोमे प्रकटित हुआ है। अब (द्वापरमे) ये कृष्णरूपमे अवतरित हुए हैं।” सत्ययुगमे इनका शुक्ल वर्ण था, त्रेतामे रक्तवर्ण, द्वापरमे कृष्णवर्ण, अतएव परिशेष-प्रमाण-स्वरूप कलियुगमे ये उपास्यदेव पीतवर्ण धारण करते हैं, यह प्रतिपन्न हो गया, क्योंकि 'इदानी' इस पदके द्वारा द्वापरमे श्रीकृष्णावतारकी बात ही कही गयी है। सत्ययुगके अवतारका शुक्लवर्ण, त्रेतायुगके अवतारका रक्तवर्ण होनेकी बात श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे वर्णित है। 'आसन्' क्रियापद अतीत कालका निर्देशक है। यहाँ अतीत कालकी क्रिया द्वारा जो पीतवर्ण सूचित हुआ है, उसमे अतीत कलिकालको ही लक्षित किया गया है। एकादश स्कन्धमे श्यामत्व, महाराजत्व एव वासुदेवादि चतुर्मूर्ति तथा उनके आकार-प्रकार और परिचयका कथन करते समय कहा गया है कि श्रीकृष्ण ही द्वापरमे उपास्य है।

परन्तु 'श्रीविष्णुधर्मोत्तर' नामक शास्त्रमे जो युगावतारोका वर्णन है, उससे जान पडता है कि द्वापर-युगके युगावतारका वर्ण शुक्लपक्ष (तोतेकी पाँखके समान) वर्ण तथा कलियुगावतारका वर्ण नीलघन है।

* “कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण सागोपागास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञै सकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस ॥” —भा० ११।५।३२

† “आसन् वर्णस्त्रियो ह्यस्य गृह्णीतोऽनुयुग तनू ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानी कृष्णता गत ॥” —भा० १०।८।१३

यहाँ इस प्रमाण वाक्यके विषयमे यह समझना चाहिए कि यह उस द्वापरका सकेत करता है, जिसमे भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित नहीं होते और जिस द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं, उसके बाद ही आनेवाले कलियुगमें ही श्रीगौरसुन्दर अवतीर्ण हुआ करते हैं । इससे यही ज्ञात होता है कि श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णाविर्भाव विशेष है । जिस द्वापरमे श्रीकृष्णावतार होता है, उसीके बादके कलियुगमे ही श्रीगौरांग अवतार लेते हैं, इस नियमका व्यतिक्रम नहीं होता । ‘श्रीविष्णुधर्मोत्तर’-ग्रन्थमे प्रतिकूल-सा जान पड़नेवाला एक वाक्य मिलता है,—“सत्य, त्रेता, और द्वापर युगमे जिस प्रकार प्रत्यक्ष-रूपधारी युगावतार प्रकट होते हैं, कलिमे श्रीहरि उस प्रकारका कोई प्रत्यक्ष रूप धारण करके अवतीर्ण नहीं होते । इसीलिये वे ‘त्रियुग’ नामसे अभिहित होते हैं । कलिके अन्तमे श्रीवासुदेव, ब्रह्मावादी कल्किमे अनुप्रविष्ट होकर जगत्की रक्षा करते हैं ।” यह प्रमाण भी अमान्य नहीं है । श्रीकृष्णके अनन्त और असीम ऐश्वर्यके प्रभावसे समय-समय पर उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणका अतिक्रम देखा जाता है । कलिकालमे भी श्रीभगवान् आत्मदेह प्रकट करके अवतीर्ण होते हैं । कलिके प्रारम्भमे भी श्रीकृष्णलीलाकी स्थिति शास्त्रमे देखी जाती है ।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (५।३२) मे कलियुगमे श्रीगौर-सुन्दरके आविर्भावका उल्लेख एक श्लोकके वाक्य-विशेषके द्वारा प्रकट होता है—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञं संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

इस श्लोकमे ‘कृ-ष्ण’ ये दो अक्षर हैं । इसका विशेष तात्पर्य यह है कि जिसके पूर्ण नाममे ‘कृ-ष्ण’ ये दो वर्ण (अक्षर) हैं, उनको ही ‘कृष्ण-वर्ण’ कहा गया है । तात्पर्य यह कि—“श्रीकृष्ण-चैतन्य’ नाममे श्रीकृष्णत्व-अभिव्यजक ‘कृ-ष्ण’—ये दो वर्ण प्रयुक्त हुए हैं ।

‘कृष्णवर्ण’ पदका दूसरा अर्थ भी हो सकता है—जो श्रीकृष्णका वर्णन करते हैं, अर्थात् श्रीकृष्णके परमानन्द-विलास-स्मरण-जनित उल्लासके वश जो स्वयं कृष्णके गुणोंका कीर्तन करते हैं, तथा सब जीवोंके प्रति परमकरुणावश सब लोगोंको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें उपदेश देते हैं, इस प्रकारके जो अवतारी हैं, वे ही ‘कृष्णवर्ण’ हैं।

अथवा स्वयं ‘अकृष्ण’ अर्थात् गौरकान्ति धारणकर जो कृष्णके सम्बन्धमें उपदेश देते हैं तथा जिनके दर्शन करके सभीके हृदयमें श्री-कृष्ण-स्फूर्ति होती है, ऐसे जो विग्रह हैं, उनको ही उपर्युक्त पद्यमें ‘कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण’ कहा गया है। अथवा साधारण दृष्टिमें जो अकृष्ण हैं, अर्थात् गौररूपमें प्रतिभात होते हैं, भक्तविशेषकी दृष्टिमें उनकी ही प्रकाश-विशेषक कान्तिमें जो ‘कृष्णवर्ण’ अर्थात् ‘श्यामसुन्दर’ रूपमें प्रतीत होते हैं, वे ही ‘कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण’ पदमें अभिहित हैं। अतएव उनमें सभी प्रकारसे श्रीकृष्णरूपका प्रकाश होनेके कारण श्री-कृष्णचैतन्य श्रीकृष्णके ही साक्षात् आविर्भाव-विशेष है।

उपर्युक्त भागवतके पद्यमें उनकी भगवत्ता भी स्पष्टरूपसे सूचित हुई है। उसमें एक और पद है ‘सागोपाङ्गास्त्रपार्षदम्’। अनेको महानुभावोंने अनेको बार उनकी भगवत्ताकी सूचना देनेवाले अग-उपाग-अस्त्र-पार्षद आदिसे समन्वित रूपमें उनके दर्शन करके उनके स्वयं भगवान् होनेका ही अनुभव किया है। गौड, वरेन्द्र, बग, सुहृद्* उत्कल आदि देशोंके निवासी महानुभावोंमें उनकी यह भगवत्ता बहुत ही प्रसिद्ध है। परममनोहर होनेके कारण उनके अग तथा महाप्रभावशाली होनेके कारण उनके उपाग, अर्थात् भूषणसमूह ही उनके अस्त्र हैं, और उनके अग-उपाग सर्वदा नित्यरूपमें उनके साथ विद्यमान होनेके कारण वे ही उनके पार्षदरूपमें गिने जाते हैं।

*‘सुहृद्’—गौडके पश्चिम, वीरभूमके पूर्व और दामोदरका उत्तर-वर्ती भूभाग है, महाभारतके टीकाकार ‘नीलकण्ठ’ के मतसे ‘सुहृद्’ ही ‘राजदेश’ है।

श्रीमद्वैताचार्य महानुभव आदि श्रीगौरहरिके अत्यन्त प्रेमास्पद होनेके कारण वे भी अगोपाग-तुल्य है। इसलिये वे ही पार्षद हैं। इनके साथ विद्यमान ऐसे जो श्रीकृष्णचैतन्य हैं, सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान् लोग यज्ञ के द्वारा उनका यजन करते हैं। 'यज्ञ' शब्दका अर्थ है—पूजाका सभार। सकीर्तनप्रधान यज्ञ ही कलियुगमें श्रीभगवत्प्राप्तिका उपाय है। अनेक समान-चित्तवृत्तिवाले व्यक्ति एकत्र मिलकर जो श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यपरक श्रीकृष्णनाम-गुण-लीलाका गान करते हैं, वही सकीर्तन है। श्रीगौरचरणाश्रित लोगोमें सकीर्तन-प्रधान उपासना ही दिखलायी देती है।*

श्रीमद्भागवतमें श्रीप्रह्लादजीने श्रीभगवान्‌के अवतारतत्त्वकी आलोचनाके प्रसंगमें श्रीनृसिंह-भगवान्‌की स्तुति[†] करते हुए कहा है कि,—“आप नर, तिर्यक्, ऋषि, देवता, मत्स्य आदि अवतार समूहके द्वारा तीनो लोकोंका पालन करते हैं तथा जगत्-द्रोही लोगोंका विनाश किया करते हैं। हे महापुरुष ! आप युगक्रमसे आये हुए धर्मकी रक्षा और पालन करते हैं। कलियुगमें प्रच्छन्नरूपसे अवतीर्ण होनेके कारण आप 'त्रियुग' नामसे प्रसिद्ध हैं।”

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका प्रसंग उठाकर नीलाचलमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथ आचार्यसे कहा था कि,—“श्रीचैतन्यदेव—

* श्रीश्रीजीवगोस्वामीके 'सर्वसवादिनी'के चिह्नान्तके अनुसार लिखित।

† इत्थं नृतिर्यगृषिदेवज्ञषावतारैर्नोक्तान् विभावयसि हसि जगत्प्रतीगन् ।
धर्मं महापुरुष ! पासि युगानुवृत्तं छन्नं कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥

—भा० ७।६।३८

[महापुरुष ! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर उनके द्वारा लोकोंका पालन तथा संपूर्ण जगत्‌से द्रोह करनेवाले असुरोंका सहार करते हैं। इतना ही नहीं, उन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा भी करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसलिये आपको 'त्रियुग' कहा जाता है।]

महाभागवत है, पर भगवत्-अवतार नहीं है, क्योंकि कलिकालमें विष्णु का अवतार नहीं होता। इसी कारण उनका एक नाम 'त्रियुग' है। चारों युगोंमें से तीन युगोंमें उनका आविर्भाव होनेके कारण वे 'त्रियुग' हैं। और शेष एक युगमें यानी कलियुगमें उनका अवतार नहीं होता।"

इसका उत्तर देते हुए श्रीगोपीनाथ आचार्यने श्रौतविचार प्रदर्शन करते हुए कहा,—“श्रीमद्भागवत और श्रीमन्महाभारत इन दो प्रधान शास्त्रोंके प्रमाणसे ज्ञात होता है कि कलिमें स्वयं रूपमें अवतारीका (अवतारके मूलपुरुषका) अवतार होता है। कलियुगमें नाम-प्रेम-प्रचारक पीतवर्ण द्विभुज स्वयं भगवान् ही अवतीर्ण होते हैं। कलिमें लीलावतार न होनेके कारण भगवान् का नाम 'त्रियुग' हुआ है। इससे युगावतार या सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अवतारीके अवतारका निषेध नहीं होता।”*

श्रीमहाप्रभुने स्वयं कहा है—

* * “अन्यावतार शास्त्र-द्वारा जानि ।

कलिते अवतार तैछे शास्त्र-द्वारा मानि ॥

सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र—‘प्रमाण’ ।

आत्मा-सब जीवैर हय शास्त्र-द्वारा ज्ञान ॥

अवतार नाहि कहे,—‘आमि अवतार’ ।

मुनि-सब जानि’ करे’ लक्षण विचार ॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः ।

तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसगतैः ॥

—चै० च० म० २०।३५०-३५२ ; २०।३५३ ; भा० १०।१०।३४

[जैसे अन्य अवतारोंको मैं शास्त्रानुसार जानता हूँ, वैसे ही कलिके अवतारको शास्त्रानुसार मानता हूँ। सर्वज्ञ मुनियोंके वाक्य शास्त्र-‘प्रमाण’ है, हम सब जीवोंको शास्त्र-द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है। अवतार अपने मुँहसे नहीं कहते कि ‘मैं अवतार हूँ।’ इसके विषयमें तो मुनिलोग लक्षण देखकर विचार करते हैं।

* चै० च० म० ६।१४।१००

भगवन् । आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं, फिर भी शरीर धारण करके जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं, जो साधारण देहधारियोंके लिये संभव नहीं है, तथा जिनसे बढ़कर तो क्या, जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोमें आपके अवतारों का पता चल जाता है।]

अप्राकृत-शरीरी परमेश्वरका अवतार-तत्त्व जीवके लिये जानना बहुत ही कठिन है । अतुल, अतिशय और अलौकिक वीर्य द्वारा आपके अवतारोंका कुछ परिज्ञान होता है ।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी कृपासे उद्भासित होकर परम विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जब प्रच्छन्नावतारी श्रीगौरहरिको 'स्वयं भगवान्' रूपमें अनुभव कर सके, तब उन्होंने अपने हृदयकी उपलब्धि और साक्षात् दर्शनको निम्नलिखित दो श्लोकोंके द्वारा व्यक्त किया,—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोगः, शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥

[जो कृपासिन्धु और पुराणपुरुष है, जो वैराग्य, विद्या और निज-भक्तियोग अर्थात् उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्यविग्रहके रूपमें अवतीर्ण हैं ; मैं उनके शरणापन्न होता हूँ ।]

कालाग्रष्टं भक्तियोगं निजं यः, प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।

आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढं गाढ लीयतां चित्तमृङ्गः ॥

[कालक्रमसे निजभक्तियोगको विलुप्त देखकर जो 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामक महापुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिये जगत्में आविर्भूत हुए हैं, उनके श्रीपादपद्ममें मेरा चित्त-अमर अतिशय गाढरूपमें आसक्त होवे ।]

'स्वरूप' और 'तटस्थ'—इन दो लक्षणोंके द्वारा वस्तुका विज्ञान प्राप्त होता है ।* आकार और स्वभावगत लक्षण ही 'स्वरूप-लक्षण' है,

* 'स्वरूप-लक्षण' आर 'तटस्थ-लक्षण' ।

एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनिगण ॥

तथा कार्यद्वारा जिस लक्षणका ज्ञान होता है वही 'तटस्थ'-लक्षण है—यही असाधारण लक्षण है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी आकृति सुवर्ण-वर्ण, हेमाग या अकृष्ण अर्थात् गौर है, वे सन्यास-चिह्नसे चिह्नित है तथा उनकी प्रकृतिमे या स्वभावमे वैराग्य-विशिष्टता, महाभाव-परायणता, महा-वदान्यता आदि गुण दिखलायी देते हैं। यह उनका स्वरूप-लक्षण है। प्रेमदान, सकीर्तनप्रचार आदि उनके कार्य हैं। ये ही उनके तटस्थ-लक्षण-रूप असाधारण लक्षण है। श्रीमहाभारतके 'सहस्रनाम'-मे* उनके सुवर्णवर्ण, हेमाग, वराग (सर्वसुन्दर-गठन) और 'चन्दनागदी' (चन्दन-माला-शोभित) [उनकी गृहस्थलीलाकी आकृति] तथा 'सन्यास-कृत्' (सन्यासाश्रमके चिह्नसे चिह्नित) [सन्यासलीलाकी आकृति]

आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण ।

कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण ॥

अवतार काले हय जगतेर गोचर ।

एइ दुइ लक्षणे केह जानेन ईश्वर ॥

सनातन कहे,—“याते ईश्वर-लक्षण ।

पीतवर्ण, कार्य—प्रेमदान-सकीर्तन ॥

कलिकाले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय ।

सुदृढ करिया कह, याउक सशय ॥

—चै०च०म० २०।३५४-३५५, ३६१-३६३

['स्वरूप' लक्षण और 'तटस्थ' लक्षण है। इन दो लक्षणोसे मुनि-गण वस्तुको जानते हैं। आकृति, प्रकृति, स्वरूप—ये स्वरूप-लक्षण हैं और कार्य के द्वारा ज्ञान—यह तटस्थ लक्षण है। अवतार कालमे ये दो लक्षण जगत्गोचर होते हैं, इनसे कोई ईश्वर जानते हैं। सनातन कहते हैं—जिनमे ईश्वर-लक्षण है, पीत वर्ण है, प्रेमदान-सकीर्तन कार्य है, कलिकालमे वह निश्चय 'कृष्णावतार' है। यह सुदृढ भावसे कहो, जिससे सदेह चला जाय ।]

*“सन्यासकृच्छ्रम. शान्तो निष्ठाशान्तिपरायण.”

—महाभारत दानधर्म १४६ अ०, श्रीविष्णुसहस्रनाम ७५
“सुवर्णवर्णो हेमागो वराङ्गश्चन्दनागदी” (श्री वि० स० ६२)

इत्यादि आकारकी बात कही गयी है। तथा शम, शान्त, निष्ठाशांति-परायण आदि पद उनकी प्रकृतिका निर्देश करते हैं, यह आकृति-प्रकृति-गत लक्षण ही उनका स्वरूप-लक्षण है।

और तटस्थ लक्षण या कार्यद्वारा लक्षण, जो एकमात्र श्रीगौरा-वतारमे ही असाधारण या अपूर्व है, वह अनपितचरी (पूर्वमे किसीको नहीं दी गयी, ऐसी) उन्नत-उज्ज्वल-रसमयी स्वभक्तिश्री आपामरमे वितरणरूपी कार्यके द्वारा भली-भाँति प्रकाशित हो रहा है।* अतएव स्वरूप और तटस्थ-लक्षण, इन दोनोंके लक्षणोके द्वारा तथा शास्त्र-प्रमाण और सहस्र विद्वानोके अनुभवके द्वारा श्रीकृष्णचैतन्यदेव 'कलियुगपावनावतारी' के रूपमे जाने जाते हैं।

बगदेशके लिये सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य और गौरवका विषय यह है कि, यहाँ प्रेमाभर-कल्पतरु स्वयं भगवान्ने बगालीके वेशमे अवतीर्ण होकर, बगभाषामे अप्राकृत प्रेमकी वाणीका आपामर समस्त जनतामे प्रचार किया है। परन्तु, बगदेशमे सर्वप्रथम आविर्भूत स्वयं भगवान्के अवतारका अवैध अनुकरण कर श्रीचैतन्यके तिरोधानके उपरांत ही अनेको कल्पित अवतारोकी सृष्टि हो रही है। बगदेशमे इन नकली अवतारो की सख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। बगदेशके आदिकवि, श्रीनित्यानन्दके शिष्य श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने पूर्वबग और राढ-बगके नकली अवतारोके प्रादुर्भावकी चर्चा करके बहुत ही दुःख प्रकट किया था।†

*युगधर्मप्रवर्तन ह्यं अश हैते । आमा बिना अन्ये नारे ब्रजप्रेम दिते ।
—चै० च० आ० ३।२६

[युगधर्मका प्रवर्तन भगवदशसे होता है और मेरे बिना दूसरा कोई ब्रजप्रेम नहीं दे सकता ।]

† सेइ भाग्ये अद्यापिह सर्व बगदेशे । श्रीचैतन्य-सकीर्तन करे स्त्री-पुरुषे ॥
मध्ये मध्ये मात्र कत पापिगण गया । लोक नष्ट करे आपनारे लओयाइया ॥

श्रीमन्महाप्रभुके सन्यास-ग्रहणके पूर्व कथित, “शीघ्र ही मेरे और भी दो अवतार होंगे”—इस उक्तिका सुयोग पाकर बगदेशमे अनेको नकली अवतारोकी रेलपेल देखनेमे आती है। वस्तुतः—“कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार” (चै० च० आ० १७।२२)—कलियुगमे नाम-रूपसे ही कृष्णका अवतार है। ‘नाम’, ‘विग्रह’, ‘स्वरूप’—तीन एक रूप। तिन ‘भेद’ नाहि,—तिन, ‘चिदानन्द-रूप’ ॥” (चै० च० म० १७।१३१)—नाम, विग्रह और स्वरूप—तीनोका एक ही रूप है, इनमे भेद नहीं है। तीनों चिदानन्द-स्वरूप है।

श्रीगौरसुन्दरके सन्यास-ग्रहणके ठीक बाद ही श्रीविष्णुप्रिया-माता और भक्तोने श्रीचैतन्यके विग्रहको प्रकट किया और उनके ‘गौरहरि’ नामकी आराधना आरम्भ कर दी थी। इसीसे अविलम्ब दो अवतारोके आविर्भावके सम्बन्धकी भविष्यवाणी सार्थक हो गई। वे ही (श्री-श्रीचैतन्यदेव ही) गौर-अर्चा और गौर-नामके रूपमे अवतीर्ण हुए हैं। सकीर्तनके द्वारा ही अर्चा-मूर्तिका अवतार होता है तथा श्रीनाम भी

उदर भरण लागि पापिष्ठसकले । ‘रघुनाथ’ करि आपनारे केह बले ॥
कोन पापिगण छाडि कृष्ण-सकीर्तन । आपनारे गाओयाय बलिया नारायण ॥
देखितेछि दिने तिन अवस्था याहार । कोन लाजे आपनारे गाओयाय से छार ॥
राढे आर एक महा-ब्रह्मदैत्य आछे । अन्तरे राक्षस, विप्रकाच मात्र काचे ॥
से पापिष्ठ आपनारे बोलाय ‘गोपाल’ । अतएव ता’रे सबे बलेन ‘शियाल’ ॥
—चै० भा० आ० १४।८१-८७

[उसी भागसे आज भी सारे बगदेशमे स्त्री-पुरुष श्रीचैतन्य-सकीर्तन करते हैं। बीच-बीचमे कुछ पापिष्ठ अपनेको प्रचार करके समाजको नष्ट कर रहे हैं, पेट भरनेके उद्देश्यसे पापिष्ठोमे कोई-कोई अपनेको ‘रघुनाथ’ कह रहे हैं। कुछ पापी लोग कृष्ण सकीर्तन छोडकर अपनेको ‘नारायण’ नामसे कहलवाते हैं। जिसकी दिनमे तीन अवस्था देखनेमे आती है, वह नीच किस लाजसे अपना गान करवाता है। राढदेशमे एक और महाब्रह्मदैत्य है जो भीतरसे राक्षस है, बाहरसे ब्राह्मणका साज सजता है। वह पापी अपनेको ‘गोपाल’ कहलाता है। अतएव उसे सब ‘रगासियार’ (गीदड) कहते हैं।]

सकीर्तनमें ही भलीभाँति अवतीर्ण होते हैं। इस सिद्धान्तको न समझकर श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद ही न जाने और भी कितने नकली अवतारोकी सृष्टि हुई थी, जिनका उल्लेख तत्कालीन वैष्णव-साहित्यमें देखनेमें आता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुरके नामसे आरोपित 'गौरगण-चन्द्रिका' नामक पुस्तकसे जाना जाता है कि एक द्विज वासुदेव अपनेको 'गोपालदेव' नामसे प्रचार करते थे। अतः भागवतके शृगाल वासुदेवकी भाँति उनको 'शृगाल' नाम प्राप्त हुआ था। पूर्वी बगालमें 'विष्णुदास कवीन्द्र' नामक एक व्यक्ति अपनेको रघुनाथका अवतार बताकर प्रचार करते थे। माधव नामका एक देवल ब्राह्मण चुटिया धारण करके अवतार सज बैठा था। *

* चैतन्यदेवे जगदीशबुद्धीन्, केचिज्जनान् वीक्ष्य च राढबंगे ।
स्वस्येश्वरत्व परिबोधयन्तो, धृत्वैश्वेश व्यचरन् विमूढा ॥
तेषां तु कश्चिद्द्विजवासुदेवो, गोपालदेव पशुपागजोऽहम् ।
एव हि विख्यापयितुं प्रलापी, शृगालसज्ञा समवाप राढे ॥
श्रीविष्णुदासो रघुनन्दनोऽहं, वैकुण्ठधाम्न समित कवीन्द्रा ।
भक्ता ममेतिच्छलनापराधात्त्यक्त कपीन्द्रेति समाख्ययायै ॥

उद्धारार्थं क्षितिनिवसता श्रील-नारायणोऽहम् ।
संप्राप्तोऽस्मि ब्रजवनभुवो मूर्ध्नि चूडा निधाय ॥
मन्द हृष्यन्निति च कथयन् ब्राह्मणो माधवाख्य-
श्चूडाधारी त्विति जनगणैः कीर्त्यते बङ्गदेशे ॥
कृष्णलीला प्रकुर्वीण कामुक शूद्रयाजक ।
देवलोऽसौ परित्यक्तश्चैतन्येनेति विश्रुत ॥
अतिभव्यादयोऽप्यन्ये परित्यक्तास्तु वैष्णवैः ।
तेषां सगो न कर्तव्यं सगाद्धर्मो विनश्यति ॥
आलापाद्गात्रस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात् ।
स चरन्तीह पापानि तैलविन्दुरिवाग्भसि ॥

—श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्तीकृता 'गौरगण-चन्द्रिका'

[श्रीचैतन्यदेवके प्रति जगदीश्वर-बुद्धि रखनेवाले भक्तजनको देखकर बगदेशके राढ-प्रान्तमें कुछ मूढ़ मानव अपनेको भी ईश्वरका अवतार बताते हुए भगवान्का-सा वेश धारण करके विचरने लगे थे ।

श्रीभक्तिरत्नाकरके लेखक श्रीनरहरि चक्रवर्तीशुक्ररने भी (१४ वें तरंगमें) कुछ नकली अवतारोका उल्लेख किया है ।*

उनमेंसे कोई वासुदेव नामक ब्राह्मण था, जो लोगोमें यह प्रचार करनेके लिये कि मैं 'नन्दनन्दन गोप लदेव हूँ' अनेक प्रकारके प्रलाप (व्यर्थकी बातें) किया करता था । किन्तु राढ-प्रान्त (बंगालके पश्चिम भाग) में उसे मिथ्या वासुदेवकी भाँति 'शृगाल' सज्ञा प्राप्त हुई—लोग उसे सियार कहने लगे । एक व्यक्तिका नाम था श्रीविष्णुदास कवीन्द्र । वे कहा करते थे "मैं रघुनन्दन श्रीराम हूँ, श्रीवैकुण्ठधामसे इस वसुधापर अवतीर्ण हुआ हूँ ।' कपिश्रेष्ठ सुग्रीव आदि मेरे भक्त थे ।' इस प्रकार जनताको छलनेके अपराधसे, श्रेष्ठ पुरुषोंने उसे 'कपीन्द्र'की उपाधि देकर त्याग दिया—समाजमें वह आदरणीय न हो सका । माधव नामक एक ब्राह्मण था, जो शिरपर चूड़ा धारण किया करता था, वह कुछ प्रसन्नता के साथ यो कहता था—'मैं लक्ष्मीपति नारायण हूँ और भूतलनिवासियोंके उद्धार के लिये ब्रजकी वनभूमि (वृन्दावन-धामसे) मस्तकपर चूड़ा धारण करके यहा आया हूँ ।' बगदेशमें आज भी उस वचक ब्राह्मणको लोग 'चूड़ाधारी' कहते हैं । "वह चूड़ाधारी माधव किसी देवालयका पुजारी था । वह शूद्रोंसे यज्ञ कराता और दक्षिणा लेता था । कामके वशीभूत होकर श्रीकृष्णकी रासलीला आदिका अनुकरण करता था । श्रीचैतन्य-महाप्रभुने उसे त्याग दिया था, यह बात प्रसिद्ध है । अतिभव्य आदि अन्य वचक जनोको भी वैष्णवोंने त्याग दिया है । उनका सग नही करना चाहिये । उनके सगसे धर्मका नाश होता है । जैसे तेलकी बूद पानीके एक भागमें पड़नेपर भी सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार मनुष्यके पाप परस्पर वार्तालापसे, एक दूसरेके शरीरके स्पर्शसे, सास लेनेसे तथा एक साथ बैठकर भोजन करनेसे सब लोगोमें संचार करते हैं—एकके पाप दूसरेमें भी प्रवेश कर जाते हैं ।]

* केह कहे,—“अहे भाइ ! वहिमुखगण ।

हइया स्वतन्त्र, धर्म करये लघन ॥

वहिमुखगणमध्ये ये प्रधान ता'रे ।

'रघुनाथ' साजाइया भोंडाय लोकेरे ॥

स्वमत रचिया ये पापिष्ठ दुराचार ।

कहये कवीन्द्र बगदेशेते प्रचार ॥”

एकसौ-आठवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके पार्षदवृन्द

कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी लीलामें सहायक अगणित पार्षदवृन्दमें कतिपय पार्षदोका अति सक्षिप्त तथा असंपूर्ण परिचय नीचे दिया जाता है ।

श्रीनित्यानन्दप्रभु

राठ देशमें 'एकचाका' ग्राममें मैथिल-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न श्रीहाडाई पण्डित या श्रीहाडो ओझा और उनकी सहधर्मिणी श्रीपद्मावती देवीके घर माघ शुक्ल त्रयोदशी तिथिको श्रीनित्यानन्द अवतीर्ण

केह कहे—“देखिलाम महापापिगण ।
आपनाके गाओयाय छाडि’ श्रीकृष्णकीर्तन ॥
केह कहे—“राठदेशे एक विप्राधम ।
‘मल्लिक’ खेयाति, दुष्ट नाहि ता’र सम ॥
से पापिष्ठ आपनारे ‘गोपाल’ कहाय ।
प्रकाशि राक्षसमाया लोकोरे भोडाय ॥

—भ० र० १४ तरंग

[कोई कहता है—“अरे भाई ! वहिर्मुखगण (भगवद्विमुख व्यक्तिगण) स्वेच्छाचारी बन, धर्मका विरुद्धाचरण कर रहे हैं । उनमें जो प्रधान हैं उसे ‘रघुनाथ’ सजाकर लोगोको धोखा दिया जा रहा है । कोई पापिष्ठ दुराचारी अपना ही मत रचकर बगदेशमें अपनेको कविश्रेष्ठ कहलाकर प्रचार कर रहा है ।” कोई कहता है—“देखा, महापापीगण श्रीकृष्णकीर्तन छोडकर अपनेको ही प्रचार करा रहे हैं ।” कोई कहता है—“राठदेशमें एक नीच ब्राह्मण जो ‘मल्लिक’के नामसे परिचित है, जिसके समान दूसरा दुष्ट नहीं, वह पापिष्ठ अपनेको ‘गोपाल’ कहलाता है । वह राक्षसी-माया फैलाकर लोगोको ठग रहा है ।]

हुए। श्रीनित्यानन्द जब बारह वर्षके थे, तब एक परिव्राजक वैष्णव-सन्यासी अतिथिरूपमें आये और श्रीनित्यानन्दको उनके माता-पिताके पाससे भिक्षाके रूपमें ले गये। उस सन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्दने भारतके बहुत-से तीर्थोंका पर्यटन किया। पश्चिम भारतमें भ्रमण करते समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके साथ श्रीनित्यानन्दका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार अपनी बीस वर्षकी उम्रतक तीर्थभ्रमण करते-करते, जब श्रीगौरसुन्दरने श्रीनवद्वीपमें आत्मप्रकाश किया तो, वह वहाँ जाकर उनसे मिले। श्रीनित्यानन्दने श्रीश्रीवासके घर श्री-गौरसुन्दरकी श्रीव्यासके रूपमें पूजा की, तथा श्रीगौरहरिके षड्भुज-रूपमें दर्शन किये। श्रीगौराङ्गकी आज्ञासे श्रीनित्यानन्द और श्री-हरिदास ठाकुर जिस समय नवद्वीपमें घर-घर श्रीकृष्णभजनके सम्बन्धमें प्रचार कर रहे थे, उसी समय मद्यपी 'मधाइ'ने श्रीनित्यानन्दके सिरपर प्रहार किया। श्रीनित्यानन्दने मधाइके सारे पाप और अपराध दूरकर 'जगाइ-मधाइ' दोनों भाइयोंको श्रीगौरसुन्दरकी कृपासे अभिषिक्त किया। जब श्रीमन्महाप्रभु सन्यासग्रहण करके नीलाचलकी ओर जाने लगे, उस समय श्रीनित्यानन्दने श्रीचैतन्यके दण्डके तीन टुकड़े करके उसे नदीके जलमें बहा दिया था, क्योंकि, साधक जीवके समान स्वयं भगवान्‌को सन्यास या दण्ड-ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। श्रीगौरसुन्दरके आदेशसे श्रीनित्यानन्दप्रभुने गौडदेशमें प्रेमभक्तिका प्रचार किया।

'बेनापोल'का रामचन्द्र खा नामक एक वैष्णवविद्वेषी पाखण्डी जमीन्दार श्रीनित्यानन्दके चरणोंमें अपराध करके सपरिवार विनष्ट हो गया। 'पानीहाटी' गाँवमें श्रीनित्यानन्दने श्रीरघुनाथ दासके द्वारा 'दही-चूडा-दण्ड-महोत्सव' कराया था। श्रीनित्यानन्दकी कृपासे उनके श्रीअङ्गके बहुमूल्य अलंकारोंको लूटनेकी इच्छा करनेवाले डाकू सरदारको भी चित्तशुद्धि और प्रेमभक्तिकी प्राप्ति हुई थी।

श्रीनित्यानन्दने 'अवधूत' अर्थात् आश्रमातीत परमहंसकी लीला की है। ब्रजलीलामें जो श्रीबलराम हैं, श्रीगौरावतारमें वे ही श्रीनित्यानन्द

है। श्रीजाल्लवा और श्रीवसुधा—ये दो श्रीनित्यानन्दकी शक्तियाँ हैं। श्रीनित्यानन्दके पुत्ररूपमें श्रीवसुधाके गर्भसिन्धुसे श्रीवीरभद्र गोस्वामी प्रभु अवतीर्ण हुए। ये श्रीजाल्लवा माताके शिष्य हुए। प्रभु श्रीवीरभद्रने 'झामटपुर' ग्रामके निवासी श्रीयदुनाथ आचार्यकी औरस-जात कन्या श्रीमती और पालिता कन्या श्रीनारायणीसे विवाह किया। उनको कोई सन्तान नहीं हुई। श्रीवीरभद्र प्रभुके द्वारा पालित तीन पुत्रोंमें छोटे श्रीरामचन्द्रने 'खड़दा'में, बड़े पुत्र श्रीगोपीजन वल्लभने बर्दवान जिलेके 'लता' गावमें और मझले श्रीरायकृष्णने मालदाके पास 'गयेशपुर' गाँवमें वास किया। श्रीनित्यानन्दके पार्षदगण ब्रजके सखा 'द्वादश गोपाल'के नामसे विख्यात हैं। श्रीनित्यानन्दके गण असंख्य हैं। श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता ठाकुर श्रीवृन्दावनने अपनेको श्रीनित्यानन्द प्रभुका 'सर्वशेष भृत्य' कहकर परिचय दिया है।

श्रीअद्वैताचार्य

श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व श्रीअद्वैताचार्य श्रीहृदसे 'शान्तिपुर'में आकर रहने लगे थे तथा उन्होंने श्रीनवद्वीप-मायापुरमें श्रीवासके आँगनसे थोड़ी दूरपर एक वैष्णव-सभा स्थापित की थी। उनका पहला नाम 'श्रीकमलाक्ष' था (चै० च० आ० ६।३०)। वे स्वयं विष्णुतत्त्व हैं। ईश्वरके साथ अभिन्न होनेके कारण उनका नाम 'अद्वैत' है।

“महाविष्णुर अंश—अद्वैत गुणधाम ।

ईश्वरे अभेद, तेजि 'अद्वैत' पूर्णनाम ॥

भक्ति-उपदेश बिनु तौंर नाहि कार्य ।

अतएव नाम हैल 'अद्वैत-आचार्य' ॥

वैष्णवेर गुरु तेंहो जगतेर आर्य ।

डुइ नाम मिलने हैल अद्वैत-आचार्य ॥

—चै० च० आ० ६।२५, २८-२९

‘अर्थात् श्रीअद्वैत सर्वगुणसम्पन्न है।, वे महाविष्णुके अश है। ईश्वरसे अभिन्न होनेके कारण उनका ‘अद्वैत’ नाम पूर्ण है। भक्तिके उपदेश देनेके सिवा वे और कोई कार्य नहीं करते, अतएव उनका ‘अद्वैताचार्य’ नाम पडा। वे वैष्णवोंके गुरु, तथा जगत्वासीके लिए पूजनीय है। इस प्रकार दोनो नामोंके मिलनेसे अद्वैताचार्य नाम हुआ।’

श्रीअद्वैताचार्य माघ शुक्ल सप्तमीको आविर्भूत हुए थे। श्रीअद्वैत आचार्यने श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामिपादके शिष्यकी लीला की थी। उस समयके वहिर्मुख जीवोंकी कुमति और दुर्दशा देखकर वे नवद्वीप-माया-पुरमे जल-तुलसीके द्वारा कलियुगपावनावतारी श्रीभगवान् गौरसुन्दरके अवतारके लिये आराधना करते थे। श्रीहरिदास ठाकुर शान्तिपुरके समीप ‘फुलिया’ग्राममे श्रीअद्वैताचार्यके सग और कृपाको प्राप्तकर धन्य हो गये थे। श्रीअद्वैताचार्यने श्रीहरिदासको अपने पितृपुरुषका आद्धपात्र भोजन कराया था। श्रीगौरहरिने अवतीर्ण होकर और आत्मप्रकाश करके श्रीअद्वैताचार्यके साथ नानाप्रकारका लीला-विलास तथा जगत्के जीवोंके प्रति कृपा-वितरण किया था। श्रीनवद्वीप-मायापुरमे ‘श्रीचन्द्र-शेखर-भवन’मे श्रीगौरहरिने श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीश्रीवास, श्रीहरिदास आदि भक्तवृन्दके साथ ब्रजलीलाका नाट्याभिनय किया था। उसमे श्रीअद्वैताचार्यने महाविदूषकका स्वाग या वेश ग्रहण किया था। सन्यासलीलाके ठीक पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुने शान्तिपुरमे श्रीअद्वैत-मन्दिरमे श्रीशचीमाताके श्रीहस्तके द्वारा तैयार किये हुए नैवेद्यका भोजन और कीर्तन-नर्तन-विलास किया था। श्रीअद्वैतके पुत्र श्रीअच्युतानन्द जब पाँच वर्षके थे तभी उनकी श्रीचैतन्यदेवमे स्वाभाविकी भगवद्बुद्धि और भगवद्भक्तिकी बात सुनी जाती है। श्रीअद्वैताचार्यके दो स्त्रियाँ और छ पुत्र थे। श्रीअच्युतानन्द, श्रीकृष्ण मिश्र, और श्रीगोपालदास श्रीसीतादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए, ये श्रीगौरभक्त थे। श्रीअद्वैताचार्यके अन्य तीन पुत्रोंके नाम हैं—बलराम, स्वरूप और जगदीश। श्रीअद्वैताचार्य प्रतिवर्ष गौडीय-भक्तोंके साथ श्रीक्षेत्रमे (पुरीमे) जाकर श्रीगौरसुन्दरके

साथ रथयात्रामे नृत्य और कीर्तन करते थे । श्रीश्रीवास पंडितके श्रीअद्वैताचार्यको श्रीशुकदेव या श्रीप्रह्लादके समान वैष्णव बतलाने पर श्रीगौरसुन्दर श्रीअद्वैतकी महिमा प्रकट करते हुए कहते,—

“शुक-आदि करि’ सब बालक उँहार ।

नाडार (श्रीअद्वैतेर) पाछे से जन्म जानिह सबार ॥

अद्वैतेर लागि’ मोर एइ अवतार ।

मोर कर्णे बाजे आसि’ नाडार हुंकार ॥

शयने आछिनु मुनि क्षीरोद-सागरे ।

जगाइ’ आनिल मोरे नाडार हुंकारे ॥

—चै० भा० अ० ६।२६६-२६८

अर्थात् शुक आदिसे लेकर सब अद्वैतके सामने बालक है, इन सबका जन्म अद्वैतके पीछे हुआ है, ऐसा जानो । अद्वैतके लिये ही मेरा यह अवतार है । अद्वैतका हुंकार मेरे कानोमे आ-आकर ध्वनित होता रहता है । क्षीर-सागरमे मैं शयन कर रहा था, पर श्रीअद्वैतका हुंकार मुझे यहाँ जगा ले आया ।

श्रीगदाधर पंडित

पंचतत्त्वात्मक श्रीगौरहृदिके शक्ति-अवतार श्रीगदाधर पंडित गोस्वामी हैं । श्रीगदाधर पंडितके पिताका नाम है श्रीमाधव मिश्र और माताका नाम श्रीरत्नावती । शैशवकालसे ही श्रीगदाधर विषयोसे विरक्त और श्रीकृष्णमे रति-सम्पन्न थे । श्रीईश्वरपुरीपादने नवद्वीपमे श्रीगदाधरको ‘श्रीकृष्णलीलामृत’ ग्रन्थ पढाया था । नवद्वीपमे श्रीनिमाइ पंडितके साथ न्यायके विभिन्न विषयोको लेकर श्रीगदाधर पंडितका प्राय ही वाद-विवाद हुआ करता था । आजन्म ससार-विरक्त गदाधरने चट्टगाँव-निवासी महाभागवत श्रीपुडरीक विद्यानिधिको ‘भोगीके समान’ देखकर पहले उनकी वैष्णवताके सम्बन्धमे कुछ सशय-लीला प्रकट की थी , परन्तु, पीछे विद्यानिधिके अपूर्व विप्रलम्भ प्रेमविकारको देखकर

जीवोकी शिक्षाके लिये अपने अपराध-मार्जनके अभिप्रायसे श्रीपुडरीकसे दीक्षा-मन्त्र ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुकी सन्यासलीलाके बाद श्री गदाधर नीलाचलमे 'यमेश्वर-टोटा' मे जाकर स्थायीभावसे रहने लगे और वहाँ उन्होंने 'श्रीगोपीनाथकी सेवा' प्रकट की। 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीरपर श्रीगदाधर पंडित सपार्षद श्रीगौरसुन्दरके पास प्रति-दिन श्रीमद्-भागवतकी व्याख्या करते थे। श्रीवल्लभ भट्ट (आगे, 'श्रीवल्लभाचार्य' के नामसे प्रसिद्ध) पहले बाल-गोपाल-मन्त्रसे कृष्ण-सेवा करते थे। पश्चात् वे श्रीगदाधर पंडितसे मन्त्र-ग्रहणकर श्रीकिशोर-गोपालकी उपासनामे प्रवृत्त हुए। श्रीअद्वैताचार्यके ज्येष्ठ पुत्र श्रीअच्युतानन्द श्रीगदाधर पंडितके प्रधान शिष्य थे। 'वराहनगर'के श्रीरघुनाथ भागवताचार्य भी श्रीगदाधर पंडितके अन्यतम शिष्य रहे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीभूगर्भ गोस्वामी आदि श्रीगदाधर पंडितके शिष्य हैं।

श्रीहरिदास ठाकुर

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले श्रीहरिदास ठाकुर यशोहर जिलेके अन्तर्गत 'बूढन' ग्राममे मुसलमान-कुलमे आविर्भूत हुए थे। वे यवनकुलकी सामाजिक रीति-नीतिका त्यागकर श्रीहरिनाम-ग्रहणके व्रती बने और युवावस्थामे ही 'बूढन' ग्राम त्यागकर 'बेनापोल'के समीप एक निर्जन वनमे कुटिया बनाकर तुलसीकी सेवा और दिन-रातमे तीन लाख श्रीनाम-सकीर्तन करते हुए ब्राह्मणके घरकी भिक्षासे निर्वाह करने लगे। उस देशके जमींदार पर श्रीकातर वैष्णव-द्रोही 'श्रीरामचन्द्र खाँ'ने श्रीहरिदासके चरित्रमे कलक लगानेके लिए उनके पास एक सुन्दरी युवती वेश्याको भेजा। वह वेश्या महाभागवत श्रीहरिदासके ऐकान्तिक भजनको देखकर और उनके मुँहसे निरन्तर श्रीहरिनाम-कीर्तन श्रवण कर ठाकुरकी कृपासे निर्वेद-ग्रस्त (वैराग्यवती) हो गयी और सदाके लिये पापवृत्तिका

त्याग करके वैष्णवधर्ममे दीक्षित हो गयी । रामचन्द्र खाँके महा-
भागवतके चरणोमे अपराधके फलसे, धन-जन-प्राण सबका नाश हो गया ।
श्रीहरिदास ठाकुर 'बेनापोल' त्यागकर शान्तिपुर आये और श्रीअद्वैत
आचार्यका सग प्राप्त कर फुलिया नामक ग्राममे श्रीनाम-भजन
करते रहे । काजी 'अम्बुया'ने सूबेदारके पास जाकर श्रीहरिदासके
विरुद्ध अभियोग किया । सूबेदारने श्रीहरिदास ठाकुरको कैदखानेमे बंद
करनेका आदेश दिया । ठाकुर श्रीहरिदासके दर्शन, वन्दन और कृपासे
दूसरे अपराधी कैदियोका भी मगलोदय हो गया ।

श्रीहरिदास जब सूबेदारके सामने लाये गये तो उसने उनको 'कलमा'
पढ़ने और हिन्दूधर्मके आचारको त्यागनेका उपदेश दिया । श्रीहरिदास
बोले,—

“खण्ड-खण्ड हई देह याय यदि प्राण ।

तबु आमि बदन ना छाड़ि हरिनाम ॥”

—चै०भा०आ० १६।१४

अर्थात् 'मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े होकर चाहे प्राण चले जायँ, तब
भी मैं मुखसे हरिनाम नहीं छोड़ूँगा ।' इस पर सूबेदार बहुत बिगड़ा
और काजीके परामर्शके अनुसार उसने श्रीहरिदासको बाईस-बाजारमे ले
जाकर निर्दयरूपसे प्रहार करनेका आदेश दिया । तदनुसार यवनोने
उनके ऊपर अकथनीय अत्याचार किया । परन्तु श्रीहरिदास अपने
द्रोही सत्यविरोधी पापियोकी कल्याण-कामना ही करते रहे । बाईस-
बाजारमे भीषण प्रहार करने पर भी श्रीहरिदासके शरीरको अक्षत
देखकर यवन लोग उनको 'पीर' समझने लगे । और श्रीहरिदाससे
बोले कि 'यदि उनके प्राण शरीरसे अलग नहीं हो जायँगे तो सूबेदार
द्वारा हमलोगोको दंडित होना पड़ेगा।' इसपर श्रीहरिदास यवनोके
उपकारार्थ समाधिस्थ होकर मृतवत् पड़ गये और उनलोगोने उनको
उठाकर गंगाके जलमे बहा दिया । श्रीहरिदास बहते-बहते फुलिया
नगरमे जा पहुँचे और पूर्ववत् श्रीकृष्णनाम-भजनमे तल्लीन हो गये ।

फुलियामे श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-गुफामे एक भीषण विषधर सर्प रहता था ; परन्तु उसने मत्सरहीन श्रीहरिदासके प्रति कोई हिंसा नहीं की । एक परश्रीकातर 'ढोगी ब्राह्मण'ने श्रीहरिदासके इस अप्राकृत भावका अनुकरण करना चाहा तो उसे विशेषरूपसे कष्ट भोगना पड़ा । भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्यने शान्तिपुरमें "तुमि खाइले हय कोटि ब्राह्मण भोजन" अर्थात् 'तुम्हारे खा लेनेसे कोटि-ब्राह्मण भोजन कराना हो जाता है'—यह कहकर श्रीहरिदास ठाकुरको पिताका श्राद्धपात्र प्रदान किया । श्रीहरिदासके फुलियामे रहते समय स्वयं मायादेवी एक ज्योत्स्नामयी रात्रिमें श्रीहरिदासको मोहित करने आयी और स्वयं ही श्रीकृष्णनाम-प्रेममें दीक्षिता हो गयी । श्रीहरिदास ठाकुर जब हिरण्य और गोवर्द्धन मजुमदारके पुरोहित श्रीबलराम आचार्यके घर रहते थे, उस समय कुछ स्मार्त पंडितोंने उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तनके विरुद्ध आवाज उठायी । गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्तिको श्रीहरिदासके चरणोमें अपराध करनेके कारण गलितकुष्ठ रोग हो गया । श्रीगौरहरि जब बाल्यलीला करते थे, उसी समय श्रीहरिदास श्रीनवद्वीपमें श्रीअद्वैतप्रभुकी सभामें तथा श्रीवास आदि भक्तवृन्दके साथ श्रीहरिकथाकी चर्चा किया करते थे । गयासे लौटकर श्रीगौरहरिने श्रीनित्यानन्द और ठाकुर श्रीहरिदासको श्रीधाम-नवद्वीपमें घर-घर श्रीहरि-कीर्तन करनेका आदेश प्रदान किया । श्रीहरिदासने बगदेशमें अनेको स्थानोंमें श्रीहरिनामका प्रचार किया । बर्दवान जिलेके अन्तर्गत 'कुलीन-ग्राम'में 'श्रीरामानन्द वसु' आदिके घर एक समय रहकर श्रीहरिदासने श्रीनाम-भजन किया था और कुलीन-ग्रामवासियों पर बड़ी कृपा की थी । कुलीन-ग्राममें अब भी श्रीहरिदासका भजन-स्थान देखनेमें आता है । श्रीहरिदास श्रीगौरहरिके प्रत्येक अनुष्ठानमें ही सहायक स्वरूप हुए थे । 'महाप्रकाश'के दिन श्रीचन्द्रशेखरके घर नाट्याभिनयके समय, तथा काजी-उद्धारके लिये नगर-संकीर्तनके समय श्रीहरिदास श्रीमन्महाप्रभुके प्रधान सेवक थे । श्रीगौरहरिके सन्यास-ग्रहण करके श्रीनीलाचल चले जानेपर श्रीहरिदास

भी श्रीमन्महाप्रभुके सगके लोभसे श्रीकाशीमिश्रके घरके समीप अवस्थान कर एक निर्जन कुटीमें अपतितरूपसे श्रीनाम-भजन करने लगे। आजकल वह भजन-स्थान 'सिद्ध-बकुल'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीश्रीरूप-सनातन श्रीहरिदासठाकुरके साथ श्रीनीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुका सुखानुसन्धान करते थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीहरिदासके द्वारा विश्वमें श्रीनाम-माहात्म्यका प्रचार कराया है। ठाकुर श्रीहरिदासने अपनी देहत्याग-लीलाके अन्तिम दिन भी सख्यापूर्वक नाम-ग्रहणकी मर्यादा प्रदर्शित की थी। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंको हृदयमें धारणकर, आँखोंके द्वारा उनके दिव्य रूपके दर्शन और जिह्वासे 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामका उच्चारण करते-करते सपार्षद श्रीचैतन्यदेवके सामने श्रीपुरुषोत्तम-धाममें श्रीहरिदास ठाकुरने महाप्रयाण-लीला प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास को गोदमें लेकर नृत्य करने लगे और विमानपर चढ़ाकर कीर्तन करते-करते समुद्र तीरपर ले जाकर उन्होंने स्वयं अपने हाथों श्रीहरिदासको समाधि दी। श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं श्रीमहाप्रसाद भिक्षा करके श्रीहरिदासके अन्तर्धान-उत्सवको भक्तगणके साथ सम्पन्न किया।

श्रीश्रीवास पंडित

पचतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिके शुद्धभक्त-तत्त्वके मुख्य पात्र हैं श्रीश्रीवास पंडित। श्रीश्रीवास, श्रीश्रीराम, श्रीश्रीपति, तथा श्रीश्रीनिधि—ये चारो भाई तथा इनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासी—सभी श्रीमन्महाप्रभुके एकान्त सेवक और सेविकाएँ हैं। श्रीश्रीवास पंडितकी सह-धर्मिणीका नाम है 'श्रीमालिनीदेवी'। ये स्नेहमें श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी 'जननी' तथा सेवामें उनकी 'दासी' होनेका अभिमान रखनेवाली हैं। श्रीश्रीवासके ही किसी भाईकी कन्या श्रीनारायणी देवी श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी जननी हैं। श्रीश्रीवास पंडित श्रीहट्ट में आविर्भूत हुए। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके पहले ही गंगावास करनेके लिए श्रीनवद्वीपमें श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरसे थोड़ी दूरपर उन्होंने

अपना निवासस्थान बनाया । श्रीगौरसुन्दरकी नवद्वीप-लीलातक श्रीवासने वही निवास किया था । उनकी सन्यास-लीलाके बाद 'कुमारहट्ट'में जाकर वास करने लगे । उस समयके वहिर्मुख पाखंडी लोगोके अजस्र वाक्यबाण तथा पाखंडी हिन्दुओके नाना प्रकारके अत्याचारोको प्रसन्नतापूर्वक सहन करके उन्होने श्रीगौरहरिकी सेवानिष्ठाके आदर्शका प्रदर्शन किया था । श्रीश्रीवास पंडितके घर प्रतिरात्रि सपार्षद श्रीगौरहरिका सकीर्तन-विलास हुआ था । उन्हीके घर श्रीनित्यानन्दने श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान किया था । श्रीश्रीवासकी चार-वर्षकी भतीजी श्रीनारायणीदेवीने श्रीगौरहरिके भोजनावशेषको पाकर कृष्णप्रेममे क्रन्दन किया था । श्रीश्रीवासकी दासी 'दुखी'की एकनिष्ठ सेवापरायणता को देखकर श्रीगौरहरिने उसका नाम 'सुखी' रख दिया था । श्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभुने महामहाप्रकाश-लीला प्रकट की थी । श्रीवासका वस्त्र सीनेवाला यवन दर्जीतक भी श्रीगौरहरिकी कृपा प्राप्त कर प्रेमी महाभागवत हो गया था । श्रीश्रीवास वैष्णव-गृहस्थके आदर्श-स्वरूप है, श्रीवासके घरके दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली तकमे भी भक्ति थी, पर श्रीवासकी सासके हृदयमे सरलताका अभाव होनेके कारण वे श्रीगौरहरिकी प्रीतिको प्राप्त न कर सकी । श्रीश्रीवास श्रीगौरहरिकी सन्तुष्टि के लिये इतनी दूरतक अभिनिविष्ट थे कि पुत्रशोक भी उनको स्पर्श नहीं कर सका । श्रीगौरहरिकी कृपासे श्रीश्रीवासका मृत बालकपुत्र तत्वज्ञान प्राप्त कर धन्य हो गया था तथा तत्वोपदेशके द्वारा परिवारके लोगोका शोक दूर कर सका था ।

भगवानेर भक्त यत श्रीवास प्रधान ।

ताँहार चरणपद्मे सहस्र प्रणाम ॥

—चै० च० आ० १।३८

[भगवान्‌के जितने भक्त हैं, उनमे श्रीवास प्रधान है, उनके चरण-कमलोमे सहस्र प्रणाम है ।]

श्रीदामोदर-स्वरूप

श्रीगौरसुन्दरके अत्यन्त ममीं तथा उनके द्वितीय स्वरूप श्रीदामोदर स्वरूप या 'श्रीस्वरूप-दामोदर' गोस्वामिपाद हैं। गृहावस्थानके समय इनका नाम था 'श्रीपुरुषोत्तम आचार्य'। वे श्रीगौरहरिकी नवद्वीप-लीलाके समय उनके ही श्रीचरणोंके समीप रहते थे। श्रीगौरहरिकी सन्यास-लीलाके बाद श्रीपुरुषोत्तम विरहोन्मत्त हो गये, और श्रीकाशी-धाममें 'श्रीचैतन्यानन्द' नामक सन्यासी-गुरुसे केवल शिखासूत्र-त्यागरूप सन्यास-ग्रहण किया, पर योगपट्ट, सन्यास-नाम या दण्डादि ग्रहण नहीं किया। अतएव उनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-सूचक 'स्वरूप' नाम बना ही रहा। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूपकी सगीत-विद्यामें अद्भुत दक्षता देखकर पहले ही उनका 'दामोदर' नाम रक्खा था। दोनों नाम मिलकर उनका 'दामोदर-स्वरूप' नाम हो गया। सुना जाता है कि इन्होंने 'सगीत-दामोदर' नामक सगीत-शास्त्रके एक मौलिक ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीस्वरूप-दामोदर गौडीयलोगोंके अधिनायकके रूपमें हैं। श्रीमन्महाप्रभु की सेवाके लिये श्रीस्वरूप-दामोदरने श्रीनीलाचलमें जाकर वास किया। श्रीमन्महाप्रभु गीत, श्लोक, ग्रन्थ, काव्य आदि जो कुछ सुनते थे, उसकी पहले श्रीस्वरूप-दामोदर परीक्षा कर देते थे। सिद्धान्तविरुद्ध या रसाभास-दोषयुक्त कोई भी गीत या काव्य महाप्रभु नहीं सुन सकते थे। श्री स्वरूप-दामोदरके करचामे श्रीमन्महाप्रभुकी गूढ अन्त्यलीला तथा पञ्चतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिका तत्व सक्षेपमें गुम्फित था। उसे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादने कठस्थ कर रक्खा था। श्रीरघुनाथके कठसे उसे सुनकर श्रीकविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'में विवृत किया है। श्रीमन्महाप्रभु अपनी अन्त्यलीलामे श्रीस्वरूप-दामोदर और श्री-रायरामानन्दके साथ श्रीचण्डीदास और श्रीविद्यापतिकी 'पदावली', श्रीबिल्वमंगलका 'श्रीकृष्णकणमृत', श्रीजयदेवका 'श्रीगीतगोविन्द' और श्रीरामानन्द रायका 'श्रीजगन्नाथ-बल्लभ-नाटक' आदि अप्राकृत श्रीकृष्ण-

तोषणपरक काव्योका नित्य आस्वादन करते थे। कहना नहीं होगा कि श्रीगौरहरिके द्वारा आविष्कृत उन्नत-उज्ज्वल भक्तिरस-सिद्धान्त, जो गौडीय-सम्प्रदायमे प्रचारित हुआ, उसके मूल पुरुष श्रीस्वरूप-दामोदर ही है। श्रीकविराज गोस्वामिप्रभुने लिखा है,—

अत्यन्त निगूढ़ एइ रसेर सिद्धांत ।

स्वरूप-गोसांनि-मात्र जानेन एकान्त ॥

येवा केह अन्य जाने, सेहो ताँहा हैते ।

चैतन्य गोसांनिर तँह अत्यन्त मर्म याते ॥

—चै० च० आ० ४।१६०-१६१

[इस रसका सिद्धान्त अत्यन्त गूढ़ है। इसे पूरा पूरा केवल श्रीस्वरूप गोस्वामी ही जानते हैं। और दूसरा जो कोई जानता है, तो उसे भी उनके ही द्वारा प्राप्त हुआ है, क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभुके अत्यन्त अतरंगी रहे।]

श्रीरामानन्द राय

‘पुरी’से प्राय छ कोस पश्चिम आलालनाथ’से थोड़ी दूर पर ‘बेण्टपुर’ ग्राममे श्रीभवानन्द रायके ज्येष्ठपुत्र श्रीरामानन्द राय आविर्भूत हुए। श्रीभवानन्दके पाँच पुत्र थे—श्रीरामानन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीकलानिधि, श्रीसुधानिधि और श्रीवाणीनाथ। श्रीरामानन्द उड़ीसाके स्वाधीन राजा गजपति श्रीप्रतापरुद्रके अधीन पूर्वं और पश्चिम गोदावरीके शासन-कर्त्ताके पदपर अधिष्ठित थे। वे एक ही साथ श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, पंडित, कवि और महाभागवतोत्तम थे। श्रीनवद्वीपके श्रीमहेश्वर विशारदके पुत्र वेदान्ती पंडित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीनवद्वीपवासी श्रीपुरुषोत्तम आचार्यके साथ श्रीरामानन्दका विशेष सौहार्द था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी प्रार्थनासे श्रीचैतन्यदेवने गोदावरी तीरपर ‘गोष्पदतीर्थ’ मे (वर्तमान ‘कभुर’मे) श्रीराय रामानन्दके साथ प्रथम मिलकर साध्य-साधन-तत्त्वके विषयमे चर्चा की थी। श्रीरामानन्दने श्रीनीलाचलमे

श्रीमन्महाप्रभुके साथ नित्य रहने और श्रीकृष्ण-कथालाप तथा रसास्वादन में कालक्षेप करनेके उद्देश्यसे राजकार्यका परित्याग कर दिया था। उनका विषयीवत् व्यवहार देखकर तथा उनकी अतुलनीय अप्राकृत-भजनलीलाका मर्म न समझ सकनेके कारण श्रीहट्टनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने कुछ सन्देह प्रकट किया, इसपर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमिश्रको श्रीरायरामानन्दका महत्व बतलाकर उन्हीके द्वारा ही श्रीहरिकथा सुननेका आदेश दिया। श्रीमिश्र श्रीरायके मुखसे श्रीकृष्णकथा सुनकर समझ सके कि, “मनुष्य नहे राय, कृष्णभक्तिरसमय।” (चै०च० अ० ५।७१) अर्थात् राय मनुष्य नहीं है, वे कृष्णभक्ति-रसमय हैं। श्रीमन्महाप्रभु प्रतिरात्रिको श्रीराय-रामानन्द और श्रीस्वरूप-दामोदरके साथ कृष्णप्रेमरसका आस्वादन करते थे।

“रामानन्देर कृष्णकथा, स्वरूपेर गान।

विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण ॥”

—चै०च० अ० ६।६

[रामानन्दकी कृष्णकथा और स्वरूपके गानने ही विरह-वेदनामें प्रभुके प्राणोको बचा रखा था।]

श्रीपुरुषोत्तममें श्रीगुण्डिचामंदिर और जगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरके प्रायः बीचमें ‘श्रीजगन्नाथ-वल्लभ’ नामक एक उद्यानमें श्रीरायरामानन्द रहा करते थे। वही श्रीरायरामानन्द कृत ‘श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक’ अभिनीत होता था। गभीरामे जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीविल्वमंगलके ‘श्रीकृष्ण-कर्णामृत’ तथा श्रीविद्यापति और चडीदासकी ‘पदावली’का नित्य आस्वादन करते थे, उसी प्रकार श्रीरामानन्द रायके ‘श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक’का भी प्रतिदिन आस्वादन करते थे। श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक या श्रीरामानन्द-संगीत-नाटकके अतिरिक्त श्रीरामानन्दका ‘क्षुद्रगीत-प्रबन्ध’, श्रीरूपगोस्वामिपादके द्वारा सगृहीत ‘श्रीपद्यावली’में उद्धृत कुछ श्लोक तथा ‘श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य’ और

‘श्रीचैतन्यचरितामृत’मे उद्धृत ब्रजभाषामे रचित एक गान देखनेमे आता है ।

श्रीसनातन गोस्वामिपाद

श्रीचैतन्यदेवके मनोवाञ्छा-परिपूरक षड्गोस्वामियोमे सबसे ज्येष्ठ श्रीसनातन गोस्वामिप्रभुपाद कर्णाटक-नरेश ‘सर्वज्ञ’ नामक भरद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मणके वंशमे श्रीकुमारदेवके पुत्ररूपमे आविर्भूत हुए थे । श्रीसनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूप गौड़-नरेश हुसेनशाहकी सभामे क्रमशः ‘साकर-मल्लिक’ और ‘दबीर-खास’ उपाधि प्राप्त कर मन्त्रित्वके पद तथा उच्च राज्यकार्यपर अधिष्ठित थे । गौड़के ‘राम-केलि’ ग्राममे श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर श्रीश्रीरूप-सनातन विषयोका परित्याग करनेके लिये उत्कठित हो उठे । रामकेलिमे ही श्रीमन्महाप्रभुने उन दोनो भाइयोके ‘साकर-मल्लिक’ और ‘दबीर-खास’ नाम छुड़ाकर ‘श्रीसनातन’ और ‘श्रीरूप’ नाम रखे । श्रीसनातन अस्वस्थताका बहाना करके रामकेलिमे नित्य अपने घर पड़ितोके साथ श्रीमद्भागवतकी चर्चा करते थे । इसी समय अकस्मात् एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और उनको इस अवस्थामे देखा तथा यह जानकर कि श्रीसनातनकी अब राजकार्य करनेकी इच्छा नहीं है, उनको कैदखानेमे डाल दिया । श्रीरूप पहले ही रामकेलिसे चले गये थे । उन्होने गुप्तचरके द्वारा एक पत्र श्रीसनातनको दिया । उक्त पत्रमे उन्होने बताया कि,—“श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन जा रहे हैं । आप जिस किसी उपायसे हो राज-बन्धनसे मुक्त होकर श्रीवृन्दावन पहुँचे ।” राजबन्दी श्रीसनातनने कैदखानेके उच्च कर्मचारीको सात हजार रुपये रिश्वत दी और भेष बदलकर वे वृन्दावन जाते हुए ‘काशी’मे श्रीमहाप्रभुसे मिले । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनके दरवेश-वेशका त्याग करारकर उनको वैष्णवोचित वेश धारण कराया तथा उनमे शक्ति-संचार करके ‘दशाश्वमेध-घाट’ पर ‘साध्य-साधन-तत्त्व’की शिक्षा दी । श्रीमन्महाप्रभुने

श्रीसनातनके ऊपर चार प्रकारकी सेवाओंका भार प्रदान किया—(१) शुद्धभक्ति-सिद्धातकी स्थापना, (२) श्रीमथुरामडलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार और लीलास्थान-निरूपण, (३) श्रीवृन्दावनमें श्रीविग्रह-प्रकटन और (४) वैष्णवस्मृति-सकलन तथा वैष्णव-सदाचारका प्रवर्तन । श्रीमन्महाप्रभुके आदेशसे श्रीसनातनने श्रीवृन्दावन जाकर अत्यन्त दैन्य, आर्ति और कृष्ण-विरहमय वैराग्यके साथ श्रीकृष्ण-भजन तथा श्रीमन्महा-प्रभुकी मनोवाञ्छाका प्रचार किया । श्रीसनातन श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचलमें आकर श्रीहरिदास ठाकुरके साथ एक स्थानमें रहने लगे तथा प्रभुकी आज्ञासे पुनः श्रीवृन्दावनमें जाकर उन्होंने श्रीरूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट आदि निज-जनोके साथ ऐकान्तिक श्रीहरिभजन-लीलाका आदर्श प्रकट किया । श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुनाके तीर 'आदित्य-टीला' नामक स्थानमें श्रीमदनगोपालदेवकी सेवा प्रकाशित की । श्रीसनातनके रचे हुए ग्रन्थोंमें (१) 'श्रीवृहद्भागवत-मृत' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (२) 'श्रीहरिभक्तिविलास' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (३) 'श्रीकृष्णलीलास्तव' या 'श्रीदशमचरित' तथा (४) श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी टीका 'श्रीवृहद्वैष्णवतोषणी' विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं ।

श्रीरूपगोस्वामिपाद

गौडके 'रामकेलि' ग्राममें 'दबीर-खास' (श्रीरूप) श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर विषयत्यागके लिये उपाय ढूँढ रहे थे । वे 'रामकेलि'से 'फतेहाबाद'में अपने घर नावमें भरकर बहुत-सा धन लाये और उस धनका आधा भाग ब्राह्मणोंकी सेवामें, एक चतुर्थांश कुटुम्बके भरण-पोषणार्थ और अवशिष्ट चतुर्थांश भावी विपत्तिसे बचनेके लिये उन्होंने विश्वस्त व्यक्तियोंके पास धरोहर रख दिया । छोटे भाई श्रीअनुपमके साथ श्रीरूप 'प्रयाग'में श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें उपस्थित हुए । वहाँ उनका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय हुआ । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपको

प्रयागके 'दशाश्वमेध-घाट'पर शक्ति-संचार करके दस दिनोतक कृष्ण-तत्त्व, कृष्णभक्तितत्त्व और रसतत्त्वकी शिक्षा दी । श्रीमन्महाप्रभुकी इन्ही सारी शिक्षाओंको श्रीरूपपादने स्वरचित विभिन्न ग्रन्थोमे गुम्फित किया और श्रीवृन्दावन जाकर भजन-लीला प्रकट की । श्रीअनुपमकी गंगाप्राप्तिके बाद श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचल गये । श्रीमन्महाप्रभुके उच्चारित "य कौमारहर"श्लोकमे प्रभुके हृदय भाव-को समझकर श्रीरूपने तदनुरूप एक श्लोक—"प्रिय सोऽय कृष्ण" इत्यादि की रचना की । श्रीरूपकी भजनकुटीके छप्परमे खोसे हुए तालपत्रपर लिखित इस श्लोकको देखकर और यह जानकर कि श्रीरूपकी चित्तवृत्ति उनके साथ एक-सी मिलती है श्रीमन्महाप्रभु बहुत ही उल्लसित हुए । श्रीनीलाचलमे श्रीरूपके 'श्रीविदग्धमाधव'-नाटककी रचनाके समय श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके मोलियोंकी पक्तिके समान हस्ताक्षर तथा "तुण्डे ताण्डविनी रतिम्" श्लोकको देख और सुनकर शतमुखसे उनकी प्रशंसा की । 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक'के रचयिता श्रीरायरामानन्दको लेकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके 'श्रीविदग्ध-माधवनाटक' और 'श्रीललितमाधव-नाटक'के विभिन्न अंग-प्रत्यंगका विचार और रसास्वादन किया था । श्रीरूपने श्रीवृन्दावनमे श्रीकेशीतीर्थके समीप 'श्रीगोविन्ददेव'के श्रीविग्रहको प्रकट किया । श्रीरूपके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रचलित हैं —(१) 'श्रीहसद्वृत', (२) 'श्रीउद्धवसन्देश', (३) 'श्रीकृष्णजन्मतिथि-विधि', (४-५) 'श्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका' (बृहत् और लघु), (६) 'श्रीस्तवमाला', (७) 'श्रीविदग्ध-माधव-नाटक', (८) 'श्रीललितमाधव-नाटक', (९) 'श्रीदानकेलि-कौमुदी' (भागिका), (१०) 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु', (११) 'श्रीउज्ज्वल-नीलमणि', (१२) 'प्रयुक्ताख्यात-चन्द्रिका', (१३) 'श्रीमथुरा-माहात्म्य', (१४) 'श्रीपद्मावली', (१५) 'श्रीनाटक-चन्द्रिका', (१६) 'श्रीसंक्षेप (लघु) भागवतामृत', (१७) 'सामान्य-विरुदावली लक्षण', (१८) 'श्रीउपदेशामृत' ।

श्रीरघुनाथ दासगोस्वामिपाद

हुगली जिलेके 'सप्तग्राम'के अन्तर्गत 'कृष्णपुर' ग्राममे कायस्थ कुलोत्पन्न सम्भ्रान्त और धनाढ्य जमींदार 'मजुमदार' उपाधिधारी हिरण्य और गोवर्द्धन दास नामक दो भाई रहते थे। श्रीगोवर्द्धन दासके ही पुत्र थे—श्रीरघुनाथ दास। हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुरके कृपापात्र थे। श्रीहरिदास ठाकुर जिस समय श्री-बलराम आचार्यके घर रहते थे, उन्ही दिनो बालक श्रीरघुनाथ श्रीबलरामके घर अध्ययनार्थ आते थे और प्रतिदिन उनको श्रीहरिदास ठाकुरके सग और कृपाको प्राप्त करनेका सुयोग मिला था। हिरण्य-गोवर्द्धन के गुरु-पुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके अन्तरंग शिष्य और 'काञ्चनपल्ली'के निवासी श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुरके प्रियपात्र थे। श्रीयदुनन्दन आचार्यके दीक्षित शिष्य ही श्रीरघुनाथ दास थे। श्रीरघुनाथने यौवनकालमे ही इन्द्रके समान ऐश्वर्य और अप्सराके समान रूपवती भायिके परित्यागकी लीला प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्दप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त हो 'पुरी'मे जाकर श्रीमन्महाप्रभुके द्वितीयस्वरूप श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपा प्राप्तकर 'स्वरूपके रघु' नामसे परिचित हुए तथा श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपासे ही श्रीगौरसुन्दरकी अन्तरंग-सेवाका अधिकार प्राप्त किया। श्रीगौरसुन्दरने रघुनाथको श्रीगोवर्द्धनशिला-रूपी श्रीगिरिधारी और गुजामाला-रूपिणी श्रीवार्धमानवी (श्रीराधाजी) की सेवाका अधिकार प्रदान किया। वे श्रीगौर-विरहमे व्याकुल होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वतके शिखरसे गिरकर देह त्याग करनेका सकल्प करके वृन्दावन गये, तथा वहाँ उन्होने श्रीश्रीरूप-सनातनके कृपामृतसे अभिषिक्त होकर उनके तृतीय आताके समान अतिमर्त्य सुतीव्र, विप्रलम्भ-वैराग्यके साथ 'श्रीराधाकुंड'पर श्रीश्रीराधा-गोविन्दके भजनमें दत्तचित्त हो गए। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपादने श्रीरघुनाथके व्रजवास-कालीन दैनिक कृत्यका इस प्रकार वर्णन किया है,—

अन्न-जल त्याग कैल, अन्य कथन ।
 पल दुइ तिन माठा करेन भक्षण ॥
 सहस्र दण्डवत् करे', लय लक्षनाम ।
 दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम ॥
 रात्रि-दिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन ।
 प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन ॥
 तिन-सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान ।
 ब्रजवासी वैष्णवेरे आलिंगन दान ॥
 सार्द्धसप्त-प्रहर करे' भक्तिर साधने ।
 चारिदड निद्रा, सेह नहे कोन दिने ॥

—चै० च० आ० १०।१८-१०२

[श्रीरघुनाथदासने अन्न-जलका त्याग कर दिया और दूसरी बातें छोड़ दी, प्रतिदिन तीन-चार छटाक मट्ठा पीते थे। सहस्रवार भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम करते थे और एक लक्ष नाम लेते थे। दो सहस्र वैष्णवोंके उद्देश्य से नित्य प्रणाम करते थे। रात-दिन श्रीराधाकृष्णकी मानसिक-सेवा करते और एक प्रहर महाप्रभुका चरित्र-कथन करते थे। श्रीराधाकुण्ड में नित्य प्रतिदिन त्रिकाल स्नान करते थे तथा ब्रजवासी वैष्णवोंको आलिंगन करते थे। साढ़े सात पहर भक्तिकी साधना करते थे और केवल चार दण्ड (आधा पहर) नींद लेते थे, वह भी किसी-किसी दिन नहीं।]

श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) 'श्रीस्तवावली', (२) 'श्रीदानचरित' (दानकलि-चिन्तामणि), (३) 'श्रीमुक्ताचरित'। इनके सिवा श्रीदासगोस्वामी प्रभुके नामसे आरोपित कितने ही बगला पद श्रीवैष्णवदास-सकलित 'पदकल्प-तरु' नामक पदसंग्रह-ग्रन्थमें देखे जाते हैं।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामिपाद

श्रीमन्महाप्रभुने दाक्षिणात्य-भ्रमण करते समय 'श्रीरगक्षेत्र' में श्रीवेकट-भट्ट नामक एक श्रीवैष्णवके घर चातुर्मास-व्रतके चार महीने अवस्थान किया। श्रीनरहरि चक्रवर्ती-ठाकुर-कृत 'श्रीभक्तिरत्नाकर'के मतानुसार इन वेकट-भट्टके ही पुत्र श्रीगोपाल भट्ट थे। बालक श्रीगोपाल भट्ट उसी समय श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाका सौभाग्य प्राप्तकर कृतार्थ हुए थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरगक्षेत्र त्याग करनेके पूर्व श्रीवेकट भट्टसे कहा था कि,—“तुम इसको सुपडित बनाना तथा विवाह-बन्धन में मत बाँधना।” श्रीगोपाल भट्ट कुछ काल-तक माता-पिताकी सेवा करके श्रीमहाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीवृन्दावन जाकर श्रीरूप-सनातनके साथ रहने लगे। श्रीगोपाल भट्टने 'गण्डकी' नदीसे द्वादश शालग्राम सग्रह करके अपने भजनकी कुटियामे स्थापित किया था। मथुराके कुछ धनी सेठोने बिना माँगे ही बहुमूल्य वस्त्राभूषण अलंकार आदि श्रीगोपाल भट्टको प्रदान किया। श्रीकृष्णके श्रीअंगोके लिये उपयोगी उन सारे वस्त्राभूषणोको किस प्रकार श्रीशालग्रामको पहनाया जाय, इसी चिन्तामें श्रीगोपाल भट्टकी सारी रात बीत गयी। ऊषाकालमें वे देखते क्या हैं कि, द्वादश शालग्राममें से एक शालग्राम त्रिभगी-द्विभुज, मुरलीधर मधुर व्रजकिशोर श्याम-रूपमें प्रकट होकर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीगोपाल भट्टने श्रीरूप-सनातन आदिके साथ १५४२ ई० की वैशाखी पूर्णिमाको उस 'श्रीराधारमण' विग्रहका अभिषेक-महामहोत्सव सम्पन्न किया। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं,—(१) 'श्रीहरिभक्ति-विलास' (श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिद्वारा समाहृत तथा श्रीसनातन गोस्वामिपादके द्वारा गुम्फित और 'दिग्दर्शिनी' टीका सहित विरचित), (२) षट्-सन्दर्भकी कारिका (श्रीजीव गोस्वामिपादने अपने षट्सन्दर्भके प्रारम्भमें इसका उल्लेख किया है)। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रीकृष्णकर्णामृत'की 'श्रीकृष्णवल्लभा'टीका भी श्रीगोपाल-

भट्ट गोस्वामिपादकी रची हुई है। वस्तुतः श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद अपनी 'सारंग-रगदा' नामक 'श्रीकृष्णकर्णामृत' की टीकामें उपर्युक्त टीकाका कोई उल्लेख नहीं करते हैं तथा उस टीकामें श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवका नमस्कार-सूचक कोई श्लोक न रहनेके कारण इस विषयमें सन्देहके लिये अवकाश रह जाता है। 'सत्क्रियासारदीपिका' तथा 'संस्कारदीपिका' ग्रन्थ भी षड्गोस्वामीमें अन्यतम श्रीगोपालभट्टगोस्वामि-पादके द्वारा रचे हुए नहीं हैं। ये किसी अन्य गोपाल भट्टके रचित हैं।*

श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामिपाद

काशीवासी श्रीतपन मिश्रके घर जब श्रीमन्महाप्रभुने कृपापूर्वक काशीमें दो महीनेके लिये भिक्षा लेना स्वीकार किया था, तब श्रीतपन मिश्रके पुत्र बालक श्रीरघुनाथको श्रीमन्महाप्रभुके उच्छिष्ट-मार्जन और उनकी पाद-सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बड़े होनेपर श्रीरघुनाथने नीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुके समीप जाकर आठ मास अवस्थान किया था। वहाँ अपने हाथसे भोजन बनाकर श्रीमन्महा-प्रभुको बीच-बीचमें वे भिक्षा कराते थे। श्रीरघुनाथ भट्ट भोजन बनानेकी सेवामें विशेष निपुण थे। श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको जब तक बृद्ध माता-पिता जीवित रहे तब तक उनकी सेवा करने और विवाह-बन्धनमें न पड़नेका उपदेश देकर काशी भेज दिया। माता-पिताकी काशी-प्राप्तिके बाद श्रीरघुनाथ पुनः श्रीनीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें उपस्थित हुए और इस बार भी आठ महीने पुरीमें रहनेके बाद प्रभुकी आज्ञासे श्रीरघुनाथ श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप-सनातनके पास जाकर रहे और श्रीमद्भागवत पाठ तथा श्रीकृष्णनामका भजन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुने कृपा करके श्रीरघुनाथको श्रीजगन्नाथ की 'चौदह हाथ तुलसीकी माला' और 'छुट्टा पान-बीड़ा' प्रदान किया था।

* विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'षड्गोस्वामी' नामक बृहद् बगला ग्रन्थमें देखें।

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीवृन्दावनमे श्रीरूप-सनातनके आश्रयमे रहकर अपने स्वभावसिद्ध सुकठसे विभिन्न राग-रागिनियोमे श्रीमद्भागवतके श्लोकोको श्रीरूपगोस्वामिपादकी सभामे कीर्तन करते थे। श्रीरघुनाथने अपने किसी धनाढ्य शिष्यके द्वारा श्रीगोविन्दके श्रीमन्दिर और श्रीविग्रह के भूषणादिका निर्माण कराया था। श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके रचित किसी ग्रन्थका नाम नहीं मिलता।

श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद

श्रीसनातन और श्रीरूपके कनिष्ठ भ्राता श्रीअनुपम (नामान्तर श्रीवल्लभ) के एकलौते पुत्र श्रीजीवगोस्वामिपाद 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'मे आविर्भूत हुए। बाल्यकासे ही श्रीजीवका श्रीमद्भागवतमे विशेष अनुराग था। बहुत थोड़े १ समयमे उन्होने सारे शास्त्रोमे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया। श्रीश्रीरूप सनातनकी ब्रज-वासलीला और श्रीगौरहरिकी अन्तर्धा। लीलाके बाद श्रीजीवका हृदय श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके लिए अत्यन्त आर्त हो उठा। स्वप्नमे श्रीमहाप्रभुके दर्शन पाकर श्रीजीव 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'से 'फतेहाबाद' होते हुए 'श्रीनवद्वीप'मे पहुँचे और श्रीनित्यानन्दका अनुगमन करते हुए उन्होने श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा की। इसके बाद श्रीजीवने काशीमे श्रीसार्वभौम-भट्टाचार्यके शिष्य श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके पास अनेको शास्त्रोका अध्ययन किया। श्रीजीव श्रीकाशीधामसे श्रीवृन्दावन गये और वहाँ श्रीश्रीरूप-सनातनके पास श्रीमद्भागवत और भक्तिशास्त्रका अध्ययन किया। तथा श्रीब्रजमण्डलमे ही भजन करते रहे। श्रीश्रीसनातनने भक्तिसिद्धान्तमे श्रीजीवकी विशेष पारदर्शिता देखकर स्वरचित 'श्रीवृहत् वैष्णवतोषणी'के सशोधनका भार उनको दिया। श्रीश्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीश्रीराधादामोदर श्रीविग्रहको प्रकटकर उनकी सेवा श्रीजीवको प्रदान की। श्रीश्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामिपादगणकी अन्तर्धान-लीलाके बाद श्रीजीवपाद गौड़, ब्रज और क्षेत्रमण्डलके गौडीय-वैष्णव-

सम्प्रदायके सार्वभौम आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित हुए । श्रीश्रीजीवगोस्वामि-पादके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ-माला वैष्णव-समाजमे सुप्रसिद्ध है —(१) 'श्रीहरिनामामृत-व्याकरण', (२) 'श्रीगोपाल-विरुदावली', (३) 'श्रीभक्तिरसामृतशेष', (४) 'श्रीमाधव-महोत्सव', (५) 'श्रीब्रह्म-सहिता-पञ्चमाध्याय-टीका', (६) 'श्रीदुर्गमसगमनी', (७) 'श्रीलोचन रोचनी' (श्रीउज्ज्वलनीलमणि-टीका) (८) 'श्रीगोपालचम्पू' (पूर्व चम्पू और उत्तर चम्पू) (९) 'श्रीसकल्पकल्पद्रुम', भावार्थसूचक चम्पू (?), (१०-१५) 'श्रीभागवत-सन्दर्भ' नामान्तर 'षट्सन्दर्भ',—'श्रीतत्त्व-सन्दर्भ', 'श्रीभगवत्सन्दर्भ', 'श्रीपरमात्म-सन्दर्भ', 'श्रीकृष्ण-सन्दर्भ', 'श्रीभक्ति-सन्दर्भ', और 'श्रीप्रीति-सन्दर्भ', (१६) 'श्रीक्रम-सन्दर्भ' (समस्त श्रीभागवतकी टीका), (१७) 'सर्वसवादिनी' (षट्सन्दर्भकी अनुव्याख्या), (१८) 'श्रीसुबोधिनी' (श्रीगोपालतापनी-टीका), (१९) पद्मपुराणस्थ 'श्रीयोग-सारस्त्रोत्र-टीका', (२०) 'अग्निपुराणस्थ-गायत्री-व्याख्याविवृति', (२१) 'श्रीराधाकृष्णार्चन-दीपिका', (२२) 'घातुसग्रह' (२३) 'सूत्र-मालिका' इत्यादि ।



परिशिष्ट

श्रीशिक्षाष्टकम्

[श्रीकृष्णचैतन्यदेवका स्व-रचित और श्रीमुखारविन्दसे निकला हुआ श्रीशिक्षाष्टक]

१ । चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेय कैरव-चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णमितास्वादनम्
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम् ॥

—श्रीपद्यावली, २२

चेतोदर्पणमार्जनं (चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला), भव-महादावाग्निनिर्वापणं (ससाररूपी महादावानलको बुझा देनेवाला), श्रेय कैरवचन्द्रिकावितरणं (परम-मंगलरूप कुमुदको विकसित करनेवाली ज्योत्स्नाको फैलानेवाला), विद्यावधूजीवनं (पराविद्यारूप बधूका प्राण-स्वरूप), आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं (आनन्दसमुद्रको बढ़ानेवाला), प्रतिपदं (पद-पदपर), पूर्णमृतास्वादनं (पूर्णमृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला) सर्वात्मस्नपनं (निखिल जीवात्माकी निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन करनेवाला), परं (अद्वितीय), श्रीकृष्णसकीर्तनं (श्रीकृष्ण-सकीर्तन), विजयते (विशेषरूपसे विजयी हो) ।

चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला, संसाररूपी महादावानल को बुझा देनेवाला, परम मंगलरूप कुमुद-विकाशक ज्योत्स्नाको फैलाने-वाला, पराविद्यारूपी बधूके प्राणस्वरूप, आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाला पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला, निखिल जीवात्मा की निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन करनेवाला अद्वितीय श्रीकृष्ण-सकीर्तन विशेष रूपसे विजयको प्राप्त हो ।

२ । नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमित स्मरणे न काल ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुराग ॥

—श्रीपद्यावली, ३१

भगवन् (हे भगवन्!), [भवता—आपके द्वारा] नाम्ना (नामसमूह के), बहुधा (अनेक प्रकार), अकारि (प्रकट हुए हैं), तत्र (उस श्रीहरि-नाममे), निजसर्वशक्ति (आपकी समस्त शक्तियाँ), अर्पिता (अर्पित हुई हैं), स्मरणे (श्रीनामस्मरणमे), काल (कोई कालविशेष), न नियमित (निरूपित नहीं किया गया है)। तब (आपकी), एतादृशी (इस प्रकारकी), कृपा (दया है), मम अपि (मेरा भी) ईदृश (ऐसा), दुर्दैवम् (अपराध है कि), इह (इस प्रकारके हरिनाममे), अनुराग (प्रीति), न अजनि (नहीं उत्पन्न हुई)।

हे भगवान्! आपके नाम-समूह (गोविन्द, गोपाल, वनमाली इत्यादि) अनेक रूपमें प्रकट हुए हैं। उस हरिनाममें आपकी समस्त शक्ति अर्पित हुई है, श्रीनामस्मरणमें कोई कालाकाल विचार नहीं है। आपकी तो इस प्रकारकी कृपा है, तथापि मेरा भी इस प्रकारका अपराध है कि ऐसे श्रीहरि नाममें अनुराग नहीं हुआ।

३ । तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ॥

—श्रीपद्यावली, ३२

तृणात् अपि (तृणकी अपेक्षा भी), सुनीचेन (अतिशय नीच होकर), तरो अपि (वृक्षकी अपेक्षा भी), सहिष्णुना (सहनशील होकर), अमानिना (स्वयं सम्मानकी आकांक्षा न करके), मानदेन (दूसरोको मान देते हुए), सदा (निरन्तर), हरि (श्रीहरि), कीर्तनीय (हरि-नामका कीर्तन करना कर्तव्य है)।

तृणकी अपेक्षा भी अतिशय नीच होकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर, स्वयं अमानी होकर और दूसरेको मान प्रदान करके निरन्तर श्रीहरिनाम या श्रीहरि-कीर्तन करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है ।

४ । न धन न जन न सुन्दरी
कविता वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहेतुकी त्वयि ॥

—श्रीपद्यावली, ६४

जगदीश ! (हे जगन्नाथ !) [अह—मैं] धन (धन) न कामये (नही चाहता), जन न [कामये], (जन नहीं चाहता), सुन्दरी (कामिनी) वा कविता (अथवा काव्य और पाण्डित्य) न [कामये] (नही चाहता), ईश्वरे त्वयि (तुम परमेश्वरमे), जन्मनि-जन्मनि (जन्म-जन्ममे), मम (मेरी), अहेतुकी (अकिंचना), भक्ति (भक्ति) भवतात् (होवे) ।

हे जगन्नाथ ! मैं धन, जन, कामिनी अथवा काव्य और पाण्डित्य की कामना नहीं करता । परमेश्वर-स्वरूप तुममें जन्म-जन्मान्तरमें मेरी अकिंचना भक्ति हो ।

५ । अयि नन्दतनुज ! किङ्कर
पतित मा विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपकज-
स्थितधूलीसदृश विचिन्तय ॥

—श्रीपद्यावली, ७१

अयि नन्दतनुज ! (हे नन्दनन्दन !), विषमे (भयकर, दुष्पार), भवाम्बुधौ (ससार-समुद्रमे), पतित (पड़े हुए), किङ्कर मा (मुझ किकरको), कृपया (कृपापूर्वक), तव (अपने), पादपकजस्थित-धूलीसदृश (चरण-कमलमे स्थित धूलीके समान), विचिन्तय (समझे) ।

हे नन्दनन्दन ! मैं इस घोर दुष्पार संसार-सागरमें पड़ा हुआ किकर हूँ । मुझको कृपा पूर्वक अपने पाद-पद्मोंकी धूलके समान समझिये ।

६ । नयन गलदश्रुधारया

वदन गद्गदरुद्धया गिरा ।

पुलकैर्निचित वपु कदा

तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

—श्रीपद्यावली, ६३

[हे गोपीजनवल्लभ !] कदा (कब), तव (आपके), नामग्रहणे (नाम-ग्रहण करते समय), नयन (मेरे दोनों नेत्र), गलदश्रुधारया [युक्त] (दर-दर बहनेवाली आसुओंकी धारासे युक्त), वदन (वदन), गद्गदरुद्धया (गद्गदभावसे रुकी हुई), गिरा [युक्त] (वाणीसे युक्त), [एव] वपु (शरीर), पुलकै (पुलकोंसे), निचित (व्याप्त), भविष्यति (होगा) ?

हे गोपीजनवल्लभ ! कब आपके श्रीनामग्रहणके समय मेरे दोनों नेत्र अश्रुधारासे प्रवाहित, मेरा वदन गद्गद रुद्धवाणीसे युक्त तथा मेरा शरीर पुलकायमान हो जायगा ?

७ । युगायित निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।

शून्यायित जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ।

—श्रीपद्यावली, ३२४

गोविन्दविरहेण (गोविन्दके विरहमें), मे (मेरा), निमिषेण युगायित (निमिषकाल भी युगके समान हो रहा है), चक्षुषा प्रावृषायित (आखे वर्षाधाराके समान आसू बहा रही है), सर्वं जगत् (समस्त विश्व), शून्यायितम् (सूना लग रहा है) ।

हे गोविन्द ! आपके विरहमें मेरा एक निमेष युगके समान बीत रहा है, नेत्रोंसे वर्षाकी धाराके समान अश्रुवर्षा हो रही है और सारा जगत् शून्य जान पड़ता है ।

८ । आश्लिष्य वा पादरता पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महता करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो ,
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥

—श्रीपद्यावली, ३३७

पादरता (चरणसेवामें लगे हुए), मा (मुझको), आश्लिष्य (आलिंगन करे), वा पिनष्टु (अथवा पेषण ही करे), अदर्शनात् (दर्शन न देकर), मर्महता वा (मर्महित ही), करोतु (करे), लम्पट (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कृष्ण), यथा तथा वा विदधातु (जैसी इच्छा, वैसे ही करे), तु (तथापि), स एव (वे ही), मत्प्राणनाथ (मेरे प्राणनाथ हैं), अपर न (दूसरा कोई नहीं) ।

चरणसेवामें रत मुझको आलिंगन करे या पीस ही डालें, दर्शन न देकर मर्महित ही करे, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीकृष्णकी जो इच्छा हो, वही करे, तथापि वही मेरे प्राणनाथ हैं, दूसरा कोई नहीं ।

श्रीपद्यावली

[श्रीचैतन्यदेवके द्वारा रचे और गाए हुए श्लोक]

श्रुतमप्यौपनिषद दूरे हरिकथामृतात् ।

यन्न सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकादय ॥

—श्रीपद्यावली ३६, श्रीभक्तिसदर्भ—६६ अनुच्छेद

उपनिषद्-प्रतिपाद्य ब्रह्म श्रुतिसम्मत होनेपर भी, हरिकथामृतसे बहुत दूर स्थित हैं, इसीसे ब्रह्मस्वरूपकी बात लगातार सुनते रहनेपर भी चित्त द्रवित नहीं होता ।

नाह विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो

नाह वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।

किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
गोपीभर्तु पदकमलयोर्दासदासानुदास ॥

—श्रीपद्यावली, ७४

मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय राजा भी नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं। परन्तु मैं नित्य स्वतः प्रकाशमान निखिलपरमानन्दपूर्ण अमृत-समुद्र-स्वरूप श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके पदकमलोका दास-दासानुदास हूँ।

दधिमथननिनादैस्त्यक्तनिद्र प्रभाते
निभृतपदमगार वल्लवीना प्रविष्टः ।
मुखकमलसमीरैराशु निर्वाप्य दीपान्
कवलितनवनीत पातु मा बालकृष्ण ॥

—श्रीपद्यावली, १४२

प्रातःकालमें माता यशोदाके दधि-मन्थनका शब्द सुनकर, निद्रात्याग करके ब्रज-गोपियोंके घरोंमें पैरोंका शब्द न करते हुए चुपचाप प्रवेशकर तथा श्रीमुखकमलकी वायुके द्वारा शीघ्र ही दीपकोको बुझाकर नवनीत भोजन करनेमें रत श्रीबालकृष्ण मेरी रक्षा करें।

सव्ये पाणौ नियमितरव किङ्किणीदाम धृत्वा
कुब्जीभूय प्रपदगतिभिर्मन्दमन्द विहस्य ।
अक्षणोर्भङ्ग्या विहसितमुखीर्वारयन् सम्मुखीना
मातुः पश्चादहरत हरिर्जातु हैयङ्गवीनम् ॥

—श्रीपद्यावली, १४३

एक बार किंकिणीध्वनिको बन्द करनेके लिये बायें हाथसे किंकिणी की डोरीको पकड़े, शरीरको कुबड़ाकर, पैरकी अंगुलियोंके बलपर चलते हुए, मृदु-मन्दहास्य-वदन श्रीकृष्णको देखकर सम्मुख खड़ी हुई गोपियाँ जब हँसने लगीं, तब श्रीहरिने अपनी नेत्र-भंगिमाके द्वारा उनके

हास्यको निवारणकर माताके पद्मात् स्थित सद्योजात नवनीतको हरण किया था ।

प्रासादाग्रे निवसति पुर स्मेरवक्त्रारविन्दो
मामालोवय स्मित सुवदनो बालगोपालमूर्ति ॥

—चै० भा० अ० २।४०६

जिनका वदनारविन्द विकसित है, वे बालगोपालमूर्ति श्रीकृष्ण मुझे देखकर मृदु मधुर हास्यसे श्रीमुखकी शोभाका समधिक विस्तार करते हुए प्रासादके ऊपरी भागमें मेरे सम्मुख आकर स्थित हो रहे हैं ।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभर प्रकाशितुम् ।

वशीविलास्याननलोकन विना

विभर्मि यत् प्राणपतंगकान् वृथा ।'

—चै० च० म० २।४५

श्रीकृष्णमें मेरी तनिक भी प्रेमगन्ध नहीं है, केवल अपने सौभाग्यातिशयको (मैं स्वयं जो अत्यन्त सौभाग्यशाली हूँ, इसे) प्रकट करनेके लिए ही क्रन्दन करता हूँ, क्योंकि (मुझमें जो प्रेमका लेशमात्र भी नहीं है, इसका प्रमाण यही है कि,) वशीविलासी श्रीकृष्णके मुखदर्शनके बिना भी मैंने व्यर्थ ही प्राणपतंगको धारण कर रक्खा है ।



परिभाषा-परिचय

[वर्णानुक्रमसे कतिपय शब्दोंका अर्थ]

अद्वैतवादी—परब्रह्म स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्तिके आश्रय रूपमे एक अद्वितीय तत्त्व है। ये सारी शक्तियाँ परब्रह्मकी ही स्वाभाविकी अविच्छेद्य शक्तियाँ हैं। अतएव स्वाभाविकी शक्ति स्वीकारमे पृथक् तत्त्व स्वीकृत न होनेपर ब्रह्मके अद्वयत्वको क्षति नहीं पहुँचती। इस प्रकारके मतको माननेवाले 'अद्वैतवादी' हैं। वैष्णव आचार्योंने इस अद्वैतवादको स्वीकार किया है; परन्तु श्रीशंकराचार्यके केवलान्वैतवाद या मायावादको अद्वैतवादके रूपमे नहीं माना।

इस पुस्तकके पृष्ठ २२ पर 'अद्वैतवादी' से तात्पर्य 'निर्विशेषवादी' से है। (देखिये—निर्विशेषवादी।)

अनुमिति—कार्य-दर्शनमे कारणकी तथा कारण-दर्शनमे कार्यकी अनुभूति।

अर्थवाद—प्रशंसा-वाक्य मात्र।

उपाधि—न्यायकी परिभाषा विशेष।

कर्म-जड़-स्मार्त—जो लोग स्मृतिशास्त्रके कर्मकांडको सर्वप्रधान मानकर विष्णुको कर्मके अधीन मानते हैं, उन्हें कर्म-जड़-स्मार्त कहते हैं।

केवलान्वैतवाद—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद)।

कैतव—पुण्य-कामना, अर्थ-कामना, काम-कामना और मुक्ति-कामना इन चारोको श्रीमद्भागवतमे 'कैतव' या कपट कहा गया है।

चिद्विलास—चित् शक्ति प्रकटित चेतन-राज्यकी विचित्रता। इसका विद्वत असम्पूर्ण प्रतिबिम्ब जड-जगत्की विचित्रता अथवा कर्मफल भोग है।

जाति—न्यायकी परिभाषा विशेष ।

डाक-पुरुष—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक विशेष ।

तत्त्ववादी—श्रीमध्वाचार्यके अनुगत सम्प्रदाय ।

द्वैतवाद—ब्रह्म स्वतन्त्र तत्त्व एव जीव और जगत् अस्वतन्त्र अर्थात् अधीन तत्त्व है । इस प्रकार दोनो तत्वोको जिस मतमें स्वीकार किया गया है उसमें ब्रह्मके साथ जीव तथा जगत्का पंचभेद स्वीकृत हुआ है । श्रीमध्वाचार्य इसके प्रचारक रहे ।

नवधा-भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वदन, पाद-सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन ये नौ प्रकारकी विष्णु-भक्ति ।

नामाभास—सम्बन्धज्ञान-रहित परन्तु अपराध-शून्य भावसे नामाक्षर उच्चारण ।

निर्विशेष-मुक्ति—श्रीशंकराचार्यकी मतोक्त मुक्ति । इसमें सेवक-सेव्य-भाव नहीं रहता ।

निर्विशेषवादी—मायावादी या केवलाद्वैतवादी (देखिए—मायावाद) ।

पंचमुक्ति—(१) सालोक्य—वैकुण्ठादि लोकवास, (२) सारूप्य—श्रीविष्णुके चतुर्भुज आदि रूप-लाभ, (३) सार्ष्टि—श्रीविष्णुके न्याय कथंचित् ऐश्वर्यलाभ, (४) सामीप्य—श्रीविष्णुके निकट वास करके भगवान्की सेवा, (५) सायुज्य—श्रीविष्णुके साथ एकीभूत अवस्था । (सायुज्य-मुक्ति शुद्ध भक्तगण नहीं चाहते, क्योंकि इसमें सेवक-सेव्य भाव नहीं रहता ।)

पंचोपासक—जो लोग विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश इन पाँच देवताओंके स्वरूपको औपाधिक अर्थात् अपने-अपने कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे सामयिक रूपमें कल्पना करके अपनी

अपनी कामनाके अनुकूल उपासना करते हैं वे लोग 'पंचोपासक' कहलाते हैं। ये लोग शुद्ध-भक्त नहीं हैं।

प्रछन्नावतारी—स्वयं भगवान्‌के अपना रूप गोपन करके भक्तका रूप धारणकर आनेके कारण श्रीगौरहरि अर्थात् श्रीचैतन्य-महाप्रभुको प्रछन्नावतारी कहा गया है।

फल्युवैराग्य—हरि-सम्बन्धी वस्तु (महाप्रसाद आदि) को जड़-वस्तु-ज्ञानसे मुक्ति कामियोंके द्वारा परित्यागको 'फल्यु-वैराग्य' कहा जाता है।

बद्ध-मुमुक्षु—त्रितापकी ज्वालासे जर्जरित होकर जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं।

भोगोपाल—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक भोगी-सम्प्रदाय-विशेष।

मधुमती सिद्धि-विद्या—योग शास्त्रोक्त मधुमती नामकी सिद्धि-लाभ करनेकी विद्या। [इसकी अधिष्ठात्री देवी 'मधुमती' योगिनी है। साधक तन्त्रानुयायी उनकी साधना करनेपर देवी साधकको दानव, गन्धर्व, विद्याधर यक्ष और राक्षसोंकी कन्या (पचकन्या) तथा विविध उपभोग्य वस्तु दान करती है ऐसी धारणा है।]

मर्कट-चैराग्य—ऊपरसे सन्यासी और अतरसे भोग-कामी।

महीपाल—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक राजन्य-सम्प्रदाय-विशेष।

मायावाद—ब्रह्म ही एकमात्र सत्य एव अद्वितीय तत्त्व है। वे निर्विशेष निर्गुण तथा निष्क्रिय हैं। जीव और जगत् ब्रह्मका विवर्तमात्र (कारणमे मिथ्या कार्य प्रतीति) है। इस प्रकारके मतको 'मायावाद' कहा जाता है। इसके प्रचारक श्रीशकराचार्य हुए।

युक्त-वैराग्य—विषयसमूहमे अनासक्त होकर हरिसेवाके अनुकूल यथायोग्य स्वीकार ।

योगीपाल—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व वगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक योगी-सम्प्रदाय-विशेष ।

लिंगायत-सम्प्रदाय—जो शैवलोग अपने शरीरपर शिवलिंग धारण करते हैं ।

विद्धाद्वैतवाद—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद) ।

विद्धा-भक्ति—जो शुद्ध-भक्त नहीं । ('शुद्ध-भक्ति' देखिये) ।

विशिष्टाद्वैतवाद—चित् और अचित् शक्ति-विशिष्ट स्वरूप ही ईश्वर है । ब्रह्म—अशी, जीव और जगत्—अश, ब्रह्म—आत्मा, जीव और जगत्—देह, ब्रह्म—आधार या आश्रय, जीव और जगत्—आधेय या आश्रित । जीव और जगत् ब्रह्मसे विशिष्ट अर्थात् धर्मत भिन्न होते हुए भी ब्रह्माश्रयी हैं और इस अर्थमे वह पृथक् सत्ताहीन होनेके कारण अभिन्न हैं । इस प्रकारके मतको 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहा जाता है । इसके प्रधान प्रचारक श्री रामानुजाचार्य हुए ।

व्याप्ति—अनुमितिका कारण । (देखिये—अनुमिति) ।

शीतला-मंगल—माता (चेचक) की अधिष्ठात्री देवीको शीतला (देवी) कहा जाता है । मंगल अर्थ है—उनका गान ।

शुद्ध-भक्ति—ज्ञान, कर्म, योगादि चेष्टा रहित अनुकूल कृष्ण-सुखानु-सन्धानमयी अहैतुकी भक्ति ।

शुद्धाद्वैतवाद—इस मतमे ईश्वर एव उनके अग शुद्ध और नित्य हैं तथा उनके उपासकगण भी शुद्ध एव नित्य हैं । जीव, जगत् और माया ईश्वरको आश्रय करते हैं । ईश्वरको

हटाकर उनका कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार शुद्ध रूपमें ईश्वरका अद्वयत्व स्वीकार करना शुद्धाद्वैतवाद है। श्रीविष्णुस्वामी इस मतके प्रवर्तक हुए।

संधिनी—भगवान् अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपनी सत्ताको धारण करते हैं और दूसरोको भी धारण कराते हैं, उसी सर्वदेशकाल द्रव्यादिको व्याप्त करनेवाली शक्तिका नाम संधिनी है।

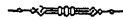
संवित्—भगवान् स्वयं सवित् अर्थात् पूर्णज्ञान स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपने आपको जान सकते हैं और दूसरोको भी जता सकते हैं, उसी शक्तिका नाम सवित् है।

सर्वज्ञ-सूक्त—सर्वज्ञ या ज्ञानी-पुरुषकी श्रेष्ठ-उक्तियाँ। विशेष अर्थमें आचार्य श्रीविष्णुस्वामीकी सिद्धान्तवाणी।

स्मार्त-आचार—स्मृति-शास्त्र-कथित कर्मकाण्डको ही जो लोग श्रेष्ठ मानते हैं, उन लोगोका क्रिया-कलाप।

स्वराट्—सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान्।

ह्लादिनी—भगवान् स्वयं आनन्द स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूप शक्तिके द्वारा वे स्वयं आनन्दित होते हैं तथा दूसरोको आनन्दित करते हैं, उसी शक्तिका नाम ही ह्लादिनी है।



ग्रन्थ-तालिका

[इस पुस्तकके लिखते समय अन्वयभावसे ग्रन्थोपकरणके रूपमें गृहीत एव व्यतिरेकभावसे आलोचित ग्रन्थ और पुस्तकोकी एक अपूर्ण तालिका नीचे दी जाती है।]

१ अणुभाष्यम्—(श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पादित), २ अणुभाष्यम्—(श्रीवल्लभाचार्य-विरचित, काशी विद्या-विलास प्रेस, १९०७), ३ अद्वैतसिद्धि —(राजेन्द्रनाथ घोष सस्करण), ४ अष्टोत्तरशतोपनिषत्—(निर्णयसागर प्रेस), ५ आम्नायसूत्रम्—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद-कृत), ६ ईष्ट इंडिया—(बेलेटिन-कृत, १७२६ ई०, Valentyn's "East India," 1726), ७ उपदेशामृतम्—(श्रीरूप-गोस्वामिपादकृत, श्रीगौडीयसम्प्रदायकर्तृक प्रकाशित), ८ एनलस् अर्बु भाडरकर, ओरियंटल रिसर्च इस्टिट्यूट ("Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute", 1933), ९ ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी, तृतीय और चतुर्थ खंड, ("A History of Indian Philosophy," Vol III and IV) —डा० सुरेन्द्रनाथ दाशगुप्त-कृत, १०. कल्याण-कल्पतरु—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ११ कायस्थ-कौस्तुभ—(राजा राजेन्द्रनाथ मित्र, १२५२ बगाब्द), १२ श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), १३ श्रीकृष्णभजना-मृतम्—(श्रीनरहरि-सरकार-ठाकुर-कृत, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पा-दित), १४ श्रीश्रीकृष्णसन्दर्भ —(श्रीश्यामलाल गोस्वामी-सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी-सस्करण), १५ कलकत्ता रिव्यू, १८४६ ई० ("Calcutta Review", 1846), १६ श्रीगोविन्दभाष्यम्—(श्री-बलदेव विद्याभूषणकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), १७ गौडीय—(साप्ताहिक पत्र, प्रथम—२४ वर्ष, ग्रन्थकार-सम्पादित), १८ श्रीश्री-गौडीयवैष्णव-साहित्य—(श्रीमद्हरिदासदासकृत), १९ श्रीगौरकृष्णो-

दय — (श्रीमद्गोविन्ददेवकृत, श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीठाकुर-सम्पादित), २० श्रीश्रीगौरगणोद्देशदीपिका—(बहरमपुर-संस्करण), २१ श्रीचैतन्यदेव एड दि मध्वाचार्य सेक्ट, (“Sri Chaitanyadeva and the Madhvacharya Sect”) प्रबन्ध—रायबहादुर अमरनाथ राय-लिखित, २२ चैतन्य एड श्रीमध्व (“Chaitanya and Sri Madhva”) प्रबन्ध—by Rai Bahadur Amarnath Roy, B A in the ‘Journal of the Assam Research Society,’ April, 1935, २३ श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्—(श्रीगौडीयमठ संस्करण), २४ श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटकम्—(निर्णयसागर प्रेस संस्करण), २५. श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतम्—(श्रीमत् ठाकुर भक्तिविनोद, श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिपाद, श्रीमाखनलाल दास भागवत-भूषण, सन् १३१५ और श्रीराधागोविन्द नाथ, तृतीय संस्करण, २६ श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतम्—श्रीमुरारिगुप्तका कडचा (टिप्पणी) अमृतबाजार संस्करण, २७. श्रीचैतन्यचरिते उपादान—(कलकत्ता-विश्वविद्यालय), २८ श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्यम्—(बहरमपुर संस्करण), २९ श्रीश्रीचैतन्यभागवत—(श्रीगौडीयमठ संस्करण और अतुलकृष्ण गोस्वामी संस्करण), ३० श्रीचैतन्यमगल—(श्रीलोचनदास ठाकुर-कृत, बगवासी संस्करण और श्रीगौडीयमठ संस्करण), ३१ चैतन्य-मुवमेन्ट— (“Chaitanya Movement”—Kennedy, 1925), ३२ श्रीचैतन्यशिक्षामृतम्—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३३ श्रीश्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटकम्—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ३४ जैवधर्म—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३५ श्रीश्रीतत्त्वसन्दर्भ —(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ३६ तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध —(श्रीपुरुषोत्तमजीकी टीकाके साथ, श्रीवल्लभाचार्य-कृत, चौखम्भा, काशी), ३७. दशमूलशिक्षा—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३८. दि पोष्ट मध्व पिरियड, (“The Post Madhva Period”) प्रबन्ध—Prof B N Krishnamurti Sharma in ‘Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute’, Vol XIX, Part

IV, 1939, ३६ नदिया गेजेटियर ("Nadia Gazetteer"), ४०. श्रीश्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ४१ निम्बार्क-दर्शन—(डा० रमा चौधरी, कलकत्ता), ४२ श्रीनृसिंहपूर्वतापनी—(Asiatic Society of Bengal), ४३ न्याय-परिचय—(म० म० फणिभूषण तर्कवागीश), ४४ श्रीश्रीपद्मावली—(श्रीरूपगोस्वामिपाद-कृत, श्रीमत्पुरीदास-महाशय सस्करण), ४५ श्रीश्रीपरमात्म-सदर्म—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ४६ पूर्णप्रज्ञदर्शनम्—(कुम्भघोणम् सस्करण), ४७ प्रमेयरत्नावली—(श्रीबलदेवकृत, श्रीगौडीयमठ सस्करण), ४८ प्रमेयरत्नार्णव—(श्रीबालकृष्ण-भट्ट-विरचित, चौखम्भा, काशी, जनवरी, १९०६), ४९ प्रार्थना और प्रेमभक्तिचन्द्रिका—(पोथी, राजसाही वरेन्द्र-अनुसन्धान-समिति), ५० श्रीश्रीप्रीति-सन्दर्भ—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी सस्करण), ५१ ब्रह्मसहिता—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), ५२. श्रीभक्ति-रत्नाकर—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५३. श्रीभक्तिरत्नावली—(श्री-विष्णुपुरीकृत, बगवासी सस्करण), ५४ श्रीश्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु—(श्रीश्रीजीवपाद, श्रीमूकुन्ददास और श्रीचक्रवर्ती टीकाके साथ श्रीहरिदास दासकृत सस्करण), ५५ श्रीश्रीभक्ति-सदर्म—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५६ श्रीश्रीभगवत्सन्दर्भ—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ५७. श्रीमद्भगवद्गीता—(श्रीश्रीधर, श्रीचक्रवर्ती, श्रीबलदेवकी टीकाके साथ, श्रीगौडीयमठ स०), ५८ श्रीमद्भगवत्—(बगवासी सस्करण, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय-सम्पादित लघु सस्करण सूचीके साथ और बहरमपुर सस्करण), ५९. श्रीभागवत-तात्पर्य-निर्णय—(श्रीमध्वाचार्यकृत कुम्भ-घोणम् सस्करण), ६० भावार्थ-दीपिका—(श्रीश्रीधरस्वामिकृत, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय सस्करण), ६१ भारतवर्ष—(मसिक पत्र, १३३२ बगाब्द, भाद्र और १३४७ बगाब्द, वैशाख), ६२ भाष्यप्रकाश—(श्री-पुरुषोत्तमजी विरचित, सटीक, चौखम्भा, काशी), ६३ भास्कर-भाष्यम्—(विद्या-विलास प्रेस, काशी), ६४ मध्व इन्फ्लुएस ऑन बेगाल वैष्णवजिम्,

(“Madhva Influence on Bengal Vaishnavism” प्रबन्ध —by Prof B N Krishnamurti Sharma in ‘Indian Culture’ Vol IV No I), ६५ मध्वाचार्य एड हिज् मेसेज् टू दि वर्ल्ड —(“Madhvacharya and His Message to the world” by M R Gopalachary), ६६ श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा—(ठाकुर श्री-भक्तिविनोद-विरचित), ६७ माधुर्य-कादम्बिनी—(श्रीविश्वनाथ-कृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ६८ मायावाद—(म० म० प्रमथ-नाथ तर्कभूषण-लिखित, विश्वभारती स०), ६९ यतीन्द्र-मत-दीपिका—(श्रीरामानुजीय श्रीनिवासाचार्यकृत, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई), ७० लाइफ एड टिचिंग्स् ऑफ् श्रीमध्वाचार्य—(“Life and Teachings of Sri Madhvacharya” by C M Padmanavachari), ७१ बगभाषा और साहित्य, षष्ठ सस्करण,—(दीनेशचन्द्र सेन), ७२ बगीय महाकोष—(अमूल्यचरण विद्याभूषण), ७३. बगीय शब्दकोष—(हरिचरण वन्द्योपाध्याय), ७४ श्रीवल्लभदिग्विजय —(श्रीयदुनाथजी कृत, निर्णयसागर प्रेस), ७५. बागलार इतिहास, द्वितीय भाग—(राखालदास वन्द्योपाध्याय), ७६ बागलार वैष्णवधर्म (कलकत्ता विश्वविद्यालय, अधर मुखर्जी वक्तृता, म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण), ७७ बागला साहित्येर इतिहास, द्वितीय स०—(डा० सुकुमार सेन), ७८. विशोत्तर-शतोप-निषत्—(निर्णयसागर प्रेस, बम्बई), ७९ श्रीश्रीविदग्धमाधव-नाटकम्—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय स०), ८० श्रीविष्णुपुराणम् (श्रीश्रीधर-स्वामिकृत ‘आत्मप्रकाश’ टीका-सहित, बगवासी स०), ८१ श्रीविष्णु-स्वामिन् एड वल्लभाचार्य, (“Vishnuswamin and Vallabha-charya”, प्रबन्ध—by G H Bhatt, M A in the ‘Proceedings and Transactions of the Seventh All India Oriental Conference’ Baroda, 1933), ८२ वृहद् बग(डा० दीनेशचन्द्र सेन), ८३ श्रीश्रीवृहद्भागवतामृतम्—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०, श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), ८४ श्रीश्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी—(श्रीमत्पुरीदास-

महाशय-सम्पादित), ८५ वेदान्त-दर्शन—[अद्वैतवाद]—(डा० आशुतोष शास्त्री), ८६ वेदान्त-दर्शन [विश्वभारती सस्करण]—(डा० रमा चौधुरी), ८७ वेदान्त-दर्शनेर इतिहास, १म-३य खंड,—(प्रज्ञानद सरस्वती), ८८ वेदान्त-पारिजात-सौरभम्—(श्रीनिम्बार्क-भाष्य, श्रीताराकिशोर-चौधुरी स०), ८९ वेदान्तस्यमन्तक—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), ९० वैष्णव फेथ् एंड मुवमेंट—(“Vaishnav-faith and movement”—Dr. S. K De), ९१ वैष्णव-मजूषा-समाहृति (श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद-सम्पादित), ९२ श्रीव्यासयोगि-चरितम्—(“The life of Sri Vyasaraya” by poet Somarnath with a Historical Introduction in English by B Venkata Rao, B A), ९३ शंकराचार्यकी ग्रन्थमाला—(वसुमती स० और राजेन्द्रनाथ घोष स०), ९४ शब्दकल्पद्रुम —(राजा राधाकान्त देव), ९५ शारीरक-भाष्यम्—(श्रीशंकराचार्यकृत, कालीवर वेदान्त-वागीश स०), ९६ शुद्धाद्वैत-मार्तंड —(गोस्वामि-श्रीगिरिधरजी-विरचित और श्रीरामकृष्णभट्ट-विरचित ‘प्रकाश’ नामक व्याख्या-समन्वित, चोखम्मा, काशी, जनवरी १९०६), ९७. श्रीक्षेत्र—(द्वितीय सस्करण), ग्रन्थकार-सम्पादित, ९८ श्रीभाष्यम्—(श्रीरामानुजाचार्यकृत, वगीय-साहित्य परिषत् स०), ९९ श्रीश्रीश्रुतिरत्नमाला—(श्रीनारायणदास भक्तिसुधाकर-कृत), १०० श्रीश्रीसंक्षेप-भागवतामृतम्—(अतुलकृष्ण गोस्वामी स० और श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), १०१ श्रीश्रीसज्जनतोषणी [पत्रिका]—(श्री-मद्भक्तिविनोद ठाकुर), १०२ सटीक हिन्दी भक्तमाल—(नाभादासकृत, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९१३), १०३ सर्वदर्शन-सग्रह —(निर्णय-सागर प्रेस स०), १०४. सर्वमूलम्—(श्रीमध्वाचार्यकृत, कुम्भघोणम् स०), १०५ सर्वसम्वादिनी—(श्रीश्रीमज्जीवगोस्वामिपादकृत, वगीय-साहित्य परिषद् सस्करण), १०६ सरार्थदशिनी—(श्रीविश्वनाथकृत, श्रीगौडीय मठ स०), १०७ सिद्धान्तरत्नम्—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), १०८ श्रीश्रीस्तवामृत-लहरी—(श्रीश्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत